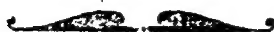
THE

HISTORY OF RAJPUTANA

VOLUME IV, PART I.



HISTORY OF THE JODHPUR STATE

PART I.



BY

MAHĀMAHOPĀDHYĀYA RĀI BAHĀDUR
SĀHITYA-VĀCHASPATI
Dr. Gaurishankar Hirachand Ojha, D. Litt. (Hony.)



PRINTED AT THE VEDIC YANTRALAYA,
AJMER.



First Edition } 1938 A. D. { *Price Rs. 8.*

PUBLISHED BY

Mahamahopadhyaya Rai Bahadur Sahitya-Vachaspati
Dr. Gaurishankar Hirachand Ojha, D. Litt.,
Ajmer.

This book is obtainable from :—

(*i*) The author, Ajmer.

(*ii*) Vyas & Sons, Booksellers,
Naya Bazar, Ajmer.

राजपूताने का इतिहास

चौथी जिल्द, पहला भाग

जोधपुर राज्य का इतिहास

प्रथम खंड

ग्रन्थकर्त्ता
महामहोपाध्याय रायबहादुर साहित्य-वाचस्पति
डॉक्टर गौरीशंकर हीराचंद ओझा, डी० लिट्० (ऑनरेरी)

बाबू चांदमल चंडक के प्रबन्ध से
वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर में छपा

प्रथम संस्करण } विक्रम संवत् १९९५ { मूल्य रु० ८

प्रकाशक—
महामहोपाध्याय रायबहादुर साहित्य-वाचस्पति
डॉ० गौरीशंकर हीराचंद ओझा, डी० लिट्०, अजमेर.

यह ग्रन्थ निम्नांकित स्थानों से प्राप्य है:—
(१) ग्रन्थकर्त्ता, अजमेर.
(२) व्यास एण्ड सन्स, बुकसेलर्स
नयाबाज़ार, अजमेर.

हिन्दू-संस्कृति के उपासक

परम विद्यानुरागी

अदम्य साहसी

वीरवर महाराजा जसवंतसिंह

की

पवित्र स्मृति को

सादर समर्पित

भूमिका

साहित्य में इतिहास का स्थान बहुत ऊंचा है। सभी सभ्य और उन्नतिशील जातियों का अपना-अपना इतिहास है, जो उनके पूर्वजों का अमर स्मारक होने के साथ ही उनकी शिक्षा एवं उन्नति का अपूर्व साधन है। आज से लगभग १५० वर्ष पूर्व भारतवासी अपने देश के इतिहास से प्रायः अनभिज्ञ-से ही थे। इस विषय का उनका जो भी ज्ञान था वह बहुत कम तथा केवल सुनी-सुनाई बातों पर ही अवलम्बित था।

अंग्रेज़ों का भारतवर्ष में अधिकार स्थापित होने पर जिन अंग्रेज़ विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ उनमें कर्नल टॉड का नाम बड़े गौरव के साथ लिया जायगा। सर्वप्रथम उसने ही भारत की वीरभूमि राजपूताने का विस्तृत इतिहास लिखकर यूरोप एवं भारत के विद्वानों का ध्यान इस महत्त्वपूर्ण देश के अतीत गौरव की ओर आकर्षित किया। उसकी अमर कृति "राजस्थान" भारतवर्ष के इतिहास की अमूल्य निधि है। फिर तो उसकी देखा-देखी कितने ही भारतीय विद्वानों ने अपने साहित्य के इस अभाव की पूर्ति का उद्योग करना आरम्भ किया। उन्होंने परिश्रम के साथ खोजकर ऐतिहासिक वृत्तों का पता लगाया और उनके सहारे इतिहास-ग्रन्थों का लिखना शुरू किया। फलतः जहां एक भी ऐतिहासिक ग्रन्थ विद्यमान न था वहां अब इस विषय के कई छोटे-बड़े ग्रन्थ देख पड़ते हैं।

सब मिलाकर राजपूताने में इस समय छोटी-बड़ी इक्कीस रियासतें हैं। उनमें से केवल सात का इतिहास ही कर्नल टॉड के ग्रन्थ में आया है, पर बड़वे, भाटों आदि की ख्यातों एवं दन्तकथाओं को ही मुख्य स्थान देने के कारण उसके वर्णन किसी अंश में आधुनिक शोध की कसौटी पर सच्चे नहीं ठहरते। इसी वीरभूमि में जन्म लेने के कारण अब तक के शोध के आधार पर यहां का सर्वांगपूर्ण इतिहास लिखने की ओर मेरा ध्यान भी

आकृष्ट हुआ । ई० स० १९२५ में मेरे लिखे हुए "राजपूताने का इतिहास" की पहली जिल्द का पहला खंड प्रकाशित हुआ था, जिसकी यूरोप तथा भारत के विद्वानों ने बड़ी प्रशंसा की। तब से अब तक इसकी तीन जिल्दें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनके कई भागों में क्रमशः राजपूताने का प्राचीन इतिहास, उदयपुर राज्य का इतिहास, डूंगरपुर राज्य का इतिहास तथा बांसवाड़ा राज्य का इतिहास निकल चुके हैं। वर्तमान पुस्तक राजपूताने के इतिहास की चौथी जिल्द का पहला भाग है, जिसमें जोधपुर राज्य का इतिहास है।

राजपूताने के राज्यों में जोधपुर का राज्य अपना अलग महत्त्व रखता है। विस्तार में राजपूताने के राज्यों में यह सबसे बड़ा है। प्राचीनता की दृष्टि से भी इसका महत्त्व कम नहीं है। सीसोदियों, चौहानों एवं भाटियों के बाद "रणबंका राठोड़ों" की ही गणना होती है। वैसे तो भारतवर्ष में राठोड़ों का अस्तित्व वि० सं० से पूर्व की तीसरी शताब्दी के आस-पास था, परन्तु वर्तमान राठोड़ वंश का राजपूताने में आगमन वि० सं० की १४वीं शताब्दी में हुआ। वि० सं० १३०० के आस-पास जोधपुर के राठोड़ों का मूल पुरुष राव सीहा कन्नौज की तरफ़ से सर्वप्रथम राजपूताने में आया और उसने तथा उसके वंशजों ने यहां राठोड़-राज्य की नींव डाली, जो क्रमशः बढ़ता गया। वि० सं० १५१६ में उसके वंशधर राव जोधा ने जोधपुर नगर की स्थापना कर एक सुदृढ़ गढ़ निर्माण किया। उसी समय से इस राज्य का नाम जोधपुर पड़ा।

राजपूताने के लगभग मध्य भाग में स्थित होने के कारण ऐतिहासिक दृष्टि से जोधपुर राज्य का बड़ा महत्त्व रहा है। यही कारण है कि विदेशी विजेताओं का ध्यान इसकी ओर सदा विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। इसकी स्थिति, विस्तार एवं शक्ति को देखते हुए कुछ मुग़ल शासकों को यहां के नरेशों की तरफ़ से सदैव आशंका ही बनी रही। ऊपरी मन से मेल रखते हुए भी वे सदा इसी प्रयत्न में रहा करते थे कि यह प्रदेश उनके क़ाबू में आ जाय। इतिहास-प्रसिद्ध कूटनीतिज्ञ औरंगज़ेब के जसवन्तसिंह तथा

अजीतसिंह के साथ के व्यवहार से यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है। मरहटों के साथ भी जोधपुरवालों का विरोध ही बना रहा। इन घटनाओं का एक परिणाम यह हुआ कि यहां के इतिहास की बहुतसी सामग्री, जोधपुर के शासकों के निरन्तर झगड़ों में फंसे रहने के कारण, नष्ट हो गई। फिर भी जो कुछ मिलती है वह उनकी सभ्यता एवं संस्कृति पर पर्याप्त प्रकाश डालती है।

भारत के किसी भी प्रान्त अथवा राज्य का शोधपूर्ण इतिहास लिखने के लिए नीचे लिखे साधनों की आवश्यकता होती है—

१. शिलालेख, दानपत्र, सिक्के आदि।
२. बड़वे, भाटों आदि की लिखी हुई ख्यातें, प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकें, संस्कृत और भाषा के काव्य, भाषा के गीत तथा कविताएं आदि।
३. राज-कर्मचारियों आदि के संग्रह के हस्तलिखित वृत्तान्त तथा वंशावलियां आदि।
४. मुसलमानों के समय के लिखे हुए फ़ारसी भाषा के इतिहास ग्रंथ।
५. अन्य विदेशी विद्वानों की लिखी हुई यात्रा आदि की पुस्तकें।

शोधपूर्ण इतिहास लिखने में शिलालेखों, दानपत्रों तथा सिक्कों आदि से बड़ी सहायता मिलती है, पर खेद का विषय है कि जोधपुर राज्य से मिलनेवाले वहां के राठोड़ों के शिलालेखों एवं दानपत्रों की संख्या नगण्य-सी है। जो दो-चार मिले हैं उनमें से अधिकांश वहां के शासकों के न होकर उनके समय में लिखे हुए अन्य व्यक्तियों के हैं, जिनसे किसी विशेष ऐतिहासिक वृत्त का ज्ञान नहीं होता। राव सीहा एवं धूहड़ के स्मारक लेखों का मिलना यह सिद्ध करता है कि वहां स्मारक बनाने की प्रथा प्रारम्भ से ही चली आती थी। अतएव यह कहा जा सकता है कि वहां के अन्य नरेशों के स्मारक तथा उनके समय के शिलालेख आदि राज्य में कहीं-न-कहीं अवश्य विद्यमान होंगे, परन्तु वे अभी तक प्रकाश में नहीं आये हैं। आवश्यकता इस बात की है कि कोई लगनशील, इतिहास से अनुराग

रखनेवाला व्यक्ति जोधपुर राज्य के गांवों में घूम-घूमकर उनकी तलाश करे। ऐसा होने से जोधा से पूर्व के अधिकांश नरेशों के स्मारकों का मिल जाना संभव है। स्मारकों के लेखों से राजाओं का समय निर्धारित करने में बड़ी सहायता मिलती है। जब तक ऐसा नहीं हो जाता तब तक राव जोधा से पूर्व के जोधपुर के राजाओं के निश्चित समय अंधकार में ही रहेंगे। उचित तो यह होगा कि राज्य इस ओर ध्यान दे, क्योंकि राजकीय सहायता प्राप्त हुए बिना इस महान् कार्य की पूर्ति असम्भव नहीं तो कठिन और कष्टसाध्य अवश्य है। जोधपुर राज्य से मिलनेवाले पुराने सिक्कों की संख्या भी कम ही है।

जोधपुर राज्य के इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाली महत्त्वपूर्ण ख्यातें आदि निम्नलिखित हैं—

१. मुंहणोत नैणसी की ख्यात।
२. जोधपुर राज्य की ख्यात।
३. दयालदास की ख्यात।
४. वीरविनोद।

इनमें से प्रथम जोधपुर के प्रसिद्ध महाराजा जसवंतसिंह के वीर एवं सुयोग्य मंत्री मुंहणोत नैणसी की लिखी हुई है। वह बड़ा इतिहास-प्रेमी व्यक्ति था। उसने बड़े परिश्रम से इतिहास-सम्बन्धी वृत्तान्तों का संग्रह किया। जितनी भी बातें उसे मिल सकीं उनका उसने अपनी पुस्तक में संग्रह किया है। अब तक की प्राप्त ख्यातों आदि से अधिक प्राचीन होने के कारण राजपूताने के इतिहास की दृष्टि से उसका ग्रंथ बड़े महत्त्व का है और इतिहास-क्षेत्र में किसी अंश में प्रामाणिक भी माना जाता है।

दूसरा ग्रन्थ जोधपुर का राजकीय इतिहास है, जो "जोधपुर राज्य ख्यात" नाम से प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ महाराजा मानसिंह के समय में लिखा गया था और इसमें आरम्भ से लगाकर महाराजा मानसिंह की मृत्यु तक का हाल है। यह ग्रन्थ बड़ा विशाल है और बड़ी-बड़ी चार जिल्दों में समाप्त हुआ है। इसके लिखने में लेखक ने विशेष छान-बीन न

कर जनश्रुति के आधार पर बहुतसी बातें लिख डाली हैं, जो निराधार होने के कारण काल्पनिक ही ठहरती हैं। साथ ही राज्य के आश्रय में लिखी जाने के कारण इसमें दिये हुए बहुतसे वर्णन पक्षपातपूर्ण एवं एकांगी हैं। फलस्वरूप उनसे कई घटनाओं पर वास्तविक प्रकाश नहीं पड़ता। पहले विस्तृत इतिहास लिखने की परिपाटी न थी। केवल राजाओं, उनकी राणियों, कुंवरों एवं कुंवरियों के नाम ही बहुधा संग्रहों में लिखे जाते थे। इन नामों के संग्रह अब भी बहियों के रूप में मिलते हैं, पर उनमें दिये हुए सभी नाम ठीक हों ऐसा देखने में नहीं आया। भिन्न-भिन्न संग्रहों में एक ही राजा के कुंवरों के नामों में बहुत भिन्नता पाई जाती है। पीछे से विस्तृत इतिहास लिखने की ओर लोगों का झुकाव होने पर उन्होंने पहले के नामों के साथ कई काल्पनिक वृतान्त बढ़ा दिये। यही कारण है कि अन्य ख्यातों आदि के समान इस ख्यात का प्रारम्भिक वर्णन भी कल्पित बातों से ही भरा पड़ा है। ख्यात-लेखक का ज्ञान कितना कम था, यह इसी से स्पष्ट है कि राव सीहा की एक राणी पार्वती और उससे बहुत पीछे होनेवाले राव रणमल की राणी कोड़मदे तथा जोधा की पुत्री शृंगारदेवी के नाम तक उसे ज्ञात न थे। यही हाल ख्यात में दिए हुए बहुतसे संवतों का है। जब वास्तविक इतिहास से ही ख्यात-लेखक अनभिज्ञ थे, तो भला सही संवत् वे कहां से लाते? यही कारण है कि पूर्व के राजाओं के कल्पित वृतान्तों के समान ही ख्यात में दिये हुए उनके जन्म, गद्दीनशीनी, मृत्यु आदि के संवत् भी कल्पित ही हैं। राव सीहा और राव धूहड़ के मृत्यु-स्मारकों के मिल जाने से अब इस विषय में ज़रा भी सन्देह नहीं रह जाता कि राव जोधा से पूर्व के ख्यात में दिये हुए संवत् पूर्णतया अशुद्ध हैं। आगे के राजाओं के संवत् भी कहीं-कहीं दूसरी ख्यातों आदि से मेल नहीं खाते। फिर भी जहां तक जोधपुर राज्य के इतिहास का सम्बन्ध है इस ख्यात की अवहेलना नहीं की जा सकती, क्योंकि यह बहुत विस्तार के साथ लिखी हुई है।

तीसरी पुस्तक अर्थात् दयालदास की ख्यात की पहली जिल्द ही

जोधपुर राज्य के इतिहास के लिए उपयोगी है। इसमें आरम्भ से लगाकर राव जोधा तक का विस्तृत इतिहास है, जो लगभग मुंहणोत नैणसी तथा जोधपुर राज्य की ख्यात जैसा ही है। इसकी दूसरी जिल्द में राव जोधा के पुत्र बीका के वंशधरों का, जो बीकानेर राज्य के स्वामी हैं, सुविस्तृत इतिहास है। इसमें भी यथाप्रसंग जोधपुर राज्य का कुछ-कुछ इतिहास आया है। कहीं-कहीं तो इसमें ऐसी बातें मिल जाती हैं, जिनका अन्यत्र पता नहीं चलता। इस दृष्टि से यह सारा ग्रन्थ जोधपुर राज्य के इतिहास के लिए कुछ अंशों में उपयोगी है।

चौथी पुस्तक उदयपुर-निवासी सुप्रसिद्ध इतिहास-प्रेमी महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास की लिखी हुई है। यह विशाल ग्रन्थ केवल जोधपुर राज्य ही नहीं बल्कि सारे राजपूताने के इतिहास के लिए समान रूप से उपयोगी है। सुयोग्य लेखक ने इसके लिखने में ख्यातों आदि के अतिरिक्त शिलालेखों, ताम्रपत्रों, प्रशस्तियों, फ़रमानों, फ़ारसी तवारीखों आदि का भी पूरा-पूरा उपयोग किया है, जिससे अन्य ख्यातों आदि से इसका महत्त्व अधिक है।

इनके अतिरिक्त और भी कई छोटी-बड़ी ख्यातें मिली हैं, पर वे अधिक विस्तार से लिखी हुई न होने के कारण विशेष उपयोगी नहीं हैं। स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद ने जोधपुर के कुछ राजाओं का जीवन-चरित्र लिखने के साथ ही वहां के राजाओं तथा उनके कुंवरों, राणियों, तथा कुंवरियों के नामों का अलग संग्रह किया था। वह भी इस इतिहास के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ है।

जोधपुर राज्य के नरेशों एवं अन्य वीर व्यक्तियों की प्रशंसा में ख्यातों आदि में बहुतसी कविताएं तथा गीत मिलते हैं। ये बहुधा अतिशयोक्तिपूर्ण बातों से भरे हैं। साथ ही इनमें से अधिकांश के रचयिताओं के नामों तथा समय का भी पता नहीं चलता। ऐसी दशा में इनकी सत्यता के विषय में सन्देह ही है। अधिक संभव तो यही है कि ये पीछे से बनाकर जोड़ दिये गये हों। ऐतिहासिक दृष्टि से ये बहुत उपयोगी भी नहीं हैं। जोधपुर राज्य

के इतिहास से संबद्ध कई संस्कृत तथा भाषा के काव्य आदि भी मिले हैं, जो एक हद तक उपयोगी हैं।

अन्य सामग्री आदि में चंडू के यहां से प्राप्त जन्मपत्रियों का संग्रह विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसमें कई राजाओं, उनकी राणियों, कुंवरों, कुंवरियों आदि की जन्म-तिथि के साथ ही कुंडलियां भी दी हुई हैं। इसके सहारे कई स्थलों पर ख्यातों में प्राप्त जोधपुर के कतिपय राजाओं की जन्म-तिथि शुद्ध करने में पर्याप्त सहायता मिली है।

फ़ारसी तवारीख़ों में भी जोधपुर राज्य का इतिहास यथाप्रसंग आया है, पर उनमें कहीं-कहीं जातीय एवं धार्मिक पक्षपात की मात्रा अधिक पाई जाती है। फिर भी वे समकालीन लेखकों की रचनाएं होने के कारण मुसलमानों के काल के हिन्दू राजाओं के इतिहास के लिए विशेष उपयोगी हैं। तारीख़ फ़रिश्ता, अकबरनामा, मुंतख़बुत्तवारीख़, जहांगीर-नामा, आलमगीरनामा, मुंतख़बुलुबाब, मिरात-इ-अहमदी आदि फ़ारसी ग्रन्थों में यथाप्रसंग जोधपुर के राजाओं का हाल दर्ज है। इस स्थल पर स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद-लिखित हुमायूंनामा, अकबरनामा, जहांगीरनामा, औरंगज़ेबनामा आदि ग्रन्थों का उल्लेख करना आवश्यक है। सैयद गुलाब मियां के उर्दू ग्रंथ "तारीख़ पालनपुर" में भी जोधपुर के कुछ राजाओं का प्रसंगवशात् हाल आया है, जिसका अन्यत्र उल्लेख नहीं मिलता। इस अमूल्य ग्रन्थ का अनुवाद पालनपुर के विद्याप्रेमी शासक नवाब सर ताले मुहम्मदख़ां ने गुजराती भाषा में "पालणपुर राज्य नो इतिहास" नाम से किया है।

मुग़लकाल में बादशाहों की तरफ़ से हिन्दू राजाओं को मिले हुए फ़रमान भी इतिहास की दृष्टि से बड़े महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। कभी-कभी तो उनके द्वारा ऐसी घटनाओं का पता चलता है, जिनका ख्यातों में तो क्या फ़ारसी तवारीख़ों तक में उल्लेख नहीं पाया जाता, पर खेद का विषय है कि जोधपुर राज्य के राजाओं से सम्बन्ध रखनेवाले फ़रमान अब तक प्रकाश में नहीं आये हैं। मुग़ल बादशाहों के साथ उनका घनिष्ठ संबंध रहा था।

इससे यह निश्चित है कि उनके पास समय-समय पर शाही फ़रमान अवश्य आये होंगे। संभव है, महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद राज्य के ख़ालसा हो जाने पर एक लम्बे समय तक कोई व्यवस्था न रहने के कारण अन्य इतिहास-सामग्री के साथ वे भी नष्ट हो गये हों।

विदेशी यात्रियों के ग्रन्थों से भी जोधपुर राज्य के इतिहास पर काफ़ी प्रकाश पड़ता है। मनूकी, बर्नियर तथा टैवर्नियर बादशाह औरंगज़ेब के समय में भारतवर्ष में आये थे। उन्होंने अपनी-अपनी पुस्तकों में उस समय का विस्तृत इतिहास दिया है। कहीं-कहीं उनमें भी केवल सुनी-सुनाई बातों के आधार पर बहुतसी बातें लिख दी गई हैं, लेकिन फिर भी उनसे कितनी ही महत्त्वपूर्ण बातों का पता चलता है।

वर्तमान लेखकों में श्रीकालिकारंजन कानूंगो, सर जदुनाथ सरकार, डा० बनारसीप्रसाद, डा० बेनीप्रसाद एवं श्रीव्रजरत्नदास का उल्लेख करना आवश्यक है। इन्होंने अपने ग्रन्थों में यथाप्रसंग जोधपुर के राजाओं का कुछ-कुछ हाल दिया है, जो इतिहास की दृष्टि से उपयोगी है।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रणयन में उपर्युक्त सभी साधनों का उपयोग किया गया है, परन्तु प्रधानता आधुनिक शोध को ही दी गई है। जहां शोध के अभाव में सत्य वृत्त ज्ञात न हो सका, वहां हमें बाध्य होकर ख्यातों के कथन को ही प्रमुख स्थान देना पड़ा है। मुसलमानों के समय का इतिहास बहुधा फ़ारसी तवारीख़ों पर अवलम्बित है, पर जहां कहीं सन्देह का स्थान उपस्थित हुआ अथवा कई तवारीख़ों के वर्णनों में विभिन्नता पाई गई वहां टिप्पणियों-द्वारा यथासंभव प्रकाश डाला गया है।

यह पुस्तक दो भागों में समाप्त होगी। प्रस्तुत पुस्तक पहला भाग है। इसके आरम्भ में राज्य का संक्षिप्त भौगोलिक परिचय देने के अतिरिक्त उसके अन्तर्गत यहां के प्राचीन तथा प्रसिद्ध स्थानों का वर्णन किया गया है, जहां से प्राप्त शिलालेखों से राठोड़ों के पूर्व वहां अधिकार करनेवाले राजाओं के इतिहास पर बहुत प्रकाश पड़ता है।

इसके आगे राव सीहा से लेकर महाराजा जसवन्तसिंह (प्रथम) तक का विस्तृत इतिहास है। राठोड़ों से पूर्व यहां जिन-जिन जातियों का प्राधान्य रहा उनका संक्षिप्त परिचय तथा राव सीहा से पूर्व के भारतवर्ष के विभिन्न विभागों के राठोड़ों का जो कुछ इतिहास शोध से ज्ञात हो सका वह संक्षेप में प्रारम्भ में दिया गया है। कन्नौज के गाहड़वालों और जोधपुर के राठोड़ों के विषय में कुछ लोगों का मत है कि ये दोनों भिन्न वंश न होकर एक ही हैं। इस भ्रान्तिमूलक धारणा का कारण यही प्रतीत होता है कि ऐसा माननेवालों ने कन्नौज के चन्द्रदेव तथा बदायूं के चन्द्र को एक ही मान लिया है। वस्तुतः ये दोनों भिन्न व्यक्ति थे और अलग-अलग समय में हुए थे। इस प्रश्न का सविस्तर विवेचन हमने "राठोड़ और गाहड़वाल" शीर्षक अध्याय में किया है, जिससे आशा है कि इस विषय पर समुचित प्रकाश पड़ेगा।

यह इतिहास सर्वांगपूर्ण है, यह कहने का मैं साहस नहीं कर सकता, पर इसमें आधुनिक शोध को पूरा-पूरा स्थान देने का भरसक प्रयत्न किया गया है। जिन व्यक्तियों आदि के नाम प्रसंगवशात् इतिहास में आये, उनका—जहां तक पता लगा—आवश्यकतानुसार कहीं संक्षेप में और कहीं विस्तार से परिचय (टिप्पण में) दे दिया गया है। मेरा विश्वास है कि इसके द्वारा जोधपुर राज्य का प्राचीन गौरव प्रकाश में आयगा और यहां का वास्तविक इतिहास पाठकों को ज्ञात होगा।

भूल मनुष्य-मात्र से होती है और मैं भी इस नियम का अपवाद नहीं हूं। फिर इस समय मेरी वृद्धावस्था है और नेत्रों की शक्ति भी पहले जैसी नहीं रही है, जिससे, संभव है, कुछ स्थलों पर त्रुटियां रह गई हों। आशा है, उदार पाठक उनके लिए मुझे क्षमा करेंगे और जो त्रुटियां उनकी दृष्टि में आवें उन्हें मुझे सूचित करेंगे, जिससे दूसरे संस्करण में उचित सुधार किया जा सके।

मैं उन ग्रन्थकर्ताओं का, जिनके ग्रन्थों से इस पुस्तक के लिखने में मुझे सहायता मिली है, अत्यन्त अनुगृहीत हूं। उनके नाम यथाप्रसंग

टिप्पणों में दे दिये गये हैं। विस्तृत पुस्तक-सूची दूसरे भाग के अन्त में दी जायगी। इस पुस्तक के प्रणयन में मुझे अपने आयुष्मान् पुत्र प्रो० रामेश्वर ओझा, एम० ए० तथा निजी इतिहास-विभाग के कार्यकर्ता पं० चिरंजीलाल व्यास एवं पं० नाथूलाल व्यास से पर्याप्त सहायता मिली है, अतएव इनका नामोल्लेख करना भी मैं आवश्यक समझता हूं।

अजमेर,
रक्षाबन्धन,
वि० सं० १६६५.

गौरीशंकर हीराचंद ओझा.

विषय-सूची

पहला अध्याय

भूगोल-सम्बन्धी वर्णन

दूसरा अध्याय

वर्तमान राठोड़ों से पूर्व के मारवाड़ के राजवंश

तीसरा अध्याय

राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) का प्राचीन इतिहास

विषय	पृष्ठांक

चौथा अध्याय

राठोड़ और गाहड़वाल (गहरवार)

पांचवां अध्याय

राव सीहा से राव रणमल तक

छठा अध्याय

राव जोधा से राव गांगा तक

सातवां अध्याय

राव मालदेव और राव चन्द्रसेन

.८७

आठवां अध्याय

२८७

राजा उदयसिंह से महाराजा गजसिंह तक

२८
४२४

। च॰,

जन॰ . ..

सरदारो .

नवां अध्याय

महाराजा जसवन्तसिंह

चित्र-सूची

महामहोपाध्याय रायबहादुर डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा, डी० लिट्०-रचित तथा संपादित ग्रन्थ

स्वतन्त्र रचनाएं—

		मूल्य
(१) प्राचीन लिपिमाला (प्रथम संस्करण)	...	अप्राप्य
(२) भारतीय प्राचीन लिपिमाला (द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण)	...	अप्राप्य
(३) सोलंकियों का प्राचीन इतिहास—प्रथम भाग	...	अप्राप्य
(४) सिरोही राज्य का इतिहास	...	अप्राप्य
(५) बापा रावल का सोने का सिक्का	...	॥)
(६) वीरशिरोमणि महाराणा प्रतापसिंह	...	॥=)
(७) * मध्यकालीन भारतीय संस्कृति	...	रु० ३)
(८) राजपूताने का इतिहास—पहली जिल्द (द्वितीय संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण)	...	रु० ७)
(९) राजपूताने का इतिहास—दूसरी जिल्द,		
उदयपुर राज्य का इतिहास—पहला खंड	...	अप्राप्य
उदयपुर राज्य का इतिहास—दूसरा खंड	...	रु० ११)
(१०) राजपूताने का इतिहास—तीसरी जिल्द,		
पहला भाग—डूंगरपुर राज्य का इतिहास	...	रु० ४)
दूसरा भाग—बांसवाड़ा राज्य का इतिहास	...	रु० ४॥)
तीसरा भाग—प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास	...	यंत्रस्थ
(११) राजपूताने का इतिहास—चौथी जिल्द,		
जोधपुर राज्य का इतिहास—प्रथम खण्ड	...	रु० ८)
जोधपुर राज्य का इतिहास—द्वितीय खण्ड	...	यंत्रस्थ
(१२) राजपूताने का इतिहास—पांचवीं जिल्द,		
बीकानेर राज्य का इतिहास—प्रथम खंड	...	यंत्रस्थ
बीकानेर राज्य का इतिहास—द्वितीय खंड	...	यंत्रस्थ

* प्रयाग की "हिन्दुस्तानी एकेडेमी"-द्वारा प्रकाशित। इसका उर्दू अनुवाद भी उक्त संस्था ने प्रकाशित किया है। "गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी" (अहमदाबाद) ने भी इस पुस्तक का गुजराती अनुवाद प्रकाशित किया है, जो वहां से १) रु० में मिलता है।

		मूल्य
(१३) राजपूताने का इतिहास—दूसरा खंड	...	अप्राप्य
(१४) राजपूताने का इतिहास—तीसरा खंड	...	रु० ६)
(१५) राजपूताने का इतिहास—चौथा खंड	...	रु० ६)
(१६) भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की सामग्री	...	॥)
(१७) ‡ कर्नल जेम्स टॉड का जीवनचरित्र	...	।)
(१८) ‡ राजस्थान-ऐतिहासिक-दन्तकथा—प्रथम भाग ('एक राजस्थान निवासी' नाम से प्रकाशित)	...	अप्राप्य
(१९) × नागरी अंक और अक्षर	...	अप्राप्य

सम्पादित

(२०) * अशोक की धर्मलिपियां—पहला खंड (प्रधान शिलाभिलेख)	...	रु०	३)
(२१) * सुलेमान सौदागर	...	,,	१।)
(२२) * प्राचीन मुद्रा	...	,,	३)
(२३) * नागरीप्रचारिणी पत्रिका (त्रैमासिक) नवीन संस्करण, भाग १ से १२ तक—प्रत्येक भाग	...	,,	१०)
(२४) * कोशोत्सव स्मारक संग्रह	...	,,	३)
(२५-२६) ‡ हिन्दी टॉड राजस्थान—पहला और दूसरा खंड (इनमें विस्तृत सम्पादकीय टिप्पणियों-द्वारा टॉड-कृत 'राजस्थान' की अनेक ऐतिहासिक त्रुटियां शुद्ध की गई हैं)	...	रु०	४)
(२७) जयानक-प्रणीत 'पृथ्वीराज-विजय-महाकाव्य' सटीक	...	यंत्रस्थ	
(२८) जयसोम-रचित 'कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्'		यंत्रस्थ	
(२९) मुंहणोत नैणसी की ख्यात—दूसरा भाग	...	रु०	४)
(३०) गद्य-रत्न-माला—संकलन	...	रु०	१।)
(३१) पद्य-रत्न-माला—संकलन	...	रु०	।।।)

‡ खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर-द्वारा प्रकाशित।

× हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग-द्वारा प्रकाशित।

* काशी नागरीप्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित।



ग्रन्थकर्ता-द्वारा रचित पुस्तकें 'व्यास एण्ड सन्स', बुकसेलर्स, अजमेर के यहां भी मिलती हैं।

राजपूताने का इतिहास

चौथी जिल्द, पहला भाग

जोधपुर राज्य का इतिहास

प्रथम खण्ड

पहला अध्याय

भूगोल सम्बन्धी वर्णन

संस्कृत शिलालेखों, पुस्तकों आदि में जोधपुर राज्य का नाम मरु[1],

---

(१) समानौ मरुधन्वानौ

अमरकोश; काण्ड २, भूमिवर्ग, श्लोक ५।

'मरु' का अर्थ मरना और रेगिस्तान है अर्थात् जहां यात्री जल बिना मर जाते हैं, उसे मरुदेश कहते हैं।

भागवत में 'मरुधन्व' नाम दिया है, जिसका अर्थ मरु नाम का रेगिस्तान है—

ब्रह्मावर्तं कुरुक्षेत्रं मत्स्यान्सारस्वतानथ ॥ ३४ ॥

मरुधन्वमतिक्रम्य सौवीराभीरयोः परान्।······॥ ३५ ॥

प्रथम स्कन्ध, अध्याय १०।

नाम

मरुस्थल[1], मरुस्थली[2], मरुमेदिनी[3], मरुमंडल[4], मारव[5], मरुदेश[6] और मरुकांतार[7] मिलते हैं, जिनका अर्थ रेगिस्तान या निर्जल देश होता है और भाषा में उसको मारवाड़ और मुरधर[8]

---

(१) तत्प्राप्नोति मरुस्थलेऽपि नितरां मेरौ ततोनाधिकम्

भर्तृहरि; नीतिशतक, श्लोक ४६ ।

आयाते दयिते मरुस्थलभुवामुद्वीक्ष्य दुर्लंघ्यताम् ।···॥ २०७५ ॥

वल्लभदेव; सुभाषितावलि, पृ० ३५६ ।

(२) मरुस्थल्यां यथावृष्टिः·············

हितोपदेश; मित्रलाभ श्लो० ११ ।

राष्ट्रवर्यनरनाथमंडलीमौलिमंडनमणिर्मरुस्थली (म्) ।···॥ ४ ॥

घोसुंडी का शिलालेख;

जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; जिल्द ५६, भाग १, संख्या २, पृ० ८० ।

(३) वितीर्यकन्या विधिवत्तुतोष यो यात्प्रयागे मरुमेदिनी पतिः ॥६॥

वही; पृ० ८० ।

(४) अथ मरुमण्डले पल्लीग्रामे काकूपाताकौ भ्रातरौ निवसतः ।

मेरुतुंग; प्रबंधचिंतामणि; पृ० २७५ ।

(५) ···। उच्चायां चैव भम्भेर्यां मारवे मालवे तथा ।

वही; पृ० २४३ ।

(६) श्रीसोमसिंहोदयसिंहधारावर्षैरमीभिर्मरुदेशनाथैः ।

जयसिंहसूरि; हम्मीरमदमर्दन, पृ० ११ ।

(७) तेन तन्मरुकांतारं पृथिव्यां किल विश्रुतम् । ··· ॥

वाल्मीकीय रामायण; युद्धकाण्ड, सर्ग २२ ।

'मरु' और 'मरुकांतार' शब्द राजपूताना के सारे रेगिस्तान के लिए भी प्रयुक्त होते हैं ।

(८) माणस मुरधरिया माणक सम मूंगा······· ॥

कवि उमरदान; उमरकाव्य, पृ० ३२२ ।

मुरधरिया=मुरधर (मरुधरा, मारवाड़) के रहनेवाले । मूंगा=बहुमूल्य, महंगा ।

12 Rewari S.C. Sharma

(मरुधरा) कहते हैं। जब से जोधपुर नगर बसा तब से वह जोधपुर राज्य के नाम से भी प्रसिद्ध हुआ।

मारवाड़ नाम वैसा ही है, जैसा कि काठियावाड़, गोहिलवाड़, झालावाड़ आदि। इन शब्दों में 'वाड़' का अर्थ 'रक्षक' है, अतएव मारवाड़ (मरुवाड़) का अर्थ 'रेगिस्तान से रक्षित देश'[1] है।

प्राचीनकाल में जोधपुर राज्य के केवल पश्चिमी रेगिस्तान का ही मरुभूमि में समावेश होता था। राज्य के उत्तरी हिस्से की गणना जांगल देश में होती थी, जिसकी राजधानी 'अहिच्छत्रपुर' (नागोर) थी। पीछे से भीनमाल आदि प्रदेश पर जब गुर्जरों का राज्य हुआ, तब से इस राज्य का सारा पूर्वी हिस्सा 'गुर्जरत्रा' (गुजरात) कहलाने लगा। रघुवंशी प्रतिहारों के राज्य-समय तक वह इसी नाम से प्रसिद्ध रहा। फिर चौहानों के समय नागोर, सांभर आदि प्रदेश 'सपादलक्ष' नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके राज्य का प्रताप बहुत बढ़ने पर उनके अधीन का सारा प्रदेश 'सपादलक्ष' कहलाने लगा।

राजपूताने के सारे रेगिस्तान में पहले समुद्र लहराता था, परन्तु भूकम्प आदि प्राकृतिक कारणों से भूमि ऊंची हो जाने से समुद्र का जल दक्षिण की ओर हट गया और उसके स्थान में रेते का पुंज मात्र रह गया। रेगिस्तान से शंख, सीप, कौड़ी आदि के पाषाण में परिवर्तित रूप (Fossils) मिलते हैं, जो वहां पर पहले समुद्र का होना सूचित करते हैं[2]।

जोधपुर राज्य राजपूताने के दक्षिण पश्चिम में २४° ३७′ और २७° ४२′

(१) रेगिस्तान, पहाड़, सघन वन, नदी और वीर पुरुषों की भुजाएं ये सब देशों के रक्षक माने जाते हैं, क्योंकि इनके कारण शत्रु उनमें आसानी से प्रवेश नहीं कर सकता—

देशांस्तान्धन्वशैलद्रुमस(ग)हनसरिद्वीरबाहूपगूढान्··· ।

डॉ० फ्लीट; गुप्त इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० १४६ ।

(२) रामायण से पाया जाता है कि दक्षिण सागर ने जब सेतु बंधवाना स्वीकार किया तब रामचंद्र ने उसको भयभीत करने के लिए खींचा हुआ अपना अमोघ बाण इधर फेंका, जिससे यहां समुद्र के स्थान में 'मरुकांतार' हो गया—

उत्तर अक्षांश तथा ७०°५' और ७५°२२' पूर्व देशांतर के बीच फैला हुआ है। इसकी अधिक से अधिक लंबाई ३२० मील और चौड़ाई १७० मील है। इसका क्षेत्रफल ३५०१६ वर्गमील है।

स्थान और क्षेत्रफल

जोधपुर राज्य के उत्तर में बीकानेर, उत्तर-पश्चिम में जैसलमेर, पश्चिम में सिंध का थर और पारकर ज़िला, दक्षिण-पश्चिम में कच्छ का रण, दक्षिण में पालनपुर और सिरोही, दक्षिण-पूर्व में उदयपुर, पूर्व में अजमेर-मेरवाड़ा तथा किशनगढ़ और उत्तर-पूर्व में जयपुर राज्य हैं।

सीमा

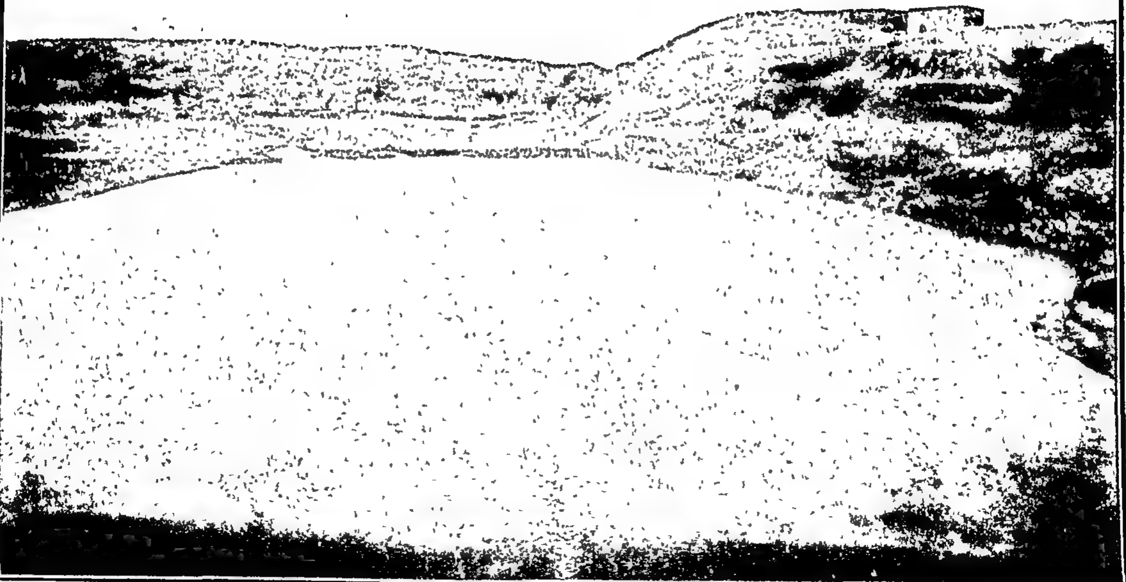
जोधपुर राज्य में अर्वली (आड़ावळा) पर्वत की श्रेणियां सांभर झील के पास से प्रारंभ होकर दक्षिण-पूर्व में उदयपुर और सिरोही राज्यों की सीमा तक चली गई हैं। इन श्रेणियों के अतिरिक्त और भी कई पहाड़ियां हैं, जिनमें मुख्य जसवंतपुरा ज़िले की सूंधा की पहाड़ी (ऊंचाई ३२५७ फुट) सिवाना के पास छप्पन की पहाड़ी (३१९९ फुट) और जालोर के पास सोनगढ़ (सोनलगढ़, रोजा की पहाड़ी, २४०८ फुट) हैं। सब से ऊंची पहाड़ी, जिसकी ऊंचाई ३६०७ फुट है, नाणा स्टेशन से क़रीब १२ मील पूर्व में है।

पर्वत श्रेणियां

जोधपुर राज्य में सालभर बहनेवाली एक भी नदी नहीं है। वहां की मुख्य नदी लूणी है, जो अजमेर के दक्षिण-पश्चिम की पहाड़ियों से निकलती है, ज़हां उसे सागरमती कहते हैं। गोविंदगढ़ के पास सरसती (सरस्वती) नदी, जो

नदियां

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सगरस्य महात्मनः।
मुमोच तं शरं दीप्तं परं सागरदर्शनात् ॥ ३२ ॥
तेन तन्मरुकांतारं पृथिव्यां किल विश्रुतम्।
निपातितः शरो यत्र वज्राशनिसमप्रभः ॥ ३३ ॥
वाल्मीकीय 'रामायण'; युद्धकांड, सर्ग २२



कायलासे की झील

पुष्कर से निकलती है, उससे मिल जाती है। वहां से आगे वह लूणी कहलाती है और जोधपुर राज्य में प्रवेश करती है। वह पश्चिम तथा दक्षिण पश्चिम में बहती हुई कच्छ के रण में जा गिरती है। जोधपुर राज्य में उसका बहाव २०० मील है। अजमेर से लगाकर आबू तक की पहाड़ियों के पश्चिमी ढाल का पानी उसमें मिलता है। वह उष्णकाल में सूख जाती है। बालोतरे तक उसका जल मीठा रहता है और वहां से आगे खारा होता जाता है। उसके जल को खेती के काम में लाने के लिए बीलाड़ा के पास एक बांध बांध-कर जसवंतसागर नाम का बड़ा तालाब बनाया गया है, जिसके भर जाने पर २००00 एकड़ से अधिक भूमि की सिंचाई हो सकती है। वहां से आगे बढ़ने पर जोजरी, बांड़ी, सूकड़ी, खारी और जवाई आदि बरसाती नदियां उसमें मिलती हैं।

झीलें

सांभर, डीडवाना और पचपद्रा की प्राकृतिक झीलें खारे पानी की हैं, जहां नमक बनता है। सांभर की झील उन सब में बड़ी है। पूरी भर जाने पर उसकी अधिक से अधिक लंबाई २० मील और चौड़ाई २ से ७ मील तक हो जाती है। उस समय उसका क्षेत्रफल ६० वर्ग मील होता है। उक्त झील पर जयपुर और जोधपुर दोनों राज्यों का अधिकार है। ई० स० १८७० से अंग्रेज़ सरकार ने नमक बनाने के लिए दोनों राज्यों से उसे ठेके पर ले लिया है, जिसके एवज़ में जोधपुर राज्य को ४½ लाख रुपये और जयपुर राज्य को २½ लाख रुपये सालाना मिलते हैं। इसी तरह जोधपुर राज्य ने डीडवाना और पचपद्रा की झीलों को भी नमक बनाने के लिए अंग्रेज़ सरकार को ठेके पर दे रक्खा है। मीठे पानी की कृत्रिम झीलों में जसवंतसागर (बीलाड़ा परगना), सरदारसमंद (पाली परगना), एडवर्डसमंद (जालोर परगना), बालसमंद और कायलाणा (जोधपुर के निकट) प्रधान हैं। उनमें जसवंतसागर सब से बड़ी झील है, जिसको महाराजा जसवंतसिंह (दूसरा) ने बनवाया था। इनके अतिरिक्त चोपड़ा, जोगरवास, खारड़ा और सादड़ी के पास भी तालाब हैं, जिनके जल से खेती होती है। इनके सिवाय कई एक छोटे-छोटे तालाब भी हैं।

जलवायु

जलवायु के सम्बन्ध में यह राज्य स्वास्थ्यप्रद समझा जाता है। यहां उष्णकाल में गर्मी बहुत पड़ती है। अप्रेल, मई और जून महीनों में 'लू' चलती है और आंधियां आती हैं। कभी-कभी अधिक 'लू' चलने से कहीं कुछ लोग मर भी जाते हैं। राज्य के पूर्वी विभाग की अपेक्षा उत्तरी और पश्चिमी विभाग में, जहां रेता अधिक है, गर्मी विशेष पड़ती है। जब कभी बहुत गर्मी पड़ती है तो कहीं-कहीं वह १२३° से अधिक पहुंच जाती है। रेता जल्दी ठंढा हो जाता है, जिससे रात में ठंढक रहती है।

शीतकाल में ठंढ बहुत पड़ती है और कभी-कभी वह लगभग २४° तक पहुंच जाती है। रेतीले प्रदेश में रेत के जल्दी ठंढे हो जाने के कारण सर्दी की अधिकता रहती है।

वर्षा

सामान्यतया इस राज्य में वर्षा कम होती है, परन्तु पश्चिमी और उत्तरी हिस्से की अपेक्षा दक्षिण-पूर्वी और दक्षिणी हिस्से में, जहां पर्वत श्रेणियां तथा जंगल आ गये हैं, वर्षा अधिक होती है। शहर जोधपुर की वर्षा की सालाना औसत १३ इंच के क़रीब है। ई० स० १८९२ में वहां क़रीब ३० इंच वर्षा हुई थी; ई० स० १८९९ में केवल एक ही इंच हुई। ई० स० १८८१ के अगस्त महीने में वहां एक दिन में १० इंच वृष्टि हुई। राज्य के अलग-अलग विभागों में वृष्टि की औसत अलग-अलग है। शिव आदि पश्चिमी परगनों की ७ इंच से भी कम; बाली, जसवंतपुरा आदि परगनों की १८ इंच से अधिक और सांभर की २० इंच तक की औसत है। कभी-कभी इस राज्य में अतिवृष्टि तथा अनावृष्टि भी हो जाती है। ई० स० १८९३ में सांचोर में ५५½ इंच से भी अधिक वर्षा हुई। ई० १८९९ में शिव आदि परगनों में केवल १४ सेंट ही वर्षा हुई। पहले राजधानी में जल का कष्ट अधिक होने से लोग अपने मकानों का जल एकत्र करने के लिए घरों में टांके बनवाते थे, किन्तु आजकल वहां जल का वैसा कष्ट नहीं रहा।

जोधपुर राज्य में भूमि दो प्रकार की है। एक तो वह जिसमें ख़रीफ़

(सियालू) और रबी (उन्हालू) दोनों फ़सलें होती हैं, और दूसरा रेतीला मैदान, जिसमें एक ही फ़सल (खरीफ़) होती है।

जमीन और पैदावार

राज्य के पूर्वी, दक्षिणी और कुछ दक्षिण-पश्चिमी भागों अर्थात् सांभर, परबतसर, मेड़ता, बीलाड़ा, कुछ हिस्सा जोधपुर (परगना), जैतारण, सोजत, पाली, देसूरी, बाली, जालोर और जसवंतपुरा में दोनों फ़सलें होती हैं। इन परगनों में रबी की फ़सल अधिकतर कुओं या तालावों के जल से होती है। उत्तरी, पश्चिमी और कुछ दक्षिणी हिस्सों अर्थात् डीडवाना, नागोर, फलोदी, कुछ हिस्सा जोधपुर (परगना), शेरगढ़, पचपद्रा, सिवाना, शिव, मालानी और सांचोर परगनों में केवल खरीफ़ की फ़सल होती है, जो चौमासे की वृष्टि पर निर्भर है।

खरीफ़ की फ़सल की पैदावार बाजरा, जवार, मक्का, मोठ, मूंग, तिल, रुई और सन हैं। इनमें बाजरा सबसे अधिक पैदा होता है, जवार और मोठ इससे कम होते हैं, शेष वस्तुएं बहुत कम। रबी (उन्हालू) की फ़सल में गेहूं, जौ, चना, सरसों, अलसी और राई पैदा होती हैं। जहां कुओं अथवा तालावों से जल पहुंचाने की सुविधा होती है वहीं इनकी खेती की जाती है। कहीं-कहीं गन्ने की खेती भी होती है। कुओं से जल रहँट या चड़स के द्वारा निकालकर खेतों में पहुंचाया जाता है।

फल

फलों में मतीरा, खरबूजा, ककड़ी, सिंघाड़ा, अमरूद, आम, नारंगी, केला, बेर और अनार तथा शाकों में गोभी, लहसुन, प्याज़, आलू, मूली, शकरकंद, शलजम, गाजर, मेथी और बैंगन आदि होते हैं।

जंगल

जोधपुर राज्य में विशेषकर अर्वली के पश्चिमी ढाल की ओर के बाली, देसूरी, परबतसर, सोजत और सिवाना के परगनों में जंगल हैं। उनमें सालर, गूलर, कड़ाया, धौ, ढाक आदि वृक्ष होते हैं। ढाल के नीचे के हिस्सों में ढाक (पलाश), बेर, खेर, धामण और धौ के वृक्ष होते हैं। धौ और खेर की लकड़ी इमारतों के काम में आती है। बबूल प्रायः मैदानों में होता है। नीम बहुधा

बस्तियों के पास होते हैं। जंगल की पैदावार में इमारती लकड़ी, जलाने की लकड़ी, बांस, घास, शहद, मोम, गोंद आदि हैं। जंगल का कुछ भाग इमारती लकड़ी और घास के लिए राज्य की तरफ़ से सुरक्षित है तो भी अकाल के दिनों में वहां पर पशुओं को चराने तथा वहां से ग़रीबों को लकड़ी व घास लाने की आज्ञा मिल जाती है।

जंगली जानवर और पशु-पक्षी

पालतू पशुओं में ऊंट, गाय, भैंस, घोड़ा, गधा, भेड़ और बकरी हैं। घोड़े और ऊंट सवारी के काम में आते हैं। इस प्रान्त में ऊंट बहुत उपयोगी जानवर है। वह 'रेगिस्तान का ज़हाज़' कहलाता है। सवारी के अतिरिक्त उससे पानी, लकड़ी तथा पत्थर आदि बोझा लाने और खेतों में हल जोतने का काम भी लिया जाता है। जंगली जानवरों में बाघ, चीता, रीछ, सूअर, भेड़िया, लकड़बग्घा (जरख), नीलगाय, हिरन, चीतल और ख़रगोश अर्वली पर्वत के जंगलों में पाये जाते हैं। गांवों के पास मोर, कबूतर और तोते बहुत होते हैं। मोर, कबूतर और बंदरों को मारने की राज्य की ओर से मनाही है। जंगली पक्षियों में कई प्रकार के तीतर, बटेर और मुर्ग़ होते हैं। जलाशयों के पास बगुले, सारस, बतक, आड़, जलमुर्ग़ाबियां आदि मिलते हैं। मछलियां, कछुए और मगर (घड़ियाल) झीलों में पाये जाते हैं।

खानें

जालोर और सोजत की खानों से पहले जस्ता और तांबा निकाला जाता था, परन्तु बाहर से आनेवाली ये धातुएं सस्ती मिलने के कारण बहुत वर्षों से ये खानें बंद हैं। ऐसा कहते हैं कि जालोर और पाली के पास के पहाड़ों में सोना है। सांभर, डीडवाना और पचपद्रा की झीलों में नमक पैदा होता है। सब से बढ़िया संगमरमर मकराणे में निकलता है। इसी पत्थर से आगरे का ताजमहल, अजमेर के आनासागर पर की बारादरियां, दिल्ली का दीवाने खास और कलकत्ते का विक्टोरिया-स्मारक-भवन (Victoria Memorial) आदि कई सुन्दर इमारतें बनी हैं। इस पत्थर के टुकड़ों से बना हुआ चूना सफ़ेदी के लिए सर्वोत्तम समझा जाता है। मकान की छतों के लिए काम

में आनेवाली पत्थर की लंबी-लंबी पट्टियां जोधपुर, खाटू आदि में निकलती हैं। मकानों की चुनाई के काम का पत्थर जोधपुर, पचपद्रा, सोजत, पाली, खाटू, मेड़ता, नागोर आदि में पाया जाता है। कड्डी (जो इमारती पत्थरों को चिपकाने में सीमेंट का काम देती है) नागोर, फलोदी और बाड़मेर परगनों में निकलती है। मुलतानी मिट्टी, जिसे राजपूताना में 'मेट' कहते हैं और जो बाल धोने तथा बढ़िया बर्तन बनाने आदि के काम में आती है, फलोदी और बाड़मेर के ज़िलों में पाई जाती है। वह बाहर भी बहुत जाती है।

किले

जोधपुर राज्य में प्रसिद्ध क़िले नागोर, जालोर, सिवाना और जोधपुर हैं। इनके अतिरिक्त छोटे-बड़े कई गढ़ और भी हैं।

रेल्वे

इस राज्य में बी० बी० ऐंड सी० आई० रेल्वे (प्राचीन नाम राजपूताना मालवा रेल्वे) और जोधपुर स्टेट रेल्वे दोनों हैं। बी० बी० ऐंड सी० आई० रेल्वे सरकारी है और दूसरी राज्य की। दिल्ली से अहमदाबाद जानेवाली बी० बी० ऐंड सी० आई० रेल्वे बर स्टेशन से इस राज्य में प्रवेश करती है और नाणा स्टेशन से कुछ आगे इस राज्य से अलग होती है। उक्त राज्य में इसकी लंबाई लगभग १०४ मील के क़रीब है। सांभर झील से नमक लाने के लिए फुलेरा जंक्शन से कुचामन रोड तक बी० बी० ऐंड सी० आई० रेल्वे की एक छोटी शाखा और बनी है, जिसकी लम्बाई २० मील है, जहां से आगे जोधपुर राज्य की रेल्वे आरंभ होती है। जोधपुर राज्य की रेल्वे की लंबी लाइन मारवाड़ जंक्शन से पाली, लूणी जंक्शन, समदड़ी, बालोतरा और बाड़मेर होती हुई सिंध में प्रवेशकर छोर और मीरपुर खास होती हुई सिंध हैदराबाद से जा मिलती है। राज्य की सीमा मुनाबाव स्टेशन पर ही समाप्त हो जाती है। इसी लाइन में समदड़ी से दक्षिण की ओर एक शाखा जालोर और भीनमाल होती हुई राणीवाड़ा तक चली गई है, जहां से थोड़ी दूर पर जोधपुर राज्य की सीमा समाप्त हो जाती है। बालोतरा से एक छोटी शाखा

उत्तर की ओर पचपद्रा तक चली गई है। एक लंबी शाखा लूणी जंक्शन से निकलकर जोधपुर, पीपाड़ रोड, मेड़ता रोड, डेगाणा और मकराणा होती हुई कुचामन रोड में बी० बी० ऐंड सी० आई० रेल्वे से मिल जाती है। जोधपुर से एक शाखा उत्तर की तरफ़ मंडोवर, ओसियां और लोहावट होकर फलोदी तक गई है। पीपाड़ रोड से एक छोटी शाखा दक्षिण में बीलाड़े को जाती है। मेड़ता रोड से एक शाखा मेड़ता शहर तक और दूसरी शाखा उत्तर में मूंडवा और नागोर होती हुई चीलो जंक्शन में बीकानेर राज्य की रेल्वे से मिल जाती है। डेगाणा से एक शाखा उत्तर की ओर खाटू, डीडवाना और जसवंतगढ़ होती हुई बीकानेर स्टेट रेल्वे के सुजानगढ़ जंक्शन से जा मिलती है। जसवन्तगढ़ से एक छोटी शाखा लाडनूं को और मकराणा से एक छोटी शाखा परवतसर को गई है। लूणी जंक्शन से हैदराबाद जानेवाली लाइन की एक छोटी शाखा मीरपुर खास से उत्तर में खादरा तक और दूसरी शाखा दक्षिण में झूड़ा तक गई है। ये दोनों शाखाएं राज्य से बाहर हैं। मारवाड़ जंक्शन से एक छोटी शाखा मेवाड़ राज्य की रेल्वे से फुलाद जंक्शन पर जा मिलती है। राज्य की रेल्वे की सम्पूर्ण लंबाई करीब ७७४ मील है।

जन संख्या

इस राज्य में अब तक छः बार मनुष्यगणना हुई है। ई० स० १८८१ में १७५७६१८; ई० स० १८९१ में २५२८१७८; ई० स० १९०१ में १९३५५६५; ई० स० १९११ में २०५७५५३; ई० स० १९२१ में १८४१६४२ और ई० स० १९३१ में २१२५९८२ मनुष्यों की यहां आवादी रही। ई० स० १९०१ में मनुष्यों की अधिक कमी होने का कारण वि० सं० १९५६ (ई० स० १८९८-९९) का भयङ्कर दुष्काल था। वर्तमान काल में प्रत्येक वर्ग मील भूमि पर अनुमान ६० मनुष्यों की आवादी की औसत आती है।

धर्म

जोधपुर राज्य के लोगों के मुख्य धर्म वैदिक (ब्राह्मण), जैन और इसलाम हैं। वैदिक धर्म के माननेवालों में वैष्णव, शैव, शाक्त आदि अनेक भेद हैं। जैन धर्म में श्वेतांबर, दिगंबर और थानकवासी (ढूंढिया) आदि भेद हैं। मुसलमानों में सुन्नी

और शिया नाम के दो भेद हैं, जिनमें सुन्नियों की संख्या अधिक है और शिया मत के माननेवालों में दाऊदी वोहरे मुख्य हैं।

ई० स० १९३१ की मनुष्यगणना के अनुसार भिन्न-भिन्न धर्मावलंबियों की संख्या नीचे दी जाती है—

हिन्दू १८३१४४१, इनमें ब्राह्मण धर्म को माननेवाले १८२९२९८; आर्य (आर्यसमाजी) २१४३; सिख ३४; जैन ११३६६९ (श्वेताम्बर मतानुयायी ८३५२२, दिगम्बर मतानुयायी ५०१३, ढूंढिये अर्थात् थानकवासी १८९२१ तथा तेरहपन्थी ६२२३) एवं जरायम पेशा क़ौम ३२४१ हैं। मुसलमान १७६८६३ (सुन्नी १७४५५५, शिया १०३९ और अहले हदीस १२६९); पारसी ४८ और ईसाई ६८६ हैं।

जातियां

हिन्दुओं में ब्राह्मण, महाजन, राजपूत, जाट, माली, दरोगा, कुम्हार, नाई, धोबी, दर्ज़ी, लुहार, सुतार, कोली, गाडरी, मोची, घांची, रेबारी, बलाई, मेहतर आदि अनेक जातियां हैं। ब्राह्मण, महाजन आदि कई जातियों में अनेक उपजातियां हो गई हैं तथा उनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं होता और ब्राह्मणों में तो बहुधा परस्पर भोजन-व्यवहार भी नहीं है। जंगली जातियों में भील, मीणे, गरासिये आदि हैं। मुसलमानों में शेख़, सैयद, मुग़ल, पठान, रंगरेज़, लखारे, धुनियाँ (पिंजारा), कूंजड़े, भिश्ती आदि कई भेद हैं। मुसलमानों में अधिकांश हिन्दू हैं, जिनके पूर्वज समय-समय पर मुसलमान राजाओं-द्वारा इस धर्म में परिवर्तित किये गये थे।

पेशा

जोधपुर राज्य में अधिकतर लोग खेती करते हैं। कितने एक पशुपालन से अपना निर्वाह करते हैं और कई एक व्यापार, नौकरी तथा अन्य धंधे और लेन-देन करते हैं। व्यापार करनेवाली जातियों में महाजन मुख्य हैं। ब्राह्मण विशेष कर पूजा-पाठ तथा पुरोहिताई और कोई-कोई व्यापार, नौकरी तथा खेती करते हैं। राजपूत अधिकतर सैनिक सेवा अथवा खेती करते हैं।

यहां के हिन्दुओं का पहिनावा धोती, कुरता, अंगरखा तथा

पगड़ी है। देहाती लोग घुटनों तक की धोती व अंगरखी पहिनते हैं और सिर पर मोटा वस्त्र, जिसे फेंटा कहते हैं, लपेटते हैं। राजकर्मचारी चुस्त पायजामे या ब्रिचिज़ का प्रयोग करते हैं। पगड़ी के बांधने की तर्ज़ में चोंचदार पगड़ी प्रसिद्ध है। आजकल साफ़े का रिवाज अधिक है। कोई-कोई कोट, पतलून, ब्रिचिज़ तथा टोप भी पहनते हैं। जोधपुरी ब्रिचिज़ भारत भर में प्रसिद्ध है। इसका आविष्कार महाराजा सर प्रतापसिंह ने किया था।

पोशाक

स्त्रियों की पोशाक में लहंगा, कांचली तथा दुपट्टा (ओढ़नी) है। शहर में आजकल केवल साड़ी अथवा धोती का प्रचार होने लगा है। मुसलमानों का पहिनावा भी हिन्दुओं का-सा ही है, किन्तु उनमें पायजामे का प्रचार अधिक है। मुसलमान स्त्रियां पायजामा, लंबा कुरता तथा दुपट्टा पहनती हैं। कोई-कोई स्त्रियां तिलक का भी प्रयोग करती हैं।

भाषा

यहां की भाषा मारवाड़ी है, जो राजस्थानी भाषा का एक भेद है और जिसमें डिंगल के शब्दों का विशेष प्रयोग होता है।

लिपि

यहां की लिपि नागरी है, किन्तु वह घसीट रूप में लिखी जाती है, जिसमें शुद्धता की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। राजकीय दफ़्तरों में अंग्रेज़ी का व्यवहार भी होने लगा है।

दस्तकारी

मेड़ता तथा पाली में हाथीदांत की चूड़ियां, उनकी रंगाई तथा उसकी बनी कई अन्य वस्तुएं; जोधपुर तथा मेड़ता शहर में मिट्टी के रंगीन खिलौने; मकराणा में संगमरमर के पत्थर के खिलौने, कूंडियां, खरलें, कटोरे, प्याले आदि; बगड़ी, जोधपुर और नागोर में लाख से रंगे हुए लकड़ी के खिलौने तथा पलंग के पाये अच्छे बनते हैं। जोधपुर, पाली तथा बाली में कपड़े की तरह-तरह की रंगाई तथा लहरिये, मोठड़े आदि की बंधाई का काम बहुत उत्तम होता है और वहां के ये वस्त्र राजपूताना तथा उसके बाहर दूर-दूर तक जाते हैं। पाली में लोहे का काम भी बहुत होता है। सोजत में घोड़े

की लगामें तथा ज़ीन अच्छी बनती हैं। ऊंटों की काठियां बाड़मेर की प्रसिद्ध हैं।

जोधपुर शहर में रेल का बड़ा कारखाना, बिजली का कारखाना, छापाखाना तथा बर्फ़, सोडा आदि के कारखाने हैं। लूणी, पाली और जोधपुर आदि में रूई और ऊन की गांठें बांधने के प्रेस हैं।

कारखाने

व्यापार के मुख्य केंद्र जोधपुर, पाली, पीपाड़, सोजत, मेड़ता, कुचामन, मकराना, डीडवाना, नागोर, सांभर आदि हैं। इस राज्य से बाहर जानेवाली चीज़ें भेड़, बकरे, ऊंट, घोड़े, बैल, गाय, ऊन, रुई, तिल, चमड़ा, हड्डी, नमक, संगमरमर का पत्थर, इमारती काम की पट्टियां, मुलतानी मिट्टी, आंवल की छाल, अनार और तरह-तरह के रंगीन वस्त्र हैं। राज्य में बाहर से आनेवाली वस्तुओं में रेल का सामान, मोटरें, साइकिलें, पेट्रोल, मिट्टी का तेल, कोयला, कपड़ा, ज़रदोज़ी वस्त्र, रंग, मोती आदि। रत्न, सोना, चांदी, तांबा, पीतल, लोहा आदि धातुएं; महुआ, विलायती शराब, गुड़, शक्कर, तंबाकू, अफ़ीम, गांजा, भांग आदि मादक वस्तुएं; मेवा, चावल आदि अन्न; शाक, पान, लोहे के ट्रंक, हाथी दांत, इमारती काम की लकड़ी, कांच का सामान आदि हैं। प्राचीन काल में रेल्वे के खुलने के पूर्व इस राज्य में पाली व्यापार का बहुत बड़ा केन्द्र था। चारों ओर से इस स्थान में माल आता तथा यहां से कराची, बम्बई, अहमदाबाद आदि स्थानों को ऊंटों तथा बैलों द्वारा जाता था।

व्यापार

यहां के हिन्दुओं के त्योहारों में शीलसप्तमी, राखी (रक्षाबंधन), तीज (भाद्रपद), दशहरा, दिवाली और होली मुख्य हैं। गणगौर और दोनों तीज स्त्रियों के त्योहार हैं। राखी विशेषकर ब्राह्मणों का और दशहरा क्षत्रियों का त्योहार है।

त्योहार

मुसलमानों के मुख्य त्योहार मुहर्रम, ईदुल्फ़ितर और ईदुल्-ज़ुहा हैं।

इस राज्य में परवतसर और वालोतरा के पास तिलवाड़े में प्रसिद्ध मेले भरते हैं। परवतसर का मेला भाद्रपद में तेजादशमी पर दस रोज़ तक तथा तिलवाड़े का चैत्र के महीने में लगता है। इन मेलों में ऊंट, घोड़े, गधे, गाय, बैल आदि पशुओं की अच्छी बिक्री होती है। इन मेलों के अतिरिक्त राज्य में छोटे-बड़े कई मेले और लगते हैं।

मेले

जोधपुर राज्य में राजधानी के अतिरिक्त बड़े-बड़े सब क़स्बों तथा तहसीलों में डाकख़ाने हैं। राज्य में डाकखानों की संख्या १२१ से अधिक है।

डाकख़ाने

जोधपुर, मारवाड़ जंक्शन, सोजत, वालोतरा, बाड़मेर आदि स्थानों के अतिरिक्त तमाम रेल्वे स्टेशनों पर तारघर हैं।

तारघर

पहले राज्य की ओर से शिक्षा का प्रबंध न था। ख़ानगी मदरसों में लोगों की शिक्षा होती थी। पंडित लोग संस्कृत तथा मौलवी उर्दू-फ़ारसी पढ़ाते थे। अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना होने पर अंग्रेज़ी ढंग से शिक्षा का प्रचार हुआ। आज कल जोधपुर ख़ास में उच्च शिक्षा के लिए एक कॉलेज तथा कई हाई स्कूल, मिडिल स्कूल और प्रारंभिक स्कूल तथा लड़कियों के स्कूल हैं। इनके अतिरिक्त तमाम बड़े-बड़े क़स्बों में तथा गांवों में राज्य की ओर से पाठशालाएं खुली हुई हैं। उच्च कक्षाओं में अंग्रेज़ी के साथ-साथ गणित, विज्ञान, संस्कृत आदि भाषाओं और इतिहास आदि की शिक्षा दी जाती है। जनता की ओर से संस्थाएं खुली हुई हैं, जिन्हें राज्य की ओर से भी सहायता मिलती है।

शिक्षा

पहले यहां लोगों की बीमारियों का इलाज वैद्य तथा हकीम करते थे। वर्तमान समय में राज्य में कई दवाख़ाने खुल गये हैं, जिनमें अंग्रेज़ी दवाइयों से इलाज होता है। इन अस्पतालों में चीर-फाड़ का काम अच्छा होता है। जोधपुर नगर में

अस्पताल

एक बहुत बड़ा अस्पताल और डिस्पेन्सरियां हैं । राज्य के बड़े-बड़े क़स्बों में भी दवाख़ाने स्थापित हैं । वैद्य तथा हकीम भी लोगों का इलाज करते हैं।

हकूमतें

शासन-प्रबन्ध के सुभीते के लिए इस राज्य के २१ विभाग किये गये हैं, जिन्हें यहां हकूमत (परगना) कहते हैं। प्रत्येक हकूमत में एक-एक हाकिम नियत है और उसकी सहायता के लिए प्रत्येक तहसील में एक-एक नायब हाकिम रहता है। इन हाकिमों को दीवानी तथा फ़ौजदारी मुक़द्दमे तय करने के नियमित अधिकार हैं। इनके दिये हुए फ़ैसलों की अपीलें राजधानी की अदालतों में पेश होती हैं। राज्य की २१ हकूमतें नीचे लिखे अनुसार हैं—

(१) जोधपुर (सदर)—यह राज्य के मध्य में है। इसका मुख्य नगर जोधपुर है, जो मारवाड़ राज्य की राजधानी है।

(२) बीलाड़ा—यह जोधपुर के पूर्व में स्थित है, इसमें बीलाड़ा और पीपाड़ मुख्य क़स्बे हैं।

(३) जैतारण—यह बीलाड़े के दक्षिण-पूर्व में है। इसका मुख्य क़स्बा जैतारण है।

(४) मेड़ता—यह जैतारण के उत्तर-पूर्व में है। आलनियावास, मेड़ता शहर और रीयां इसके ख़ास क़स्बे हैं।

(५) परबतसर—यह मेड़ता के पूर्व में है। इसका मुख्य स्थान परबतसर है।

(६) सांभर—यह परबतसर के उत्तर-पूर्व में है। सांभर शहर और झील शामलाती हैं अर्थात् उनपर जयपुर और जोधपुर दोनों राज्यों का अधिकार है।

(७) डीडवाणा—यह सांभर के उत्तर-पश्चिम में है। इसका मुख्य क़स्बा डीडवाणा है।

(८) नागोर—यह डीडवाणा के पश्चिम में है। इसका मुख्य क़स्बा नागोर है।

(९) फलोदी—यह नागोर के उत्तर-पश्चिम में है। इसका मुख्य क़स्बा फलोदी है।

(१०) शेरगढ़—यह फलोदी के दक्षिण में है। इसका खास क़स्बा शेरगढ़ है।

(११) शिव—यह शेरगढ़ के पश्चिम में है। इसका प्रधान स्थान शिव है।

(१२) मालानी—शिव के दक्षिण में स्थित, यह हकूमत राज्य में सब से बड़ी है। इसके प्रधान क़स्बे बाड़मेर और जसोर हैं।

(१३) सांचोर—यह मालानी के दक्षिण में है। सांचोर इसका प्रधान क़स्बा है।

(१४) पचपदरा—यह मालानी के पूर्व और शेरगढ़ के दक्षिण में है। पचपदरा और बालोतरा इसके मुख्य स्थान हैं।

(१५) सिवाना—यह पचपदरा के दक्षिण में है। सिवाना इसका मुख्य क़स्बा है।

(१६) जसवंतपुरा—यह सांचोर के पूर्व में है। इसका मुख्य क़स्बा भीनमाल है।

(१७) जालोर—यह जसवंतपुरा के उत्तर में है। इसका मुख्य क़स्बा जालोर है। यहां ऊंटों की काठियां अच्छी बनती हैं।

(१८) पाली—यह जालोर के उत्तर-पूर्व में है। इसका मुख्य स्थान पाली है, जो रेल्वे के खुलने के पहले व्यापार का प्रसिद्ध केन्द्र था।

(१९) बाली—यह पाली के दक्षिण में है। इसका प्रधान स्थान बाली है।

(२०) देसूरी—यह बाली के उत्तर-पूर्व में है। नाडोल, राणपुर और सादड़ी इसके मुख्य स्थान हैं।

(२१) सोजत—यह देसूरी के उत्तर-पूर्व में है। इसका मुख्य क़स्बा सोजत है।

राजधानी में न्याय के लिए सदर दीवानी और फ़ौजदारी अदालतें हैं। हुकूमतों के हाकिमों के फ़ैसलों की अपील सदर दीवानी अदालत जोधपुर में होती है। जोधपुर में चीफ़ कोर्ट के अतिरिक्त तीन सेशन कोर्ट हैं। इनमें हुकूमतों व शहर की छोटी अदालतों के मुक़दमों की अपीलें पेश होती हैं। ये कोर्ट १०००० रु० तक के दीवानी दावे तथा ४००० रु० तक की अपीलें सुनती हैं। इन्हें १४ साल तक की सज़ा एवं ५००० रु० तक का जुर्माना करने का अधिकार है।

न्याय

फलोदी, सांभर, सोजत और मालानी में जुडीशियल सुपरिंटेंडेंट हैं, जिन्हें प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के अधिकार हैं। दीवानी मामलों में वे १००१ से ४००० रु० तक के तथा रेवेन्यू संबंधी ३०० रुपये से ऊपर के दावे सुन सकते हैं।

प्रथम श्रेणी के जागीरदारों को दीवानी मामलों में १००० रु० तक के दावे सुनने तथा फ़ौजदारी मामलों में ६ मास क़ैद और ३०० रु० तक का जुर्माना करने का अधिकार है। दूसरी श्रेणी के जागीरदारों को ५०० रु० तक का दावा सुनने तथा फ़ौजदारी मामलों में तीन मास की क़ैद और १५० रु० दंड करने का अधिकार प्राप्त है।

राजधानी में एक कोतवाल रहता है, जिसे प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के अधिकार प्राप्त हैं। वह दो वर्ष की सज़ा एवं १००० रु० तक जुर्माना कर सकता है। उसकी सहायता के लिए दो असिस्टेंट कोतवाल हैं, जिन्हें क्रमशः द्वितीय व तृतीय श्रेणी के मजिस्ट्रेटों के अधिकार हैं।

संगीन जुर्मों की कार्यवाही तथा प्राणदंड में महाराजा साहब की अनुमति लेनी पड़ती है।

इस राज्य की भूमि खालसा, जागीर और धर्मादा में बँटी हुई है। खालसा की भूमि राज्य की $\frac{1}{6}$ है। जागीर में दी हुई भूमि जागीरदारों को उनके पूर्व-पुरुषों की राज्य की आपत्तिकाल में की हुई सेवाओं के उपलक्ष्य में अथवा राजा के कुटुम्बियों को मिली हुई है। मंदिरों, ब्राह्मणों, चारणों, भाटों आदि को पुण्यार्थ दी हुई भूमि

जागीर, भोम आदि

माफ़ी (धर्मादा) कहलाती है। कुछ गांव ऐसे हैं जिनकी आय जागीरदारों और राज्य में बंटी हुई है। ऐसी भूमि को यहां 'मुश्तरका' कहते हैं। इस राज्य में प्रथम श्रेणी के जागीरदारों की संख्या १४४ है। जो सब के सब ताज़ीमी हैं। उनमें पोकरण, आऊवा, आसोप, रीयां, रायपुर, रास, नीमाज, खैरवा, आलनियावास, भाद्राजून, अगेवा और कंटालिया मुख्य हैं। ये सब ठाकुर कहलाते हैं। जागीरदारों से निश्चित वार्षिक खिराज और चाकरी के रुपये लिये जाते हैं और दरबार आदि के समय महाराजा साहब की सेवा में उन्हें उपस्थित होना पड़ता है। पुण्यार्थ दी हुई भूमिवालों से कोई खिराज व सेवा नहीं ली जाती है। इसके अतिरिक्त भोम, डोहली, भूमिचार, डुंबा, जीविका आदि कई प्रकार की छोटी जागीरें हैं, जिनमें से किसी-किसी से कुछ कर अथवा सेवा ली जाती है।

इस राज्य की सेना में सरदार रिसाला, सरदार इन्फेंट्री, जोधपुर ट्रांसपोर्ट कोर और मिलिटरी-बैंड हैं। इसमें वेक़वायदी सवार ४६६, क़वायदी सवार ६५७ और पैदल सेना तथा गोलंदाज़ १०५८ हैं। इनके अलावा राज्य में २६६२ पुलिस के सिपाही हैं।

सेना

मारवाड़ राज्य की वार्षिक आय लगभग १४६००००० रु० और खर्च लगभग ११२२००० रु० है। आमदनी के मुख्य सीग़े ज़मीन का लगान, आबकारी, नमक-कर, चुंगी (सायर), रेल्वे, स्टाम्प, जुर्माना, रजिस्ट्रेशन फ़ीस, जागीरदारों का ख़िराज, खानें, जंगल, बिजलीघर आदि हैं। व्यय के मुख्य सीग़े सरकार का ख़िराज, सेना, पुलिस, हाथखर्च, महल-खर्च, अदालत, अस्तबल, धर्मादा, रेल, तामीर (पब्लिक-वर्क्स), अस्पताल, शिक्षा-विभाग आदि हैं।

आमद-खर्च

प्राचीन काल में यहां के सिक्के चौकोर बनते थे, जो पीछे से गोल भी बनने लगे। उनपर कोई नाम नहीं, किन्तु वृक्ष, पशु, धनुष, सूर्य, पुरुष आदि के अनेक भिन्न-भिन्न चिह्न अंकित होते थे, जिससे उनका नाम चिह्नांकित (Punch Marked)

सिक्के

सिक्के रक्खा गया है। क्षत्रपों के समय से उनके सिक्के चलने लगे, जो 'द्रम्म' कहलाते थे। उनके पीछे गुप्तों के सिक्कों का चलन हुआ। जब हूणों ने ईरान का ख़ज़ाना लूटा और उसे वे हिन्दुस्तान में ले आये तब से ईरान के ससानियन सिक्के, जो बहुत पतले, परन्तु आकृति में बड़े होते थे और जिनके एक तरफ़ राजा का चेहरा और पहलवी लिपि में लेख तथा दूसरी तरफ़ अग्निकुंड एवं उसके दोनों तरफ़ एक-एक रक्षक पुरुष की आकृति बनी रहती थी, चलने लगे। पीछे से उनकी नक़लें यहां भी बनने लगीं, जो क्रमशः आकृति में छोटी, किन्तु मोटी होती गई और काल पाकर ऐसी भद्दी बनने लगीं, कि राजा के चेहरे को पहचानना मुश्किल हो गया। लोगों ने उसे गधे का खुर मान लिया, जिससे वे 'गधिये' कहलाने लगे। जिन दिनों ये गधिये सिक्के चलते थे, उन दिनों रघुवंशी प्रतिहार राजा भोजदेव ने, जिसको 'आदिवराह' भी कहते थे, अपने नाम के तांबे और चांदी के सिक्के प्रचलित किये। इनकी एक तरफ़ 'श्रीमदादिवराहदेव' लेख और दूसरी तरफ़ आदिवराह (नरवराह) की मूर्ति बनी है। पीछे से चौहानों के समय चौहान राजा अजयदेव, उसकी राणी सोमलदेवी, महाराजा सोमेश्वर और पृथ्वीराज के सिक्के चलते रहे। चौहानों के राज्य पर मुसलमानों का अधिकार होने के पीछे दिल्ली के सुलतानों और उनके पीछे मुग़ल बादशाहों के सिक्कों का यहां चलन हुआ।

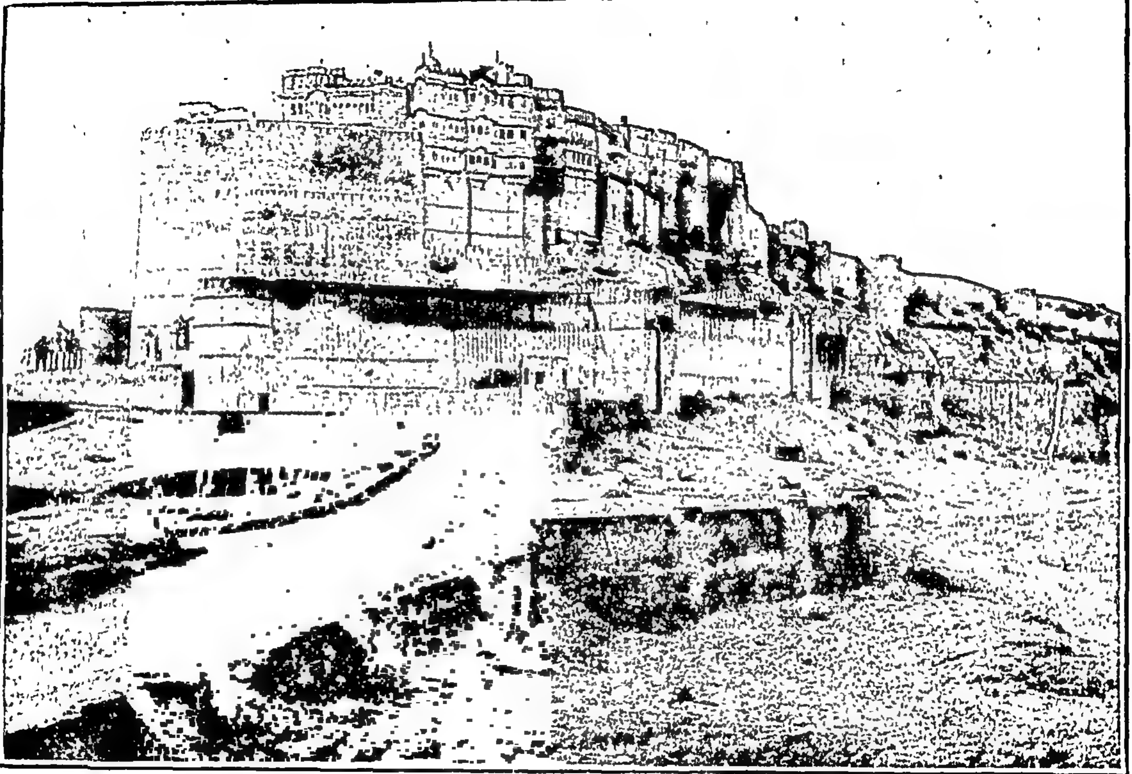
जब दिल्ली की मुग़ल बादशाहत कमज़ोर हो गई तब राजपूताने के राजाओं ने भी बादशाह की आज्ञा से उस (बादशाह) के नाम के सिक्के बनाने के लिए अपने-अपने राज्यों में टकसालें खोलीं। इसपर जोधपुर के महाराजा विजयसिंह ने वि० सं० १८३८ (ई० स० १७८१) में शाह आलम (दूसरा) के समय अपनी राजधानी में टकसाल खोली जहां वि० सं० १९१५ (ई० स० १८५८) तक उक्त बादशाह के नाम के सोने, चांदी और तांबे के सिक्के बनते रहे।

महाराजा विजयसिंह के समय के बने हुए चांदी के सिक्कों पर एक तरफ़ फ़ारसी लिपि में 'सिक्कह मुबारक बादशाह ग़ाज़ी शाह आलम' और

दूसरी तरफ़ 'मैमनत मानूस ज़र्ब अल् मंसूर जोधपुर' लेख है। उसके तांबे के सिक्कों पर एक तरफ़ हिजरी सन् के अंक (पूरे या अधूरे) तथा 'दारुल मंसूर जोधपुर' और दूसरी तरफ़ 'जुलूस मैमनत मानूस ज़र्ब (जोधपुर)' लेख हैं। महाराजा विजयसिंह के सिक्कों पर हि० स० ११९२ से १२१५ (वि० सं० १८३५ से १८५७ = ई० स० १७७८ से १८००) तक के अंक तथा कहीं-कहीं बादशाह शाहआलम के सन् जुलूस (राज्यवर्ष) भी दिये हैं। विजयसिंह के समय के बने हुए सिक्के और पैसे 'विजयशाही' कहलाते हैं। उन सिक्कों में झाड़ और तलवार के चिह्न (बादशाह के नाम के बीच में) भी बने हैं। पिछले सब रुपयों में भी ये दोनों चिह्न अङ्कित हैं।

महाराजा भीमसिंह और मानसिंह के समय भी वैसे ही सिक्के बनते रहे। महाराजा तख़्तसिंह के पहले के रुपयों पर राजा विजयसिंह के समय के रुपयों के समान लेख हैं। तांबे के कुछ सिक्कों पर एक ओर बादशाह मुहम्मद अकबरशाह का नाम और दूसरी ओर 'सनह जुलूस २२ मैमनत मानूस ज़र्ब दारुल मन्सूर जोधपुर' लेख है। ग़दर के पीछे के उक्त महाराजा के बने रुपयों पर बादशाह का नाम नहीं, किन्तु एक तरफ़ फारसी लिपि में 'ब-ज़माने मुबारक क्वीन विक्टोरियां मलिका मुअज़्ज़मह इंग्लिस्तान व हिंदुस्तान' और दूसरी तरफ़ 'महाराजाधिराज श्रीतख़्तसिंह बहादुर ज़र्ब-इ-जोधपुर' लेख है। उक्त महाराजा की सोने की मुहरों पर भी उसी से मिलता हुआ लेख है। महाराजा जसवंतसिंह (दूसरा) के रुपयों पर एक ओर ग़दर के पीछे के रुपयों के समान और दूसरी तरफ़ 'महाराजा श्री जसवंतसिंह बहादुर ज़र्ब जोधपुर' लेख है।

सिपाही-विद्रोह के बाद के महाराजा तख़्तसिंह और जसवंतसिंह के सिक्कों के दूसरी तरफ़ सब से ऊपर नागरी अक्षरों में 'श्रीमाताजी' लेख है और सोजत की टकसाल के सिक्कों पर नागरी अक्षरों में एक तरफ़ 'श्रीमहादेव' और दूसरी तरफ़ 'श्रीमाताजी' लेख भी मिलता है। जोधपुर के सिक्कों पर टकसाल के दारोगा के नाम का सूचक एक अक्षर (नागरी, ग, रा, बा, ला, ट, क, श्रा आदि) या सांकेतिक चिह्न



जोधपुर का दुर्ग

(स्वस्तिक) भी मिलता है । जोधपुर के अतिरिक्त पाली, नागोर, सोजत और कुचामण में भी टकसालें थीं । कुचामण के रुपये, अठन्नी और चवन्नी के कम क़ीमत के सिक्के हलकी चांदी के बनते थे । ये अबतक विवाह आदि के समय इनाम में दिये जाते हैं और 'कुचामणी' कहलाते हैं। ये रुपये अजमेर में भी बनते थे और उनपर अजमेर का नाम भी मिलता था ।

जोधपुर के रुपयों पर के फ़ारसी अक्षर भद्दे और कुछ अस्पष्ट भी होते थे और कई सिक्कों पर तो पूरा लेख भी नहीं आने पाता था, जिसका कारण ठप्पा बड़ा और सिक्कों का छोटा होना था । ई० स० १६०० (वि० सं० १९५७) में वे पुराने रुपये बंद हो गये और उनके स्थान में इस राज्य में कलदार का चलन हुआ ।

वर्ष और तोपों की सलामी

यहां का राजकीय वर्ष श्रावण वदि १ से शुरू होता है, जिससे वह श्रावणादि कहलाता है । इस राज्य को अंग्रेज़ सरकार की तरफ़ से १७ तोपों की सलामी का सम्मान प्राप्त है और स्थानीय सलामी की संख्या १९ है ।

प्रसिद्ध और प्राचीन स्थान

जोधपुर राज्य की भूमि दो प्रकार की है । उसका सारा पश्चिमी, उत्तर-पश्चिमी, कुछ उत्तर-पूर्वी और अधिकांश दक्षिण-पश्चिमी प्रदेश मरुभूमि है, जहां प्राचीन और प्रसिद्ध स्थान बहुत कम हैं । इसके विपरीत उक्त राज्य का कुछ उत्तर-पूर्वी और सारा दक्षिण-पूर्वी भाग अधिक आबादीवाला है, जिससे उधर प्राचीन और प्रसिद्ध स्थान बहुत हैं । उनमें से मुख्य-मुख्य का वर्णन नीचे किया जाता है—

जोधपुर—मारवाड़ की राजधानी पहले मंडोर थी । जब राव जोधा ने श्रावणादि वि० सं० १५१५ (चैत्रादि १५१६) ज्येष्ठ सुदि ११ (ई० स० १४५९ ता० १३ मई) को जोधपुर के क़िले की नींव डाली और शहर बसाना आरंभ किया तब से जोधपुर नगर इस राज्य की राजधानी बना, जिससे मारवाड़ को अब जोधपुर राज्य भी कहते हैं ।

राजपूत लोगों में यह विश्वास है कि यदि क़िले की नींव में कोई

जीवित आदमी गाड़ा जाय तो वह क़िला उसके बनवानेवाले के वंशधरों के हाथ से कदापि नहीं निकलता। इसलिए इस क़िले की नींव में राजिया नामक भांभी (बलाई) ज़िंदा ही गाड़ा गया। जहां वह गाड़ा गया था उसके ऊपर ख़ज़ाना तथा नक़्क़ारखाने की इमारतें बनी हुई हैं। भांभी के सहर्ष किये हुए इस आतमत्याग और स्वामिभक्ति के बदले में राज्य की ओर से उसके वंशजों को भूमि दी गई, जो अब भी उनके अधिकार में है और वह 'राज बाग' के नाम से प्रसिद्ध है। इस अपूर्व त्याग के कारण राज्य आदि की ओर से प्रकाशित होनेवाली कई पुस्तकों में राजिया के नाम का उल्लेख श्रद्धा के साथ किया गया है।

इस क़िले के चारों ओर सुदृढ़ दीवार है, जो २० फुट से लगाकर १२० फुट तक ऊंची और १२ से ७० फुट तक चौड़ी है। क़िले की अधिक से अधिक लंबाई ५०० गज़ और चौड़ाई २५० गज़ है। इसके दो प्रधान प्रवेशद्वार हैं—

१—लोहापोल—इसका अगला भाग राव मालदेव ने वि० सं० १६०५ (ई० स० १५४८) में बनवाना आरंभ किया था, किन्तु इसकी समाप्ति महाराजा विजयसिंह ने की।

२—जयपोल—यह क़िले के उत्तर-पूर्व में है और इसका निर्माण महाराजा मानसिंह ने जयपुर की सेना पर (जिसने ई० स० १८०६ में जोधपुर पर चढ़ाई की थी) विजय पाने की स्मृति में किया था। इसमें जो लोहे का दरवाज़ा लगा है उसे महाराजा अभयसिंह के समय अहमदाबाद से लाया हुआ बतलाते हैं। इन दो मुख्य द्वारों के अतिरिक्त इस क़िले में फ़तहपोल (जिसे महाराजा अजीतसिंह ने मुग़लों से जोधपुर छीनने के उपलक्ष्य में बनाया था), ध्रुवपोल, सूरजपोल, भैरोंपोल आदि और भी द्वार हैं।

इस क़िले के अंदर महाराजा सूरसिंह ने मोतीमहल, महाराजा अजीतसिंह ने फ़तहमहल, महाराजा अभयसिंह ने फूलमहल और महाराजा बख़्तसिंह ने सिंगारमहल बनवाये। इसमें चामुंडा और आनंदघन के

मंदिर हैं। चामुंडा का मंदिर ई० स० १८५७ (वि० सं० १९१४) में बारूदखाने के फूट जाने से उड़ गया था इसलिए महाराजा तख़्तसिंह ने इसका पुनर्निर्माण कराया। आनंदघन का मंदिर महाराजा अभयसिंह ने बनवाया था। इसमें स्फटिक की पांच मूर्तियां हैं, जिनके बारे में कहा जाता है कि बादशाह अकबर ने ये मूर्तियां महाराजा सूरसिंह को दी थीं।

इस क़िले में किलकिला, शंभुबाण और ग़ज़नीखां नाम की तीन तोपें मुख्य हैं। इनमें से पहली महाराजा अजीतसिंह ने अहमदाबाद में बनवाई थी और दूसरी सरबलंदखां से छीनी थी। तीसरी तोप महाराजा गजसिंह ने जालोर जीतकर वि० सं० १६६४ (ई० स० १६०७) में अपने हस्तगत की थी। कहते हैं कि इसे एक फ़्रांसीसी ने बनाया था।

क़िले की पहाड़ी के नीचे नगर बसा है। राव मालदेव ने इसके चारों ओर नगरकोट बनवाया। इस कोट में छः द्वार हैं, जिनके नाम चांदपोल, नागोरी, मेड़तिया, सोजती, जालोरी और सिवांची दरवाज़े हैं।

जोधपुर ख़ास में क़िले और उसके पास के मंडोर को छोड़कर अन्य कोई वस्तु पुरातत्त्व की दृष्टि से महत्व की नहीं है।

इस नगर में चार तालाब हैं, जो पदमसागर, बाईजी का तालाब, गुलाबसागर और फ़तहसागर कहलाते हैं। इसके उत्तर में सूरसिंह का बनवाया हुआ सूरसागर नाम का एक और तालाब है।

शहर के प्रसिद्ध मंदिरों में कुंजबिहारी, बालकृष्ण और घनश्याम के मंदिर उल्लेखनीय हैं। इनमें कुंजबिहारी का मंदिर सब से बड़ा और सुन्दर है तथा नगर के बीच में बना हुआ है। इस मंदिर का निर्माण महाराजा विजयसिंह की उपपत्नी गुलाबराय ने कराया था। इसमें कारीगरी का अच्छा काम है। घनश्याम का मंदिर प्राचीन है और इसे राव गांगा ने बनवाया था। जब जोधपुर मुग़लों के हाथ में चला गया और मुसलमानों का आतंक अधिक हो गया तब उन्होंने इस मंदिर को तोड़कर इसे मसजिद में परिवर्तित कर दिया था, किन्तु महाराजा अजीतसिंह ने जोधपुर पर अधिकार करने पर उसको पूर्ववत् मंदिर बनवा दिया। इसके बाद

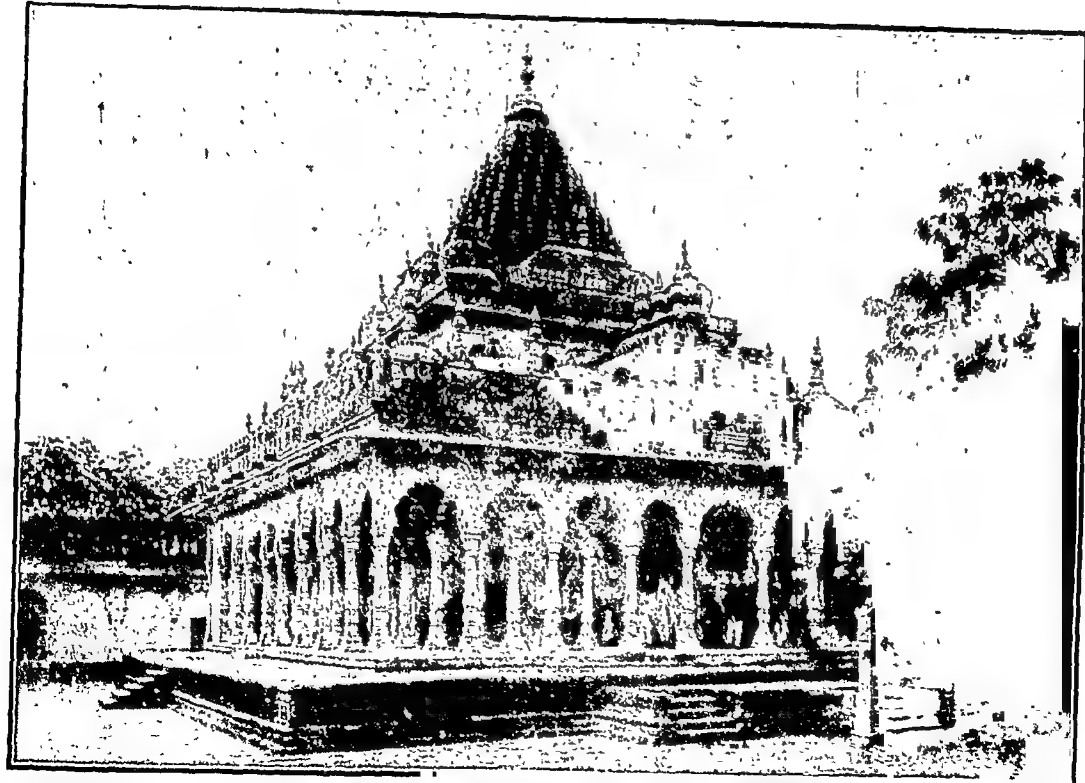
महाराजा विजयसिंह ने इसे और भी बढ़ाया।

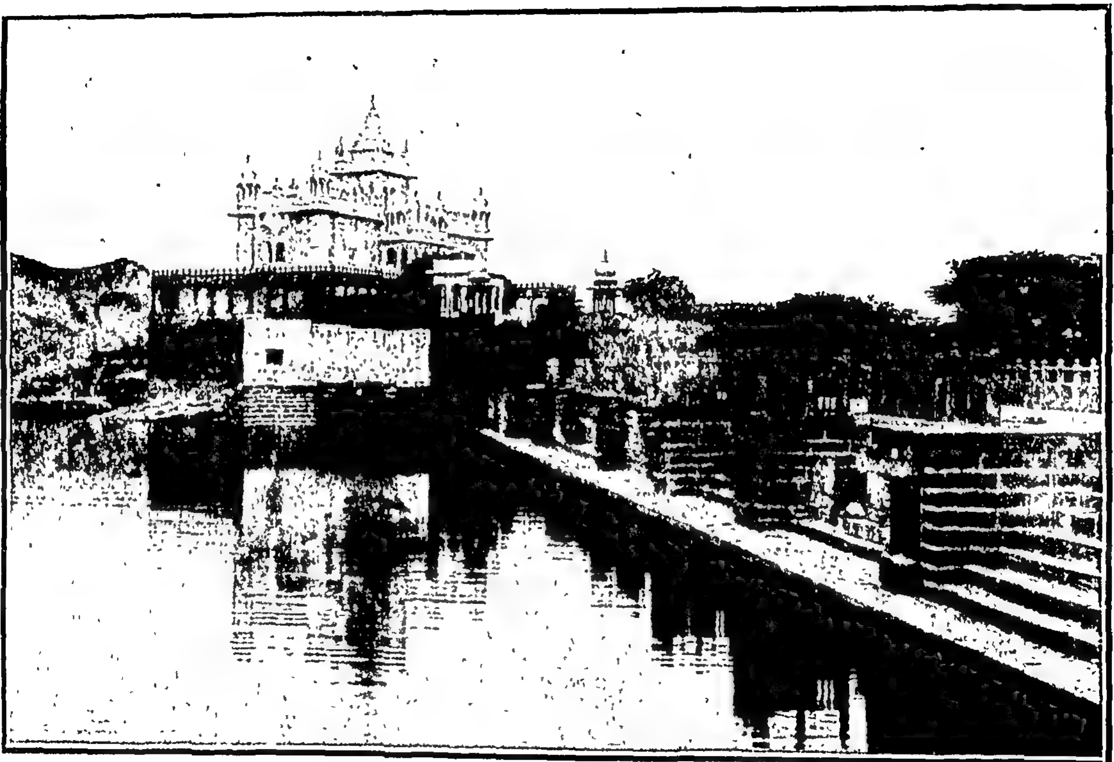
नगर के उत्तर पूर्व में कुछ दूरी पर महामंदिर है, जिसको महाराजा मानसिंह ने अपने गुरु देवनाथ की सम्मति से बनवाया था। इसमें जालंधरनाथ की मूर्ति है। यह मंदिर विशाल तथा शिल्प की दृष्टि से दर्शनीय है। नागोरी दरवाज़े के उत्तर में 'कागा का बाग' है, जिसे महाराजा जसवंतसिंह (प्रथम) ने बनवाया था और काबुल से उत्तम अनार के बीज लाकर इसमें अनार के पेड़ लगवाये थे। यहां साल में एक बार शीतला देवी का मेला भरता है। पिछले समय में भी इस नगर की बहुत कुछ वृद्धि हुई है और कई नई-नई इमारतें बनी हैं।

नगर में एक घंटाघर है, जिसे 'सरदार क्लॉक टावर' कहते हैं। यह १०० फुट ऊंचा है और इसकी नींव महाराजा सरदारसिंह ने रक्खी थी। इसके आसपास बहुत सी दुकानें हैं।

शहर से बाहर राई का बाग के महल और रेज़िडेन्सी तथा कई भव्य मकान बने हुए हैं और क़िले से सटी हुई पहाड़ी पर संगमरमर का बना हुआ महाराजा जसवंतसिंह का बड़ा स्मृति भवन (थड़ा, दग्धस्थान) बड़ा ही सुन्दर बना है।

मंडोर—यह जोधपुर नगर से ५ मील उत्तर में नागाद्री नामक एक छोटीसी नदी के किनारे पर बसा है। यहां का क़िला एक पहाड़ी पर स्थित है। इसका अस्तित्व ईसवी सन् की चौथी सदी के आसपास से माना जाता है। शिलालेखों में इसका नाम 'मांडव्यपुर' मिलता है, जिसका अपभ्रंश 'मंडोर' है। यहां मांडव्य ऋषि का आश्रम होना भी लिखा मिलता है। ब्राह्मणवंशी प्रतिहार हरिश्चंद्र के पुत्र भोगभट, कक्क, रज्जिल और दद्द ने मंडोर को जीतकर यहां प्राकार (कोट) बनवाया था, जो अब नष्ट हो गया है। इसपर 'पंचकुंड' नामक स्थान है, जहां पांच कुंड बने हुए हैं, जिनको हिन्दू लोग पवित्र मानकर स्नानार्थ जाते हैं। वहां पहले राजकीय श्मशान थे, जहां राव चूंडा, राव रणमल, राव जोधा तथा राव गांगा के स्मारक (थड़े) बने हुए हैं। मालदेव के समय से श्मशान इस स्थान से हटाकर मोतीसिंह





महाराजा जसवन्तसिंह (द्वितीय) का स्मारक

के बगीचे के पास रक्खा गया, जहां अन्य छत्रियों (थड़ों) में महाराजा अजीतसिंह की भी एक छत्री है, जो उन सब में विशाल और दर्शनीय है। इससे थोड़ी दूर पर पूर्व में 'ताना पीर' की दरगाह है। इस दरगाह के चंदन के किवाड़ हैं, जो कारीगरी की दृष्टि से सुंदर हैं। यहां साल में मुसलमानों के दो मेले भरते हैं।

नागाद्री नदी के किनारे-किनारे तख़्तसिंह तक के मारवाड़ के राजाओं, राजकुमारों आदि के स्मारक (थड़े) बने हुए हैं। इस दग्धस्थान के पास महाराजा अभयसिंह के समय का 'तैंतीस करोड़ देवता' का देवालय है, जिसमें एक ही चट्टान को काटकर १६ बड़ी-बड़ी मूर्तियां बनाई गई हैं, जिनमें ७ तो देवताओं की और नौ जालंधरनाथ, गुसांई, रावल मल्लिनाथ (मालानीवाला), पाबू[1], रामदेव[2], हरबू[3] (सांखला), जांभा[4], मेहा

(१) पाबू राठोड़ राव आस्थान का पौत्र और धांधल का पुत्र था। इसने चारणों की गायें छुड़ाने में अपने प्राण गंवाये। यह बड़ा करामाती माना जाता है और इसकी गणना सिद्धों में होती है। अब तक इसकी प्रशंसा के गीत गाये जाते हैं।

(२) रामदेव तंवर जाति का राजपूत था और सिद्ध के रूप में पूजा जाता है। ऐसी प्रसिद्धि है कि इसने वि० सं० की १६ वीं शताब्दी में पोकरण से ८ मील उत्तर रुणीजा (रूणीचा) नामक गांव में समाधि ली थी, जहां प्रतिवर्ष भाद्रपद मास में बड़ा मेला लगता है।

(३) यह सांखला (परमार) जाति का राजपूत था और बैंगटी का रहनेवाला था। यह बड़ा शकुन जाननेवाला और करामाती माना जाता था तथा राव जोधा के समय में विद्यमान था।

(४) यह पंवार जाति का राजपूत था। इसका जन्म पीपासर (बीकानेर) में वि० सं० १५०८ (ई० स० १४५१) में होना माना जाता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि इसको जंगल में गुरु गोरखनाथ मिले थे, जिनसे इसको सिद्धि प्राप्त हुई। इसने 'विसनोई' नामक मत चलाया था, जो २९ नियमों पर अवलम्बित है और जिसके माननेवाले अब तक विद्यमान हैं। कहा जाता है कि इसकी मृत्यु बीकानेर राज्य के तालवे गांव में वि० सं० १५८३ (ई० स० १५२६) में हुई। उक्त स्थान में इसकी स्मृति में एक मन्दिर बना हुआ है, जहां प्रति वर्ष फाल्गुन वदि १३ के आस-पास मेला लगता है।

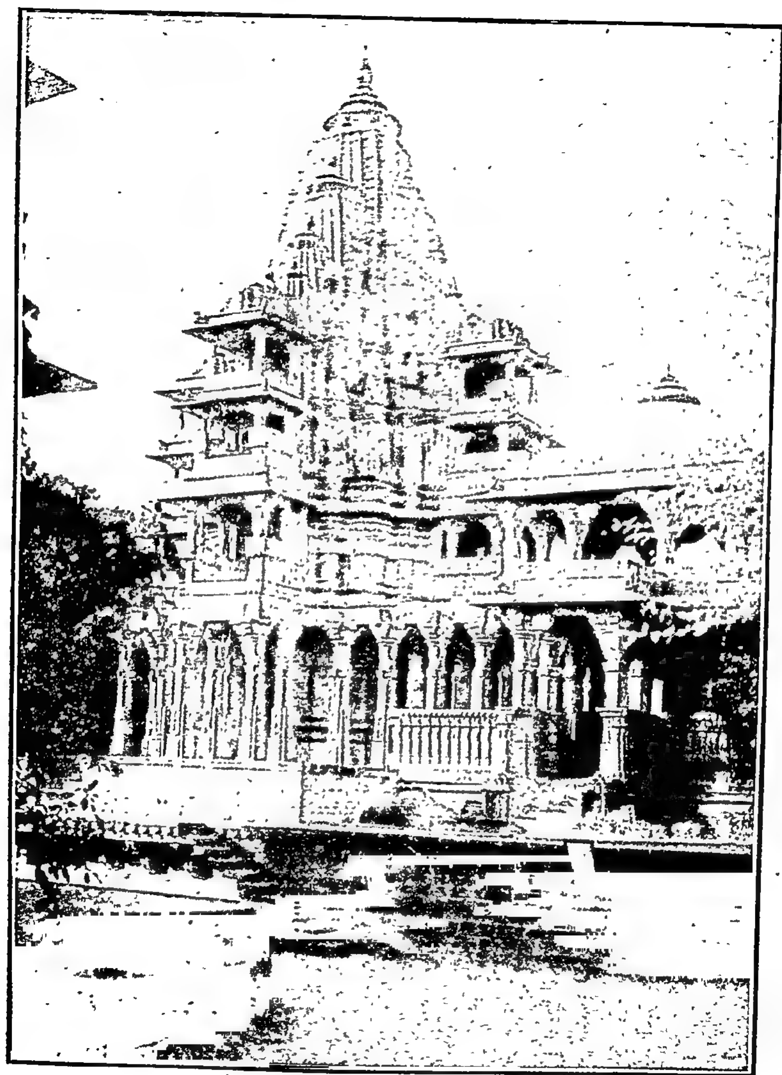
(मांगलिया)[1] और गोगा[2] की हैं। ये मूर्तियां कारीगरी की दृष्टि से सुंदर नहीं हैं तो भी इनसे राजपूत जाति में पाई जानेवाली वीर-पूजा का अच्छा परिचय मिलता है। इस स्थान के पास एक गुफ़ा है, जिसमें एक मूर्ति खुदी है, जिसको नाहड़राव (रघुवंशी प्रतिहार) की मूर्ति बतलाते हैं। यह गुफ़ा बहुत प्राचीन नहीं जान पड़ती, किन्तु इसके पास-वाले एक चबूतरे से दसवीं सदी का एक लेख का टुकड़ा मिला है, जिसमें प्रतिहार कक्क के पुत्र का नाम मिलता है, जो इस समय राजपूताना म्यूज़ि-अम् (अजमेर) में सुरक्षित है। इस गुफ़ा के ऊपरी भाग में गुप्त लिपि में कुछ व्यक्तियों के नाम अंकित हैं। मंडोर के भग्नावशेषों में एक जैन मंदिर है, जो दसवीं सदी का प्रतीत होता है। उससे आधे मील के फ़ासले पर एक और मंदिर है, किन्तु उसका नीचे का भाग ही अवशिष्ट रहा है। उसके निकट ही एक तोरण है, जिसकी कारीगरी उत्कृष्ट एवं सराहनीय है, किन्तु वह भग्नावस्था में है। उसपर कृष्ण की लीलाओं के चित्र अंकित हैं[3]। उसके उत्तर-पूर्व में एक स्थान है, जो 'रावण की चौरी' कहलाता है। मंदोदरी के नाम से मंडोर की समानता होने से ही लोगों ने यहां रावण के विवाह होने आदि की कल्पना कर डाली है। इसमें एक शिला पर गणपति और अष्टमातृकाओं की प्रतिमाएं खुदी हुई हैं। मंडोर पहले-पहल नागवंशी क्षत्रियों के अधीन रहा होगा, जैसा कि उसके पास के नागकुंड, नागाद्री नदी, अहिशैल आदि नामों से अनुमान किया जाता है। फिर वह प्रतिहारों

---

(१) यह मांगलिया जाति का राजपूत था, जो गुहिलोतों की ही एक शाखा है। कहते हैं कि यह जैसलमेर के राजा के साथ की लड़ाई में वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया था।

(२) यह चौहान जाति का राजपूत था और अपनी असाधारण वीरता के लिए प्रसिद्ध है। बीकानेर राज्य की नौहर तहसील के गोगामेड़ी नामक गांव में इसका स्थान है, जहां इसकी स्मृति में प्रति वर्ष भाद्रपद वदि ६ को मेला लगता है।

(३) इन लीलाओं के नीचे वि० सं० की दसवीं शताब्दी के आस-पास की लिपि के लेख थे, परन्तु उनपर जल गिरने तथा हवा का असर होने से वे इतने बिगड़ गये हैं कि कहीं-कहीं उनके अक्षर ही नज़र आते हैं।



महाराजा अजीतसिंह का स्मारक

के अधिकार में गया और उनसे राठोड़ों को दहेज में मिला।

घटियाला—यह गांव जोधपुर से लगभग २० मील पश्चिमोत्तर में है। इसमें 'माता की साल' और 'खांखू देवल' नामक दो स्थान पुरातत्त्व की दृष्टि से महत्त्व के हैं। इनमें से पहला तो नष्टप्राय है, किन्तु उसके एक ताक में देवी की मूर्ति और प्रतिहार राजा कक्कुक (बाउक का छोटा भाई) का प्राकृत (महाराष्ट्री भाषा) में कवितावद्ध लेख खुदा हुआ है, जो वि० सं० ६१८ (चैत्रादि ६१६) चैत्र सुदि २ (ई० स० ८६२ ता० ६ मार्च) का है। इसमें हरिश्चंद्र से लगाकर कक्कुक तक के मंडोर के प्रतिहारों (सामंतों) की वंशावली है और यह प्रतिहारों के इतिहास के लिए उतना ही उपयोगी है जितना कि उसके बड़े भाई बाउक का वि० सं० ८६४ (ई० स० ८३७) का जोधपुर(मंडोर)वाला लेख। इस लेख से ज्ञात होता है कि यह जैन मंदिर था और इसे प्रतिहारवंशी कक्कुक ने बनवाया था। माता की साल से पूर्व में कुछ ही दूर पर 'खाखू देवल' नाम का स्थान है, जहां एक पाषाण स्तंभ (लाट) खड़ा हुआ है, जिसके सिरे पर चारों दिशाओं में गणपति की एक-एक मूर्ति है। इस लाट पर कक्कुक के सम्बन्ध के चार संस्कृत लेख खुदे हैं। उनमें पूर्व का लेख सब से बड़ा है और उसमें कक्कुक तक की वंशावली तथा उसके वीरतापूर्ण कार्यों का वर्णन है। यह लेख माता की सालवाले प्राकृत लेख का संस्कृत सारांश मात्र है और उसी समय का है। पश्चिम में भी तीन लेख खुदे हैं, जो कक्कुक से सम्बन्ध रखते हैं। तीसरे लेख में कक्कुक के उस विजयस्तंभ को खड़ा करने का उल्लेख है। चौथे लेख में कक्कुक की प्रिय १२ वस्तुओं का नामोल्लेख किया गया है। इन लेखों से पाया जाता है कि घटियाले का प्राचीन नाम 'रोहिन्सकूप' था। इन लेखों से यह भी अनुमान होता है कि इस गांव पर आभीरों (अहीरों) का आधिपत्य हो गया था और उन्होंने इसे नष्टप्राय कर दिया था, परन्तु कक्कुक ने उन्हें परास्त कर वहां बाज़ार बनवाया तथा ब्राह्मण, महाजन आदि को बसाकर उसे आबाद किया।

अरणा—यह गांव जोधपुर से १० मील दूर दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। यह प्राचीनता की दृष्टि से महत्त्व का है। यहां की पहाड़ियों पर ११ वीं शताब्दी के मंदिर बने हुए हैं। इनके विषय में लोगों का कथन है कि ये मंदिर राजा गंधर्वसेन परमार ने बनवाये थे। पहाड़ी पर एक छोटा सा सुन्दर मंदिर है, जिसमें शिवलिंग है और बाहर के ताकों में वराह, गणपति और कुबेर की मूर्तियां हैं। इसके पास की एक चट्टान में कई छोटी-छोटी गुफ़ाएं हैं।

कुछ ऊपर जाकर एक सभा-मंडप है, जिसके एक ताक में बड़ा सुन्दर काम है और उसके ऊपर के छबने में नवग्रह खुदे हुए हैं। एक स्तंभ पर वि० सं० की ११ वीं सदी का एक लेख है, जिससे ज्ञात होता है कि ककुष्ठात्री गोत्रोत्पन्न ब्राह्मण ने हिमवंत पर्वत पर नंदादेवी का मंदिर बनाया था। उसके पिता माता का नाम भी उसमें अंकित है। आज कल उस मंदिर का चिह्न भी नहीं है। यहां साल में एक बार मेला भरता है। इस स्थान में यत्र-तत्र और भी कई भग्न मूर्तियां बिखरी पड़ी हैं।

तिवरी—यह स्थान जोधपुर से २२ मील उत्तर में है। इस गांव से थोड़ी दूर पर एक प्राचीन मंदिर है, जो 'खोखरी माता का मंदिर' कहलाता है। मंदिर पुराना होने से झुक गया है। इसकी दीवारें सादी हैं और उन-पर कोई सुन्दर कारीगरी का काम नहीं है। इसके शिखर पर अच्छी खुदाई हुई है। यह मंदिर नवीं शताब्दी के आस-पास का अनुमान होता है। यह जनश्रुति है कि खोकरा नामक एक सुनार ने इस मंदिर का निर्माण कराया था। इसमें वेदी पर गजलक्ष्मी की मूर्ति है।

ओसियां—तिवरी से १४ मील उत्तर में स्थित यह स्थान पुरातत्त्व की दृष्टि से बहुत महत्त्व का है। जैन-ग्रंथों में इसका नाम 'उपकेश पट्टन' लिखा मिलता है। ऐसा कहा जाता है कि इस स्थान से ही ओसवाल जाति के महाजनों की उत्पत्ति हुई है और जैनों में ऐसा माना जाता है कि रत्नप्रभसूरि ने यहां के राजा और सारी प्रजा को जैन बनाया। जैन यतियों

ने ओसवालों की उत्पत्ति का समय वीर-निर्वाण संवत्[1] ७० (विक्रम संवत् से ४०० और ईस्वी सन् से ४५७ वर्ष पूर्व) और भाटों ने वि० सं० २२२ (ई० स० १६५) दिया है, जो कल्पित है, क्योंकि उस समय तक तो ओसियां नगर की स्थापना का भी पता नहीं चलता। ओसवालों की उत्पत्ति का समय वि० सं० की ११ वीं शताब्दी के आस-पास माना जा सकता है।

यहां पर १२ प्रसिद्ध मंदिर हैं, जिनकी बनावट झालरापाटन (पाटण, चन्द्रावती) के मंदिरों से मिलती हुई है। इनमें महावीर तथा सच्चियाय माता के मंदिर विशेष उल्लेखनीय हैं, ओसियां के मंदिरों के निर्माण का समय वि० सं० की नवीं शताब्दी प्रतीत होता है। जैन-मंदिर की वि० सं० १०१३ (ई० स० ९५६) की श्लोकबद्ध प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसका निर्माण प्रतिहार राजा वत्सराज के समय में हुआ था। दिगम्बर जैन आचार्य जिनसेन के 'हरिवंश पुराण' के अनुसार शक संवत् ७०५ (वि० सं० ८४० = ई० स० ७८३) में वत्सराज का विद्यमान होना पाया जाता है। अतः इस मंदिर का निर्माण भी इस समय के आसपास हो चुका होगा। इसके एक स्तंभ पर वि० सं० १०७५ (चैत्रादि १०७६) आषाढ़ सुदि १० (ई० स० १०१९ ता० १५ जून) का एक छोटा सा लेख है, जिससे ज्ञात होता है कि इसका द्वार दो व्यक्तियों ने मिलकर बनवाया था। इसके अतिरिक्त इस मंदिर के तोरण, स्तंभ व मूर्तियों आदि पर कई छोटे-छोटे लेख खुदे हैं, जो वि० सं० १०३५ से १७५८ (ई० स० ९७८—१७०१) तक के हैं। इसका जीर्णोद्धार भी कई बार हुआ है।

सचियाय (सच्चिका) माता का मंदिर मारवाड़ भर में पवित्र माना जाता है और दूर-दूर से लोग उसके दर्शन के लिए आते हैं। ओसवाल महाजन इस देवी को विशेष रूप से पूजते हैं। प्रायः वे लोग यहां विवाह के बाद दर्शनार्थ आते हैं और अपने बच्चों की मानता भी यहां आकर पूरी करते हैं।

(१) इसके विशेष विवरण के लिए देखो मेरी; भारतीय प्राचीन लिपिमाला (द्वितीय संस्करण); पृ० १६३।

उक्त माता के मंदिर में वि० सं० १२३६ कार्तिक सुदि १ (ई० स० ११७६ ता० ३ अक्टोबर) बुधवार, वि० सं० १२३४ (चैत्रादि १२३५) चैत्र सुदि १० (ई० स० ११७८ ता० ३० मार्च) गुरुवार और वि० सं० १२४५ फाल्गुन सुदि ५ (ई० स० ११८९ ता० २२ फ़रवरी) के छोटे-छोटे लेख हैं। दूसरे लेख से ज्ञात होता है कि सेठ गयपाल ने यहां पर चंडिका, शीतला, सच्चिका, क्षेमंकरी और क्षेत्रपाल की मूर्तियां स्थापित कराई थीं। इसका सभा-मंडप स्तंभों पर स्थित है। इनके अतिरिक्त यहां हरिहर, सूर्य, पिप्पलादेवी आदि के विशाल और सुन्दर मंदिर भी हैं। ओसियां गांव से थोड़ी दूर पर कई स्मारक भी हैं, जिनमें से एक वि० सं० ८९५ (ई० स० ८३८) का है।

उंस्तरा—यह जोधपुर परगने में जोधपुर से ३४ मील पूर्वोत्तर में है। यहां पर एक जीर्ण-शीर्ण प्राचीन जैन मंदिर और कुछ देवलियां (वीरों के स्मारक) हैं। देवलियों पर लेख खुदे हैं। एक देवली पर के वि० सं० १२३७ चैत्र वदि ६ (ई० स० ११८१ ता० ९ मार्च) सोमवार के लेख में गोहिल वंशीय राणा तिहुणपाल के साथ उसकी राणियों का सती होना लिखा है। दूसरी देवली पर के वि० सं० १२४८ (चैत्रादि १२४९) ज्येष्ठ वदि ६ (ई० स० ११९२ ता० ४ मई) सोमवार के लेख में गुहलोत्र (गहलोत) वंशी राणा मोटीस्वरा के साथ उसकी मोहिल राणी राजी के सती होने का उल्लेख है। मोहिल अथवा मोयल चौहानों की एक शाखा है, जिसका पहले नागोर और बीकानेर राज्य के कुछ भाग पर अधिकार था। तीसरे उल्लेखनीय स्मारक पर वि० सं० १३४४ (चैत्रादि १३४५) वैशाख वदि ११ (ई० स० १२८८ ता० २९ मार्च) सोमवार के दो लेख हैं, जिनमें गहलोत वंशी मांगल्य (मांगलियो) शाखा के राव सीहा और उसके पुत्र टीया (टीडा) के साथ उनकी राणियों के सती होने का उल्लेख है। संस्कृत लेखादि में इसका नाम 'उंच्छत्रा' मिलता है, जिसका अपभ्रंश 'उंस्तरा' है।

बुचकला—बीलाड़ा परगने का यह गांव दो प्राचीन मंदिरों के

कारण महत्त्व का है। इनमें छोटा मंदिर शिव का है और बड़े को पार्वती का बतलाते हैं। बड़े मंदिर के बाहर के ताकों में नरसिंह और त्रिविक्रम की मूर्तियां हैं, जिससे अनुमान होता है कि यह विष्णु के किसी अवतार का मंदिर होना चाहिये। यह मंदिर अब नष्टप्राय हो गया है, किन्तु इसके सभामंडप के एक स्तंभ पर संभवतः वि० सं० ८७२ चैत्र सुदि ५ (ई० स० ८१६ ता० ८ मार्च) का एक लेख खुदा है, जो महाराजाधिराज परमेश्वर वत्सराज के पुत्र परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर नागभट्ट (रघुवंशी प्रतिहार) का है। दूसरे (शिव) मंदिर में गणपति, नवग्रह आदि की मूर्तियां हैं। गर्भगृह के सामने की दीवार में एक लेख भी है, जो वि० सं० १२२४ (ई० स० ११६७) का है। यह घिस गया है और अधिक महत्त्व का नहीं जान पड़ता।

पीपाड़—यह स्थान बुचकले से ६ मील उत्तर-पूर्व में है। यहां पुरातत्त्व की दृष्टि से महत्त्व की तीन वस्तुएं—पीपलाद माता का मंदिर, विष्णु-मंदिर और गांव के बाहर का कुंड—हैं। इनमें से पहला प्राचीन है। इसके पीछे के एक ताक में कार्तिकेय की प्रतिमा है, जिससे अनुमान होता है कि यह मंदिर देवी का नहीं था। दूसरा मंदिर विष्णु का है, जो देवी के मंदिर से अधिक प्राचीन मालूम होता है। इस मंदिर के द्वार तथा स्तंभों का काम देखने से अनुमान होता है कि यह विक्रम की ६ वीं शताब्दी के आस-पास बना होगा, क्योंकि इसकी बनावट ओसियां के मंदिरों की बनावट से मिलती-जुलती है। इसमें शेषशायी की मूर्ति है।

भुंडाना—यह बीलाड़ा परगने में बीलाड़ा से २४ मील उत्तर में है। यहां ११ वी शताब्दी के आस-पास का बना एक सुन्दर मंदिर है। इसमें एक लिंग है, जिसकी पूजा होती है। लिंग के पीछे शिव की मूर्ति है। प्रधान ताकों में महिषासुरमर्दिनी तथा गणपति की मूर्तियां हैं। पीछे के ताक में विष्णु के बुद्धावतार की मूर्ति है। गर्भ-गृह के बाहर के ताकों में अष्ट-दिक्पालों की मूर्तियां हैं।

बडलू—यह गांव बीलाड़ा से ३४ मील उत्तर में है। गांव से प्रायः

डेढ़ मील पूर्व में चांद बावड़ी नाम की प्राचीन बावड़ी है। इसके निकट के लेख से ज्ञात होता है कि यह बावड़ी राव चूंडा के छोटे पुत्रों में से कान्हा के पौत्र और भारमल के पुत्र हरदास की स्त्री टाकणी (टाक, तक्षक वंश की) इन्द्रा द्वारा बनवाई गई और वि० सं० १५६४ (चैत्रादि १५६५) फाल्गुन सुदि ५ (ई० स० १५३६ ता० २३ फ़रवरी) को बनकर सम्पूर्ण हुई।

गांव के मध्यभाग में पार्श्वनाथ का जैनमंदिर है। इसके सभामंडप के ऊपरी भाग को छोड़कर शेष सब अंश १४ वीं शताब्दी के आसपास का बना प्रतीत होता है।

गांव से आधे मील उत्तर में बहुतसी देवलियां (वीरों के स्मारक) हैं, जिनमें से कुछ पूर्णतया नवीन हैं। इनपर के लेख वि० सं० १०६८ (ई० स० १०११) से वि० सं० १२४६ (ई० स० ११६२) तक के बहुधा पंवारों के हैं, जिनमें से सब से प्राचीन वि० सं० १०६८ आषाढ़ सुदि ६ (ई० स० १०११ ता० १२ जून) का है। उसमें दहितराज को महावराह कहा है। अतएव संभव है कि वह सिन्ध में रहनेवाली 'वराहा' नाम की प्राचीन राजपूत जाति का हो। पुरानी ख्यातों में भाटियों और वराहों के बीच लड़ाई होने का उल्लेख मिलता है।

मेड़ता—यह मेड़ता परगने का मुख्य स्थान है। संस्कृत लेखादि में इसका नाम 'मेडन्तक' मिलता है, जिसका अपभ्रंश मेड़ता है। यह बहुत प्राचीन नगर है। मंडोर के प्रतिहार सामन्त बाउक के वि० सं० ८६४ (ई० स० ८३७) के लेख में उसके आठवें पूर्व-पुरुष नागभट का मेडन्तक (मेड़ता) को अपनी राजधानी बनाना लिखा है। राव जोधा के पुत्र दूदा को यह स्थान जागीर में मिला था, जिससे उसके वंशज मेड़तिया कहलाये। इसे जैमल मेड़तिया से छीनकर मालदेव ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। अब यहां प्राचीन वस्तुओं में १२ वीं शताब्दी के आसपास के दो स्तंभ तथा लक्ष्मी के मन्दिर के अन्दर की कुछ मूर्तियां अवशेष हैं।

मुसलमानों के समय की बहुत सी मसजिदें वगैरह यहां विद्यमान

हैं। मोची मसजिद में हि० स० १०८६ (वि० सं० १७३२=ई० स० १६७५) का लेख खुदा है। नगर के बीच में बादशाह औरंगज़ेब की बनवाई हुई जामी मसजिद है, जिसकी मरम्मत वि० सं० १८६४ (ई० स० १८०७) में धोकलसिंह आदि ने करवाई थी।

यहां पर प्रायः १२ जैनमन्दिर हैं, जो नवीन हैं, परन्तु उनकी मूर्तियों पर वि० सं० १४५० से १८८३ (ई० स० १३६३ से १८२६) तक के लेख हैं। चोपड़ों के मंदिर में बादशाह जहांगीर और शाहज़ादा शाहजहां के समय का वि० सं० १६७७ ज्येष्ठ वदि ५ (ई० स० १६२० ता० ११ मई) गुरुवार का लेख है, जिससे पाया जाता है कि यह मंदिर चोपड़ा गोत्र के संघपति (संघवी) आसकरण-द्वारा बनवाया गया था।

एक मन्दिर में जोधपुर के राजा सूर्यसिंह (सूरसिंह) के समय का वि० सं० १६५६ माघ सुदि ५ (ई० स० १६०३ ता० ७ जनवरी) शुक्रवार का लेख है। मेड़ता, प्रसिद्ध भक्त मीरां बाई का पीहर था और यहां का चारभुजा का मंदिर प्रसिद्ध है।

यहां के सोजतिया दरवाज़े की दीवार में फलोदी से लाकर एक लेख लगाया गया है, जो राणा करमसी के समय का वि० सं० १४०५ कार्तिक सुदि ११ (ई० स० १३४८ ता० २ नवंबर) रविवार का है।

मेड़ता के उत्तर और पश्चिम में छोटे-छोटे तालाब हैं। डांगोलाई तालाब के बांध पर महाराजा सिंधिया के फ्रेञ्च कप्तान डी बौरबोन (De Bourbon) की क़ब्र है, जिससे पाया जाता है कि वह ई० स० १७९० ता० ११ सितम्बर (वि० सं० १८४७ भाद्रपद सुदि ३) को घायल हुआ और ता० १८को ६१ वर्ष की अवस्था में मर गया। मेड़ते की यह लड़ाई मरहटों और राठोड़ों के बीच ई० स० १७९० (वि० सं० १८४७) में हुई थी।

पंडुखा—यह मेड़ता से ४ मील पश्चिम में है। गांव के बाहर पुराने मंदिरों के सामान से बना हुआ एक प्राचीन कुआँ है। इसपर दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के समय का वि० सं० १३५८ (चैत्रादि १३५९) वैशाख वदि ६ (ई० स० १३०२ ता० २० मार्च) का एक लेख है। मेड़ते में

५

उसने अपना फौजदार नियत किया था।

कुएँ के निकट एक माता का मंदिर है।

केकिंद—यह स्थान मेड़ता से १४ मील दक्षिण में है। अब यह जसनगर के नाम से प्रसिद्ध है। संस्कृत लेखादि में इसका नाम 'किष्किन्धा' मिलता है, जिसका अपभ्रंश केकिन्द है।

यहां ११ वीं शताब्दी के आसपास का बना प्राचीन शिवमन्दिर है, जिसके बाहर की प्रायः सब मूर्तियां नष्ट हो गई हैं। प्रधान ताक़ खाली है, केवल दक्षिण ओर के ताक में हनुमान की नवीन मूर्ति है। ताकों पर सुंदर खुदाई का काम है, जिनमें अष्टदिक्पालों के अतिरिक्त अष्टमातृकाओं की मूर्तियां तथा नृसिंह और नटेश्वर की मूर्तियां भी हैं। सभामंडप के एक ताक में बालक गोद में लिए हुए एक रमणी की मूर्ति है, जो संभवतः कृष्ण को गोद में लिए हुए यशोदा की सूचक हो। कृष्ण के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली अन्य घटनाओं के भी चित्र यहां अंकित हैं—जैसे पूतनावध, माखन-चोरी इत्यादि।

सभा-मंडप में ४ लेख हैं, जिनमें से एक नष्ट हो गया है। सबसे प्राचीन लेख तीन खंडों का है, एक खंड में वि० सं० ११७६ (चैत्रादि ११७७) वैशाख सुदि १५ (ई० स० ११२० ता० १५ अप्रेल) गुरुवार चन्द्रग्रहण के दिन रजपूत (राजपुत्र) राणा महीपाल तथा किष्किन्धा (केकिन्द) के चाहमाण (चौहान) रुद्र-द्वारा गुणेश्वर के निमित्त भेंट दिये जाने का उल्लेख है। दूसरे खंड में वि० सं० १२०० (चैत्रादि १२०१) चैत्र सुदि १४ (ई० स० ११४४ ता० २० मार्च) सोमवार को गुणेश्वर के निमित्त चोपदेव-द्वारा दी गई भेंट का उल्लेख है और तीसरे खंड में वि० सं० १२०२ (चैत्रादि १२०३) चैत्र सुदि १४ (ई० स० ११४६ ता० २८ मार्च) गुरुवार को राणी श्रीसांवलदेवी और राणक श्रीसाहणपाल-द्वारा दी गई भेंटों का अलग-अलग वर्णन है। दूसरा लेख किष्किन्धा (केकिन्द) के महामंडलीक श्रीराणक पीपलराज के समय का वि० सं० ११७८ चैत्र वदि १ (ई० स० ११२२ ता० २४ फ़रवरी) का है। तीसरा लेख वि० सं० १२२४

(ई० स० ११६७) का है, जिसमें महामंडलेश्वर श्रीजसंधरपाल तथा अन्य महाजनों द्वारा गुणेश्वर के निमित्त दान दिये जाने के अलग-अलग उल्लेख हैं। अब यह मंदिर नीलकंठ महादेव का है, परन्तु उपर्युक्त लेखों से यह स्पष्ट है कि १३ वीं शताब्दी में मूर्ति का नाम गुणेश्वर रहा होगा।

इसके निकट ही पार्श्वनाथ का जैनमंदिर है, जिसके सभामंडप तथा कुछ स्तंभों को छोड़कर, जो १३ वीं शताब्दी के आस-पास के बने प्रतीत होते हैं, शेष सभी अंश नवीन हैं, जैसा कि इसके एक स्तंभ के लेख से प्रकट है। यह लेख राठोड़वंशी मल्लदेव (मालदेव) के प्रपौत्र, उदयसिंह के पौत्र और सूरसिंह के पुत्र गजसिंह के राज्य-काल का है। उदयसिंह के सम्बन्ध में इसमें लिखा है कि बब्बर (बाबर) के वंशधर अकब्बर (अकबर) ने उसे 'शाही' (राजा) की उपाधि प्रदान की थी और वह वृद्ध राजा के नाम से प्रसिद्ध था। वृद्ध राजा से आशय 'मोटा राजा' का होना चाहिये, जिस नाम से वह आगे चलकर प्रसिद्ध हुआ। आगे चलकर इसमें लिखा है कि नापा नाम के एक ओसवाल व्यक्ति ने, जो तीर्थयात्रा के निमित्त यहां आया था, वि० सं० १६६५ (ई० स० १६०८) में इस मंदिर के मंडप आदि बनवाये। तीर्थंकर की प्राचीन चरणचौकी पर वि० सं० १२३० (चैत्रादि १२३१) आषाढ सुदि ६ (ई० स० ११७४ ता० १० जून) का एक लेख है, जिसमें आनन्दसूरि की आज्ञा से विधि के मंदिर में मूलनायक की मूर्ति स्थापित किये जाने का उल्लेख है।

भवाल—यह स्थान मेड़ता से १२ मील दक्षिण में है। गांव के बाहर महाकाली का मंदिर है। यह पहले पंचायतन[1] मंदिर था, पर अब चारों कोनों पर के देवालय नष्ट हो गये हैं। मंदिर के द्वार पर विष्णु की मूर्ति बनी है, जिसकी दाहिनी ओर ब्रह्मा और बाईं ओर शिव हैं। ऊपर नवग्रह बने हैं।

(१) पंचायतन मंदिर में पांच मंदिर होते हैं—मुख्य मंदिर मध्य में और शेष चारों कोनों पर। विष्णु के पंचायतन मंदिर में मध्य का मुख्य विशाल मंदिर विष्णु का होता है और मंदिर की परिक्रमा के चारों कोनों में से ईशान कोण में शिव, आग्नेय में गणपति, नैर्ऋत्य में सूर्य और वायव्य में देवी के छोटे-छोटे मंदिर होते हैं।

भीतर बीस हाथोंवाली महाकाली की मूर्ति है, जिसकी बाईं ओर ब्रह्माणी है। दोनों मूर्तियां नवीन प्रतीत होती हैं। बाहर के तीन ताकों में से एक में महिषासुरमर्दिनी, दूसरे में गणेश और पश्चिम के तीसरे ताक में एक छः हाथोंवाली मूर्ति है, जिसमें सूर्य, शिव एवं ब्रह्मा का मिश्रण पाया जाता है; क्योंकि ऊपर के दो हाथों में नाल सहित कमल (नीचे के दाहिनी ओर के दोनों हाथ टूटे हैं) और शेष में से एक में सर्प तथा दूसरे में चक्र हैं। सभामंडप के स्तम्भ सोलंकियों के समय के बने हैं। मंदिर के सामने दो देवालय हैं, जो सुरक्षित दशा में हैं। इसमें वि० सं० ११७० (चैत्रादि ११७१) ज्येष्ठ वदि १० (ई० स० १११४ ता० २ मई) का एक लेख है, जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि यह मंदिर १२ वीं शताब्दी से बाद का निर्मित नहीं है। वि० सं० १३८० माघ वदि ११ (ई० स० १३२३ ता० २४ दिसंबर) के लेख से प्रतीत होता है कि उस समय इसका जीर्णोद्धार हुआ होगा।

बीठन—यह स्थान भवाल से लगभग १८ मील पश्चिम में स्थित है। यह पहले एक बड़ी झील के लिए प्रसिद्ध था, जो अब प्रायः सूख गई है। इस झील के सम्बन्ध में एक दोहा प्रचलित है, जिसका आशय यह है कि इसे सांखला राजा ने बनवाया और उसकी पुत्री ने इस गांव को बसाया। इस तालाब के पास एक वृक्ष के नीचे तीन प्राचीन स्तंभ हैं, जिनमें से एक पर वि० सं० १००२ (ई० स० ९४५) का लेख है, जिसमें कीर्तिस्तंभ बनवाये जाने का उल्लेख है।

ख़वासपुरा—ऊपर आये हुए बीठन से ६ मील उत्तर-पश्चिम में बसा हुआ यह स्थान शेरशाह के सेनाध्यक्ष ख़वासखां के नाम से प्रसिद्ध है, जो मालदेव की रूठीराणी का पीछा करते समय यहां ठहरा था। ख़वासखां की क़ब्र और उसके निवासस्थान के भग्नावशेष यहां अब तक विद्यमान हैं।

गांव से एक मील उत्तर पश्चिम में १५ वीं शताब्दी के आसपास का बना हुआ महादेव का मन्दिर है।

फलोदी—यह स्थान[1] मेड़ता ज़िले में मेड़ता रोड स्टेशन से एक मील दूरी पर बसा हुआ है। प्राचीन लेखादि में इसका नाम 'फलवर्द्धिका' मिलता है।

गांव के बाहर दो प्राचीन मंदिर हैं। पार्श्वनाथ का मंदिर पश्चिम में है। आश्विन मास में यहां प्रतिवर्ष बड़ा मेला लगता है, जिसमें दूर-दूर के लोग आकर सम्मिलित होते हैं। मंदिर के सामने दोनों तरफ़ एक-एक संगमरमर की शिला लगी है, जिसपर लेख खुदे हैं। एक लेख वि० सं० १२२१ मार्गशीर्ष सुदि ६ (ई० स० ११६४ ता० २१ नवंबर) का है, जिसमें पार्श्वनाथ के मंदिर के लिए पोरवाड़ रूपमुनि एवं भंडारी दसाढ़ा आदि की दी हुई भेटों का उल्लेख है। दूसरे लेख में संवत् नहीं है। इसमें सेठ मुनिचन्द्र-द्वारा उत्तानपट्ट बनाये जाने का उल्लेख है। सभा-मंडप के एक कमरे के ताकों में कुछ मूर्तियां रक्खी हैं, और वहां समवसरण (समोसरण) तथा नन्दीश्वर द्वीप की रचनाएं हैं, परंतु ये नवीन शैली की हैं।

ब्रह्माणी का मंदिर गांव के पूर्व में है और ११ वीं शताब्दी के आस-पास का बना हुआ जान पड़ता है। सभा-मंडप का बाहरी भाग तथा शिखर नया है, परन्तु भीतर के स्तम्भ एवं बाहरी दीवारें बहुधा पुरानी हैं। नये बने हुए तीनों ताकों में से एक में नृसिंह और दूसरे में वराह की मूर्ति है। तीसरे में एक आठ हाथोंवाली मूर्ति है, जिसके छः हाथ अब नष्ट हो गये हैं, जो सम्भवतः फलवर्द्धिका देवी की हो। वर्त्तमान ब्रह्माणी की मूर्ति नवीन है।

मंदिर के स्तंभों पर कई लेख हैं। सबसे प्राचीन लेख में संवत् नहीं है और फलवर्द्धिका देवी का उल्लेख है। दूसरा वि० सं० १४६५

---

(१) जोधपुर राज्य में फलोदी नाम के दो स्थान होने के कारण इसको 'पार्श्वनाथ की फलोदी' कहते हैं, क्योंकि यहां पार्श्वनाथ का जैनमंदिर मुख्य है। इसी नाम का दूसरा स्थान फलोदी परगने में पोकरण के निकट होने से 'पोकरण फलोदी' कहा जाता है।

भाद्रपद सुदि ५ (ई० स० १४०८ ता० २६ अगस्त) का लेख किसी तुग़लक वंश के सुलतान के समय का है, जिसमें फलोदी के मंदिर के जीर्णोद्धार किये जाने का उल्लेख है। तीसरा लेख वि० सं० १५३५ (चैत्रादि १५३६) चैत्र सुदि १५ (ई० स० १४७६ ता० ६ अप्रेल) का मारवाड़ी भाषा में है, जिसमें मंदिर के जीर्णोद्धार किये जाने का उल्लेख है।

इस मंदिर की दक्षिण ओर पास ही एक और मंदिर है, जो किसी अन्य प्राचीन मंदिर के सामान से बनाया गया जान पड़ता है। इसके प्रधान ताकों में कुवेर, त्रिविक्रम और गणेश की मूर्तियां हैं। सुरक्षित मूल शिखर के अंश ११ वीं शताब्दी के आसपास के बने प्रतीत होते हैं।

किंसरिया—यह छोटा सा गांव परबतसर परगने में है। इसके पास की एक पहाड़ी पर किंसरिया अथवा कैवासमाता का मंदिर है, जो प्राचीन है। इसमें वि० सं० १०५६ (ई० स० ६६६) का एक संस्कृत लेख है, जो चौहान राजा दुर्लभराज और उसके सामंत दधीचक (दहिया) वंशी चच्च का है। उसमें दुर्लभराज को सिंहराज का पुत्र और वाक्पतिराज का पौत्र बतलाया है। इसी तरह दहिया चच्च को वैरिसिंह का पुत्र और मेघनाद का पौत्र कहा है। इस मंदिर के पास कई स्मारक स्तंभ भी हैं, जिनमें से एक दहिया कीर्तिसिंह (कीतू) के पुत्र विक्रम का वि० सं० १३०० ज्येष्ठ सुदि १३ (ई० स० १२४३ ता० १ जून) सोमवार का है, जिससे अनुमान होता है कि बुचंकले के आसपास का प्रदेश चौहानों के सामंत दहियों के अधिकार में था।

सांभर—यह इस नाम के परगने का मुख्य स्थान है और सांभर की खारी झील के दक्षिण-पूर्वी तट पर है।

यह स्थान बहुत प्राचीन है। यहां की मीठे पानी की नालियासर नाम की झील के निकट कुछ टीले थे। जयपुर के प्रसिद्ध डा० टी० एच० हेन्डली के आदेशानुसार वहां खुदाई कराने पर पुरातत्त्व सम्बन्धी कुछ वस्तुएं मिली, जो जयपुर राज्य के अजायबघर में सुरक्षित हैं। इनमें मंदिरों के शिखर, अकीक आदि के दाने, पकाई हुई मिट्टी की बनी मनुष्यों

और जानवरों की मूर्तियां एवं कुछ प्राचीन तांबे के सिक्के आदि उल्लेखनीय हैं। डा० हेन्डली का यह अनुमान कि ये वस्तुएं बौद्धों से सम्बन्ध रखती हैं, ठीक नहीं है। वहां से मिली हुई पकाई हुई मिट्टी की मूर्तियों में से एक ऐसी है, जिसके एक बड़ा सिर और छः छोटे सिर हैं और यूप (यज्ञस्तम्भ) भी बना है। उसके नीचे ई० स० पूर्व की दूसरी शताब्दी के आस-पास की लिपि में 'इन्दसमस' (इन्द्रशर्म्मणः) लेख है। इससे यह निश्चित है कि ये मूर्तियां आदि ब्राह्मण (वैदिक) धर्म से सम्बन्ध रखती हैं। संस्कृत लेखों में इसका नाम शाकम्भरी मिलता है, जिसका अपभ्रंश सांभर है। यह नगर चौहानों की पुरानी राजधानी था। इसी से चौहानों का सामान्य विरुद शाकम्भरीश्वर (संभरीराय) हुआ।

सांभर चौहानों की मूल राजधानी होने के कारण पीछे से उनके अधिकार का सांभर, अजमेर आदि का सारा प्रदेश सपादलक्ष कहलाने लगा, जिसको भाषा में सवालक या श्वालक कहते थे। जिस समय चित्तोड़ के पूर्व के इलाक़ों पर चौहानों का राज्य था, उस समय मांडलगढ़ (मेवाड़) का क़िला भी सपादलक्ष में गिना जाता था। अब भी जोधपुर राज्य का नागोर परगना सवालक या श्वालक कहलाता है, जो सपादलक्ष का अपभ्रंश है।

सांभर से कुछ मील दूर शाकम्भरीदेवी का प्राचीन मंदिर है, जिसका कई बार जीर्णोद्धार हो चुका है। यह देवी चौहानों की कुलदेवी मानी जाती है। दूसरा उल्लेखनीय मंदिर देवयानी (देवदानी) का है, जिसके पास एक कुंड भी है।

गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह ने सांभर और अजमेर के चौहान राजा अर्णोराज (आना) पर विजय पाई थी। उसके समय का एक बिगड़ी हुई दशा का लेख सांभर के एक कुएं में लगा हुआ मिला है। चौहानों के पीछे यहां मुसलमानों का अधिकार हुआ। अनन्तर कुछ समय तक यह प्रदेश मेवाड़ के महाराणा मोकल और कुंभा के अधिकार में रहा। कुछ दिनों तक मारवाड़ के राव मालदेव के अधीन रहकर यह

पुनः मुसलमानों के हाथ में चला गया, जिनसे मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) की सहायता से मारवाड़ के महाराजा अजीतसिंह और जयपुर के महाराजा जयसिंह (दूसरा) ने इसे फिर अपने हाथ में ले लिया। इसलिए सांभर शहर जोधपुर और जयपुर के सम्मिलित अधिकार में है। इसी तरह सांभर की खारी झील का अनुमान दो तिहाई अंश जोधपुर का और एक तिहाई अंश जयपुर का है, जहां सालाना कई लाख टन नमक बनता है। अब तो यह झील अंग्रेज़ सरकार के पास ठेके पर है, जिसके एवज़ में प्रतिवर्ष ४$\frac{1}{2}$ लाख रुपये जोधपुर को और २$\frac{1}{2}$ लाख रुपये जयपुर को मिलते हैं।

डीडवाना—यह इसी नाम के परगने का मुख्य स्थान है। यह गुर्जरत्रा मंडल या गुर्जरत्रा भूमि (प्राचीन गुजरात) का एक विषय (ज़िला) था, ऐसा रघुवंशी प्रतीहार राजा भोजदेव के वि० सं० ६०० (ई० स० ८३४) के दानपत्र से पाया जाता है। चित्तोड़ के कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि यह प्रदेश महाराणा कुम्भा के अधीन था और वह यहां के नमक की खान से कर लिया करता था।

सिवा—यह स्थान डीडवाणा से लगभग ७ मील उत्तर-पूर्व में है। यहां के एक प्राचीन मन्दिर से रघुवंशी प्रतिहार राजा भोजदेव (प्रथम) का एक दानपत्र वि० सं० ६०० फाल्गुन सुदि १३ (ई० स० ८४४ ता० ६ फ़रवरी) का मिला है। यह ताम्रपत्र इस समय राजपूताना म्यूज़िअम् (अजमेर) में सुरक्षित है।

नागोर—यह इसी नाम के परगने का मुख्य स्थान है और राजपूताना के बहुत प्राचीन नगरों में से एक है। संस्कृत लेखों में इसको अहिछत्रपुर या नागपुर लिखा है। नागपुर का अर्थ नागों (नागवंशियों) का नगर है और अहिछत्रपुर का अर्थ है 'अहि (नाग) है छत्र (रक्षा करनेवाला) जिस नगर का'। ये दोनों शब्द एक ही अर्थ के सूचक हैं। अतएव यह नगर प्राचीन काल में नागवंशियों का बसाया हुआ या उनकी राजधानी होना चाहिये।

पुराने समय में अहिछत्रपुर जांगल देश की राजधानी थी और चौहानों का पूर्वज सामन्त यहीं का स्वामी था, ऐसा बीजोल्यां (मेवाड़) के वि० सं० १२२६ फाल्गुन वदि ३ (ई० स० ११७० ता० ५ फ़रवरी) गुरुवार के शिलालेख से ज्ञात होता है। यहीं से जाकर चौहानों ने सांभर को अपनी राजधानी बनाया था। प्राचीन काल में चौहानों के अधिकार का सारा प्रदेश अर्थात् सांभर, अजमेर आदि का राज्य सपादलक्ष (सवालक) कहलाता था और अब तक जोधपुर राज्य का नागोर परगना 'स्वाळक' कहलाता है।

अजमेर पर मुसलमानों का आधिपत्य होने के कुछ समय बाद नागोर पर भी उनका अधिकार हो गया। तब से प्राचीन मन्दिरादि नष्ट किये जाने लगे।

यहां हिन्दू मंदिर बहुत हैं, परन्तु उनमें से अधिकांश नये हैं। प्राचीनता की दृष्टि से एक ही हाते में पास-पास बने हुए शिव तथा मुरलीधर के मंदिर महत्व के हैं। इनके स्तम्भ आदि पुराने हैं, शेष काम नया है। शिवमंदिर में फ़र्श से २५ सीढ़ी नीचे उतरने पर शिव-लिंग आता है।

तीसरा बरमायां का मन्दिर है, जो योगिनी का माना जाता है। इसके प्राचीन स्तम्भों पर सुन्दर खुदाई का काम है। इनमें से तीन पर लेख खुदे हुए थे, जिनमें से एक तो बिगाड़ दिया गया है, शेष दो पर वि० सं० १६१८ ज्येष्ठ वदि १३ (ई० स० १५६१ ता० १२ मई) और वि० सं० १६५६ चैत्र सुदि १३ (ई० स० १६०२ ता० २५ मार्च) के लेख हैं। मुसलमानों के समय के यहां बहुत से लेख हैं, जिनमें से सबसे पुराना मुहम्मद तुग़लक के समय का एक दरवाज़े पर खुदा है (सन् अस्पष्ट है)। यहां पर बादशाह अक़बर के समय के तीन लेख हैं, जिनमें से एक हि० स० ९७२ (वि० सं० १६२१-२२ = ई० स० १५६४-६५) का हसनक़ुलीख़ां की मसजिद में, दूसरा हि० स० ९८५ (वि० सं० १६३४ = ई० स० १५७७) का अकबरी मसजिद में और तीसरा हसनकुलीख़ां के बनवाये हुए फ़व्वारे पर है। 'आईन-इ-अक़बरी' आदि ग्रन्थों का रचयिता अकबर का प्रीतिपात्र अबुलफ़ज़ल

और उसका भाई शेख़ फ़ैज़ी नागोर के रहनेवाले शेख मुबारक़ के बेटे थे।

शाहजहां के समय का एक लेख हि० स० १०४७ ता० २ ज़िलहिज्ज (वि० सं० १६६५ वैशाख सुदि ३ = ई० स० १६३८ ता० ७ अप्रेल) का क़िले के एक मकान में और दूसरा हि० स० १०५६ (वि० सं० १७०३ = ई० स० १६४६) का ताहिरख़ां की मसजिद में है।

औरंगज़ेब के समय के तीन लेख हैं, जिनमें से सबसे पहला हि० स० १०७१ (वि० सं० १७१७-१८=ई० स० १६६०-६१) का है और दूसरा हि० स० १०७६ (वि० सं० १७२२-२३ = ई० स० १६६५-६६) का, जिसमें राव अमरसिंह के बेटे रायसिंह द्वारा ज्ञानी तालाव बनवाये जाने का उल्लेख है।

गुजरात के सुलतान मुज़फ़्फ़रख़ां ने अपने भाई शम्सख़ां को नागोर की जागीर दी थी, जिसने वहां अपने नाम से शम्स मसजिद और शम्स तालाव बनवाये। उसके पीछे उसका बेटा फ़ीरोज़ख़ां वहां का स्वामी हुआ, जिसने वहां एक बड़ी मसजिद बनवाई, जिसको महाराणा कुम्भा ने नागोर विजय करते समय नष्ट कर दिया।

जब महाराजा अजीतसिंह अपने छोटे पुत्र बख़्तसिंह के हाथ से मारा गया तो महाराजा अभयसिंह ने नागोर की जागीर बख़्तसिंह को दे दी।

जेनरल कनिंघाम लिखता है कि बादशाह औरंगज़ेब ने जितने मंदिर यहां तोड़े उनसे अधिक मसजिदें बख़्तसिंह ने तोड़ीं। इसी कारण यहां के कई फ़ारसी लेख शहरपनाह की चुनाई में उल्टे-पुल्टे लगे हुए अब तक विद्यमान हैं।

गोठ—नागोर से २४ मील उत्तर-पूर्व में गोठ और मांगलोद गांवों की सीमा पर गोठ के निकट दधिमति माता का प्राचीन मंदिर है। इस देवी के नाम से इसके आसपास का प्रदेश 'दधिमति क्षेत्र' कहलाता है। यहां से निकले ब्राह्मण, राजपूत, गूजर और जाट क्रमशः दाहिमा ब्राह्मण, दाहिमा राजपूत, दाहिमा गूजर और दाहिमा जाट कहलाते हैं। ये सब उक्त माता को अपनी कुलदेवी मानते हैं। इस जीर्ण-शीर्ण मंदिर के सम्बन्ध का

एक शिलालेख गुप्त संवत् २८६ (वि० सं० ६६५ श्रावण वदि १३ = ई० स० ६०८ ता० १६ जुलाई) का मिला है। यह जोधपुर राज्य में मिलनेवाले लेखों में सब से पुराना है।

फलोदी—यह फलोदी परगने का मुख्य स्थान है। संस्कृत शिलालेखों में इसका भी प्राचीन नाम फलवर्द्धिका और विजयपुर मिलता है।

प्राचीन स्थानों में यहां के कल्याणराय तथा शान्तिनाथ के मंदिर एवं कोट उल्लेखनीय हैं। कल्याणराय के मंदिर का सबसे प्राचीन लेख निज मंदिर के बायें स्तंभ पर महाराज पृथ्वीदेव (पृथ्वीराज चौहान) और उसके मंडलेश्वर राणा कतीय (पंवारवंशीय पाल्हण का पुत्र) के समय का वि० सं० १२३६ (चैत्रादि १२३७) प्रथम आषाढ सुदि १० (ई० स० ११८० ता० ४ जून) बुधवार का है, जिसमें उक्त मंडलेश्वर-द्वारा दान दिये जाने का उल्लेख है। एक दूसरा लेख इसी मंदिर के सामने एक पत्थर पर महाराजाधिराज महाराजा जसवंतसिंह (जोधपुर) के समय का वि० सं० १६९६ आषाढ सुदि २ (ई० स० १६३९ ता० २२ जून) शनिवार का है, जिसमें मंदिर के सामने जैमल के पुत्र मुंहणोत नयणसिंह (नैणसी, प्रसिद्ध ख्यात लेखक) और नगर के सकल महाजनों एवं ब्राह्मणों-द्वारा रङ्गमंडप बनवाये जाने का उल्लेख है।

उपर्युक्त मन्दिर के हाते में एक छोटे कमरे के भीतर सूर्य की मूर्ति के आसन पर महाराजाधिराज महाराजा भीवसिंघ (भीमसिंह, जोधपुर) के समय का वि० सं० १८५२ (शक सं० १७१७) आषाढ सुदि ५ (ई० स० १७९५ ता० २१ जून) रविवार का लेख है, जिसमें माहेश्वरी गोत्र के भवड शाखा के साह परमानन्द और उसके पुत्र धनरूप आदि के द्वारा उक्त मूर्ति के स्थापित किये जाने का उल्लेख है।

शान्तिनाथ के जैनमंदिर की दीवार पर महाराजा गजसिंह (जोधपुर) और उसके पुत्र कुंवर अमरसिंह के समय के (जब मुंहणोत जैमल मुख्य मंत्री था) वि० सं० १६८९ मार्गशीर्ष सुदि १३ (ई० स० १६३२ ता० २८ नवंबर) बुधवार के दो लेख हैं, जिनमें उपर्युक्त मंदिर के जीर्णोद्धार

किये जाने का उल्लेख है।

यहां का गढ़ भी दर्शनीय है। इसमें पांच लेख हैं। पहला गढ़ के भीतरी द्वार पर जोधपुर के स्वामी राठोड़ राय श्रीसूरजमल (सूजा) के पुत्र नरसिंहदेव (नरा) के समय का वि० सं० १५३२ वैशाख वदि २ (? १२) (ई० स० १४७५ ता० ३ अप्रेल) सोमवार का है, जिसमें उक्त पोल (द्वार) के निर्माण किये जाने का उल्लेख है। दूसरा गढ़ के बाहरी दरवाज़े के एक स्तम्भ पर वि० सं० १५७३ मार्गशीर्ष सुदि १० (ई० स० १५१६ ता० ४ दिसंबर) गुरुवार का है, जिसमें राठोडवंशीय महाराज नरसिंह (नरा) के पुत्र महाराव हम्मीर-द्वारा बनवाये हुए उपर्युक्त द्वार के स्तम्भों के जीर्णोद्धार होने का उल्लेख है। गढ़ की बाहरी दीवार पर दो लेख हैं, जिनमें से एक महाराजाधिराज महाराजा रायसिंह (बीकानेर) के समय का वि० सं० १६५० (चैत्रादि १६५१) आषाढ सुदि ६ (ई० स० १५६४ ता० १६ जून) रविवार चित्रा नक्षत्र का तथा दूसरा महाराजाधिराज महाराजा जसवंतसिंह (जोधपुर) और महाराजकुमार पृथ्वीसिंह के समय का वि० सं० १७१५ वैशाख सुदि ५ (ई० स० १६५८ ता० २७ अप्रेल) मंगलवार का है। इनमें भुजे (बुर्जे) तथा जैमल के पुत्र मुंहणोत मंत्रीश्वर सामकरण और साहणी जगन्नाथ सी···वत-द्वारा उक्त दीवार बनवाये जाने का उल्लेख है। पांचवां लेख महाराजा विजयसिंह और कुंवर फ़तहसिंह के समय का वि सं० १८०६ माघ वदि १ (ई० स० १७५३ ता० २० जनवरी) का है, जो गढ़ की बाहरी दीवार पर है और जिसमें जोगीदास की पराजय तथा मृत्यु का उल्लेख है। इसका आशय यह है कि जोगीदास गढ़ पर क़ाबिज़ हो गया था, जिससे महाराजा ने फ़ौज भेजकर सुरंग लगाकर कोट तोड़ा, जिसमें जोगीदास मारा गया।

नगर के राणीसर तालाब के किनारे के कीर्तिस्तंभ पर वि० सं० १५८६ (द्वितीय) भाद्रपद सुदि ६ (ई० स० १५३२ ता० ८ सितंबर) रविवार का एक अपूर्ण लेख है, जिसमें राठोड़वंशीय महाराजा सूरजमल (राव सूजा) का नाम दिया है।

कहा जाता है कि यह नगर राव सूजा के पुत्र नरा ने बसाया था। वि० सं० १६०४ (ई० स० १५४७) के लगभग राव मालदेव (राठोड़) ने इसे छल करके डूंगरसी के हाथ से छीन लिया और पन्द्रह वर्ष तक यहां राज्य किया। अनन्तर यह रावल हरराज (जैसलमेर) के पुत्र भाखरसी के अधिकार में चला गया, जिससे लेकर वि० सं० १६३५ (ई० स० १५७८) में अकबर ने इसे बीकानेर के राजा रायसिंह को दे दिया, जिसके राज्य में यहां शान्ति और समृद्धि का निवास रहा। फिर वि० सं० १६७२ (ई० स० १६१५) में जहांगीर ने इसे जोधपुर के राजा सूरसिंह को दे दिया, जिसने यहां का इन्तज़ाम करने के लिए प्रसिद्ध ख्यातकार नैणसी के पिता मुहणोत जैमल को यहां का हाकिम बनाया।

किराडू—मालानी परगने के मुख्य स्थान बाडमेर से अनुमान १६ मील उत्तर-पश्चिम में हाथमा गांव के निकट अब किराडू नामक प्राचीन नगर के खंडहरमात्र अवशेष हैं। यहां आबादी बिलकुल नहीं है। शिलालेखों में इसका प्राचीन नाम 'किराटकूप' मिलता है, जिसका अपभ्रंश किराडू हुआ है। यहां पर पांच मंदिरों के भग्नावशेष विद्यमान हैं, जिनमें शिवमंदिर मुख्य है और वह कुछ अच्छी स्थिति में है। उसमें खुदाई का बहुत सुन्दर काम हुआ है। द्वार पर ब्रह्मा, विष्णु और शिव की मूर्तियां खुदी हैं तथा उसके ऊपर के भाग में ब्रह्मा, विष्णु और सूर्य की एक सम्मिलित मूर्ति है जिसके एक सिर और दस हाथ हैं (दो हाथ सूर्य के, चार ब्रह्मा और चार विष्णु के), जिनमें से कुछ टूट गये हैं। सूर्य के दोनों हाथों में कमल, विष्णु के आयुधों में से गदा और चक्र हैं तथा ब्रह्मा के आयुधों में से स्रुव है। बाहर के ताकों में भैरव, नटेश और चामुंडा की मूर्तियां हैं।

यहां पर तीन शिलालेख हैं, जिनमें से पहला वि० सं० १२०६ (अमांत) माघ (पूर्णिमांत फाल्गुन) वदि १४ (ई० स० ११५३ ता० २४ जनवरी) शनिवार का गुजरात के सोलंकी राजा कुमारपाल के समय का है। यह लेख भी बहुत बिगड़ी हुई दशा में है। दूसरा वि० संवत् १२१८ आश्विन सुदि १ (ई० स० ११६१ ता० २१ सितम्बर) गुरुवार का है, जिसमें परमार

सिंधुराज से लगाकर सोमेश्वर तक की वंशावली दी थी, परन्तु लेख के बिगड़ जाने से कुछ नाम जाते रहे हैं। ये परमार गुजरात के सोलंकियों के अधीन थे और सोमेश्वर सोलंकी कुमारपाल का सामंत था। तीसरा वि० सं० १२३५ कार्तिक सुदि १३ (ई० स० ११७८ ता० २६ अक्टोबर) का गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव (दूसरा) और उसके सामन्त महाराज-पुत्र मदनब्रह्मदेव (चौहान) का है।

उपर्युक्त मंदिर के निकट ही एक दूसरा शिवमंदिर था, जिसका अधिकांश भाग नष्ट हो गया है। इसके बाहरी ताकों में ब्रह्मा, शिव और विष्णु की मूर्तियां हैं। यहां से कुछ दूरी पर दो और मंदिर हैं, जो उपर्युक्त दूसरे मंदिर के समान हैं। पांचवां मंदिर विष्णु का है, जिसका अधिकांश भाग टूट गया है। सभामंडप किसी तरह बचा हुआ है। इसके ताकों में विष्णु की मूर्तियां हैं, जिनमें एक गरुड़ारूढ़ विष्णु की त्रिमूर्ति है, जिसमें मध्य का मुख विष्णु और पार्श्व के मुखों में से एक नृसिंह तथा दूसरा वराह का है। मंदिर तथा इसकी मूर्तियों में खुदाई का काम बड़ा सुन्दर है।

जूना—हातमा (किराडू) से लगभग १२ मील दक्षिण-पूर्व में जूना गांव है, जिसे जूना बाड़मेर भी कहते हैं। इसके पास की पहाड़ी पर एक क़िला था, जिसके कोट के भग्नावशेष ही यत्र-तत्र अब विद्यमान हैं। जूना से दो मील के अंतर पर तीन जैन मंदिरों के भग्नावशेष हैं, किन्तु वे प्राचीन नहीं हैं। उनमें से एक के, जो सबसे बड़ा है, सभामंडप के एक स्तंभ पर ४-५ लेख खुदे हैं, जिनमें से दो महत्व के हैं। पहला लेख वि० सं० १३५२ (चैत्रादि १३५३) वैशाख सुदि ४ (ई० स० १२९६ ता० ८ अप्रेल) का है, जिसका सम्बंध बाड़मेर में राज्य करनेवाले महाराजा श्रीसामंतसिंह-देव चौहान (जालोर) से है। दूसरा लेख वि० सं० १३५६ कार्तिक (ई० स० १२९९ अक्टोबर) का है, जिससे ज्ञात होता है कि यह मंदिर आदिनाथ का था।

चोटण—यह जूना से दक्षिण-पश्चिम में २४ मील की दूरी पर बसा

है। इसके पास की पहाड़ी पर तीन मंदिरों के भग्नावशेष हैं। इनमें से पहले के मंडप के स्तंभों पर लेख खुदे हैं, जिनमें से एक श्रीकान्हडदेव चौहान (जालोर) के समय का वि० सं० की १४ वीं शताब्दी का है। इस मंदिर के सभामंडप के कोने में एक छोटा सा मंदिर है, जिसके द्वार के दोनों पार्श्वों पर विष्णु के—वराह, वामन, बुद्ध और कल्कि आदि—अवतारों की मूर्तियां हैं। इसके समीप ही उत्तर में एक छोटा सा लकुलीश[1] का मंदिर है, जिसके स्तंभों आदि की बनावट से यह ११ वीं शताब्दी का बना हुआ प्रतीत होता है। गर्भगृह के द्वार पर लकुलीश की मूर्ति है। इस मंदिर के बाहर के एक स्तंभ पर वि० सं० १३६५ पौष सुदि ६ (ई० स० १३०८ ता० १६ दिसंबर) गुरुवार का लेख है, जिससे पाया जाता है कि लकुलीश (पाशुपत) संप्रदाय के साधु उत्तमराशि के शिष्य धर्मराशि ने इस मंदिर का जीर्णोद्धार कराया था। बनावट देखते हुए तीसरे शिवमंदिर का समय भी वही है, जो ऊपर के दोनों मंदिरों का है, किन्तु वहां पर कोई लेख नहीं मिला।

जसोल—यह स्थान मालानी परगने में मालानी से अनुमान ५२ मील पूर्व में लूणी नदी के किनारे पर है।

यहां के प्राचीन मंदिर सुरक्षित हैं। ठाकुरजी का मंदिर प्राचीन मंदिरादि के पत्थरों से बनाया गया है। सभामंडप में लगे हुए पत्थर पर वि० सं० १२४६ कार्तिक वदि २ (ई० स० ११८६ ता० २८ सितंबर) का एक लेख खुदा है, जिसमें सहदेव के पुत्र सोनिंग-द्वारा तीसरे तीर्थंकर संभवनाथ की दो मूर्तियां बनवाने का उल्लेख है। कहा जाता है कि ये दोनों मूर्तियां पहले खेड़ (खेड) के महावीर स्वामी के मन्दिर में थीं। एक दूसरे स्तम्भ पर वि० सं० १२१० श्रावण वदि ७ (ई० स० ११५३ ता० १४ जुलाई) का लेख है।

जैनमंदिर को दादा-देरा कहते हैं। यहां रावल श्रीवीरमदेव के समय का वि० सं० १६८६ कार्तिक (चैत्रादि १६६० भाद्रपद) वदि २

(१) इसके विशेष वृत्तान्त के लिए देखो मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० १, (प्रथम संस्करण); पृ० ३३७।

(ई० स० १६३३ ता० ११ अगस्त) रविवार उत्तरा (भाद्रपद) नक्षत्र का एक लेख है। संभव है यह मल्लीनाथ का वंशधर हो, जो मल्लाणी का स्वामी था।

नगर—जसोल से ३ मील दक्षिण-पश्चिम में खुश्क, बीहड़ प्रदेश में बसा हुआ अब यह एक वीरान गांव है। इसका प्राचीन नाम वीरमपुर था। यहां तीन जैन तथा एक विष्णु का मंदिर है।

जैन मंदिर पार्श्वनाथ, ऋषभदेव तथा शान्तिनाथ के हैं। इन मंदिरों की दीवारें प्राचीन हैं और १४ वीं शताब्दी के आसपास की जान पड़ती हैं। इनमें बहुत से लेख हैं, जिनमें से अधिकांश बार-बार पुताई होने के कारण अस्पष्ट हो गये हैं। ऋषभदेव के मंदिर में एक लेख रावल कुशकर्ण के समय का वि० सं० १५६८ (चैत्रादि १५६९) वैशाख सुदि ७ (ई० स० १५१२ ता० २२ अप्रेल) गुरुवार पुष्य नक्षत्र का है, जिसमें जैनों-द्वारा इसके रंगमंडप के निर्माण किये जाने का उल्लेख है। इससे पता चलता है कि पहले यह मन्दिर विमलनाथ का था। इसी मंदिर का एक दूसरा लेख रावल मेघराज के समय का वि० सं० १६३७ (चैत्रादि १६३८), शाके १५०२ वैशाख सुदि ३ (ई० स० १५८१ ता० ६ अप्रेल) गुरुवार रोहिणी नक्षत्र का है। तीसरा लेख वि० सं० १६६७ (चैत्रादि १६६८), शाके १५३२ (? ३३) द्वितीय आषाढ सुदि ६ (ई० स० १६११ ता० ५ जुलाई) शुक्रवार उत्तरा फाल्गुणी नक्षत्र का रावल तेजसी के समय का है।

शांतिनाथ के मंदिर में एक लेख रावल मेघराज के समय का वि० सं० १६१४ मार्गशीर्ष वदि २ (ई० स० १५५७ ता० ८ नवम्बर) का है।

पार्श्वनाथ के मंदिर में रावल जगमाल के समय के दो लेख हैं, जिनमें से एक वि० सं० १६८१ चैत्र वदि ३ (ई० स० १६२५ ता० १४ फ़रवरी) सोमवार हस्त नक्षत्र का और दूसरा वि० सं० १६७८ (चैत्रादि १६७९), शाके १५४४ द्वितीय आषाढ सुदि २ (ई० स० १६२२ ता० ३० जून) रविवार का है।

विष्णुमंदिर रणछोड़जी का है। इसके एक ताक में हाथियों की लड़ाई अंकित है, जिसके ऊपर वि० सं० १६८६ चैत्र वदि ७ (ई० स० १६३०

ता० २२ फ़रवरी) मंगलवार का एक लेख है, जिसमें महारावल जगमाल-द्वारा इसके बनवाये जाने का उल्लेख है। इसमें इस राजा के पूर्वजों की नामावली भी दी है।

खेड़—यह नगर से ५ मील उत्तर में लूणी नदी के किनारे पर बसा है। यह प्राचीन काल में राठोड़ों की राजधानी थी। पहले यह स्थान गोहिल-राजपूतों के अधिकार में था, जिनके डाभी मंत्रियों ने उनसे असंतुष्ट हो राठोड़ों को बुलवाया, जो गोहिलों की हत्या कर यहां के स्वामी बन बैठे। अब यह एक छोटा सा गांव रह गया है। प्राचीन नगर के भग्नावशेष अब भी यहां विद्यमान हैं।

यहां रणछोड़जी का प्राचीन मंदिर है, जो चारों तरफ़ टूटे-फूटे पत्थरों की दीवार से घिरा है। इसके कितने ही स्तम्भ १० वीं शताब्दी के और कितने ही १२ वीं शताब्दी के आसपास के बने हुए प्रतीत होते हैं। मंदिर के द्वार पर गरुड़ की मूर्ति है, जिसके ऊपरी भाग में नवग्रह अंकित हैं। बाहरी भाग में दिक्पालों की मूर्तियां हैं। पास में ब्रह्मा और भैरव के मंदिर हैं। चौक के दक्षिण-पूर्वी किनारे के प्राचीन देवालय में शेषशायी की पुरानी मूर्ति है।

इस मंदिर से आध मील दक्षिण में १२ वीं शताब्दी के आसपास का बना हुआ एक महादेव का मंदिर है। इसके सिवाय यहां एक और भी प्राचीन जीर्ण-शीर्ण मंदिर है।

सांचोर—उक्त नाम के परगने का मुख्य स्थान सांचोर जोधपुर से १५० मील दक्षिण-पश्चिम में लूणी नदी के किनारे पर बसा है। शिलालेखादि में इसका प्राचीन नाम 'सत्यपुर' मिलता है। पहले यह प्रदेश आबू के परमारों के अधीन था और वे (परमार) गुजरात के सोलंकियों के सामंत थे। सांचोर परगने के बालेरा गांव से गुजरात के सोलंकी राजा मूलराज (प्रथम) का वि० सं० १०५१ माघ सुदि १५ (ई० स० ९९५ ता० १९ जनवरी) शनिवार का एक दानपत्र मिला है, जिसमें सत्यपुर मंडल (सांचोर परगना) का वरणक गांव, मूलराज की तरफ़ से दान किये जाने

का उल्लेख है। वरणक गांव संभवतः वालेरा का सूचक हो। यहां पर पहले वायेश्वर नामक एक शिवमंदिर और महावीर स्वामी के जैनमंदिर भी थे, जिनको तोड़कर उनके पत्थरों से मुसलमानों ने एक जुमा मसजिद बनवाई थी, जो अब अच्छी स्थिति में नहीं है। इस मसजिद में दो संस्कृत के और दो फ़ारसी के लेख हैं। संस्कृत लेखों में से एक वि० सं० १२७७ (ई० स० १२२०) का है, जो संघपति (संघवी) हरिश्चन्द्र-द्वारा मंडप बनवाये जाने का सूचक है। दूसरा लेख सांचोर के चौहान राजा भीमदेव के समय का वि० सं० १३२२ (चैत्रादि १३२३) वैशाख वदि १३ (ई० स० १२६६ ता० ५ अप्रेल) का है, जिसमें ओसवाल भंडारी छाधाक-द्वारा महावीर के मंदिर के जीर्णोद्धार किये जाने का उल्लेख है। फ़ारसी लेखों में से एक लेख गुलामवंश के नासिरुद्दीन मुहम्मदशाह के समय का है, जिसमें उक्त मसजिद के बनने का उल्लेख है और सांचोर का नाम महमूदाबाद लिखा है।

इन लेखों के सिवाय यहां तीन स्तंभों पर खुदे हुए लेख और भी मिले हैं, जिनमें से दो घुड़साल में और एक जेलखाने में है, जो अन्यत्र से लाकर खड़े किये गये हैं।

जेलखाने के स्तंभ पर जालोर के चौहान राजा सामंतसिंह के समय का वि० सं० १३४५ कार्तिक सुदि १४ (ई० स० १२८८ ता० ८ नवंबर) सोमवार का लेख खुदा है, जिसमें मेर जाति के प्रभा, पद्मा और आसपाल-द्वारा वायेश्वर के मंदिर को आठ द्रम्म भेंट किये जाने का उल्लेख है। घुड़साल के दो स्तंभों पर सांचोर के चौहान राजा प्रतापसिंह (पाता) के समय के वि० सं० १४४४ ज्येष्ठ वदि ... (ई० स० १३८७ मई) शुक्रवार के एक ही लेख के दो अंश खुदे हैं, जिनसे पाया जाता है कि प्रतापसिंह, साल्हा का, जिसने तुर्कों से श्रीमाल नगर छीना था, प्रपौत्र, विक्रमसिंह का पौत्र और संग्रामसिंह (जिसका बड़ा भाई भीम था) का पुत्र था। उस-(प्रतापसिंह)की राणी कामलदेवी ने, जो कर्पूरधारा के ऊमट परमार वीरसिंह के प्रपौत्र, माकड़ के पौत्र और वैरीशल्य के पुत्र सूहड़शल्य की पुत्री थी, वायेश्वर के मंदिर का जीर्णोद्धार कराया और नैवेद्य के लिए

एक खेत भेंट किया। ये ऊमट परमार मालवे के ऊमट नहीं, किंतु भीनमाल के आसपास के ऊंटाटी (ऊमटवाड़ी) प्रदेश के परमार होने चाहियें।

उपर्युक्त महावीर के जैनमंदिर का विशेष परिचय जिनप्रभसूरि ने अपने तीर्थकल्प के सत्यपुर में दिया है।

सांचोर से निकले हुए ब्राह्मण सांचोरे ब्राह्मण और वहां के चौहान राजपूत सांचोरे चौहान नाम से प्रसिद्ध हैं। सांचोर परगने पर पहले गुजरात के सोलंकियों के सामंत आबू के परमारों का अधिकार रहा। उनसे जालोर के चौहानों ने उसे लिया, जहां उनकी एक शाखा का अधिकार रहा। फिर अलाउद्दीन खिलजी के समय जालोर के साथ सांचोर पर भी मुसलमानों का अधिकार हो गया। कुछ समय पीछे फिर चौहानों ने उसे ले लिया। तदनन्तर सांचोर विहारी पठानों के अधिकार में रहा, जिनसे लेकर बादशाह जहांगीर ने उसे जोधपुर के महाराजा सूरसिंह को दिया था, ऐसी प्रसिद्धि है।

सिवाणा—यह इसी नाम के परगने का प्रधान नगर है। कहते हैं कि परमारों ने इसे बसाया था। परमार वीरनारायण का बनवाया हुआ गढ़ अब तक विद्यमान है। बाद में परमार सांतलदेव के समय में अलाउद्दीन खिलजी का इसपर अधिकार हुआ और बहुत पीछे से यह राठोड़ों के हाथ में गया। गढ़ बहुत ऊंचा नहीं है।

नगर के एक प्रवेश-द्वार पर लेख खुदा है, जिसमें लड़कियों को न मारने की राजाज्ञा है।

भीनमाल—जसवन्तपुरा परगने में जसवन्तपुरा (लोहियाना) से अनुमान २० मील उत्तर-पश्चिम में भीनमाल नाम का प्राचीन नगर है। पीछे से इसको श्रीमाल नगर भी कहते थे। यहां के निवासी ब्राह्मण श्रीमाली नाम से अब तक प्रसिद्ध हैं। वि० सं० ६९७ (ई० स० ६४०) के क़रीब प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएन्त्संग गुजरात की तरफ़ होता हुआ यहां आया था। यह नगर गुर्जर (गुर्जरत्रा) देश की राजधानी थी। उसके समय में यहां बौद्धधर्म की अवनति हो रही थी, क्योंकि वह लिखता है—'यहां विधर्मियों

(वैदिक धर्म के माननेवालों) की संख्या बहुत और बौद्धों की थोड़ी है; यहां एक ही संघाराम (बौद्ध मठ) है, जिसमें हीनयान सम्प्रदाय के १०० श्रमण रहते हैं, जो सर्वास्तिवादी हैं।'

यह नगर विद्या का भी एक पीठ था। प्रसिद्ध ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त ने वि० सं० ६८५ (शक सं० ५५० = ई० स० ६२८) में यहां 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त' की रचना की थी। 'शिशुपालवध' महाकाव्य का कर्त्ता सुविख्यात माघ कवि भी यहीं का रहनेवाला था।

यहां पर जगत्स्वामी (जयस्वामी) नामक सूर्य का एक मंदिर है, जो राजपूताने के प्राचीन सूर्य के मंदिरों में से एक है। इसको लोग जगामडेरा कहते हैं। इस मंदिर के स्तंभों पर भेंट, जीर्णोद्धार आदि के कई लेख खुदे हुए हैं, जिनमें से नौ तो इसी मंदिर के भग्नावशेष के पास के स्तम्भों पर हैं, शेष में से पांच वराहजी की धर्मशाला में खड़े किये गये हैं और एक नगर के दक्षिण ओर के महालक्ष्मी के मंदिर में लगा है।

इस सूर्य-मंदिर का जीर्णोद्धार वि० सं० १११७ माघ सुदि ६ (ई० स० १०६० ता० ३१ दिसम्बर) रविवार को राजा कृष्णराज के समय में हुआ था। यह कृष्णराज (दूसरा) आबू के परमार राजा महीपाल (देवराज, ध्रुवभट, धूर्भट) का पौत्र और धन्धुक का तीसरा पुत्र था, जो अपने बड़े भाई दन्तिवर्मा के पुत्र योगराज के विद्यमान होते हुए भी परमार राज्य का स्वामी बन बैठा था। इसी के समय का एक दूसरा लेख वि० सं० ११२३ (ई० स० १०६६) का एक दूसरे स्तंभ पर खुदा है। परमारों के अतिरिक्त यहां पर महाराजपुत्र जयतसिंहदेव (चौहान) के समय का वि० सं० १२३९ आश्विन वदि १० (ई० स० ११८२ ता० २५ अगस्त) बुधवार का और जालोर के चौहान उदयसिंह के राज्य-समय के वि० सं० १२६२, १२७४ और १३०५ (ई० स० १२०५, १२१७ और १२४८) के तथा चाचिगदेव का वि० सं० १३३४ (ई० स० १२७७) एवं सामंतसिंह के राज्यकाल के वि० सं० १३४२ और १३४५ (ई० स० १२८६ और १२८८) के भी लेख हैं।

यह सूर्य का मंदिर टूटी-फूटी दशा में है। जिस समय सर जेम्स कैम्पबेल वहां गया उस समय इस जीर्ण-शीर्ण मन्दिर की उत्तरी दीवार विद्यमान थी, परन्तु खेद का विषय है कि प्राचीन वस्तुओं का महत्व न जाननेवाले वहां के तत्कालीन पुलिस सुपरिंटेंडेंट ने उसे तुड़वाकर वहां के बहुत से पत्थर अपने बंगले में चुनवा दिये।

जैकोब (यक्षकूप) तालाब के उत्तरी तट पर एक कुबेर की मूर्ति रक्खी है, जिसकी खुदाई देखकर यह अनुमान किया जा सकता है कि वह विक्रम की ११ वीं शताब्दी के लगभग की बनी होनी चाहिये।

इस तालाब के निकट एक जैनमंदिर भी था, जो अब नष्ट हो गया है। इस मंदिर का एक स्तंभ तालाब के उत्तरी किनारे पर ग़ज़नीखां (जालोरी पठान) की जीर्ण-शीर्ण क़ब्र के पास पड़ा हुआ है, जिसपर चौहान चाचिगदेव के समय का कार्तिकादि वि० सं० १३३३ (चैत्रादि १३३४) आश्विन सुदि १४ (ई० स० १२७७ ता० १२ सितंबर) सोमवार का लेख खुदा है; जिससे ज्ञात होता है कि यह मंदिर महावीर स्वामी का था।

नगर के भीतर चार जैन-मंदिर और हैं, जिनका समय-समय पर जीर्णोद्धार होता रहा है। भीनमाल से थोड़ी दूर उत्तर गौतम तालाब के पास सोलंकी राजा सिद्धराज का वि० सं० ११८६ (चैत्रादि ११८७) आषाढ़ सुदि १५ (ई० स० ११३० ता० २३ जून) का लेख है। 'श्रीमाल माहात्म्य' में यहां के कई प्राचीन स्थानों का वर्णन मिलता है।

यहां पर पहले गुर्जर वंशियों का राज्य था। फिर क्रमशः चावड़ों, रघुवंशी प्रतिहारों, परमारों और चौहानों का राज्य रहा। परमार और चौहान गुजरात के सोलंकियों के सामन्त थे। चौहानों के राज्य की समाप्ति अलाउद्दीन खिलज़ी ने की। फिर उसके आसपास का प्रदेश पठानों को मिला, जो जालोरी पठान कहलाते थे। पीछे से यहां पर जोधपुर के राठोड़ों का अधिकार हुआ।

जालोर—जालोर परगने का यह मुख्य स्थान है और सूकड़ी नदी के किनारे पर बसा है।

यहां पर प्राचीन सुदृढ़ गढ़ के भग्नावशेष हैं। कहते हैं कि पहले-पहल इसे परमारों ने बसाया था और बाद में यह चौहानों की राजधानी रहा। शिलालेखों में इसका नाम जाबालीपुर और क़िले का नाम सुवर्णगिरि मिलता है। सुवर्णगिरि का अपभ्रंश भाषा में सोनलगढ़ हुआ है और इसी के नाम से चौहानों की एक शाखा सोनगरा कहलाई है।

यहां की सब से प्राचीन वस्तु यहां का तोपख़ाना है। अलाउद्दीन ख़िलजी के समय सोनलगढ़ चौहानों से मुसलमानों के हाथ में चला गया, जिन्होंने यहां के मंदिरों को तोड़कर मसजिद बनाई। बाद में राठोड़ों के हाथ में आने पर उन्होंने इसे अपना तोपख़ाना बना लिया। इसके तीन द्वारों में से उत्तर के द्वार पर फ़ारसी भाषा में एक लेख खुदा है, जिसमें मुहम्मद तुग़लक का नाम है।

इस स्थान से जैन तथा हिन्दू मंदिरों से सम्बन्ध रखनेवाले कई लेख मिले हैं, जो नीचे लिखे अनुसार हैं—

१—परमार राजा वीसल का वि० सं० ११७४ (चैत्रादि ११७५) आषाढ़ सुदि ५ (ई० स० १११८ ता० २५ जून) मंगलवार का एक लेख, जिसमें वीसल की राणी मेलरदेवी-द्वारा सिन्धुराजेश्वर के मंदिर पर सुवर्ण-कलश चढ़ाये जाने का उल्लेख है। इसमें वीसल के पूर्वजों की भी नामावली है[1]।

२—चौहान राजा कीर्तिपाल (कीतू) के पुत्र समरसिंह के समय का वि० सं० १२३९ (चैत्रादि १२४०) वैशाख (द्वितीय) सुदि ५ (ई० स० ११८३ ता० २८ अप्रेल) गुरुवार का एक लेख, जिसमें आदिनाथ के मन्दिर का सभामंडप बनावाये जाने का उल्लेख है।

३—चार खंडों का एक लेख, जिसमें वि० सं० १२२१, १२४२,

(१) इन परमारों के विशेष वृत्तान्त के लिए देखो मेरा 'राजपूताने का इतिहास'; जि० १ (द्वितीय संस्करण); पृ० २०४।

१२५६ और १२६८ (ई० स० ११६५, ११८६, १२०० और १२१२) में पार्श्वनाथ के मंदिर के बनवाये जाने तथा जीर्णोद्धार होने आदि का उल्लेख है, जो वि० सं० १२२१ (ई० स० ११६५) में चौलुक्य (सोलंकी) राजा कुमारपाल ने बनवाया था। वि० सं० १२४२ में महाराज समरसिंहदेव (चौहान) की आज्ञा से इसका जीर्णोद्धार हुआ।

४—वि० सं० १३२० (चैत्रादि १३२१) माघ सुदि १ (ई० स० १२६५ ता० १६ जनवरी) सोमवार का एक लेख, जिसमें भट्टारक रावल लक्ष्मीधर-द्वारा चन्दन विहार के महावीर स्वामी की पूजा के लिए दान दिये जाने का उल्लेख है।

५—चौहान राजा चाचिगदेव के समय का वि० सं० १३२३ मार्गशीर्ष सुदि ५ (ई० स० १२६६ ता० ३ नवम्बर) बुधवार का एक लेख, जिसमें उपर्युक्त महावीर स्वामी के भंडार के लिए दान दिये जाने का उल्लेख है।

६—एक स्तम्भ पर वि० सं० १३५३ (अमांत) वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) वदि ५ (ई० स० १२९६ ता० २३ अप्रेल) सोमवार का लेख, जो सुवर्णगिरि (सोनलगढ़) के राजा महाराजकुल (महारावल) सामंतसिंह और उसके पुत्र कान्हड़देव के समय का है। इसमें पार्श्वनाथ के मंदिर के लिए दान दिये जाने का उल्लेख है।

नगर के मध्य भाग में एक प्राचीन कचहरी है, जिसके विषय में ऐसा कहा जाता है कि कान्हड़देव के पुत्र सोनगरा वीरमदेव ने इसे बनवाया था। इसके प्रवेश-द्वार पर दो लेख हैं, जिसमें एक फ़ारसी में मुग़ल बादशाह जहांगीर के समय का और दूसरा मारवाड़ी भाषा में। कचहरी के बाहर कान्हड़देव के समय की बनवाई हुई 'सांडवाव' (बावली) है। शोरख़ाना दरवाज़े के बाहर सुंडेलाव नामक तालाब है, जिसके पूर्वी किनारे पर चामुंडा माता का मंदिर है। इसके निकट एक छप्पर के नीचे एक मूर्ति है, जो चौसठ जोगिनी के नाम से पूजी जाती है। इसपर वि० सं० ११७५ (चैत्रादि ११७६) वैशाख वदि १ (ई० स० १११९ ता० २९ मार्च) शनिवार का लेख खुदा है।

जालोर का गढ़ बहुत बड़ा है। इसमें दो प्राचीन जैनमंदिर तथा एक पुरानी मसजिद है। चौमुख मंदिर दो-मंज़िला है, जिसके भीतर की मूर्तियों पर लेख खुदे हैं, जिनसे पता चलता है कि वे वि० सं० १६८३ (ई० स० १६२६) में स्थापित की गई थीं। इसके पश्चिमी द्वार के पास कुंथुनाथ की मूर्ति है, जिसपर वि० सं० १६८४ माघ सुदि १० (ई० स० १६२८ ता० ४ फ़रवरी) सोमवार का लेख है। इसमें इसके स्थापित किये जाने का उल्लेख है।

दूसरे जैनमंदिर में तीन तीर्थंकरों की मूर्तियां हैं, जिनपर वि० सं० १६८१ प्रथम चैत्र वदि ५ (ई० स० १६२५ ता० १७ फ़रवरी) गुरुवार के राठोड़वंशी महाराजा गजसिंह के समय के लेख हैं। इसके निजमंदिर में दो कमरे हैं, जिनमें से एक में धर्मनाथ की मूर्ति है, जिसपर वि० सं० १६८३ (चैत्रादि १६८४) आषाढ वदि ४ (ई० स० १६२७ ता० २४ मई) गुरुवार का लेख है। दूसरे कमरे की मूर्ति पर भी उसी संवत् का लेख है। इस मंदिर के प्राचीन अंश में से केवल बाहरी दीवारें बच गई हैं।

इस मंदिर के निकट एक मसजिद है, जिसपर फ़ारसी में एक लेख खुदा है, जिससे पाया जाता है कि इसे गुजरात के सुलतान मुज़फ्फ़र (दूसरा) ने बनवाया था।

गढ़ में अन्य दर्शनीय-स्थान राठोड़ों के महल, मल्लिकशाह की दरगाह, दहियों का गढ़ और वीरमदेव की चौकी हैं। ऐसा कहते हैं कि यह क़िला दहियों के छल से ही अलाउद्दीन के हाथ लगा था। मुसलमानों के हाथ में जाने के पीछे यह क़िला जालोरी पठानों के अधिकार में रहा, फिर राठोड़ों को मिला।

पाली—यह पाली परगने का मुख्य स्थान है।

राजपूताने में रेल का प्रवेश होने के पहले यह नगर व्यापार का केन्द्र था और यहां के व्यापारियों की कोठियां मांडवी, सूरत और नवानगर तक थीं, जहां से पालीवाले व्यापारी ईरान, अरबिस्तान, अफ़्रीका, यूरोप तथा उत्तर में तिब्बत तक से माल मंगवाते और यहां का माल वहां

भेजते थे, परन्तु अब इसका वह महत्व जाता रहा है। अब भी यहां कपड़े की रंगाई, छपाई तथा लोहे का काम होता है एवं लोइयां बनती हैं और ये वस्तुएं बाहर जाती हैं।

यहां के ब्राह्मण पालीवाल या पल्लीवाल नाम से प्रसिद्ध हुए। इनमें से नंदवाने बोहरे बड़े धनाढ्य थे और दूर-दूर तक व्यापार करते थे। मेवाड़ में इनको नंदवाने और दिल्ली, आगरा, कलकत्ता में बोहरे कहते हैं।

यहां के प्राचीन मंदिरों में सोमनाथ का मंदिर मुख्य है। इस मंदिर में खुदाई का काम बहुत सुन्दर है। सोलंकी राजा कुमारपाल के समय का वि० सं० १२०६ (चैत्रादि १२१०) द्वितीय ज्येष्ठ वदि ४ (ई० स० ११५३ ता० १३ मई) का लेख बिगड़ी हुई दशा में यहां मिला है। इसके निकट ही आनन्दकरणजी का मंदिर है।

तीसरे प्राचीन मंदिर का नाम 'नौलखा' है, जिसका समय-समय पर जीर्णोद्धार होता रहा है। यहां की मूर्तियों के आसनों पर कई लेख खुदे हैं। पुराने लेखों में वि० सं० ११४४, ११५१ तथा १२०१ (ई० स० १०८७, १०९४ और ११४४) के लेख उल्लेखनीय हैं तथा पिछले लेख वि० सं० १५०१ (ई० स० १४४४) से लगाकर वि० सं० १७०६ (ई० स० १६४६) तक के हैं।

नगर के उत्तर-पूर्व में पातालेश्वर महादेव का प्राचीन मंदिर है, जो विक्रम की नवीं शताब्दी के आस पास का बना जान पड़ता है। जीर्णोद्धार होते-होते इसका प्राचीन अंश प्रायः नष्ट हो गया है।

बीठू—यह पाली ज़िले में पाली से अनुमान १४ मील उत्तर-पश्चिम में है।

यहां लगभग ११ वीं शताब्दी का बना हुआ अकालनाथ का शिव-मंदिर है, जिसका शिखर पूर्णतया नष्ट हो गया है। इसके द्वार पर गरुड़ की मूर्ति बनी है, जिसके ऊपर एक कतार में लक्ष्मीनारायण, कुबेर, गणपति, ब्रह्मा-सावित्री तथा शिव-पार्वती की मूर्तियां हैं। उससे ऊपर मध्य में एक शिव-लिंग है, जिसके दोनों ओर कलश से जल गिराती हुई दो मानव

आकृतियां बनी हैं। एक ताक में धर्मचक्र आसन पर बैठी हुई लकुलीश की मूर्ति है।

जोधपुर राजघराने के पूर्व पुरुष सीहा की देवली (स्मारक-स्तम्भ) इसी गांव के पास एक केर के वृक्ष के नीचे मिली थी, जो दो भागों में विभक्त है। ऊपर के भाग में अश्वारूढ़ सीहा की मूर्ति है। नीचे के भाग में वि० सं० १३३० कार्तिक वदि १२ (ई० स० १२७३ ता० ६ अक्टोबर) सोमवार का लेख है, जिसमें सेतकुंवर के पुत्र राठोड़ सीहा की मृत्यु का उल्लेख है।

बाली—यह बाली हकूमत का मुख्य स्थान है।

प्राचीन काल में यह एक महत्वपूर्ण स्थान रहा होगा, क्योंकि इसी के नाम से चौहानों की एक शाखा अब तक 'बालेचा' कहलाती है।

यहां के 'माता' के मंदिर से कई महत्व के लेख प्राप्त हुए हैं। यह मन्दिर वास्तव में एक स्वाभाविक गुफ़ा है, जिसके सामने एक सभा-मंडप बनाकर उसे मन्दिर के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है। चौक के स्तम्भों पर कई लेख खुदे हैं। एक स्तम्भ पर जयसिंह (जैत्रसिंह) और उसके सामन्त आश्वाक (अश्वराज, आसराज) का वि० सं० १२०० (ई० स० ११४३-४४) का लेख खुदा है। दूसरे स्तम्भ का लेख वि० सं० १२१६ श्रावण वदि १ (ई० स० ११५६ ता० ३ जुलाई) शुक्रवार का कुमारपाल के समय का है, जिसका दंड-नायक वैजलदेव था।

नाणा—यह बाली परगने में बाली से २१ मील दक्षिण में है।

यहां के प्राचीन मंदिरों में महावीरस्वामी का जैनमंदिर मुख्य है। इस मंदिर के सभा-मंडप के द्वार के तोरण के स्तम्भ और पश्चिमी द्वार विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के आसपास के बने प्रतीत होते हैं। इस प्राचीन मंदिर का जीर्णोद्धार हुआ है। बाक़ी का अंश जीर्णोद्धार के समय का बना है। मंदिर के द्वार के एक पार्श्व पर वि० सं० १०१७ (ई० स० ९६०) का एक लेख है। मुख्य मूर्ति के आसन पर वि० सं० १५०६ माघ वदि १० (ई० स० १४५०

ता० ८ जनवरी) गुरुवार का लेख अंकित है। मंदिर के एक छबने पर मारवाड़ी भाषा में वि० सं० १६५६ भाद्रपद सुदि ७ (ई० स० १६०२ ता० १४ अगस्त) शनिवार का एक लम्बा लेख खुदा है, जिसका आशय यह है कि महाराणा अमरसिंह (प्रथम) ने मेहता नारायण को, जिसके पूर्वज सिवाने की लड़ाई में मारे गये थे, नाणा गांव दिया और यहां का एक रहँट उसने महावीर की पूजा इत्यादि के खर्च के लिए भेंट किया। अन्य मूर्तियों पर के लेख वि० सं० १२०३ से १५०६ (ई० स० ११४६ से १४४६) तक के हैं। इस मंदिर के भीतर एक छोटा मसजिद का आकार बना हुआ है, जो संभवतः मुसलमानों की क्रूर दृष्टि से इसे बचाने के लिए बनाया गया हो। निकट ही लक्ष्मीनारायण का मंदिर है, जिसके बाहर सुरभि (सुरह) पर वि० सं० १३१४ (चैत्रादि १३१५) आषाढ सुदि ५ (ई० स० १२५८ ता० ६ जून) गुरुवार का एक लेख खुदा है।

गांव के बाहर नीलकंठ महादेव का मंदिर है, जिसके द्वार के पास वि० सं० १२३७ (ई० स० ११८०) तथा वि० सं० १२५७ (ई० स० १२००) के दो लेख अंकित हैं। मंदिर के भीतर मारवाड़ी भाषा का लेख है, जिससे ज्ञात होता है कि इस मंदिर का जीर्णोद्धार वि० सं० १२८३ (ई० स० १२२६) में अजयपालदेव के पुत्र भीमदेव (दूसरा, सोलंकी) के राज्य-समय में हुआ था। इस मंदिर से थोड़ी दूरी पर तीन और शिव-मन्दिरों के भग्नावशेष हैं, जो साधारण होते हुए भी नाणा के मंदिरों में सबसे प्राचीन प्रतीत होते हैं। परमार राजा महाराजाधिराज श्रीसोमसिंहदेव के समय का वि० सं० १२६० माघ वदि [? सुदि] १५ (ई० स० १२३४ ता० १६ जनवरी) सोमवार का लेख यहां पर ही मिला था, जो अब यहां से उठाकर नीलकंठ के मंदिर के दरवाज़े के पास लगाया गया है। यह बहुत घिसा हुआ है। इस लेख में लकुलीश के मंदिर के निमित्त दिये गये दान का भी उल्लेख है।

बेलार—यह बाली परगने में नाणा से ३ मील उत्तर-पश्चिम में बसा है।

गांव से अनुमान आध मील दक्षिण में एक रम्य झील के तट पर एक शिवालय है। इसके द्वार पर गणेश की मूर्ति है और उसके ऊपर नवग्रह की मूर्तियां बनी हैं। गर्भगृह में शिवलिंग बना है, जिसकी पूजा होती है। इस मंदिर के पास सात और छोटे-छोटे मंदिर थे, जिनमें से अधिकांश गिर गये हैं।

ग्राम के भीतर एक जैनमंदिर है, जिसका सभामंडप विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के आस-पास का बना प्रतीत होता है। शेष सभी अंश नवीन हैं। स्तम्भों में से पांच पर लेख अंकित हैं, जो वि० सं० १२६५ (ई० स० १२०८) के हैं और जिनमें ओसवालों-द्वारा इस मंदिर के जीर्णोद्धार किये जाने का उल्लेख है। एक स्तम्भपर वि० सं० १२३५ (अमांत) फाल्गुन (पूर्णिमांत चैत्र) वदि ७ (ई० स० ११७६ ता० १ मार्च) गुरुवार का लेख खुदा है, जिसमें धांधलदेव का नाम है।

भड़ूंद—यह नाणा से डेढ़ मील उत्तर में है।

यहां कुछ प्राचीन मंदिर हैं, पर उनका कोई विशेष महत्व नहीं है। इनमें सरस्वती का मंदिर उल्लेखनीय है। गांव में एक प्राचीन बावली है, जिसपर वि० सं० ११०२ (चैत्रादि ११०३) कार्तिक वदि ५ (ई० स० १०४६ ता० २३ सितंबर) का एक लेख खुदा है, जो आबू के परमार राजा पूर्णपाल के समय का है। इस लेख में इस गांव का नाम 'भुंडिपद्र' दिया है, जिसका अपभ्रंश भड़ूंद है।

बेड़ा—यह बाली से प्रायः १५ मील दक्षिण में है।

गांव के बाहर एक चबूतरे पर सूर्य की प्राचीन मूर्ति स्थापित है, जिसको अब रेबारी लोग माता के नाम से पूजते हैं।

गांव के भीतर एक विष्णु (ठाकुर) का मंदिर है, जिसकी बनावट पूर्णतया आधुनिक ढंग की है। इसके सम्बन्ध में आश्चर्यप्रद बात यह है कि मूर्ति के हाथ में एक तलवार है।

उपर्युक्त मंदिर के निकट ही एक बड़ा जैनमंदिर है, जिसके गर्भगृह के भीतर पीतल और पत्थर की लेखांकित मूर्तियां हैं। लेख वि० सं०

१३४७ से १६३० (ई० स० १२६० से १५७३) तक के हैं।

वेड़ा से दो मील की दूरी पर कुछ भग्नावशेष हैं, जिनको लोग 'जूना वेड़ा' कहते हैं। यहां की एक महावीर की मूर्ति पर वि० सं० ११४४ (ई० स० १०८७) का और पारसनाथ की मूर्ति पर वि० सं० १६४४ फाल्गुन (ई० स० १५८८) का एक-एक लेख खुदा है।

वेड़ा से तीन मील दूर जंगल में एक महादेव का मंदिर भी है, जिसका फ़र्श प्राचीन है। मंदिर के बाहरी भाग में कई स्मारक शिलाएं खड़ी हैं।

भाटूंद—बाली से अनुमान १० मील दक्षिण में भाटूंद गांव है।

गांव के बाहर तालाव के पास एक मिट्टी के ढेर पर बहुत प्राचीन जीर्ण-शीर्ण मंदिर है। इसका गर्भगृह दो भागों में विभक्त है और एक ताक में विष्णु के बुद्ध अवतार की मूर्ति है, जिसके सिर पर किरीट है और नीचे के दो हाथ तो पद्मासन से बैठी हुई जैनमूर्तियों के समान पैर के तलवों पर एक दूसरे पर धरे हुये हैं और ऊपर के दो हाथों में विष्णु के आयुध हैं।

गांव के भीतर एक दूसरा मंदिर जीर्ण दशा में है, जो बहुत पुराना नहीं है। इसके भीतर एक मूर्ति है, जिसके दो हाथ तो उपर्युक्त मन्दिर की मूर्ति के समान तलवों पर धरे हैं, परन्तु शेष दो में से एक में त्रिशूल है और दूसरे में सर्प। संभवतः यह ध्यानमग्न शिव की मूर्ति हो। यह मंदिर बहुत टूटा-फूटा है। कहते हैं कि एक थानेदार ने इसे अपना रसोड़ा बनाया था। सभामंडप के स्तम्भ पर चौलुक्य राजा कुमारपाल के समय का वि० सं० १२१० (चैत्रादि १२११) ज्येष्ठ सुदि ६ (ई० स० ११५४ ता० २० मई) गुरुवार का एक लेख खुदा है, जो अब बहुत घिस गया है। इसमें उसके नाडोल के दंडनायक (हाकिम) श्रीवैजाक[1] का भी उल्लेख है। इसमें एक

(१) वैजा, वैजाक, वैजलदेव या वैजल्लदेव सोलंकी राजा कुमारपाल और अजयपाल का सामंत और नर्मदा तट के एक मंडल का स्वामी था। उसका एक दानपत्र प्रह्लादन पाटक से दिया हुआ वि० सं० १२३१ (चैत्रादि १२३२) का मिला है।

स्थल पर 'भाटुट्टपद्रनगर' शब्द आया है, जिसका अपभ्रंश भाटूंद है।

हथूंडी—यह वाली से प्रायः ११ मील दक्षिण-पूर्व में वसा है।

गांव में एक शिवमन्दिर है, जो बहुत प्राचीन नहीं है क्योंकि उसका प्रायः प्रत्येक प्राचीन अंश अब नष्ट हो गया है। यहां 'राता महावीर' का सादा जैनमन्दिर है, जहां से राष्ट्रकूट (राठोड़) धवल और उसके पुत्र बालप्रसाद के समय का वि० सं० १०५३ माघ सुदि १३ (ई० स० ६६७ ता० २४ जनवरी) रविवार का एक लेख मिला है, जो बड़े महत्व का है और इस समय राजपूताना म्यूज़ियम् (अजमेर) में सुरक्षित है। इस मंदिर के एक स्तम्भ पर वि० सं० १३३५ (चैत्रादि १३३६) श्रावण वदि १ (ई० स० १२७६ ता० २६ जून) सोमवार का लेख खुदा है, जिसमें राता महावीर के मंदिर के लिए २४ द्रम्म भेंट किये जाने का उल्लेख है। द्वार पर भी कई लेख हैं, जिनमें से एक वि० सं० १३४५ भाद्रपद वदि ६ (ई० स० १२८८ ता० २३ जुलाई) शुक्रवार का है और इसमें चाहुमान राजा सामन्तसिंह का वर्णन है, जो जालोर का स्वामी था एवं जिसके अधिकार में यह प्रदेश था।

इस गांव का संस्कृत नाम हस्तिकुंडी था और यहां ११ वीं शताब्दी में राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) की राजधानी थी। इसी स्थान के नाम से राठोड़ों की एक शाखा 'हथुंडिया राठोड़' प्रसिद्ध है। ये राठोड़ जोधपुर के राठोड़ों से भिन्न हैं और सम्भवतः दक्षिण या गुजरात के पुराने राठोड़ों से निकले हुए हों।

सेवाड़ी—यह स्थान वाली से ६ मील दक्षिण में वसा है।

प्राचीनता की दृष्टि से यहां का महावीर का मंदिर महत्वपूर्ण है, जिसकी बनावट ११ वीं शताब्दी के आसपास की है। इसका सभा-मंडप अर्वाचीन है। निज मंदिर के भीतर स्थापित मूर्ति के आसन पर एक लेख खुदा है, जिसमें केवल वि० सं० १२४५ (ई० स० ११८८) और 'सगडेर-

---

यह कुछ समय तक गुजरात के सोलंकियों की तरफ़ से नाडोल के चौहानों के प्रदेश का शासक भी रहा था। संभवतः यह भड़ोच के प्राचीन चौहानों का वंशधर हो।

गच्छ' पढ़ा जाता है। यहां एक सरस्वती की मूर्ति भी है। देवकुलिकाओं के छवनों पर कई लेख खुदे हैं, जिनमें सबसे प्राचीन चौहान महाराजाधिराज अश्वराज (आसराज) के समय का वि० सं० ११६७ चैत्र सुदि १ (ई० स० १११० ता० २३ मार्च) का है। दूसरा वि० सं० ११७२ (ई० स० १११५) का है, जिसमें चौहान कटुकराज-द्वारा तीर्थंकर की पूजा के लिए दान दिये जाने का उल्लेख है। तीसरा लेख वि० सं० १२१३ (ई० स० ११५६) का है, जिसमें नाडोल के दंडनायक (शासक, हाकिम) वैजा (वैजलदेव) का उल्लेख है, जो भाटूंद में प्राप्त लेख में उल्लिखित वैजाक ही है।

गांव से आध मील दक्षिण-पूर्व में एक कुएं के पास पेड़ के नीचे बहुत सी मूर्तियां रक्खी हुई हैं।

पूर्व में प्रायः एक मील की दूरी पर मूंजा बालेचा का प्रख्यात गढ़ और छतरी है। यह मूंजा सीसोदा के राणा हम्मीर के हाथ से मारा गया था। बालेचा चौहानों की एक शाखा का नाम है।

सांडेराव—बाली से ६ मील उत्तर-पश्चिम में यह गांव है।

संस्कृत लेखादि में इसका नाम 'सण्डेर' मिलता है। इसके नाम से जैनों का एक गच्छ 'सण्डेरक या संडेर' नाम से प्रसिद्ध है।

पुरातत्त्व की दृष्टि से यहां का महावीरस्वामी का मंदिर महत्त्वपूर्ण है। इसमें चौहान केल्हणदेव के समय का वि० सं० १२२१ माघ वदि २ (ई० स० ११६५ ता० १ जनवरी) शुक्रवार का एक लेख है, जिसमें राजमाता आनलदेवी-द्वारा महावीरस्वामी (मूल-नायक) की पूजा के लिए भूमि दिये जाने का उल्लेख है। सभामंडप के स्तम्भों पर भी ४ लेख हैं, जिनमें से एक उपर्युक्त राजा के समय का वि० सं० १२३६ कार्तिक वदि २ (ई० स० ११७६ ता० १६ सितंबर) बुधवार का है और एक चौहान महाराजाधिराज सामन्तसिंहदेव के समय का वि० सं० १२५८ (चैत्रादि १२५६) चैत्र सुदि १३ (ई० स० १२०२ ता० ८ मार्च) शुक्रवार का है।

कोरटा—सांडेराव से १६ मील दक्षिण-पश्चिम में यह गांव है। इससे मिला हुआ वामणेरा नाम का गांव इसी की ब्रह्मपुरी (ब्राह्मणों के रहने का मोहल्ला) थी। संस्कृत शिलालेखों में इसका नाम 'कोरंटक' मिलता है और इसी के नाम पर जैनों का एक गच्छ 'कोरंटक' कहलाया है।

यहां तीन जैनमंदिर हैं, जिनमें से एक तो गांव के भीतर है और शेष दो बाहर। गांव के भीतर का शांतिनाथ का मंदिर चौदहवीं शताब्दी के आसपास का बना जान पड़ता है। इसके सभामंडप के स्तंभों पर दो लेख खुदे हैं।

मेढी गांव के निकट रिखबदेव (ऋषभदेव) का जैनमंदिर है, जिसकी मूर्ति के आसन पर वि० सं० ११४३ (चैत्रादि ११४४) वैशाख सुदि ३ (ई० स० १०८७ ता० ८ अप्रेल) गुरुवार का लेख है।

यहां से क़रीब पाव मील के अन्तर पर महावीरस्वामी का मन्दिर है। इसके सभामंडप में कई खुदाई के पत्थर वामणेरा से लाये हुए रक्खे हैं।

वामणेरा नाम की इस प्राचीन नगर की ब्रह्मपुरी में एक सूर्य का मंदिर है, जिसका प्राचीन सभामंडप पूर्णतया नष्ट हो गया है। यहां के स्तंभों पर पांच लेख खुदे हैं, जिनमें से तीन महाराजाधिराज सामन्तसिंह के समय के (जो संभवतः चौहान होना चाहिये) वि० सं० १२५८ (ई० स० १२०१) के हैं। शेष में से एक जालोर के चौहान सामन्तसिंह के समय का वि० सं० १३४८ (चैत्रादि १३४९) आषाढ वदि ५ (ई० स० १२९२ ता० ६ जून) का है, जिसमें प्रति रहँट सालाना तीन रुपये उक्त मंदिर के मेले के समय दान दिये जाने की आज्ञा है।

यहां से तीन ताम्रपत्र भी मिले हैं, जिनमें से एक नाडोल के चौहान आल्हण के पुत्र महाराज केल्हणदेव का वि० सं० १२२० श्रावण वदि अमावास्या (ई० स० ११६३ ता० ३ जुलाई) बुधवार सूर्यग्रहण के दिन का है। दूसरा उसी महाराजा के समय का वि० सं० १२२३

(चैत्रादि १२२४) ज्येष्ठ वदि १२ (ई० स० ११६७ ता० १७ मई) सोम-(? सौम्य = बुध) वार का है और तीसरा भी उसी महाराजा के समय का है, परन्तु उसमें संवत् नहीं है। ये तीनों ताम्र-पत्र इस समय राजपूताना म्यूज़ियम् (अजमेर) में सुरक्षित हैं।

सादड़ी—यह स्थान देसूरी परगने में देसूरी से ८ मील दक्षिण-पश्चिम में है।

यह गोड़वाड़ प्रान्त का सबसे बड़ा कस्बा है और यहां बहुत से मन्दिर हैं, जिनमें से वराह, कपूरलिंग महादेव एवं जागेश्वर के मंदिर मुख्य हैं।

वराह के मन्दिर के पास भोलानाथ तथा लक्ष्मी के मंदिर हैं। उसके प्रधान ताकों में से एक में ब्रह्मा तथा शेष में शिव, गणेश एवं पंचमुख महादेव की मूर्तियां हैं। निज-गृह की वराह की मूर्ति के लिए यह प्रसिद्ध है कि इसे नन्दवाने ब्राह्मण घालोप से लाये थे। गणेश और भोलानाथ के मंदिरों के शिखरों को छोड़कर अन्य सभी भाग आधुनिक हैं।

नगर के बाहरी भाग में कपूरलिंग महादेव तथा चतुर्भुज के मंदिर एक दूसरे के सामने बने हुए हैं।

चतुर्भुज का मंदिर प्रायः जीर्णावस्था में है, जिसके बाहर के ताक में लकुलीश और शिव की मूर्तियां हैं। इसके द्वार के ऊपरी भाग में दोनों ओर दो लेख खुदे हैं। वि० सं० १२२४ फाल्गुन सुदि २ (ई० स० ११६८ ता० १२ फ़रवरी) सोमवार का लेख नाडोल के चौहान केल्हणदेव का है। निज मंदिर के भीतर काले पत्थर की चतुर्भुज की मूर्ति है, जिसके हाथों में कमल, गदा, चक्र तथा शंख हैं।

नगर के निकट एक बावली के किनारे महाराणा प्रतापसिंह के पुत्र महाराणा अमरसिंह के समय का वि० सं० १६५४ (चैत्रादि १६५५) वैशाख वदि २ (ई० स० १५९८ ता० १३ अप्रेल) गुरुवार का लेख है, जिसमें उस बावली के बनाये जाने का उल्लेख है। यह बावली और इसके ऊपर की बारादरी मेवाड़ के प्रसिद्ध मंत्री भामाशाह के भाई ताराचंद ने

गोड़वाड़ का हाकिम रहते समय बनवाई थी। इसके पास ताराचंद, उसकी चार स्त्रियों, एक खवास, छः गायनियों, एक गवैये और उस(गवैये)की औरत की आकृतियां पत्थरों पर बनी हुई हैं।

जागेश्वर का मंदिर महाराणा अमरसिंह के मंत्री ताराचंद कावड़िया (भामाशाह का भाई) के बाग के अंदर की बारादरी का रूपान्तर कर एक साधु-द्वारा बनाया गया है। इस मंदिर के दो स्तंभों पर चार लेख हैं, जिनसे पता चलता है कि ये स्तंभ नाडोल के लक्ष्मणस्वामी (लाखणदेव) के मंदिर से लाये गये थे।

राणपुर—यह स्थान सादड़ी से ६ मील दक्षिण में है।

यहां आदिनाथ का विशाल और प्रसिद्ध चौमुख मंदिर है। यह जैनियों के गोड़वाड़ के पांच तीर्थों में से एक है। आदिनाथ का यह मंदिर वि० सं० १४९६ (ई० स० १४३९) में महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के राज्य-काल में बनाया गया था।

इसके सामने दो अन्य जैनमंदिर हैं, जिनमें से पार्श्वनाथ के मंदिर में अश्लील चित्र खुदे हैं।

वहां से दक्षिण में कुछ दूरी पर सूर्य का जीर्ण-शीर्ण मंदिर है, जिसके बाहर के भाग में ब्रह्मा, विष्णु और शिव की ऐसी मूर्तियां बनी हैं, जिनका ऊपर का भाग उन देवताओं का और नीचे का भाग सूर्य का है, जिसके पैरों में लम्बे बूट हैं और जो सात घोड़ों के रथ पर सवार है।

घाणेराव—देसूरी से ४ मील दक्षिण-पश्चिम में यह स्थान भी जैनों के गोड़वाड़ के पांच तीर्थों में से एक है।

जैनों का महावीरस्वामी का मंदिर यहां से तीन मील दक्षिण-पूर्व में है। इसमें दंडनायक वैजलदेव के समय का वि० सं० १२१३ भाद्रपद सुदि ४ (ई० स० ११५६ ता० २१ अगस्त) मंगलवार का एक लेख है, जिसमें महावीर के निमित्त दान दिये जाने का उल्लेख है।

नारलाई—यह गांव देसूरी से ४ मील उत्तर-पश्चिम में है। छोटासा ग्राम होने पर भी यहां प्रायः सोलह प्राचीन मंदिर हैं, जिनमें से अधिकांश

जैनों के हैं।

गांव के पूर्व में सोनगरे चौहानों के बनवाये हुए पहाड़ी क़िले के भग्नावशेष हैं। यह क़िला 'जयकल' नाम से प्रसिद्ध है और इसे जैन लोग शत्रुंजय के समान पवित्र मानते हैं। गढ़ में आदिनाथ का जैनमंदिर है, जिसकी मूर्ति के आसन पर वि० सं० १६८६ (चैत्रादि १६८७) वैशाख सुदि ८ (ई० स० १६३० ता० १० अप्रेल) शनिवार का महाराणा जगतसिंह के समय का एक लेख है, जिसमें मंदिर के जीर्णोद्धार तथा आदिनाथ (मूलनायक) की मूर्ति के स्थापित होने का उल्लेख है।

पहाड़ी के शिखर पर वैजनाथ महादेव का नवीन मंदिर है। ज़रा और आगे हटकर पूर्वोत्तर शिखर पर गोरखमढी है, जिसके दो खंडों में से एक में दत्तात्रेय की पादुका और दूसरे में एक त्रिशूल है, जो अब हिंगलाज माता के नाम से पूजा जाता है।

पहाड़ी के निम्न भाग में गांव से बाहर कई प्राचीन जैन मंदिर हैं, जिनमें से सुपार्श्व का मंदिर मुख्य है। इसके सभा-मंडप में मुनिसुव्रत की मूर्ति है, जिसपर अभयराज के समय का वि० सं० १७२१ (चैत्रादि १७२२) ज्येष्ठ सुदि ३ (ई० स० १६६५ ता० ७ मई) रविवार का एक लेख है, जिसमें इसके बनाये जाने का उल्लेख है। यह अभयराज नाडोल का मेड़तिया जागीरदार होना संभव है।

गांव के दक्षिण-पूर्वी किनारे की एक अन्य पहाड़ी के शिखर पर नेमीनाथ का जैनमंदिर है, जिसे यहां 'जादवाजी' कहते हैं। इसके सभा-मंडप के स्तंभों पर दो लेख हैं। एक वि० सं० ११६५ आश्विन वदि १५ [अमावास्या] (ई० स० ११३८ ता० ६ सितंबर) मंगलवार का तथा दूसरा वि० सं० १४४३ (चैत्रादि १४४४) कार्तिक वदि १४ (ई० स० १३८७ ता० ११ अक्टोबर) शुक्रवार का चौहान महाराजाधिराज वणवीरदेव के पुत्र रणवीरदेव के समय का, जिनमें पूजा इत्यादि के लिए भेंट देने का उल्लेख है।

इन मंदिरों के अतिरिक्त यहां तपेश्वर का मंदिर है, जिसमें गणपति

एवं सूर्य की मूर्तियां हैं।

आदीश्वर का एक दूसरा जैनमंदिर भी उल्लेखनीय है। इसमें वि० सं० १५५७ (चैत्रादि १५५८) वैशाख सुदि ६ (ई० स० १५०१ ता० २३ अप्रेल) शुक्रवार का एक लेख है, जिसमें लिखा है कि यह मंदिर वि० सं० ९६४ (ई० स० ९०७) में यशोभद्रसूरि-द्वारा खेड़ नामक स्थान से यहां मंत्र-शक्ति से लाया गया था[1]।

इसके सभा-मंडप के ६ स्तंभों पर ५ लेख हैं, जिनमें से सबसे पुराना वि० सं० ११८७ फाल्गुन सुदि १४ (ई० स० ११३१ ता० १२ फ़रवरी) गुरुवार का है। शेष चारों चाहुमान (चौहान) राजा रायपाल के समय के वि० सं० ११८९ से १२०२ (ई० स० ११३२ से ११४५) तक के हैं। उपर्युक्त सभी लेखों में महावीर की पूजा इत्यादि के लिए दान देने का उल्लेख है। इससे यह स्पष्ट है कि यह मंदिर पहले महावीर स्वामी का रहा होगा, बाद में आदिनाथ की मूर्ति यहां पर स्थापित की गई, जैसा कि निज मंदिर के वि० सं० १५५७ (चैत्रादि १५५८) वैशाख सुदि ६ (ई० स० १५०१ ता० २३ अप्रेल) शुक्रवार के लेख से प्रकट है। यहां कई अन्य छोटे-छोटे लेख भी हैं, जिनका समय वि० सं० १५६७ से १५७१ (ई० स० १५१० से १५१४) तक है। इनसे यह ज्ञात होता है कि इसका समय-समय पर जीर्णोद्धार होता रहा है। वि० सं० १६७४ (ई० स० १६१७) में तो आदिनाथ की नई मूर्ति विठलाई गई थी।

गांव के एक मील दक्षिण-पश्चिम के एक भोयरा (स्वाभाविक गुफ़ा) में महादेव के मंदिर के निकट एक लेख चौलुक्य राजा कुमारपाल (कुंवरपालदेव) के समय का वि० सं० १२२८ माघ सुदि १३ (ई० स० ११७२ ता० १० जनवरी) सोमवार का है, जिसमें मंडप के बनाये जाने का उल्लेख है। इससे यह भी पता चलता है कि उस समय नाडोल चौहान केल्हण के अधिकार में, बोरडी राणा लक्ष्मण के और सोनांणा ठाकुर अणसीह के अधिकार में था।

(१) यह कथा कल्पित है।

नाडोल—यह स्थान देसूरी से १० मील उत्तर-पश्चिम में है। यह गोड़वाड़ के जैनों के पांच तीर्थों में से एक है। यहां मारवाड़ के चाहुमानों (चौहानों) की मूल राजधानी थी।

टॉड को वि० सं० १०२४ (ई० स० ६६७) एवं वि० सं० १०३६ (ई० स० ६८२) के दो लेख चाहुमान वंश के संस्थापक राजा लक्ष्मण के समय के यहां मिले थे, पर उसने इन दोनों पत्थरों को लन्दन की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी को प्रदान कर दिया।

अणहिलवाड़ा और सोमनाथ जाते समय महमूद ग़ज़नवी इस नगर से गुज़रा था। कुतुबुद्दीन ऐबक ने भी अणहिलवाड़ा जाते समय वाली तथा नाडोल के गढ़ों को छीना था।

पुरातत्त्व की दृष्टि से यहां का सूरजपोल नामक दरवाज़ा महत्त्व-पूर्ण है। इसके विषय में प्रसिद्धि है कि इसे नाडोल के चौहानों के मूल-पुरुष राव लाखण (लक्ष्मण) ने बनवाया था। यहां पर एक लेख वि० सं० १२२३ (चैत्रादि १२२४) श्रावण वदि १५ [अमावास्या] (ई० स० ११६७ ता० १८ जुलाई) मंगलवार का चौहान केल्हण के समय का है, जिसका बहुत अंश घिस गया है। यहां से थोड़ी दूर पश्चिम में नीलकंठ महादेव का मंदिर है, जिसके एक ताक में वि० सं० १६६६ ज्येष्ठ सुदि १५ (ई० स० १६०६ ता० ७ जून) बुधवार का पातसाह श्रीसलीमसाह नूरदी महमद जहांगीर (अकबर का पुत्र) के समय का लेख है। इसमें लिखा है कि जालोर के स्वामी ग़ज़नीखां ने नाडोल के सामने जहांगीर के नाम से एक शहरपनाह बनवाया। इस मंदिर के पीछे प्राचीन गढ़ के भग्नावशेष हैं।

नगर के बाहर उत्तरी किनारे पर सोमेश्वर का मंदिर है, जिसके स्तंभ १२ वीं शताब्दी के आस-पास के बने प्रतीत होते हैं। स्तंभों पर खुदे हुए लेखों में चौहान राजा जोजलदेव के समय का वि० सं० ११४७ (चैत्रादि ११४८) वैशाख सुदि २ (ई० स० १०६१ ता० २३ अप्रेल) बुधवार का लेख सबसे प्राचीन है। अन्य दो लेख चौहान राजा रायपाल के समय के वि० सं० ११६८ श्रावण वदि ८ (ई० स० ११४१ ता० २६ जून)

रविवार एवं (कार्तिकादि) वि० सं० १२०० (चैत्रादि १२०१) [अमांत] भाद्रपद (पूर्णिमांत आश्विन) वदि ८ (ई० स० ११४४ ता० २३ अगस्त) बुधवार के हैं।

यहां का पद्मप्रभ का जैनमंदिर भी उल्लेखनीय है। इसके निज मंदिर की दोनों मूर्तियों के आसन पर वि० सं० १२१५ (चैत्रादि १२१६) वैशाख सुदि १० (ई० स० ११५९ ता० २८ अप्रेल) मंगलवार के लेख हैं। मंदिर की अन्य तीन मूर्तियों पर एक ही आशय के वि० सं० १६८६ (चैत्रादि १६८७) प्रथम आषाढ वदि ५ (ई० स० १६३० ता० २१ मई) शुक्रवार के लेख हैं, जिनसे यह ज्ञात होता है कि पद्मप्रभ की मूर्ति महाराणा जगतसिंह (प्रथम) के समय स्थापित की गई थी।

गांव के बाहर प्रायः पन्द्रह मंदिर थे, जिनमें खेत्रपाल (क्षेत्रपाल) का स्थान बहुत प्राचीन था। वे अब नष्टप्राय हो गये हैं।

गांव से आध मील पूर्व में 'जूना खेड़ा' है। पहले यह गांव इसी स्थान पर था। प्राचीन मंदिरों के यहां अनेक भग्नावशेष हैं, जिनमें हनुमान का मंदिर सबसे प्राचीन कहा जाता है।

वरकाणा—देसूरी ज़िले में बसा हुआ यह स्थान भी जैनों के गोड़वाड़ के पांच तीर्थों में से एक है। यहां पार्श्वनाथ का जैनमंदिर है, जो १७ वीं शताब्दी के आसपास का बना प्रतीत होता है।

आऊआ—सोजत परगने में सोजत से २१ मील दक्षिण में है। यहां कामेश्वर का प्राचीन मंदिर है। इसके सभामंडप में चार लेख खुदे हैं, जिनमें सबसे प्राचीन नाडोल के चौहान अणहिल के पुत्र जेन्द्रपाल के समय का वि० सं० ११३२ आश्विन वदि १५ [अमावास्या] (ई० स० १०७५ ता० १२ सितंबर) शनिवार का है। दूसरा लेख वि० सं० ११६८ फाल्गुन वदि १२ (ई० स० ११११ ता० २८ जनवरी) रविवार का और तीसरा वि० सं० १२२९ (अमांत) आश्विन (पूर्णिमांत कार्तिक) वदि १ (ई० स० ११७२ ता० ४ अक्टोबर) बुधवार का है। उपर्युक्त तीनों लेखों में मन्दिर को दान दिये जाने का उल्लेख है।

दूसरा अध्याय

वर्तमान राठोड़ों से पूर्व के मारवाड़ के राजवंश

राजपूताने के प्राचीन राजवंशों का विस्तृत इतिहास हमने अपने 'राजपूताने के इतिहास' की प्रथम जिल्द[1] में दिया है। उनमें से कितने एक का अधिकार मारवाड़ पर भी रहा, जिनका परिचय बहुत संक्षेप से यहां दिया जाता है।

मौर्य वंश

भारतवर्ष के अन्य प्रदेशों और राज्यों की भांति इस राज्य का प्राचीन इतिहास भी अंधकार में ही है। महाभारत-काल में यह राज्य पांडवों के आधीन था। उनके पीछे मौर्यवंश की स्थापना तक का कुछ भी इतिहास नहीं मिलता। इस प्रतापी राज्यवंश का संस्थापक चन्द्रगुप्त था, जो नंद-वंश का राज्य छीनकर विक्रम संवत् से २६४ (ई० स० से ३२१) वर्ष पूर्व पाटलीपुत्र (पटना, बिहार) के राज्यसिंहासन पर बैठा। उसने क्रमशः सारा उत्तरी हिन्दुस्तान विजयकर अपने अधीन किया, जिससे राजपूताने के मारवाड़ आदि प्रदेश भी उसके हाथ में आ गये। चन्द्रगुप्त मौर्यवंश में बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसके समय में, राज्य भर में समृद्धि और शान्ति का निवास रहा और कलाओं आदि का अच्छा विकास हुआ। प्रसिद्ध यूनानी विजेता सिकन्दर ने चढ़ाई कर पंजाब के कुछ अंश पर अधिकार कर लिया था, परन्तु उसके लौटते ही चन्द्रगुप्त ने वहां से यूनानियों को निकाल दिया। सिकन्दर के मरने पर उसका राज्य उसके सेनापतियों में बंट गया। बाक्ट्रिया (बलख) का प्रदेश उसके सेनापति

(१) द्वितीय संस्करण; पृ० ६४-२७६।

सेल्युकस निकेटार के हिस्से में आया, जिसने पुनः पंजाब का प्रदेश विजय करने के लिए चढ़ाई की, पर उसे चन्द्रगुप्त से हारकर बहुत से और भी प्रदेश उसे सौंपने पड़े। पीछे से उसका राजदूत मेगास्थिनीज़ चन्द्रगुप्त के दरबार में आकर रहा। चन्द्रगुप्त का पौत्र अशोक भी बड़ा प्रतापी हुआ। उसने बौद्ध धर्म ग्रहणकर उसके प्रचार के लिए जगह-जगह स्तंभ खड़े कराके उनपर तथा पहाड़ी चट्टानों पर अपनी धर्म-आज्ञायें खुदवाईं और भारतवर्ष से बाहर भी धर्मप्रचारकों को भेजा। इस वंश के अंतिम राजा बृहद्रथ को मारकर उसका सेनापति सुंगवंशी पुष्यमित्र उसके राज्य का स्वामी हुआ[1]। सुंगवंशियों का राज्य मारवाड़ पर रहा या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता।

कुशन वंश

तदनन्तर कुशन-वंशियों का यहां राज्य होना अनुमान किया जाता है। संभवतः कनिष्क या इसके पिता वाझेष्क के समय से उनका इधर अधिकार हुआ हो। इस वंश में कनिष्क बड़ा प्रतापी राजा हुआ, जिसका राज्य राजपूताना, सिंध, खोतान, यारकन्द आदि तक फैला हुआ था। बौद्ध-धर्मानुयायी होने पर भी वह हिन्दुओं के शिव आदि देवताओं का पूजक था[2]।

क्षत्रप वंश

कुशन-वंशियों के पीछे शक जाति के पश्चिमी क्षत्रपों का इस प्रदेश पर अधिकार रहा, जैसा कि महाक्षत्रप रुद्रदामा के शक संवत् ७२ (वि० सं० २०७ = ई० स० १५०) से कुछ ही पीछे के लेख से पाया जाता है। वह क्षत्रपों में बड़ा प्रतापी हुआ। उसके वंशधरों का इस प्रदेश पर बहुत समय तक अधिकार बना रहा। अंतिम क्षत्रप राजा स्वामी रुद्रसिंह हुआ,

(१) मौर्य राजवंश के विस्तृत इतिहास के लिए देखो मेरा 'राजपूताने का इतिहास'; जि० १ (द्वितीय संस्करण); पृ० ६८-१०८।

(२) वही; पृ० १२५-२७।

जिसे शक संवत् ३१० (वि० सं० ४४५ = ई० स० ३८८) के कुछ पीछे मारकर गुप्तवंश के महाप्रतापी राजा चन्द्रगुप्त (दूसरा) ने, जिसका विरुद विक्रमादित्य भी था, सारा राज्य अपने अधीन किया[1]। अतएव मारवाड़ भी उस (स्वामी रुद्रसिंह) के अधिकार से चला गया।

गुप्त वंश

चन्द्रगुप्त बड़ा शक्तिशाली राजा था। उसने अपने पिता समुद्रगुप्त से अधिक देश अपने राज्य में मिलाये। उसका विद्यानुराग भी बढ़ा-चढ़ा था। उसके राज्यकाल में प्रसिद्ध चीनी यात्री फ़ाहियान भारत में आया, जिसने उस समय के राज्य-वैभव, न्याय-प्रबन्ध आदि का अपनी यात्रा-पुस्तकों में अच्छा वर्णन किया है। चन्द्रगुप्त से लगाकर भानुगुप्त तक गुप्त-वंशियों का यहां अधिकार रहा। उनके सिक्के मारवाड़ में मिलते हैं[2]।

हूण वंश

गुप्तवंश के पीछे यहां हूणवंश के राजा तोरमाण का अधिकार हुआ, जिसका थोड़े समय बाद ही देहांत हो गया। उसका पुत्र मिहिरकुल बड़ा प्रतापी हुआ। वह पीछे से बौद्ध धर्म का कट्टर विरोधी बन गया, जिससे उसने उक्त धर्म के उपदेशकों आदि को मरवाने की आज्ञा निकाल दी। वि० सं० ५८६ (ई० स० ५३२) के आस-पास मालवा के राजा यशोधर्म ने उसे हटाकर उसका राज्य छीन लिया और मारवाड़ पर भी उस (यशोधर्म) का अधिकार हो गया। उसके पीछे उसके वंशजों का कुछ भी पता नहीं चलता[3]।

गुर्जर वंश

हूणवंश के पीछे गुर्जर वंश का यहां अधिकार होना पाया जाता है, जिनकी राजधानी भीनमाल थी। गुर्जरों के अधीन होने के कारण मारवाड़

(१) क्षत्रपों के विस्तृत वृत्तान्त के लिए देखो मेरा 'राजपूताने का इतिहास'; जि० १ (द्वितीय संस्करण); पृ० ११२-२४।

(२) वही; जि० १; पृ० १२७-३६।

(३) वही; जि० १; पृ० १४२-४६

का भीनमाल से उत्तर का सारा पूर्वी हिस्सा गुर्जरत्रा (गुजरात, पुराना) कहलाता था। डीडवाना परगना भी गुर्जरत्रा का एक ज़िला था, ऐसा प्रतिहार राजा भोजदेव (प्रथम, मिहिर, आदिवराह) के वि० सं० ६०० (ई० स० ८४३) के डीडवाना हकूमत के सिवा गांव के दानपत्र से पाया जाता है। गुर्जर वंश के राजाओं का विशेष वृत्तान्त और नाम आदि अब तक ज्ञात नहीं हुए[1]।

चावड़ा वंश

गुर्जरों के पीछे यहां चावड़ों का अधिकार हुआ, जिनकी राजधानी भी भीनमाल ही रही। भीनमाल के चावड़ों का शृंखलाबद्ध इतिहास अब-तक नहीं मिला, पर वहां उनका राज्य वि० सं० ७६६ (ई० स० ७३६) तक रहना तो लाट देश के सोलंकी सामंत पुलकेशी (अवनिजनाश्रय) के उक्त संवत् के दानपत्र से सिद्ध है। वसंतगढ़ (सिरोही राज्य) से एक शिलालेख राजा वर्मलात का वि० सं० ६८२ (ई० स० ६२५) का मिला है। भीनमाल के रहनेवाले प्रसिद्ध माघ कवि ने अपने रचे हुए 'शिशुपालवध' (माघकाव्य) में अपने दादा सुप्रभदेव को वर्मलात राजा का सर्वाधिकारी (मुख्य मंत्री) लिखा है, अतएव वर्मलात भीनमाल का राजा होना चाहिये। वसंतगढ़ के लेख तथा 'शिशुपालवध' में राजा वर्मलात का वंश-परिचय नहीं दिया है। भीनमाल में रहनेवाले ब्रह्मगुप्त ज्योतिषी ने शक सं० ५५० (वि० सं० ६८५ = ई० स० ६२८) में अर्थात् वर्मलात के समय के शिलालेख से केवल तीन वर्ष पीछे 'ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त' नामक ग्रन्थ रचा, जिसमें वह लिखता है कि उस समय वहां का राजा चाप(चावड़ा)वंशी व्याघ्रमुख था, अतएव या तो व्याघ्रमुख वर्मलात का उत्तराधिकारी रहा हो अथवा ये नाम एक ही व्यक्ति के हों और व्याघ्रमुख उस(वर्मलात)का विरुद रहा हो[2]।

---

(१) गुर्जर वंश के विशेष वृत्तान्त के लिए देखो मेरा 'राजपूताने का इतिहास'; जि० १ (द्वितीय संस्करण); पृ० १४७-५१।

(२) वही; जि० १; पृ० १६२-६५।

वैस वंश

कन्नौज के वैसवंशी महाप्रतापी राजा हर्षवर्द्धन ने चावड़ों को अपने अधीन किया। उसे श्रीहर्ष, हर्ष और शीलादित्य भी कहते थे। वह बड़ा वीर था। उसने सिंहासनारूढ़ होते ही दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया और वह तीस वर्ष तक निरंतर युद्ध करता रहा। उसने कश्मीर से लेकर आसाम तक और नेपाल से नर्मदा तक के सब देश अपने अधीन कर विशाल राज्य स्थापित किया। उसने दक्षिण को भी अपने अधीन करना चाहा, पर बादामी (वातापी, बंबई अहाते के बीजापुर ज़िले के बादामी विभाग का मुख्य स्थान) के चालुक्य (सोलंकी) राजा पुलकेशी (दूसरा) से हार जाने पर उसका वह मनोरथ सफल न हुआ। वह स्वयं कलाप्रेमी, विद्वान् और विद्यानुरागी था तथा उसके आश्रय में बड़े-बड़े विद्वान् रहते थे। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएन्त्संग उसके समय में भारतवर्ष में आया और उसके साथ भी रहा। हर्षवर्द्धन ने चीन के बादशाह से मैत्री स्थापित कर वहां अपना ब्राह्मण दूत भेजा, जो वहां से वि० सं० ७०० (ई० स० ६४३) में लौटा। वि० सं० ७०४ (ई० स० ६४७) में चीन के बादशाह ने दूसरी बार अपने दूतदल को, जिसका मुखिया वंगहुएन्त्से था, हर्षवर्द्धन के दरबार में भेजा, परंतु उसके मगध में पहुंचने के पूर्व ही वि० सं० ७०५ (ई० स० ६४८) के आस-पास हर्ष का देहांत हो गया। उसके मरते ही राज्य में अव्यवस्था फैल गई और उसके सेनापति अर्जुन ने राज्यसिंहासन छीनकर चीनी दूतदल को लूट लिया। इसमें कई चीनी सिपाही मारे गये। तब उक्त दूतदल का मुखिया (वंगहुएन्त्से) अपने बचे हुए साथियों सहित भागकर नेपाल चला गया, जहां से थोड़े दिनों बाद ही सहायता लाकर उसने अर्जुन को गिरफ़्तार कर लिया और वह उसे पकड़कर चीन ले गया[1]।

---

(१) वैस वंश के विशेष वृत्तान्त के लिए देखो मेरा 'राजपूताने का इतिहास'; जि० १ (द्वितीय संस्करण); पृ० १५४-६१।

रघुवंशी प्रतिहार[1]

हर्ष की मृत्यु के पीछे उसके कन्नौज के साम्राज्य में अव्यवस्था फैल गई, जिससे लाभ उठाकर भीनमाल के रघुवंशी प्रतिहार राजा नागभट (दूसरा) ने चक्रायुध को परास्तकर वह विशाल राज्य अपने अधीन कर लिया। उसके समय से ही इन प्रतिहारों की राजधानी कन्नौज हुई। उसने आंध्र, सैंधव (सिंध), विदर्भ (वरार), कलिंग और वंग के राजाओं को जीता तथा आनर्त, मालव, किरात, तुरुष्क, वत्स और मत्स्य देशों के पहाड़ी क़िले ले लिये। मारवाड़ में उसका एक शिलालेख वुचकुंला (बीलाड़ा परगना) से वि० सं० ८७२ (ई० स० ८१५) का मिला है। उसके पौत्र भोजदेव (प्रथम) का वि० सं० ६०० (ई० स० ८४३) का एक दानपत्र मारवाड़ के सिवा (डीडवाणा परगना) नामक स्थान से मिला है। विनायकपाल (भोजदेव प्रथम का पौत्र) के समय से प्रतिहारों का राज्य निर्बल होने लगा। उसके पीछे राज्यपाल के राज्य समय में महमूद ग़ज़नवी ने कन्नौज पर चढ़ाई की और राज्यपाल के गंगा पार भाग जाने पर वहां के सातों क़िलों को तोड़ डाला तथा वहां बचे हुए लोगों को मार डाला। इससे इन प्रतिहारों की स्थिति अधिक निर्बल हो गई और कुछ समय पीछे वदायूं के राष्ट्रकूट (राठोड़) राजा गोपाल ने कन्नौज का राज्य छीन लिया, परन्तु इन राठोड़ों का राज्य वहां अधिक दिनों तक न रहने पाया, क्योंकि गाहड़वाल (गहरवार) चन्द्रदेव ने, जो महीचन्द्र का पुत्र था, राठोड़ों से कन्नौज का राज्य छीन लिया, जिससे उन (राठोड़ों) को गाहड़-

(१) प्रतिहार शब्द चौहान, परमार आदि के समान वंशकर्ता का सूचक नहीं, किन्तु राजकीय पद का सूचक है। प्रतिहार का कार्य राजा के निवासस्थान के द्वार पर रहकर उसकी रक्षा करना था। यह पद राजाओं के विश्वासपात्र पुरुषों को ही मिलता था और इसमें किसी जाति विशेष को प्रधानता नहीं दी जाती थी। अब तक के शोध से ब्राह्मण, रघुवंशी, गुर्जर (गूजर), चावड़ा और बारड़ (परमारों की एक शाखा) जाति के प्रतिहारों का पता चलता है। आज-कल के कुछ विद्वानों ने तमाम प्रतिहारों को गूजर मान लिया है, जो सर्वथा निर्मूल और भ्रमोत्पादक है।

वालों का सामंत बनना पड़ा[1]।

जिन दिनों इन रघुवंशी प्रतिहारों का राज्य कन्नौज और मारवाड़ आदि पर रहा उन दिनों ब्राह्मणवंश के प्रतिहार हरिश्चन्द्र के वंशजों का अधिकार मंडोर आदि पर था और वे रघुवंशी प्रतिहारों के सामंत थे[2]।

गुहिल वंश

मेवाड़ के गुहिलवंशियों का राज्य भी मारवाड़ के खेड़, पीपाड़ आदि स्थानों में रघुवंशी प्रतिहारों के राजत्वकाल से लगाकर बहुत पीछे तक रहा। खेड़ का राज्य राव सीहा के पुत्रों ने गुहिलों के मंत्री डाभियों से मिलकर छल से लिया था। अब भी मारवाड़ में गुहिलवंशियों (गोहिलों) के कुछ ठिकाने विद्यमान हैं[3]।

परमार

ऊपर आये हुए कन्नौज के रघुवंशी प्रतिहारों का राज्य निर्बल होने पर उनके परमार सामंत स्वतंत्र बन बैठे, परन्तु यह वंश अधिक समय तक स्वतंत्र न रह सका और इसे गुजरात के सोलंकियों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। राजपूताना और मारवाड़ के परमारों की शृंखलाबद्ध वंशावली उत्पलराज से मिलती है। इनका मूल स्थान आबू था, जहां से ये अलग-अलग हिस्सों में फैले। उस (उत्पलराज) के चौथे वंशधर धरणीवराह का प्रभाव बहुत बढ़ा और उसके अधीन गुजरात, आबू, मारवाड़ और सिंध तक के बहुत से प्रदेश हो गये। वि० सं० १२२० (ई० स० ११६३) के लगभग इस वंश में धारावर्ष हुआ, जो बड़ा वीर और शक्तिशाली था। उसने गुजरात के राजाओं की समय-समय पर बड़ी सहायता की। इन परमारों की मारवाड़ की शाखाओं के शिलालेख जोधपुर राज्य में ओसियां, भीनमाल, भाड़ूंद, जालोर, किराडू, कोयलवाव, नाणा

(१) रघुवंशी प्रतिहारों के विशेष वृत्तान्त के लिए देखो मेरा 'राजपूताने का इतिहास'; जि० १ (द्वितीय संस्करण); पृ० १६५-६०।

(२) वही; जि० १; पृ० १६५-७१।

(३) मेरा; उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १; पृ० १२६-२६।

आदि स्थानों से मिले हैं। इनकी शक्ति कम होने पर चौहानों ने क्रमशः इनके इलाक़े छीन लिये। वि० सं० १३५० माघ सुदि १ (ई० स० १२९३ ता० २९ दिसम्बर) मंगलवार के लेख से पाया जाता है कि उस समय परमार महाराजकुल धीसलदेव आबू का राजा था। वि० सं० १३६८ (ई० स० १३११) के आस-पास जालोर के चौहानवंशी राव लुंभा ने आबू और चन्द्रावती परमारों से छीनकर आबू के परमार राज्य की भी समाप्ति की[1]।

सोलंकी

गुजरात के अंतिम चावड़ा राजा सामंतसिंह को वि० सं० ९९८ (ई० स० ९४१) में मारकर उसका भानजा सोलंकी मूलराज गुजरात का स्वामी बना। फिर उसने उत्तर में अपना पैर बढ़ाकर आबू के परमार राजा धरणीवराह को हराया, जिसको हथुंडी के राष्ट्रकूट (राठोड़) राजा धवल ने शरण दी। वहां से आगे बढ़कर उसने मारवाड़ के कुछ अंश पर दखल किया और वि० सं० १०५१ माघ सुदि १५ (ई० स० ९९५ ता० १९ जनवरी) को उसने सत्यपुर (सांचोर) हकूमत का वरणक गांव दान में दिया। इससे निश्चित है कि मूलराज के समय से ही सोलंकियों का अधिकार मारवाड़ के कुछ हिस्से पर अवश्य हो गया था। उसके पीछे सिद्धराज (जयसिंह), कुमारपाल एवं भीमदेव (दूसरा) के शिलालेख और ताम्रपत्र आदि भीनमाल, किराड़ू, पाली, भाटूंद, नाडोल, बाली, जालोर, सांचोर, नारलाई, नाणाणा, नाणा आदि में मिले हैं। भीमदेव (दूसरा) के समय की गुजरात के राज्य की अवनत दशा का लाभ उठाकर उन (सोलंकियों) के सामंत परमार तथा चौहान स्वतंत्र बन बैठे। जब दक्षिण से सिंहण और उत्तर से शम्सुद्दीन अल्तमश ने गुजरात पर चढ़ाई की उस समय मंत्री वस्तुपाल और तेजपाल ने स्वतंत्र बन बैठे हुए सामंतों में से जालोर के उदयसिंह, आबू के परमार धारावर्ष और सोमसिंह आदि को समझा-बुझाकर पीछे गुजरात का सहायक बना लिया। इस प्रकार गुजरात के सोलंकियों के पिछले समय तक मारवाड़

(१) परमारों के विशेष वृत्तान्त के लिए देखो मेरा 'राजपूताने का इतिहास'; जि० १ (द्वितीय संस्करण); पृ० १९०-२०९।

के कितने ही अंश पर उनका अधिकार बना रहा[1]।

चौहान

चौहानों का मूल राज्य अहिच्छत्रपुर (नागोर) में था। पीछे से उनकी राजधानी सांभर हुई। सांभर के राजा वाक्पतिराज के दो पुत्र सिंहराज और लक्ष्मण हुए। सिंहराज के वंशज सांभर के स्वामी रहे और लक्ष्मण ने नाडोल में अपना राज्य स्थापित किया। जब से महमूद ग़ज़नवी ने लाहोर पर अधिकार कर लिया तब से मुसलमानों की चढ़ाइयां पंजाब की तरफ़ से राजपूताने की तरफ़ कभी-कभी होने लगीं, जिससे सांभर के चौहान राजा अजयदेव ने अजमेर (अजयमेरु) का पहाड़ी क़िला बनाकर अपनी राजधानी वहां स्थापित की। सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज (तृतीय) तक चौहानों की राजधानी अजमेर रही। शहाबुद्दीन गोरी-द्वारा पृथ्वीराज के क़ैद किये और मरवाये जाने के बाद सुलतान ने उस (पृथ्वीराज) के पुत्र गोविन्दराज को अपनी अधीनता स्वीकार कर लेने पर अजमेर की गद्दी पर बिठलाया, परन्तु पृथ्वीराज के भाई हरिराज ने सुलतान की अधीनता स्वीकार करने के कारण गोविन्दराज से अजमेर की गद्दी छीन ली, जिससे वह रणथंभोर जा रहा। उसके वंशज हम्मीर से अलाउद्दीन ख़िलज़ी ने रणथंभोर का राज्य छीन लिया। इधर हरिराज से शहाबुद्दीन गोरी ने अजमेर का राज्य ले लिया और वहां पर मुसलमानों का राज्य हो गया।

नाडोल के स्वामी लक्ष्मण से कई पीढ़ी बाद आल्हण के चार पुत्र केल्हण, गजसिंह, कीर्तिपाल (कीतू) और विजयसिंह हुए। कीर्तिपाल ने जालोर का क़िला परमारों से छीनकर वहां चौहानों का राज्य स्थिर किया। जालोर के क़िले का नाम सोनलगढ़ (सुवर्णगिरि) होने के कारण कीर्तिपाल के वंशज सोनगरे चौहान कहलाये। सोनगरों का प्रताप बहुत बढ़ा और इनकी शाखायें मारवाड़ में कई जगह फैलीं तथा नाडोल, मंडोर,

---

(१) सोलंकियों के विशेष वृत्तान्त के लिए देखो मेरा 'राजपूताने का इतिहास'; जि० १ (द्वितीय संस्करण); पृ० २३९-४१।

वाहड़मेर, भीनमाल, रतनपुर, सत्यपुर (सांचोर) आदि पर इन्हीं का अधिकार रहा। इन्होंने वि० सं० १२१८ (ई० स० ११६१) के बाद परमारों से किराडू भी छीन लिया। कीर्तिपाल के छठे वंशधर कान्हड़देव से अलाउद्दीन खिलज़ी ने जालोर का क़िला छीनकर वहां के चौहान राज्य की समाप्ति की। पीछे से कान्हड़देव के वंशधरों की जागीरें पाली तथा गोड़वाड़ ज़िले आदि में रहीं, पर वह इलाक़ा पीछे से सीसोदियों के अधीन हुआ। फिर जोधपुर के महाराजा विजयसिंह के समय में वह जोधपुर राज्य के अन्तर्गत हो गया।

आल्हण के चौथे पुत्र विजयसिंह के वंशज सांचोर में रहे और वे सांचोरे चौहान कहलाये। यहां के चौहान राज्य की समाप्ति भी अलाउद्दीन खिलज़ी के समय हुई, परन्तु थोड़े समय पीछे चौहानों ने सांचोर पर पीछा अधिकार कर लिया[1]।

वि० सं० १३०० (ई० स० १२४३) के आस-पास कन्नौज की तरफ़ से राठोड़ कुंवर सेतराम का पुत्र सीहा साधारण स्थिति में मारवाड़ में आया और उसके वंशजों ने क्रमशः अपना राज्य बढ़ाते हुए सारे मारवाड़ प्रदेश पर अधिकार कर लिया। उन्हीं के वंशज इस समय राजपूताने में जोधपुर, बीकानेर और किशनगढ़ के स्वामी हैं[2]।

---

(१) चौहानों के विस्तृत इतिहास के लिए देखो मेरा 'सिरोही राज्य का इतिहास'; पृ० १२७-८६।

(२) वि० सं० की १० वीं शताब्दी के मध्य के आस-पास राठोड़ों की एक शाखा ने आकर हथुंडी (गोड़वाड़) में अपना राज्य क़ायम किया था। वह शाखा जोधपुर के वर्तमान राठोड़ों के भिन्न थी। उसका वृत्तान्त आगे राठोड़ों के प्राचीन इतिहास में दिया जायगा।

तीसरा अध्याय

राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) का प्राचीन इतिहास

मारवाड़ में वर्तमान राठोड़ों के आने से पूर्व हिन्दुस्थान में जहां-कहीं राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) के राज्य या ठिकाने रहने का अब तक के शोध से पता चला, उसका बहुत ही संक्षिप्त परिचय इस प्रकरण में दिया जाता है।

राष्ट्रकूट(राठोड़) वंश की उत्पत्ति

भिन्न-भिन्न ताम्रपत्रों, शिलालेखों, पुस्तकों आदि में राष्ट्रकूट (राठोड़) वंश की उत्पत्ति के विषय में भिन्न-भिन्न मत मिलते हैं। राठोड़ों के भाटों ने उन्हें दैत्यवंशी हिरण्यकश्यप की सन्तान लिखा है[1]। जोधपुर राज्य की ख्यात में राठोड़ों की वंशावली आदिनारायण, ब्रह्मा, मरीचि आदि से आरम्भ करते हुए आगे चलकर लिखा है—'राजा विश्वुतमान् का पुत्र राजा बृहद्बल द्वापर के अंत और कलियुग के प्रारम्भ में हुआ। महाभारत के समय वह भी कुंकणदेश से बुलाया गया। कुरुक्षेत्र की ओर जाते समय मार्ग में उसे गौतम ऋषि मिले, जिससे उसने अपने निःसन्तान होने की बात कही। इसपर ऋषि ने मंत्र पढ़ा हुआ जल उसे देकर कहा कि इसे अपनी प्रियपात्र राणी को पिलाना। कुछ ही समय बाद राजा बृहद्बल ने काफ़ी शराब पी ली, जिससे विशेष प्यास लगने पर उसने व्याकुल होकर मंत्रसिद्ध जल स्वयं पी लिया। फलतः उसके गर्भ रह गया और वह उसी अवस्था में महाभारत में मारा गया। तब उसकी राठ (रीढ़) फाड़कर भीतर से बालक निकाला गया, जो पीछे से इस घटना के कारण राठोड़ नाम से प्रसिद्ध हुआ[2]।'

---

(१) रामनारायण दूगड़; राजस्थान रत्नाकर; भाग १, पृ० ८८।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ९।

दयालदास राठोड़ों को सूर्यवंशी लिखता है और उनकी उत्पत्ति के विषय में उसका कथन है—'ब्रह्मा के वंश में सुमित्र का पुत्र विस्वराय हुआ, जिसके पुत्र मल्लराय के कोई सन्तान न होने से उसने पुत्र-प्राप्ति की कामना से 'राटेश्वरी देवी' की आराधना की। देवी ने स्वप्न में आकर उससे कहा कि तेरे पुत्र ही होगा, जिसका नाम तुम 'रठवर' रखना। पीछे उसकी जादमणी राणी चन्द्रकला के गर्भ रहा, जिसके पुत्र होने पर राजा ने उसका नाम 'रठवर' रक्खा। उसी रठवर के वंशज रठवर (राठोड़) कहलाये[1]।'

कर्नल टॉड ने अपने बृहद् ग्रन्थ 'राजस्थान' में राठोड़ों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो मत दिये हैं वे इस प्रकार हैं—

'इस वास्तविक प्रसिद्ध जाति की उत्पत्ति के विषय में सन्देह है। राठोड़ों की वंशावलियां रामचन्द्र के दूसरे पुत्र कुश से इसकी उत्पत्ति बतलाती हैं। अतएव ये सूर्यवंशी होंगे, परन्तु इस जाति के भाट लोग इसे यह प्रतिष्ठा नहीं देते और कुश के वंशज स्वीकार करने पर भी वे राठोड़ों को सूर्यवंशी कश्यप की दैत्य (Titan = राक्षस) कन्या से उत्पन्न सन्तान बतलाते हैं।............कतिपय वंशावली लेखक राठोड़ों को कुशिक[2]-वंशी मानते हैं[3]।'

दक्षिण के कलचुरि (हैहय) वंशी राजा विज्जल के वर्तमान शक सं० १०८४ (वि० सं० १२१८) के मनगोलि गांव के शिलालेख में भी राठोड़ों को दैत्यवंशी लिखा है[4]। प्रभासपाटन से मिले हुए यादव राजा भीम के वि० सं० १४४२ (ई० स० १३८५) के शिलालेख में उन्हें सूर्य और चन्द्र-

(१) सिंढायच दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० २-३।

(२) विश्वामित्र का दादा।

(३) टॉड; राजस्थान; जि० १, पृ० १०५।

(४) रट्टनृपदितिजकुळसंघट्टदिनघपट्ट............

एपिग्राफ़िया इण्डिका; जि० ५, पृ० १६।

वंशों से भिन्न तीसरा ही वंश माना है[1]। डाक्टर बर्नेल ने राठोड़ों को द्रविड़ जाति का मानकर उनको आजकल की 'रेडी' जाति से मिला दिया है[2]। जैन वृत्तान्तों के अनुसार राठोड़ शब्द 'रहट' से बना है, जिसका अर्थ इन्द्र की रीढ़ की हड्डी होता है और उनकी उत्पत्ति पार्लीपुर के राजा यवनाश्व से हुई है[3]।

मयूरगिरि (बुगलाना) के स्वामी नारायणशाह के आश्रित रुद्रकवि ने उसकी आज्ञानुसार शक सं० १५१८ (वि० सं० १६५३=ई० स० १५९६) में 'राष्ट्रौढ़वंशमहाकाव्य' की रचना की थी। उसमें उक्त वंश की उत्पत्ति के विषय में लिखा है—

'एकबार जब कैलाश पर्वत पर पार्वती के साथ शिव जुआ खेल रहे थे, एक पासा शिव के शीश पर के चन्द्रमा से जा लगा, जिससे एक ग्यारह वर्षीय बालक की उत्पति हुई। उस बालक की प्रार्थना से प्रसन्न होकर शिव ने उसे वर दिया कि तुम्हें कान्यकुब्ज का राज्य प्राप्त होगा। उसी अवसर पर लातना ने (जो संभवतः कान्यकुब्ज के राजाओं की कुलदेवी हो) प्रार्थना की कि कन्नौज की गद्दी के लिए वह बालक उसे दे दिया जाय। शिव ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तब वीरभद्र (शिव का एक प्रसिद्ध गण) ने उस बालक को एक तलवार प्रदान की और लातना ने बालक को ले जाकर कन्नौज के सूर्यवंशी राजा नारायण को, जो पुत्र-प्राप्ति की कामना से उपासना कर रहा था, दे दिया। लातना ने स्वयं अदृश्य रहते हुए कहा कि बालक का नाम राष्ट्रौड़ (राठोड़) प्रसिद्ध होगा क्योंकि यह तुम्हारे राज्य और कुल की रक्षा करेगा[4]।'

---

(१) वंशो(शौ) प्रसिद्धो(द्धौ) हि यथा रवीन्द्वो[:]
राष्ट्रोऽडवंशस्तु तथा तृतीयः ॥

नागरी प्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण); भाग ४, पृ० ३४७।

(२) गैज़ेटियर ऑव् दि बॉम्बे प्रेसिडेन्सी; जि० १, भाग २, पृ० ३८३।

(३) वही; जि० १, भाग १, पृ० ११९।

(४) रुद्रकवि; राष्ट्रौढ़वंशमहाकाव्य; सर्ग १, श्लोक १२-२९।

ऊपर राठोड़ों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो विभिन्न मत दिये हैं वे प्रामाणिक नहीं माने जा सकते, क्योंकि उनमें से अधिकांश निराधार और काल्पनिक हैं। ख्यातों आदि की बातें तो सर्वथा मनगढ़न्त कल्पनाएं हैं। इसी प्रकार भाटों आदि की तैयार की हुई वंशावलियां भी माननीय नहीं कही जा सकतीं, क्योंकि उनमें कई नाम झूठे धर दिये हैं। डाक्टर बर्नेल का उन्हें 'रेडी' मानना भी असंगत है। रेडी वर्तमान समय की दक्षिण के तेलगू किसानों की एक नीची जाति का नाम है, जिससे राठोड़ों का कोई सम्बन्ध नहीं है। जैन वृत्तान्त भी ऐसा ही है। राजा विज्जल तथा प्रभास-पाटन के शिलालेख भी प्रमाणरूप नहीं माने जा सकते, क्योंकि वे राठोड़ों से भिन्न वंश के हैं। उपर्युक्त रुद्रकविरचित 'राष्ट्रौढ़वंश-महाकाव्य' भी भाटों आदि के कथन के जैसा ही होने के कारण प्राचीन इतिहास के लिए उपयोगी नहीं है।

राठोड़ वस्तुतः शुद्ध आर्य हैं। उनका मूल राज्य दक्षिण में था, जहां से गुजरात, काठियावाड़, राजपूताना, मालवा, मध्यप्रदेश, गया, बदायूं आदि में उनके स्वतंत्र या परतंत्र राज्य स्थापित हुए, जिनका विस्तृत विवरण आगे दिया जायगा। इन राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) के ताम्रपत्रादि में जहां भी इनके वंश का उल्लेख किया है वहां इन्हें चन्द्रवंशी ही लिखा है। दक्षिण के राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष (प्रथम) के समय के शक सं० ७८२ (वि० सं० ९१७) के कोन्नूर के शिलालेख[1], राठोड़ गोविन्दराज (सुवर्ण-वर्ष) के शक सं० ८५२ (वि० सं० ९८७) के खंभात के ताम्रपत्र[2], उसी राजा के शक सं० ८५५ (वि० सं० ९९०) के सांगली से मिले हुए दानपत्र[3],

(१) ...सुराष्ट्रकूटोर्जितवंशपूर्वजस्स वीरनारायण एव यो विभुः ॥
तदीय भूपायतयादवान्वये क्रमेण वार्द्धाविव रत्नसंचयः ॥
एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० ६, पृ० २९।

(२) ...शशधर इव दन्तिदुर्ग्गराजो यदुकुलविमलवियत्यथोदियाय॥
वही; जि० ७, पृ० ३७।

(३) ...शशधर इव दन्तिदुर्ग्गराजो यदुकुलविमलवियत्यथोदियाय॥
इंडियन ऐंटीक्वेरी; जि० १२, पृ० २४९।

कृष्णराज (तृतीय, अकालवर्ष) के शक सं० ८८० (वि० सं० १०१५) के करहाड के दानपत्र[1] और कर्कराज (द्वितीय, अमोघवर्ष) के शक सं० ८९४ (वि० सं० १०२९) के करडा के दानपत्र[2] में राठोड़ों को यदुवंशी लिखा है। राठोड़ राजा इन्द्रराज (तृतीय, नित्यवर्ष) के शक सं० ८३६ (वि० सं० ९७१) के बेगुमरा से मिले हुए दो दानपत्रों[3] और कृष्णराज (तृतीय, अकालवर्ष) के शक सं० ८६२ (वि० सं० ९९७) के देवली से मिले हुए दानपत्र[4] में राठोड़ों का चंद्रवंश की यदुशाखा के सात्यकि के वंश में होना लिखा है। हलायुध पंडित स्वरचित 'कविरहस्य' नामक ग्रंथ में उसके नायक राष्ट्रकूट राजा कृष्णराज को सोमवंश (चंद्रवंश) का भूषण

(१) मुक्तामणीनां गण इव यदुवंशो दुग्धसिन्धूयमाने ॥···
तमनु च सुतराष्ट्रकूटनाम्ना भुवि विदितोजनि राष्ट्रकूटवंशः ॥
एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० ४, पृ० २८२।

(२) उदगादथ दंतिदुर्गभानुर्यदुवंशोदयपर्व्वतात् प्रतापी ॥
इंडियन ऐंटिक्वेरी; जि० १२, पृ० २६४।

(३) ···तस्मादत्रिः सुतोभूदमृतकरपरिस्पन्द इन्दुस्ततोपि ।
तस्माद्वंशो यदूनां···॥ तत्रान्वये·विततसात्यकिवंश-
जन्मा श्रीदन्तिदुर्ग्गनृपतिः पुरुषोत्तमोभूत् ॥
जर्नल ऑव् दि बाम्बे ब्रांच ऑव् एशियाटिक सोसाइटी; जि० १८, पृ० २५७।

···तस्माद्वंशो यदूनां···॥ तत्रान्वये विततसात्यकि-
वंशजन्मा श्रीदन्तिदुर्ग्गनृपतिः पुरुषोत्तमोभूत् ॥
वही; जि० १८, पृ २६१।

(४) मुक्तामणीनां गण इव यदुवंशो दुग्धसिन्धूयमाने ।···
तद्वंशजा जगति सात्यकिवर्ग्गभाज···रुद्धः । तमनु च सुत-
रा[ष्ट्रकू]टनाम्ना भुवि विदितोजनि राष्ट्रकूटवंशः ॥
एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० ५, पृ० १९२-९३।

लिखता है[1]।

इन प्रमाणों के बल पर तो यही मानना पड़ेगा कि राठोड़ चंद्रवंशी हैं, परन्तु राजपूताना के वर्तमान राठोड़ अपने को सूर्यवंशी ही मानते हैं। इसका कारण संभवतः यही प्रतीत होता है कि वे अपने वंश के प्राचीन शिलालेखों, दानपत्रों और पुस्तकों की अपेक्षा भाटों के कथन को ही अधिक प्रामाणिक मानते हैं।

'राठोड़' शब्द केवल भाषा में ही प्रचलित है। संस्कृत पुस्तकों, शिलालेखों और दानपत्रों में उसके लिए 'राष्ट्रकूट' शब्द मिलता है।

राठोड़ नाम की उत्पत्ति

दक्षिण तथा भारत के अन्य विभागों में प्राचीन काल में जहां-जहां राठोड़ों का राज्य रहा, वहां बहुधा 'राष्ट्रकूट' शब्द का ही प्रयोग होता रहा। प्राकृत शब्दों की उत्पत्ति के नियमानुसार 'राष्ट्रकूट' शब्द का प्राकृत रूप 'रट्ठऊड़' होता है, जिससे 'राठउड़' या 'राठोड़' शब्द बनता है, जैसे 'चित्रकूट' से 'चित्तऊड़' और उससे 'चित्तौड़' या 'चीतोड़' बनता है। 'राष्ट्रकूट' के स्थान में कहीं-कहीं 'राष्ट्रवर्य' शब्द भी मिलता है, जिससे 'राठवड़' शब्द बना है। 'राष्ट्रकूट' और 'राष्ट्रवर्य' दोनों का अर्थ एक ही है, क्योंकि राष्ट्रकूट का अर्थ 'राष्ट्र' जाति या वंश का शिरोमणि है और 'राष्ट्रवर्य' का अर्थ 'राष्ट्र' जाति या वंश में श्रेष्ठ है। राजपूताना आदि के पिछले संस्कृत लेखकों

---

(१) अस्त्यगस्त्यमुनिज्योत्स्नापवित्रे दक्षिणापथे।
कृष्णराज इति ख्यातो राजा साम्राज्य दीक्षितः॥
तोलयत्यतुलं शक्त्या यो भारं भुवनेश्वरः।
कस्तं तुलयति स्थाम्ना राष्ट्रकूटकुलोद्भवम्॥
सोमं सुनोति यज्ञेषु सोमवंशविभूषणः।
....

गैज़ेटियर ऑव् दि बॉम्बे प्रेसिडेन्सी; जि० १, भाग २, पृ० २०८ टि० ३, पृ० २०६ टि० १-२।

ने 'राठोड़' शब्द को संस्कृत के सांचे में ढालकर 'राष्ट्रोड़' या 'राष्ट्रौढ' बनाया है, परन्तु ऐसे उदाहरण कम मिलते हैं। दक्षिण के राठोड़ों के तथा कभी-कभी उनकी शाखाओं के लेखों में 'राष्ट्रकूट' शब्द के लिए 'रट्ट'[1] शब्द मिलता है, जो 'राष्ट्र' का ही प्राकृत रूप है।

राठोड़ वंश की प्राचीनता

राठोड़ों का प्राचीन उल्लेख अशोक के पांचवें प्रज्ञापन में गिरनार[2], धौली[3], शहबाज़गढ़ी[4] और मानसेरा[5] के लेखों में पैठनवालों के साथ समास में मिलता है, जिससे पाया जाता है कि उस समय ये दक्षिण के निवासी थे। 'रिस्टिक,' 'लठिक' और 'रठिक' ये 'रट्ट' शब्द के प्राकृत रूप हैं, जो 'राष्ट्रकूट'

(१) 'रट्ट' नाम से मिलते हुए नामवाली एक 'आरट्ट' नाम की भिन्न जाति पंजाब में रहती थी। यह बहुत प्राचीन जाति थी। इसका दूसरा नाम 'वाह्लीक' (वाहिक) भी था। इस जाति के स्त्री-पुरुषों के रहन-सहन, आचार-विचार की महाभारत में बड़ी निंदा की है—

आरट्टा नाम वाह्लीका एतेष्वार्यो हि नो वसेत् ॥ ४३ ॥
आरट्टा नाम वाह्लीका वर्जनीया विपश्चिता ॥ ४८ ॥
आरट्टा नाम वाह्लीका नतेष्वार्यो द्व्यहंवसेत् ॥ ५१ ॥

महाभारत; कर्ण पर्व, अध्याय ३७ (कुंभकोणं संस्करण)।

मुसलमानों के राजत्वकाल में इन लोगों को मुसलमान बनाया गया और अब ये 'राठ' कहलाते हैं।

(२) ···धंमयुतस च योणकंबोजगंधारानं रिस्टिकपेतेणिकानं
(ई० हुल्श; कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इन्डिकेरम्; जि० १, पृ० ८)।

(३) ···धंमयुतस योनकंबोचगंधालेसु लठिकपितेनिकेसु···
(वही; जि० १, पृ० ८७)।

(४) ध्रमयुतस योनकंबोयगंधरनं रठिकनं पितिनिकनं···
(वही; जि० १, पृ० ५५)।

(५) ···ध्रमयुतस योनकंबोजगधरन रठिकपितिनिकन···
(वही; जि० १, पृ० ७४)।

शब्द में मिलता है। बहुत पहले से राजा और सामन्त लोग अपने नाम के साथ 'महा' शब्द लगाते रहे हैं। जैसे भोजवंशियों ने अपने को 'महाभोज' लिखा, ऐसे ही राष्ट्रवंशी अपने को 'महाराष्ट्र' या 'महाराष्ट्रिक' लिखने लगे, जिसका प्राकृत रूप 'महारठी' दक्षिण में भाजा, वेड़सा, कार्ली और नानाघाट की गुफ़ाओं में खुदे हुए प्राकृत लेखों में पाया जाता है। उन्हीं लेखों से यह भी ज्ञात होता है कि 'महाभोज' और 'महाराष्ट्रिक' वंशियों में परस्पर विवाह सम्बन्ध भी होते थे। देशों के नाम बहुधा उनमें बसनेवाली या उनपर अधिकार जमानेवाली जातियों के नाम से प्रसिद्ध होते रहे हैं। जैसे 'मालव' जाति के अधिकार करने से अवन्ती देश 'मालवा' कहलाया और 'गुर्जर' या 'गूजर' जाति के नाम से लाट, सुराष्ट्र, श्वभ्र आदि देशों का नाम गुजरात पड़ा, ऐसे ही इस महाराष्ट्रिक जाति के अधीन का दक्षिण का देश महाराष्ट्र नाम से प्रसिद्ध हुआ, जहां के निवासी महाराष्ट्र या महाराष्ट्रिक (मराठा) कहलाते हैं।

दक्षिण के राठोड़ों का प्राचीन इतिहास

अशोक के समय से लगाकर वि० सं० ५५० के आसपास तक दक्षिण के राठोड़ों का कुछ भी इतिहास नहीं मिलता। कहीं-कहीं नाम मात्र का उल्लेख मिलता है। कलाडगी ज़िले के येवूर गांव के पास के सोमेश्वर के मंदिर में लगे हुए चालुक्य (सोलंकी) वंशी राजाओं की वंशावलीवाले एक लेख में उस वंश के राजा जयसिंह (प्रथम) के विषय में लिखा है—'उसने राष्ट्रकूट कृष्ण के पुत्र इन्द्र को, जो अपने लश्कर में ८०० हाथी रखता था, जीता और पांच सौ राजाओं को जीतकर चालुक्य वंश की राज्यलक्ष्मी पीछी प्राप्त की[1]।' इससे मालूम होता है कि जयसिंह के समय अर्थात् वि० सं० ५५० (ई० स० ४९३) के आसपास दक्षिण में राठोड़ों का प्रबल राज्य था, क्योंकि लश्कर में ८०० हाथी रखना सामान्य राजा का काम नहीं। इस प्रकार वि० सं० ६५० (ई० स० ५९३) के पहले का कुछ ही वृत्तान्त मिलता है। वि० सं० ६५० के आस-पास से लगाकर

(१) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० ८, पृ० १२।

वि० सं० १०३० (ई० स० ९७३) के कुछ पीछे तक का दक्षिण के राठोड़ों का जो शृंखलाबद्ध इतिहास मिलता है, वह बहुत ही संक्षेप रूप से यहां लिखा जाता है।

१, २, ३ और ४—शिलालेखों और ताम्रपत्रों के अनुसार दक्षिण के राठोड़ों की वंशावली दन्तिवर्मा से शुरू होती है। उसके पीछे क्रमशः इन्द्रराज और गोविन्दराज हुए। इन तीनों राजाओं के पराक्रम की प्रशंसा के अतिरिक्त कोई विशेष ऐतिहासिक वृत्तान्त नहीं मिलता, परन्तु दक्षिण के कलाडगी गांव के पास की पहाड़ी पर के जैनमंदिर में लगे हुए भारत-युद्ध संवत् ३७३५ और शक संवत् ५५६ (वि० सं० ६९१=ई० स० ६३४) के लेख में दक्षिण के महाप्रतापी चालुक्य राजा पुलकेशी (दूसरा) के विषय में लिखा है—'समय पाकर पुलकेशी को जीतने की इच्छा से अप्पाइक और गोविन्द चढ़ आये, परन्तु एक (अप्पाइक) को तो लड़ाई में भय का भान हो गया और दूसरे (गोविन्द) ने उपकार का फल पाया'।[1] इससे पाया जाता है कि अप्पाइक तो लड़ाई में हारकर भाग गया हो और गोविन्द पुलकेशी से मिल गया हो तथा उसने उससे लाभ उठाया हो। संभवतः यह गोविन्द उपर्युक्त इन्द्रराज का पुत्र हो। ऊपर हम बतला चुके हैं कि दंतिवर्मा से पूर्व भी राठोड़ दक्षिण में प्रबल थे और इस समय भी वे अपना गया हुआ राज्य पीछा लेने के उद्योग में अप्पाइक के साथ पुलकेशी पर चढ़ आये हों। इस समय तक उनका थोड़ा बहुत राज्य उस तरफ़ अवश्य रहा होगा। पुलकेशी (दूसरा) ने वि० सं० ६६७ से ६९५ (ई० स० ६१० से ६३८) तक राज्य किया और गोविन्दराज उसका समकालीन रहा, जिससे हम दंतिवर्मा का समय वि० सं० ६५० (ई० स० ५९३) के आसपास स्थिर कर सकते हैं। गोविन्दराज के बाद उसका पुत्र कर्कराज (कक्कराज) उसका उत्तराधिकारी हुआ, जिसके चार पुत्र—इन्द्रराज, ध्रुवराज, कृष्णराज और नन्नराज—हुए।

५ और ६—कर्कराज के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र इन्द्रराज (दूसरा)

(१) एपिग्राफ़िया इन्डिका; जि० ६, पृ० ५।

दक्षिण के राठोड़ों के राज्य का स्वामी हुआ। उसका पुत्र दंतिदुर्ग (दंतिवर्मा), जो उसका उत्तराधिकारी हुआ, बड़ा प्रतापी था। उसे वैरमेघ भी कहते थे। सामनगढ़ से मिले हुए शक संवत् ६७५ (वि० सं० ८११ = ई० स० ७५४) के उसके ताम्रपत्र से पाया जाता है कि उसने माही और रेवा (नर्मदा) नदियों के बीच का प्रदेश (लाटदेश) विजय किया; राजावल्लभ को जीत 'राजाधिराज परमेश्वर' का विरुद धारण किया; कांची, केरल, चोल व पांड्य देशों के राजाओं को तथा श्रीहर्ष और वज्रट को जीतनेवाले कर्णाटक (सोलंकियों) के असंख्य लश्कर को जीता, जो अजेय कहलाता था[1]। प्रसिद्ध एलोरा की गुफ़ा के दशावतार के लेख में लिखा है—'उसने वल्लभ के लश्कर को और कांची, कलिंग, कोशल, श्रीशैल, मालव, लाट, टंक आदि देशों के राजाओं को जीतकर "श्रीवल्लभ" नाम धारण किया तथा उज्जैन में रत्न और सुवर्ण का दान दिया[2]।' ऊपर आया हुआ "वल्लभ" सोलंकियों का खिताब था, जिन्हें जीतकर यह खिताब राठोड़ों ने धारण किया था। ऊपर के लेखों में सोलंकी राजा का नाम नहीं दिया है, परन्तु अन्य साधनों से यह अनुमान होता है कि सोलंकी राजा कीर्तिवर्मा (द्वितीय) से दन्तिदुर्ग ने राज्य छीना होगा। दन्तिदुर्ग ने लाट देश विजयकर अपने चचेरे भाई गोविन्दराज को अथवा उसके पुत्र कर्कराज को दे दिया हो ऐसा अनुमान होता है, क्योंकि आंतरोली गांव[3] से गुजरात के कर्कराज का एक ताम्रपत्र शक संवत् ६७९ (वि० सं० ८१४) आश्विन सुदि ७ (ई० स० ७५७ ता० २४ सितम्बर) का मिला है, जिससे पाया जाता है कि उस समय वह गुजरात का राजा था[4]। उससे कुछ पूर्व ही यह देश विजय हुआ होगा।

---

(१) इन्डियन ऐन्टिक्वेरी; जि० ११, पृ० ११२।

(२) आर्कियालाजिकल सर्वे ऑव् वेस्टर्न इन्डिया; जि० ५, पृ० ८७।

(३) बम्बई अहाते के सूरत ज़िले में।

(४) जर्नल ऑव् दि बॉम्बे ब्राञ्च ऑव् दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी; जि० १६, पृ० १०६।

दन्तिदुर्ग दक्षिण के राठोड़ों के राज्य को बढ़ानेवाला राजा हुआ। उसका राज्य गुजरात और मालवा की उत्तरी सीमा से लगाकर दक्षिण में रामेश्वर के निकट तक फैला हुआ था।

७—दन्तिदुर्ग के निःसन्तान मरने पर उसका चाचा कृष्णराज उसका उत्तराधिकारी हुआ, जिसको शुभतुंग, अकालवर्ष और कन्नेश्वर भी कहते थे। वड़ोदा से मिले हुए शक संवत् ७३४ महावैशाखी [वैशाख सुदि १५] (वि० सं० ८६६ = ई० स० ८१२ ता० ३० अप्रेल) के ताम्रपत्र में लिखा है—'उस(कृष्णराज)ने कुमार्ग पर चलनेवाले अपने एक कुटुंबी को जड़ से उखेड़ अपने वंश के लाभ के वास्ते राज्य किया[1]।' क़ावी (गुजरात), नवसारी[2] और करड़ा के ताम्रपत्रों से यह निश्चित है कि जिसको उसने मारा वह दन्तिदुर्ग न था। अतएव अनुमानतः वह गुजरात का कर्कराज रहा होगा, जिसने दन्तिदुर्ग के मरने पर स्वतंत्र होने का प्रयत्न किया होगा। उसके वाद उसके किसी भी वंशज का उल्लेख नहीं मिलता, जिससे संभव है कि उसके साथ उक्त शाखा की समाप्ति हुई होगी। पैठण[3] से मिले हुए ताम्रपत्र से पाया जाता है कि कृष्णराज ने राहप्प को, जो वड़ा अभिमानी था, हराकर "राजाधिराज परमेश्वर" का विरुद धारण किया[4]। वड़ोदा से मिले हुए ताम्रपत्र में लिखा है कि उसने महावराह को हरिण वनाया अर्थात् किसी चालुक्य राजा को परास्त कर भगाया, क्योंकि "वराह" चालुक्यों (सोलंकियों) का ही राज्यचिह्न था[5]। अलास[6] के शक संवत् ६९२ (वि० सं० ८२७) आषाढ सुदि ७ (ई० स० ७७० ता० ४ जून) के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि उसके राज्य-समय में

(१) इन्डियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १२, पृ० १५८।
(२) वड़ोदा राज्य में।
(३) हैदरावाद राज्य के औरंगावाद ज़िले में।
(४) एपिग्राफ़िया इन्डिका; जि० ७, पृ० १०७।
(५) इन्डियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १२, पृ० १६२।
(६) वम्बई अहाते के कुरुंदवाड़ ज़िले में।

ही उसके पुत्र गोविन्दराज ने वेंगी के चालुक्य राजा विष्णुवर्धन (चौथा) को परास्त किया[1]। इस प्रकार चालुक्यों को पराजित कर कृष्णराज ने दन्तिदुर्ग के प्रारम्भ किये हुए कार्य को पूरा किया। शक सं० ६९० (वि० सं० ८२५) वैशाख वदि अमावास्या (ई० स० ७६८ ता० २३ मार्च) बुधवार सूर्यग्रहण के तालेगांव से मिले हुए ताम्रपत्र के अनुसार उसने गंगवाडी पर चढ़ाई की थी[2]।

वह बड़ा शिवभक्त था। उसके बनवाये हुए अनेक मन्दिरों में एलोरा का कैलाश मन्दिर, जो पहाड़ को काट-काट कर बनाया गया है, संसार की शिल्पकला का अत्युत्कृष्ट उदाहरण है। उसके दो पुत्र—गोविन्दराज और ध्रुवराज—हुए।

८—कृष्णराज की मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी गोविन्दराज (द्वितीय) हुआ। उसके अन्य विरुद अथवा उपनाम अकालवर्ष, वल्लभ, प्रभूतवर्ष और विक्रमावलोक भी थे। उसके द्वारा वेंगी के राजा विष्णुवर्द्धन के परास्त किये जाने का उल्लेख ऊपर आ गया है। दौलताबाद[3] से मिले हुए ताम्रपत्र से पाया जाता है कि उसने गोवर्द्धन को विजय किया और पारिजात नाम के राजा पर चढ़ाई की[4]। गोवर्द्धन और पारिजात के सम्बन्ध में विशेष वृत्त ज्ञात न होने से उनके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। करहाड[5] से मिले हुए ताम्रपत्र में लिखा है—'गोविन्दराज ने भोग-विलास में पड़कर राज-कार्य में चित्त न दिया और अपने भाई निरुपम (ध्रुवराज) के भरोसे राज्यकार्य छोड़ दिया, जिससे उसकी हुकूमत कमज़ोर हो गई[6]।' ध्रुवराज यहां तक मनमानी करने लगा कि उसने कई दानपत्र भी केवल

(१) एपिग्राफ़िया इन्डिका; जि० ६, पृ० २०९।
(२) वही; जि० १३, पृ० २७५।
(३) निज़ाम राज्य में।
(४) एपिग्राफ़िया इन्डिका; जि० ६, पृ० १८१।
(५) बम्बई अहाते के सतारा ज़िले में।
(६) एपिग्राफ़िया इन्डिका; जि० ४, पृ० २७८।

अपने नाम से ही जारी किये, जैसा कि पिम्पेरी[1] के शक सं० ६९७ (वि० सं० ८३२=ई० स० ७७५) के दानपत्र से पाया जाता है[2]। पैठण से मिले हुए ताम्रपत्र में लिखा है—'ध्रुवराज ने जब रत्न, सुवर्ण आदि पर अधिकार कर लिया तो वल्लभ (गोविन्दराज) ने मालवा, कांची आदि के शत्रु राजाओं से मेल कर लिया और उनको ले आया, परन्तु ध्रुवराज ने कुछ न माना और लड़ाई करके उसको तथा उसके मददगार राजाओं को हराकर वह राज्य का स्वामी बन बैठा[3]।' जिनसेनाचार्य ने 'हरिवंशपुराण' नाम के जैनग्रंथ की समाप्ति में लिखा है—'शक संवत् ७०५ (वि० सं० ८४० = ई० स० ७८३) में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ उस समय उत्तर में इन्द्रायुध, दक्षिण में कृष्णराज का पुत्र वल्लभ (गोविन्दराज) और पूर्व में अवन्ती का राजा राज्य करते थे।' इससे स्पष्ट है कि उस समय तक गोविन्दराज का राज्य क़ायम था। ध्रुवराज के पुत्र गोविन्दराज (तृतीय) का पहला दानपत्र शक संवत् ७१६ (वि० सं० ८५१)(अमांत) वैशाख पूर्णिमांत ज्येष्ठ वदि अमावास्या रविवार (ई० स० ७९४ ता० ४ मई) सूर्यग्रहण का पैठण से मिला है[4]। इसलिए ध्रुवराज ने शक संवत् ७०५ और ७१५ (वि० सं० ८४० और ८५० = ई० स० ७८३-७९३) के बीच किसी समय अपने भाई से राज्य छीना होगा। इस लड़ाई के बाद गोविन्दराज की क्या दशा हुई इसका पता नहीं चलता।

९—ध्रुवराज के अन्य विरुद अथवा ख़िताब धोर, निरूपम, कलिवल्लभ और धारावर्ष मिलते हैं। सर्वप्रथम उसने कांची के पल्लव राजा को हराकर उसके हाथी छीने और गंगवशी राजा को क़ैद किया। राधनपुर[5] से मिले हुए ताम्रपत्र में लिखा है—'उसने अपने महापराक्रमी लश्कर से गौड़ों के राजा की लक्ष्मी हरण करनेवाले वत्सराज (रघुवंशी प्रतिहार) को

(१) पूर्वी ख़ानदेश में।

(२) अल्टेकर; दि राष्ट्रकूटाज़ ऐण्ड देयर टाइम्स; पृ० ५० ।

(३) गैज़ेटियर ऑव् दि बॉम्बे प्रेसिडेन्सी; जि० १, भाग २, पृ० ३९३ ।

(४) एपिग्राफ़िया इन्डिका; जि० ३, पृ० १०५ ।

(५) गुजरात में।

मारवाड़ के बीच भगा दिया और उसने गौड़ों के राजा से जो दो श्वेत छत्र छीने थे वे उससे ले लिये[१]।' नवसारी के ताम्रपत्र में लिखा है—'उसने कोशल देश और उत्तराखंड के राजाओं के छत्र छीने[२]।' ध्रुवराज बड़ा प्रतापी राजा था। उसका राज्य दक्षिण में रामेश्वर के निकट से लगाकर उत्तर में अयोध्या तक फैला हुआ था। कपडवंज[३] के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि उसके कई पुत्र हुए, जिनमें से गोविन्दराज को उसने अपने जीवनकाल में कंठिका (समुद्र या नदी के किनारे का देश अर्थात् संभवतः समुद्रतट का कोंकण से लगाकर खंभात तक का प्रदेश) दिया था[४]। ध्रुवराज उसे संपूर्ण राज्य का स्वामी बनाना चाहता था, पर पिता के जीवित रहते उस (पुत्र) ने उसे स्वीकार न किया। दूसरे पुत्र इन्द्रराज को पीछे से गोविन्दराज ने लाट का राज्य दिया। ध्रुवराज के दो पुत्रों—स्तम्भ (रणावलोक) और कर्क (सुवर्णवर्ष)—के नाम और मिलते हैं, जिनमें से प्रथम गंगवाडी का हाकिम नियत किया गया और दूसरा खानदेश का स्वामी था।

ध्रुवराज की मृत्यु शक सं० ७१५ (वि० सं० ८५० = ई० स० ७९३) और शक सं० ७१६ (वि० सं० ८५१ = ई० स० ७९४) के बीच किसी समय हुई होगी, क्योंकि वि० सं० ८५० (ई० स० ७९३) के दौलताबाद के ताम्रपत्र के लिखे जाने के समय वह जीवित था और वि० सं० ८५१ (ई० स० ७९४) का पैठण का ताम्रपत्र उसके पुत्र के समय का लिखा हुआ है।

१०—ध्रुवराज का उत्तराधिकारी गोविन्दराज (तृतीय) हुआ। उसके अन्य नाम अथवा विरुद प्रभूतवर्ष, जगत्तुंग, जगद्रुद्र और वल्लभ या वल्लभनरेन्द्र मिलते हैं। राधनपुर और वाणी (गुजरात) के ताम्रपत्रों में

(१) एपिग्राफ़िया इन्डिका; जि० ६, पृ० २४२।

(२) गैज़ेटियर ऑव् दि बॉम्बे प्रेसिडेन्सी; जि० १, भाग २, पृ० ११७।

(३) बम्बई अहाते के खेड़ा ज़िले में।

(४) एपिग्राफ़िया इन्डिका; जि० १, पृ० ५२।

लिखा है—'कृष्ण के समय जैसे यादवों को जीतनेवाला कोई न था, वैसे ही उसके समय में राठोड़ों को कोई जीतनेवाला न रहा । उसके राज्य-समय बारह राजा राठोड़ों के राज्य को वर्बाद करने के लिए चढ़ आये पर उसने उन सभों को तितर-वितर कर दिया। गंगवंशी राजा पर दया कर उसने उसे क़ैद से मुक्त कर दिया, परन्तु अपने राज्य में पहुंचने पर जब उसने पुनः शत्रुता अख़्तियार कर ली तो उसने उसको फिर पकड़कर क़ैद कर लिया। इसके बाद उसने गुर्जरेश्वर(गुजरात का राजा) को जीत मालवा पर चढ़ाई की। वहां का राजा बिना लड़े ही अधीन हो गया। मालवा से आगे बढ़कर वह विंध्याचल के निकट जा ठहरा, जहां के राजा मारशर्व ने भी उसकी अधीनता स्वीकार की। वहां से लौटकर वह श्रीभवन (सरभौन, गुजरात का भड़ोच ज़िला) में आया, जहां चातुर्मास व्यतीत कर उसने दक्षिण में तुंगभद्रा के तट पर पहुंच वहां के पल्लव राजा को अधीन बनाया। वेंगी देश के राजा ने सन्देश पहुंचते ही उपस्थित होकर अधीनता स्वीकार कर ली[1]।' उपर्युक्त बारह राजा कौन थे, इसका पता नहीं चलता पर वे गोविन्दराज के बड़े भाई स्तम्भ के विद्रोही हो जाने पर उसके साथ होकर उसे राज्य दिलाने के लिए आये होंगे। संजान[2] के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि राज्य के कितने ही अफ़सर भी स्तम्भ के शामिल हो गये थे। इधर गोविन्दराज ने भी अपना पक्ष काफ़ी बलवान् कर लिया था, जिससे उसकी ही विजय हुई[3]। मन्ने[4] से मिले हुए शक सं० ७२४ (वि० सं० ८५६ = ई० स० ८०२) के एक दानपत्र से पाया जाता है कि वह (दानपत्र) स्तम्भ ने गोविन्दराज की आज्ञानुसार लिखा था[5]। इससे अनुमान होता है कि उस-(स्तम्भ)को पीछे से उसकी जागीर मिल गई होगी। ऊपर आया हुआ

(१) गैज़ेटियर ऑव् दि बॉम्बे प्रेसिडेन्सी जि० १, भाग २, पृ० १९८।

(२) बम्बई अहाते के थाना ज़िले में।

(३) एपिग्राफ़िया इन्डिका; जि० १८, पृ० २४३।

(४) माइसोर राज्य में।

(५) एपिग्राफ़िया कर्णाटिका; जि० ६, नेलमंगल तालुक़ा संख्या ६१।

वेंगी का राजा विजयादित्य होना चाहिये।

संजान से मिले हुए उस(गोविन्दराज)के पुत्र अमोघवर्ष के ताम्रपत्र से ऊपर के कथन की पुष्टि होती है। साथ ही उसमें उसके गंगवाड़ी, केरल, पांड्य, चोल और कांची के राजाओं को परास्त करने तथा उसके कांची में रहते समय सिंहल (लंका) के स्वामी के अपनी एवं अपने मंत्री की मूर्तियां उसके पास भेजकर अधीनता स्वीकार करने का उल्लेख है। ये मूर्तियां गोविन्दराज ने शिवमंदिर के सामने लगाने के लिए मालखेड़ भेज दीं[1]। फिर उसने उत्तर में चढ़ाई कर नागभट (द्वितीय, रघुवंशी प्रतिहार) को हराया जो भागकर राजपूताने में चला गया। उक्त ताम्रपत्र से यह भी ज्ञात होता है कि उसने राजा धर्मपाल और चक्रायुध को अधीन किया[2]। इसके बाद उसकी कहीं कोई चढ़ाई नहीं हुई। तोरखेड़[3] के ताम्रपत्रों के लिखे जाने अर्थात् शक सं० ७३५ (वि० सं० ८७०) पौष सुदि ७ (ई० स० ८१३ ता० ४ दिसम्बर) रविवार तक वह विद्यमान था अमोघवर्ष के शक संवत् ७८८ (वि० सं० ९२३) [अमान्त] ज्येष्ठ (पूर्णिमांत आषाढ) वदि अमावास्या (ई० स० ८६६ ता० १६ जून) रविवार के शिरूर[4] के लेख से पाया जाता है कि उस समय उसे राज्य करते हुए ५२ वर्ष हुए थे[5]। इस प्रकार शक संवत् ७३७ (वि० सं० ८७२ = ई० स० ८१५) के आस-पास किसी समय उसका राज्याभिषेक और उसके कुछ पूर्व ही गोविन्दराज का देहांत हुआ होगा। गोविन्दराज बड़ा वीर, साहसी, निर्भीक और राठोड़ों की शक्ति तथा साम्राज्य को बढ़ानेवाला हुआ। वाणी-डिंडोरी, नवसारी तथा बड़ोदा के उसके भतीजे (इन्द्र के पुत्र) कर्क के ताम्रपत्रों में उसकी प्रशंसा में बहुत कुछ लिखा मिलता है।

---

(१) अल्टेकर; राष्ट्रकूटाज़ ऐण्ड देअर टाइम्स; पृ० ६८।

(२) एपिग्राफ़िया इण्डिका; जि० १८, पृ० २४३।

(३) ख़ानदेश (बम्बई) में।

(४) श्रीपुर, बम्बई अहाते के धारवाड़ ज़िले में।

(५) इण्डियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १२, पृ० २१६।

११—गोविन्दराज का उत्तराधिकारी अमोघवर्ष हुआ। उसके अन्य नाम अथवा खिताब दुर्लभ, शर्व, वीरनारायण, नृपतुंग और वल्लभ आदि मिलते हैं, परन्तु वह अमोघवर्ष के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हुआ। उसके संजान के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि उसका जन्म शक सं० ७३० (वि० सं० ८६५ = ई० स० ८०८) में हुआ था[1]। इस प्रकार वह सिंहासनारोहण के समय लगभग सात वर्ष का रहा होगा। उसकी छोटी अवस्था देखकर उसके समय में विद्रोह की अग्नि भड़क उठी, जिसके फलस्वरूप उसे गद्दी से हाथ धोना पड़ा। सूरत से मिले हुए गुजरात के कर्कराज के शक सं० ७४३ (वि० सं० ८७८) वैशाख सुदि १५ (ई० स० ८२१ ता० २१ अप्रेल) रविवार के ताम्रपत्र में उसके-द्वारा विद्रोह के अन्त किये जाने और अमोघवर्ष के पुनः सिंहासन-पर बिठलाये जाने का उल्लेख है[2]। उक्त कर्कराज के नवसारी से मिले हुए शक सं० ७३८ (वि० सं० ८७३ = ई० स० ८१६) के ताम्रपत्र में इसके विषय में कुछ भी लिखा नहीं मिलता, जिससे यह अनुमान होता है कि ई० स० ८१६ और ८२१ के बीच किसी समय यह घटना हुई होगी। पूर्वी चालुक्य अम्म (प्रथम) के ईडेरू[3] के दानपत्र से पाया जाता है कि विजयादित्य (द्वितीय) ने रट्टों (राष्ट्रकूटों) और गंगवंशियों से बारह वर्ष तक लड़ाइयां कीं[4]। इन लड़ाइयों का अंतिम समय अमोघवर्ष के प्रारम्भ के राज्यवर्षों से मिलता है, अतएव अधिक सम्भव तो यही है कि विजयादित्य ने ही यह उत्पात खड़ाकर अमोघवर्ष को गद्दी से उतार दिया हो। शिरूर से मिले हुए अमोघवर्ष के शक सं० ७८८ (वि० सं० ९२३ = ई० स० ८६६) के दानपत्र में लिखा है कि वेंगी का राजा उसकी सेवा करता था अर्थात् उसके अधीन हो गया था[5]। गोविन्दराज

(१) एपिग्राफ़िया इन्डिका; जि० १८, पृ० २४३।
(२) अल्टेकर; दि राष्ट्रकूटाज़ ऐण्ड देअर टाइम्स; पृ० ७४।
(३) मद्रास हहाते के कृष्णा ज़िले में।
(४) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १३, पृ० ५३।
(५) वही; जि० १२, पृ० २१६।

(चतुर्थ) के शक सं० ८५५ (वि० सं० ६६०) श्रावण सुदि १५ (ई० स० ६३३ ता० ८ अगस्त) गुरुवार के सांगली[1] के ताम्रपत्र में लिखा है कि वेंगवल्ली के युद्धक्षेत्र में, जहां उसका चालुक्यों और अभ्यूषखों से युद्ध हुआ, अमोघवर्ष ने यम को तृप्त किया[2]। कृष्णराज (तृतीय) के करहाड़ के शक सं० ८८० (वि० सं० १०१५) [अमांत] फाल्गुन (पूर्णिमांत चैत्र) वदि १३ (ई० स० ६५६ ता० ६ मार्च) बुधवार के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि चालुक्य वंश को नष्ट करने पर भी अमोघवर्ष का क्रोध शान्त न हुआ[3]। कर्कराज (द्वितीय) के करडा के ताम्रपत्र में लिखा है कि वह चालुक्य वंश को नाश करने के लिए अग्नि के समान हुआ[4]। इससे स्पष्ट है कि उसने शक्ति बढ़ने पर चालुक्यों को परास्त किया था। उपर्युक्त ईडेरू के दानपत्र में भी लिखा है—'गुणग विजयादित्य के बाद वेंगी का राज्य राष्ट्रकूटों के हाथ में चला गया परन्तु बाद में भीम ने उसे कृष्णराज (द्वितीय) से पीछा लिया[5]।'

गुजरात के राठोड़ राजा कर्कराज के मरने पर उसका पुत्र ध्रुवराज विद्रोही हो गया, जिससे अमोघवर्ष ने उसपर चढ़ाई की, जिसमें वह (ध्रुवराज) मारा गया। बेगुमरा[6] से मिले हुए शक सं० ७८६ (वि० सं० ६२४) [अमांत] ज्येष्ठ (पूर्णिमांत आषाढ) वदि अमावास्या (ई० स० ८६७ ता० ६ जून) शुक्रवार, सूर्यग्रहण के ताम्रपत्र में लिखा है—'वल्लभ (अमोघवर्ष) के लश्कर को भगाने के लिए लड़ता हुआ ध्रुवराज सैंकड़ों घाव खाकर मर गया और वल्लभ के लश्कर से दबा हुआ उस(ध्रुवराज)का मुल्क उसके पुत्र अकालवर्ष ने प्राप्त किया[7]।'

(१) बम्बई अहाते के सांगली राज्य की राजधानी।
(२) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १२, पृ० २४६।
(३) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० ४, पृ० २८१।
(४) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १२, पृ० २६४।
(५) वही; जि० १४, पृ० १६७।
(६) बड़ोदा राज्य में।
(७) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १२, पृ० १७६।

अमोघवर्ष के कोन्नूर[1] के शक सं० ७८२ (वि० सं० ९१७) आश्विन सुदि १५ (ई० स० ८६० ता० ३ अक्टोबर) गुरुवार के शिलालेख से पाया जाता है कि मुकुलवंशी बंकेय उसका बड़ा वीर अफ़सर था, जिसने उसके पुत्र के विद्रोही हो जाने पर बड़ी सहायता पहुंचाई थी, जिससे उसने उस(बंकेय)को बनवासी, बेलगोल, कुन्दर्ग, कुन्दूर और पुरीगेरी का हाकिम बनाया। बंकेय ने कडलदुर्ग पर अधिकार कर तलवन के राजा को भी हराया था[2]। कन्हेरी[3] की गुफ़ा के शक संवत् ७६५ (?) (वि० सं० ९०० = ई० स० ८४३), शक संवत् ७७५ (? ७७३) तथा ७९९ (वि० सं० ९१० और ९३४ = ई० स० ८५२ तथा ८७७) के लेखों से ज्ञात होता है कि उसके समय सारा कोंकण देश उसके सामन्त कपर्दी के पुत्र पुल्लशक्ति और उसके पुत्र कपर्दी (द्वितीय) के अधिकार में था[4]। शिरूर के उस-(अमोघवर्ष)के लेख में अंग, वंग, मालवा और मगध के राजाओं का उसके अधीन होना लिखा है[5]।

करडा के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि अमोघवर्ष ने मान्यखेट को इन्द्रपुरी से भी अधिक सुन्दर बनाया[6]। अमोघवर्ष के सम्बन्ध का अंतिम उल्लेख वीरसेन-रचित 'जयधवला-टीका' में मिलता है, जिसके अनुसार उसका शक संवत् ७९९ (वि० सं० ९३४) फाल्गुन सुदि १० (ई० स० ८७८ ता० १६ फ़रवरी) तक जीवित रहना पाया जाता है। स्वयं अमोघवर्ष के रचे हुए ग्रन्थ 'रत्नमाला' (प्रश्नोत्तररत्नमाला) से पाया जाता है कि उसने विवेक से राज छोड़ दिया था। इससे तो यही अनुमान होता है कि वृद्ध होने पर उसने अपने पुत्र कृष्णराज को राज्याधिकार सौंप दिया हो। उस(अमोघवर्ष)ने

(१) बम्बई अहाते के बेलगाम ज़िले में।
(२) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० ६, पृ० ३०।
(३) बम्बई अहाते के थाना ज़िले में।
(४) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १३, पृ० १३६, १३४ तथा १३५।
(५) वही; जि० १२, पृ० २१६।
(६) वही; जि० १२, पृ० २६३।

साठ वर्ष से अधिक समय तक राज्य किया। उसकी रुचि विद्या और धर्म पर विशेष थी। 'कविराजमार्ग' नाम का अलंकार का कनाड़ी भाषा का ग्रन्थ उसने बनाया था। विद्वानों का वह बड़ा आदर करता था। जैनधर्म के प्रति भी उसकी बड़ी श्रद्धा थी। 'सिल्सिलातुत्तवारीख़' का लेखक सुलेमान उसके विषय में लिखता है कि वह दुनियां के चार बड़े बादशाहों में से एक था।

१२—अमोघवर्ष का उत्तराधिकारी कृष्णराज (द्वितीय) हुआ, जिसके अन्य नाम अथवा ख़िताब कन्न और अकालवर्ष मिलते हैं। करहाड़ से मिले हुए ताम्रपत्र में लिखा है—'उसने गुर्जरों (गुजरातवालों) को हराया, लाटवालों का गर्व तोड़ा, गौड़ों को नम्रता सिखाई, समुद्रतटवालों की नींद उड़ाई और आंध्र, कलिंग, गंग व मगधवालों से अपनी आज्ञा मनवाई[1]।' ऊपर आये हुए 'लाटवालों का गर्व तोड़ा' से यह आशय प्रतीत होता है कि गुजरात के राठोड़ राजा ध्रुवराज के भूमि दबाने पर कृष्णराज ने उससे गुजरात का राज्य छीन लिया हो। कपड़वंज[2] से मिले हुए कृष्णराज के समय के शक संवत् ८३२ (वि० सं० ९६७) वैशाख सुदि १५ (ई० स० ९१० ता० २७ अप्रेल) शुक्रवार के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि उसके देश को दबानेवाले शत्रु को धवलप्प ने मारा, जिसे कृष्णराज ने गुजरात में जागीर दी[3]। इससे अनुमान होता है कि धवलप्प ने, जो कृष्णराज का सरदार रहा होगा, गुजरात का राज्य नष्ट किया। शक संवत् ८१० (वि० सं० ९४५ = ई० स० ८८८) के बाद गुजरात के राठोड़ राजाओं का उल्लेख नहीं मिलता। उक्त संवत् के बेगुमरा से मिले हुए ताम्रपत्र में गुजरात के राठोड़ कृष्ण का उज्जयिनी में कृष्णराज (द्वितीय) की तरफ़ से लड़ते हुए शत्रु (भोज, प्रथम, रघुवंशी प्रतिहार) को परास्त

(१) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० ४, पृ० २७८।

(२) बम्बई इहाते के खेड़ा ज़िले में।

(३) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० १, पृ० ५३।

करना लिखा है[1]। इन्द्रराज (तृतीय) के शक सं० ८३६ (वि० सं० ९७१) फाल्गुन सुदि ७ (ई० स० ९१५ ता० २४ फ़रवरी) के बेगुमरा के ताम्रपत्र से भी उक्त कथन की पुष्टि होती है। इस लड़ाई में जगत्तुङ्ग और चेदी का राजा भी शामिल रहे थे[2]।

दक्षिण के देश विजय करने में वेंगी देश के चालुक्य राजा विजयादित्य (तीसरा, गुणगांक) ने कृष्णराज का सामना किया, जिसमें कृष्णराज की हार हुई। इसका उल्लेख राठोड़ों के ताम्रपत्रों आदि में तो नहीं, किंतु चालुक्यों के ताम्रपत्रों आदि में मिलता है। चालुक्य राजा अम्म के ईडेरू के ताम्रपत्र में लिखा है—'महादेव के समान शक्तिवाले उस महापराक्रमी राजा (विजयादित्य, तीसरा) ने राठोड़ों-द्वारा ललकारे जाने पर लड़ाई में गंगवंशियों को जीत मैंगि का सिर काटा और कृष्णराज को भयभीत कर उसके उत्तम नगर को जला दिया। ४४ वर्ष राजकर उसके मरने पर राठोड़ों ने फिर वेंगीमंडल ले लिया[3]।' मैंगि के मारे जाने का चालुक्यों के कई दूसरे ताम्रपत्रों में भी उल्लेख मिलता है। छीना हुआ वेंगी देश राठोड़ों के अधीन अधिक दिनों तक न रहा होगा, क्योंकि उपर्युक्त ईडेरू के ताम्रपत्र में आगे चलकर लिखा है—'उस (विजयादित्य, तीसरा) के छोटे भाई विक्रमादित्य के पुत्र चालुक्य भीम ने, जिसका दूसरा नाम द्रोहार्जुन था, अपने पराक्रम और तलवार की सहायता से राज्य पर अधिकार कर लिया[4]।' कृष्णराज का राज्य गंगा तट के देश से लगाकर कन्याकुमारी के निकट तक फैला हुआ था।

कृष्णराज का विवाह चेदि के कलचुरि (हैहय) वंशी राजा कोकल्ल

(१) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १२, पृ० ६६। यह लेख शक संवत् ८१० (वि० सं० ९४५) [अमांत] चैत्र (पूर्णिमांत वैशाख) वदि अमावास्या (ई० स० ८८८ ता० १५ अप्रेल) सोमवार सूर्यग्रहण का है।

(२) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० ९, पृ० २४।

(३) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १२, पृ० ५३।

(४) वही; जि० १२, पृ० ५३।

की पुत्री से हुआ था, जो शंकुक की छोटी बहिन थी। इससे जगत्तुंग नाम का पुत्र हुआ, जिसका विवाह उसके मामा रणविग्रह की पुत्री लक्ष्मी के साथ हुआ[1], जिससे उसके इंद्र नाम का पुत्र हुआ। जगत्तुंग का देहांत कुंवरपदे में ही हो जाने से कृष्णराज की मृत्यु होने पर उस (जगत्तुंग) का पुत्र इन्द्र राज्य का स्वामी बना।

१३–इन्द्रराज (तृतीय) के अन्य नाम अथवा ख़िताब रट्टकंदर्प, कीर्तिनारायण और नित्यवर्ष मिलते हैं। उसके समय के नवसारी के ताम्रपत्र में लिखा है—'यह राजा अपने पट्टबन्धोत्सव (राज्याभिषेकोत्सव) के लिए शक सं० ८३६ (वि० सं० ९७१) फाल्गुन सुदि ७ (ई० स० ९१५ ता० २४ फ़रवरी) को कुरुंदक (दक्षिण में कृष्णा और पंचगंगा का संगम) गया और उस उत्सव पर तुला से उतरते समय कुरुंदक गांव के अतिरिक्त अन्य बहुत से गांव और धन उसने दान में दिया[2]।' अतएव इस समय से कुछ दिन पूर्व ही कृष्णराज का देहांत हुआ होगा। उपर्युक्त ताम्रपत्र से यह भी ज्ञात होता है कि उसने मेरु को उजाड़ डाला और उपेन्द्र नाम के राजा को, जिसने गोवर्द्धन विजय किया था, परास्त किया[3]। उपेन्द्र संभवतः परमारवंशी कृष्णराज रहा होगा, जिसका उदयपुर (मालवा) की प्रशस्ति के अनुसार एक नाम उपेन्द्रराज भी था। खंभात[4] के ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि उसने उज्जयिनी पर आक्रमण किया, यमुना को पार किया और फिर कन्नोज को जीत लिया। रघुवंशी प्रतिहार

(१) मामा की लड़की से विवाह करने को नर्मदा से उत्तरवाले बुरा समझते हैं, परन्तु दक्षिण में इसकी प्रथा है और वहां पर चारों वर्णों के लोग मामा की लड़की से शादी करते हैं। यह प्रथा प्राचीन है क्योंकि श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न और पौत्र अनिरुद्ध के विवाह उनके मामा की पुत्रियों से होना भागवत में लिखा है। इसी तरह अर्जुन का एक विवाह उसके मामा वसुदेव की पुत्री सुभद्रा से हुआ था। प्राचीन समय से ही इस प्रथा के विद्यमान होने के उदाहरण मिलते हैं, परन्तु वह धर्मविरुद्ध ही मानी गई है।

(२) जर्नल ऑव् दि बॉम्बे ब्रान्च ऑव् रायल एशियाटिक सोसाइटी; जि० २२, पृ० ८५।

(३) वहीं; जि० १८, पृ० २५३।

(४) बम्बई अहाते के खंभात राज्य की राजधानी।

राजा महीपाल भागा, जिसका इन्द्रराज के अफ़सर चालुक्य नरसिंह ने पीछा किया[1]। खजराहो[2] के चन्देलों के लेख से भी महीपाल के हारकर भागने की पुष्टि होती है[3]। कुडप्पा ज़िले के दानवुलपाडु नाम के स्थान से प्राप्त ऐतिहासिक साधनों से उस (इन्द्र) के एक अफ़सर श्रीविजय का पता चलता है, जिसने जैनधर्मावलम्बी होते हुए भी अपने स्वामी के शत्रुओं को हराया था[4]। इन्द्रराज के दो पुत्र अमोघवर्ष और गोविन्दराज हुए।

१४ और १५—इन्द्रराज का उत्तराधिकारी अमोघवर्ष (द्वितीय) हुआ; पर वह अधिक दिनों तक राज्य न कर सका। शिलारा वंशी अपराजित के भादान[5] के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि अमोघवर्ष सिंहासनारूढ़ होने के एक वर्ष के भीतर मर गया[6]। कृष्णराज (तृतीय) के करहाड़[7] और देवली[8] के ताम्रपत्रों से भी इसकी पुष्टि होती है। उसका उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई गोविन्दराज (चतुर्थ) हुआ। उसके दूसरे नाम अथवा ख़िताब साहसांक और सुवर्णवर्ष मिलते हैं। वह बड़ा विलासप्रिय राजा था। उसके खारेपाटन[9] के ताम्रपत्र में लिखा है कि वह वेश्याओं से घिरा रहता था[10]। देवली और करहाड के ताम्रपत्रों से भी पाया जाता है कि उसके दिन-रात भोग-विलास में रत रहने और कुमार्गगामी हो जाने से मंत्री

(१) अल्टेकर; दि राष्ट्रकूटाज़ ऐण्ड देअर टाइम्स; पृ० १०१-२।
(२) मध्यभारत के छतरपुर राज्य में।
(३) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० १, पृ० १२२।
(४) आर्कियालाजिकल सर्वे ऑव् इंडिया रिपोर्ट्स ई० स० १६०५-६; पृ० १२१-२।
(५) बम्बई अहाते के थाना ज़िले में।
(६) अल्टेकर; दि राष्ट्रकूटाज़ ऐण्ड देअर टाइम्स; पृ० १०५।
(७) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० ४; पृ० २८८।
(८) वर्धा ज़िले (मध्यप्रांत) में। एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० ५, पृ० १८८।
(९) बम्बई अहाते के रत्नगिरि ज़िले के देवगढ़ तालुक़े में।
(१०) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० ३, पृ० २६२।

आदि उसके विरोधी बन गये, जिससे वह शीघ्र ही नष्ट हो गया[1]। उसके समय में राज्य की दशा ठीक न रही। महीपाल ने पुनः कन्नौज पर अधिकार कर लिया। पूर्वी चालुक्यवंशी भीम (द्वितीय) ने भी उसकी सेना को परास्त किया। पम्प कवि अपने काव्य 'विक्रमार्जुनविजय' में लिखता है कि उस (गोविन्दराज चतुर्थ) का राज्य बद्दिगदेव (अमोघवर्ष) को दिया गया। इसकी पुष्टि देवली और करहाड़ के कृष्णराज (तृतीय) के ताम्रपत्रों से भी होती है। गोविन्दराज का अन्तिम उल्लेख शक संवत् ८५६ (वि० सं० ९९१ = ई० स० ९३४) के ताम्रपत्र में मिलता है[2]। बद्दिगदेव का सबसे पहला उल्लेख शक सं० ८५९ (वि० सं० ९९४) [अमांत] भाद्रपद (पूर्णिमांत आश्विन) वदि अमावास्या (ई० स० ९३७ ता० ७ सितम्बर) गुरुवार के ताम्रपत्र में मिलता है[3]। इससे स्पष्ट है कि उक्त दोनों संवतों के बीच किसी समय गोविन्दराज का देहांत हुआ होगा।

१६—अमोघवर्ष (तृतीय, बद्दिगदेव) गोविन्दराज (चतुर्थ) का चाचा था और उसके (गोविन्दराज) के निःसन्तान मरने पर वह दक्षिण के राठोड़ राज्य का स्वामी हुआ। वह बड़ी सात्विक वृत्ति का वीर और बुद्धिमान् राजा था। उसके चार पुत्रों—कृष्णराज, जगत्तुंग, खोट्टिग और निरुपम—के नाम मिलते हैं। उसकी पुत्री का विवाह पश्चिमी गंगवंशी भूतुग (द्वितीय) के साथ हुआ था। उसका राज्य अधिक दिनों तक न रहा होगा। वि० सं० ९९१ (ई० स० ९३४) में गोविन्दराज विद्यमान था। उसके बाद शक संवत् ८६२ (वि० सं० ९९७) [अमांत] वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) वदि ५ (ई० स० ९४० ता० २९ अप्रेल) के वर्धा के ताम्रपत्र के अनुसार उस समय अमोघवर्ष (तृतीय) का पुत्र कृष्णराज (तृतीय) सिंहासन पर था[4]।

(१) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० ४, पृ० २८८। वही; जि० ५, पृ० १८८।

(२) एपिग्राफ़िया कर्णाटिका (होनाली तालुक़ा); जि० ७; पृ० ९३-४, सं० २१-२३ अंग्रेज़ी अनुवाद।

(३) वही; जि० ११ (चितलद्रुग); पृ० १६, सं० ७६ अंग्रेज़ी अनुवाद।

(४) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० ५, पृ० १९२।

इससे अनुमान होता है कि उक्त दोनों संवतों के बीच कुछ समय के लिए अमोघवर्ष (तृतीय) राजा रहा होगा।

१७—कृष्णराज (तृतीय) अमोघवर्ष (तृतीय) का ज्येष्ठ पुत्र होने से वही उसकी मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके अन्य नाम अथवा खिताब कन्नरदेव, अकालवर्ष और वल्लभदेव मिलते हैं। देवली के ताम्रपत्र में लिखा है—'वह कुंवरपदे से कार्तिक स्वामी जैसा शक्तिवान् था। उसने अपनी आज्ञा न माननेवाले सभी शत्रुओं को बरबाद किया, मधुकैटभ की नाईं लोगों को दुःख देनेवाले दन्तिग और वप्पुक को मारा, गंगवंशी रच्छयमल को मारकर उसकी जगह पर भूतार्य (भूतुग) को क़ायम किया और पल्लववंशी राजा अंटिग को कष्ट में डाला। उसके हाथ से दक्षिण के तमाम क़िले फतह होने की बात सुनकर गुजरात का (प्रतिहार) राजा, जो कालिंजर और चित्रकूट लेने की आशा में था, भयभीत हो गया। पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक और हिमालय से सिंहल-द्वीप तक के सामन्त उसकी अधीनता स्वीकार करते थे। वह पिता का आज्ञाकारी था।.........पिता का देहांत होने पर राजा हुआ और बाद में प्राण से भी अधिक प्यारे छोटे भाई जगत्तुंग के पुण्य के निमित्त शक संवत् ८६२ (वि० सं० ९९७) शार्वरी संवत्सर (अमांत) वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) वदि ५ (ई० स० ९४० ता० २६ अप्रेल) को उसने ब्राह्मण भाइल्ल के पुत्र ऋष्यप्प को एक गांव दान में दिया[1]।' उसके चोल, चेर, सिंहल, पांड्य आदि देशों के राजाओं को जीतने का उल्लेख जैन महाकवि सोमदेव-सूरि के 'यशस्तिलक' नाम के महाकाव्य के अन्त में है। आत्कुर के लेख में गंगवंशी भूतुग (द्वितीय) द्वारा चोल के राजा राजादित्य का मारा जाना लिखा है। कहीं-कहीं उसका राजादित्य को दगा से मरवाना लिखा है, जो ठीक नहीं माना जा सकता। आत्कुर[2] के लेख से पाया जाता है कि भूतुग को कृष्णराज ने बनवासी, किसुकाड, बेलवोल, बागेनाड और पुरीगेर के

(१) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० ५, पृ० १९२।

(२) माइसोर राज्य में।

परगने जागीर में दिये थे[१]। कृष्णराज के पांचवें राज्यवर्ष के सिद्धलिंग-मादम् के शिलालेख में कांची और तंजोर विजय किये जाने का उल्लेख मिलता है[२]। कृष्णराज के समय तक मालवे के परमार राठोड़ों के अधीन रहे, जैसा कि सीयक के वि० सं० १००५ (अमांत) माघ (पूर्णिमांत फाल्गुन) वदि अमावास्या (ई० स० ९४९ ता० ३१ जनवरी) बुधवार के हरसोला[३] के ताम्रपत्र से पाया जाता है[४]। मारसिंह के श्रवणबेल्गोला[५] के स्मारक से पाया जाता है कि उसने कृष्णराज के लिए उत्तर का प्रदेश जीता[६]। संभवतः उत्तर के देशाधिपतियों के बिगड़ने पर कृष्णराज ने उसकी अध्यक्षता में वहां सेना भेजी होगी। वाडप्प के अरुम्वाक[७] के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि उसने कर्णराज-वल्लभ (कृष्णराज, तृतीय) की सहायता से पूर्वी चालुक्य राजा अम्म (द्वितीय) को निकाल दिया[८]। वि० संवत् १०१०-११ (ई० स० ९५३-४) के लगभग चन्देलों ने कालिंजर पर पुनः अधिकार कर लिया[९]। दक्षिणी अर्काट ज़िले के किलूर के विरट्टनेश्वर के मंदिर में कृष्णराज के तीसवें राज्यवर्ष का एक लेख मिला है[१०]। उसके राज्यसमय हि० स० ३३२ (वि० सं० १००१ = ई० स० ९४४) में अरब यात्री अल् मसूदी ने मुरुजुलज़हब नामक पुस्तक लिखी थी। उसमें लिखा है—'इस समय हिन्दुस्तान के राजाओं में सबसे बड़ा मानकेर (मान्यखेट) का

(१) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० २, पृ० १६७।

(२) मद्रास एपिग्राफ़िकल् कलेक्शन्स; ई० स० १९०६, संख्या ३७५।

(३) गुजरात के अहमदाबाद ज़िले में।

(४) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० १९, पृ० २३६।

(५) माइसोर राज्य के हसन ज़िले में।

(६) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० ५, पृ० १७९।

(७) अरुम्वाक गांव का ताम्रपत्र मद्रास अहाते के तनुकु तालुके के पोलामुरा गांव से मिला था।

(८) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० १९, पृ० १३७।

(९) अल्टेकर; दि राष्ट्रकूटाज़ ऐण्ड देअर टाइम्स; पृ० १२१।

(१०) मद्रास एपिग्राफ़िकल् कलेक्शन्स; ई० स० १९०२, संख्या २३२।

राजा बलहरा (राठोड़) है। हिन्दुस्तान के बहुत से राजा उसको अपना मालिक मानते हैं। उसके पास हाथी और लश्कर असंख्य हैं। लश्कर अधिकतर पैदल हैं, क्योंकि उसकी राजधानी पहाड़ों में है।' कोल्लगल्लू के शक सं० ८८९ (वि० सं० १०२४, फाल्गुन सुदि ६ (ई० स० ९६८ ता० ७ फ़रवरी) के लेख से पाया जाता है कि उसी वर्ष उस(कृष्णराज)का देहान्त हो गया[1] और उसका भाई खोट्टिग उसका उत्तराधिकारी हुआ।

१८—खोट्टिग के सिंहासनारूढ़ होने के बाद से ही दक्षिण के राठोड़ों की अवनति होने लगी। इसका कारण यह था कि वह अपने पूर्वजों की भांति साहसी और शक्तिशाली न था। उसके समय में मालवा के परमारों ने चढ़ाईकर मान्यखेट को लूटा। उदयपुर (मालवा) की प्रशस्ति में उसके सम्बन्ध में लिखा है कि राजा वैरिसिंह के पुत्र हर्षदेव (सीयक, दूसरा) ने युद्ध में खोट्टिग को परास्त किया। यह लड़ाई नर्मदा के किनारे खलिघट्ट नाम के स्थान में हुई, जिसमें बागड़ का स्वामी परमार कंकदेव, जो श्रीहर्षदेव का कुटुंबी था, हाथी पर चढ़कर लड़ता हुआ मारा गया[2]। फिर हर्षदेव ने आगे बढ़कर वि० सं० १०२९ (ई० स० ९७२) में मान्यखेट को लूटा[3]। इसके बाद के ताम्रपत्रादिक खोट्टिग के उत्तराधिकारी के मिलते हैं। ई० स० ९७२ (वि० सं० १०२९) के सोरव[4] के लेख में कर्क को राजा लिखा है[5]। अतएव उसी वर्ष खोट्टिग का देहांत हो गया होगा। वह निःसन्तान मरा, जिससे उसके बाद उसके छोटे भाई निरुपम का पुत्र कर्कराज (दूसरा) गद्दी पर बैठा। कर्कराज के समय का एक लेख शक

(१) मद्रास एपिग्राफ़िकल् कलेक्शन्स; ई० स० १९१२, संख्या २३६।

(२) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० १४, पृ० १९७। राजपूताना म्यूज़ियम् (अजमेर) की रिपोर्ट; ई० स० १९१६-७; पृ० २।

(३) धनपाल; पाइयलच्छीनाममाला; श्लोक १९८।

(४) माइसोर के शिमोगा ज़िले में।

(५) एपिग्राफ़िया कर्णाटिका; जि० ८, भाग १, लेख संख्या ४५५, पृ० ७७ (अंग्रेज़ी अनुवाद)।

सं० ८९४ (वि० सं० १०२९) आश्विन सुदि १५ (ई० स० ९७२ ता० २५ सितंबर) बुधवार चंद्रग्रहण का करड़ा से मिला है, जिसमें खोट्टिग का उल्लेख है।

१९ और २०—कर्कराज (दूसरा) के अन्य नाम अथवा ख़िताब कक, कक्कल, कर्कर और अमोघवर्ष मिलते हैं। उसके समय के करड़ा के ताम्रपत्र में लिखा है कि उसने गुजरात, चोल, पांड्य, हूण आदि के राजाओं को जीता था[1], पर यह कथन विश्वास के योग्य नहीं प्रतीत होता, क्योंकि वह अधिक दिनों तक गद्दी पर न रहा था और न उसकी शक्ति इतनी बढ़ी हुई थी। वस्तुतः उसके समय में राठोड़ों की रही-सही शक्ति भी लुप्त हो गई। खारेपाटण के शक सं० ९३० (वि० सं० १०६५) ज्येष्ठ सुदि १५ (ई० स० १००८ ता० २२ मई) के ताम्रपत्र में लिखा है—'चालुक्य राजा तैलप (द्वितीय) ने कक्कल (कर्कराज, द्वितीय) से रट्ट (राठोड़ों का) राज्य छीन लिया[2]। इसकी पुष्टि भेरे[3] से मिले हुए भादान के शक सं० ९१९ (वि० सं० १०५४) [अमांत] आषाढ (पूर्णिमांत श्रावण) वदि ४ (ई० स० ९९७ ता० २९ जून) के ताम्रपत्र[4] और येवूर के शक सं० ९९९ (वि० सं० ११३४) श्रावण सुदि १५ (ई० स० १०७७ ता० ६ अगस्त) रविवार चन्द्रग्रहण के लेख[5] से भी होती है। धारवाड़ प्रांत के गड्ग गांव के वीरनारायण के मन्दिर में लगे हुए लेख में श्रीमुख संवत्सर अर्थात् वर्तमान शक सं० ८९६ [गत ८९५] (वि० सं० १०३०) से तैलप का राज्यारंभ लिखा है[6]। उसी प्रांत के गंडूर गांव के एक लेख से उक्त श्रीमुख संवत्सर के आषाढ (जून) मास तक

(१) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० १२, पृ० २६३।

(२) वही; जि० ३, पृ० २९२।

(३) बम्बई अहाते के थाना ज़िले के भिवन्डी नामक स्थान से दस मील उत्तर में।

(४) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० ३, पृ० २६७।

(५) इंडियन ऐंटिक्वेरी; जि० ८, पृ० १२।

(६) वही; जि० २१; पृ० १६७।

कक्कल (कर्कराज, द्वितीय) का गद्दी पर होना पाया जाता है[1]। अतएव गत शक संवत् ८९५ (चैत्रादि वि० सं० १०३० = ई० स० ९७३-७४) के आषाढ और फाल्गुण के बीच किसी समय राठोड़ों का महाराज्य चालुक्यों के हाथ में चला गया होगा। कर्कराज का क्या हुआ यह पता नहीं चलता, परन्तु सोराब तालुके से वि० सं० १०४८ (ई० स० ९९१) के दो लेख मिले हैं, जिनमें महाराजाधिराज परमेश्वर परमभट्टारक श्रीकक्कलदेव लिखा मिलता है[2]। संभवतः यह कर्कराज (द्वितीय) से ही सम्बन्ध रखता हो। कर्कराज के बाद गंगवंशी नोलंबांतक मारसिंह तथा कतिपय राठोड़ सरदारों ने कृष्णराज (तृतीय) के पुत्र इन्द्रराज (चतुर्थ) को गद्दी पर बैठाकर राठोड़ राज्य कायम रखने का प्रयत्न किया, परन्तु उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। वि० सं० १०३२ (ई० स० ९७५) में मारसिंह अनशन करके मर गया और वि० सं० १०३९ वैशाख वदि ७ (ई० स० ९८२ ता० २० मार्च) को इन्द्रराज (चतुर्थ) ने भी इसी प्रकार अपना प्राण त्याग किया[3]। इस प्रकार दक्षिण के राष्ट्रकूटों के प्रतापी राज्य की समाप्ति हुई।

दक्षिण के राठोड़ों की राजधानी

दक्षिण के प्रतापी राठोड़ों की राजधानी मान्यखेट अथवा मालखेड़ का सर्वप्रथम उल्लेख अमोघवर्ष (प्रथम) के ताम्रपत्र में आता है। उसमें लिखा है कि उस(अमोघवर्ष)ने इन्द्रपुरी को लज्जित करनेवाले मान्यखेट नगर को बसाया। इससे तो यही पाया जाता है कि मान्यखेट राजधानी उसके समय से हुई और उसके पहले कोई दूसरी राजधानी रही होगी। कुछ लोगों का मत है कि 'मयूरखिंडी' अथवा 'मोरखिंड' में उनकी पहली राजधानी होनी चाहिये, क्योंकि गोविन्दराज (तृतीय) के वाणी-डिंडोरी, राधनपुर एवं कडवा के ताम्रपत्र उसी स्थान से लिखे गये थे। पर यह मत ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि ऐसी दशा में उनमें 'मयूरखिंडी-

(१) इंडियन ऐंटिक्वेरी; जि० १२; पृ० २७२।

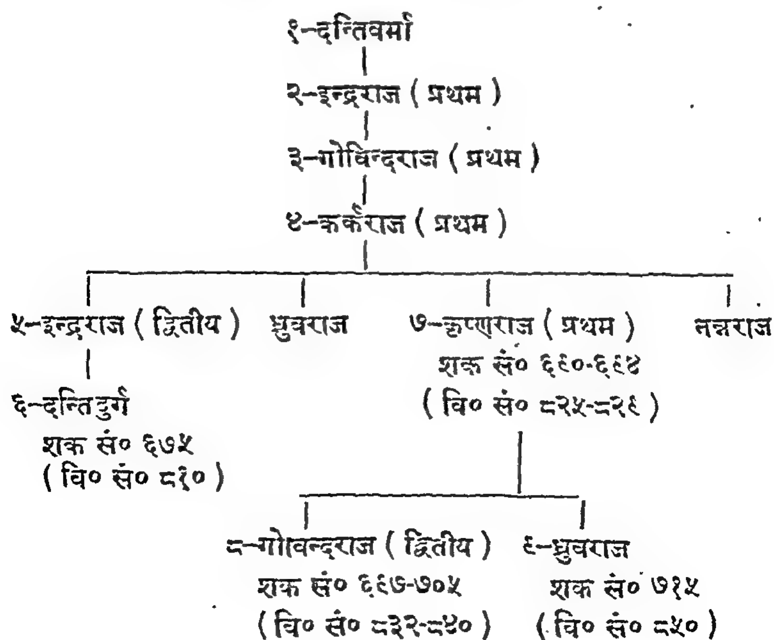
(२) अल्टेकर; दि राष्ट्रकूटाज़ एण्ड देअर टाइम्स; पृ० १३१।

(३) वही; पृ० १३१-२।

वास्तव्येन मया' के स्थान में 'मयूरखिंडी समवासितेन मया' होना चाहिये था। इसी प्रकार नासिक, लाट्टूर और पैठण में भी दक्षिण के राठोड़ों की पूर्व-राजधानी नहीं मानी जा सकती। मि० कज़न्स का अनुमान है कि प्रसिद्ध एलोरा की गुफ़ाओं के निकट के पठार पर स्थित 'सूलूवंजन' के आस-पास उनकी पूर्व-राजधानी रही होगी, पर जब तक शोध से यह निश्चित न हो जाय, इसपर विश्वास नहीं किया जा सकता। संभव है कि उनकी पूर्व-राजधानी बरार के 'एलिचपुर' में ही बनी रही हो, जहां पहले उनका राज्य था। इस विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ भी कह सकना असंभव है। यह निश्चित है कि अमोघवर्ष (प्रथम) के समय से इन राठोड़ों की राजधानी मान्यखेट हो गई थी, जो उनके अन्तिम समय तक बनी रही।

दक्षिण के राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) की वंशावली

निश्चित ज्ञात समय सहित



९–ध्रुवराज
शक सं० ७१५
(वि० सं० ८५०)

१०–गोविन्दराज़ (तृतीय)
शक सं० ७१६–७३५
(वि० सं० ८५१–८७०)

इन्द्रराज
(लाट का स्वामी हुआ)

स्तम्भराज

कर्क

११–अमोघवर्ष (प्रथम)
शक सं० ७३८–७९९
(वि० सं० ८७३–९३४)

१२–कृष्णराज (द्वितीय)
शक सं० ७९७[1]–८३२
(वि० सं० ९३२–९६७)

जगत्तुंग

१३–इन्द्रराज (तृतीय)
शक सं० ८३६–८३८
(वि० सं० ९७१–९७३)

१६–अमोघवर्ष (तृतीय)

१४–अमोघवर्ष (द्वितीय)

१५–गोविन्दराज (चतुर्थ)
शक सं० ८४०–८५६
(वि० सं० ९७५–९९१)

१७–कृष्णराज (तृतीय)
शक सं० ८६२–८८९
(वि० सं० ९९७–१०२४)

जगत्तुंग

१८–खोट्टिगदेव
वि० सं० १०२९

निरूपम

२०–इन्द्रराज (चतुर्थ)

१९–कर्कराज (द्वितीय)
शक० सं० ८९४–८९६ [वर्तमान].
(वि० सं० १०२९–१०३०)

---

(१) अमोघवर्ष के वृद्ध होने के कारण कृष्णराज राज्यकार्य करने लग गया था।

दक्षिण के राठोड़ों से फटे हुए लाट[1] (गुजरात) के राठोड़ राजाओं के ताम्रपत्रों में सबसे पुराना आंतरोली-छरोली का है, जो शक संवत् ६७९ (वि० सं० ८१४) आश्विन सुदि ७ (ई० स० ७५७ ता० २४ सितंबर) का है। उसमें क्रमशः कक्कराज, (कर्कराज) ध्रुवराज, गोविन्दराज और कक्कराज के नाम मिलते हैं[2]। इनमें से पहला तो दक्षिण का राजा था। ध्रुवराज उसके छोटे पुत्रों में से था, जिसके वंश में क्रमशः गोविन्दराज और कक्कराज हुए। दक्षिण के राठोड़ राजा दन्तिदुर्ग ने सोलंकियों से गुजरात का प्रदेश जीतकर अपने चचेरे भाई गोविन्दराज अथवा उसके पुत्र कक्कराज को दे दिया होगा। उक्त ताम्रपत्र में कक्कराज के विरुद परम-भट्टारक, महाराजाधिराज और परमेश्वर लिखे हैं, जो स्वतंत्र और बड़े राजा के द्योतक हैं, पर साथ ही उसे 'पांच महाशब्द' धारण करनेवाला भी लिखा है, जिससे पाया जाता है कि वह स्वतंत्र राजा नहीं, किन्तु सामन्त रहा होगा। कक्कराज के बाद इस शाखा का पता नहीं चलता। बड़ोदा के ताम्रपत्र में लिखा है—'दन्तिदुर्ग के बाद उसका चाचा कृष्णराज कुमार्ग पर चलनेवाले अपने एक कुटुम्बी को जड़ से उखाड़कर अपने वंश के लाभ के लिए राज्य करने लगा[3]।' अनुमान होता है कि उसने गुजरात के कक्कराज या उसके वंश का ही समूल नाश किया होगा।

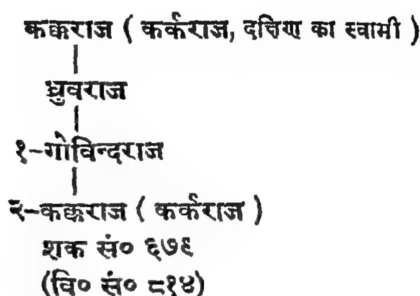
गुजरात के राठोड़ों की पहली शाखा

लाट (गुजरात) के राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) की पहली शाखा की वंशावली नीचे लिखे अनुसार है:—

(१) गुजरात का वह हिस्सा जो तापी और माही नदियों के बीच में है। उसकी सीमा समय-समय पर बदलती भी रही है।

(२) गैज़ेटियर ऑव् दि बॉम्बे प्रेसिडेन्सी; जि० १, भाग १, पृ० १२१।

(३) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १२, पृ० १५८।



गुजरात के राठोड़ों की दूसरी शाखा

१ और २—लाट (गुजरात) के राठोड़ों की दूसरी शाखा का इतिहास इन्द्रराज से प्रारम्भ होता है। वह दक्षिण के राठोड़ राजा ध्रुवराज का छोटा पुत्र था, जिसे बड़े भाई गोविन्दराज (तृतीय) के राज्य-काल में लाट (गुजरात) की जागीर मिली। उसके पुत्र कर्कराज के समय के बड़ोदा के ताम्रपत्र में लिखा है—'इन्द्रराज ने अपने पर चढ़ाई करनेवाले गुर्जरेश्वर (गुजरात का राजा, प्रतिहार) को हरिण की नाईं भगाया और जिन सामंतों का वैभव श्रीवल्लभ (दक्षिण का राठोड़ राजा गोविन्दराज, तृतीय) लूट रहा था, उनको बचाया'[1]।' इससे स्पष्ट है कि वह अपने बड़े भाई की कृपा से लाट जैसे बड़े देश का राजा बनते ही उसके विरोधियों का मददगार बन गया था। वह अधिक दिनों तक गद्दी पर न रहा, क्योंकि बड़ोदा के ताम्रपत्र के अनुसार शक सं० ७३४ (वि० सं० ८६९= ई० स० ८१२) में उसका पुत्र कर्कराज गुजरात का स्वामी था[2]। कर्कराज का अन्य विरुद अथवा नाम सुवर्णवर्ष भी मिलता है। तोरखेड़े के शक सं० ७३५ (वि० सं० ८७०) पौष सुदि ७ (ई० स० ८१३ ता० ४ दिसंबर) के ताम्रपत्र में कर्कराज

(१) इंडियन ऐंटिकेरी; जि० १२, पृ० १२८।
(२) वही; जि० १२, पृ० १२७।

के एक छोटे भाई का उल्लेख मिलता है[1]। उस (कर्कराज) के बड़ोदा से मिले हुए ताम्रपत्र से पाया जाता है कि गौड़ और बंगाल के राजाओं को जीतने के कारण अभिमानी बने हुए गुर्जरेश्वर (रघुवंशी प्रतिहार वत्सराज) के हाथ से बरबाद होते हुए मालवा के राजा को बचाने के लिए उसे उसके स्वामी (गोविन्दराज, तृतीय) ने भेजा[2]। कर्कराज अपने पिता के विपरीत राज्यभक्त बना रहा और अमोघवर्ष के हाथ से दक्षिण का राज्य चला जाने पर उसी ने विद्रोहियों को हराकर उसे फिर गद्दी पर बैठाया। कर्कराज के समय के शक सं० ७३४, ७३८[3], ७४३[4] और ७४६[5] (वि० सं० ८६९, ८७३, ८७८ और ८८१ = ई० स० ८१२, ८१६, ८२१ और ८२४) के ताम्रपत्र मिले हैं। उसकी मृत्यु होने पर उसके पुत्र ध्रुवराज[6] की अवस्था छोटी होने के कारण गोविंदराज (कर्कराज का भाई) राज्यकार्य संभालने लगा। कोई-कोई विद्वान् ऐसा भी मानते हैं कि वह अपने भतीजे की छोटी अवस्था देखकर उसका राज्य दबा बैठा था, परन्तु ऐसा मानना ठीक नहीं है, क्योंकि वह अपने ताम्रपत्रों[7] में अपने भाई (कर्कराज) की बड़ी प्रशंसा करता है और अपने को कहीं राजा नहीं

(१) एपिग्राफ़िया इन्डिका; जि० ३, पृ० ५३।

(२) इन्डियन ऐन्टिकेरी; जि० १२, पृ० १५७।

(३) जर्नल ऑव् दि बॉम्बे ब्राञ्च ऑव् दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी; जि० २०, पृ० १३५।

(४) एपिग्राफ़िया इन्डिका; जि० २१, पृ० १३३।

(५) वही; जि० २२, पृ० ७७।

(६) बड़ोदा से मिले हुए कर्कराज के शक सं० ७३४ (वि० सं० ८६९ = ई० स० ८१२) के दानपत्र में दूतक का नाम राजपुत्र श्रीदन्तिवर्मा लिखा है, जिससे कोई-कोई विद्वान् उसे भी कर्कराज का पुत्र मानते हैं। राजपुत्र का अर्थ राजा का पुत्र अथवा किसी भी राजवंशी का पुत्र होता है। दन्तिवर्मा कर्कराज का पुत्र अथवा किसी भी राजवंशी का पुत्र हो सकता है।

(७) गोविन्दराज के शक सं० ७३५ और ७४९ (वि० सं० ८७० और ८८४ = ई० स० ८१३ और ८२७) के दो दानपत्र मिले हैं (एपिग्राफ़िया इन्डिका; जि० ३, पृ० ५४ तथा इन्डियन ऐन्टिकेरी; जि० ५, पृ० १४५)।

लिखता। कर्कराज और उसके भाई गोविन्दराज के ताम्रपत्र लगभग एक ही समय के मिलते हैं, जिससे निश्चित है कि वह अपने भाई के राजत्वकाल में भी राज्यकार्य की देखरेख करता था अर्थात् ज़िलों का शासक रहा होगा। अतएव उस(कर्कराज)की मृत्यु होने पर ध्रुवराज की छोटी अवस्था होने के कारण वह उस समय भी राज्यकार्य संभालने लगा होगा। पीछे से ध्रुवराज ने अपने चाचा गोविन्दराज के प्रियपात्र ज्योतिषी भट्ट माहेश्वर के पुत्र योग को पूसिलावल्ली नामक गांव जागीर में दिया[1]। यदि गोविन्दराज ने अपने भाई का राज्य दवा लिया होता तो वह ऐसा कभी न करता। अतएव यही मानना पड़ेगा कि गोविन्दराज ने अपने भाई के मरने पर लाट का राज्य दबाया नहीं, अपितु अपने भतीजे की बाल्यावस्था के कारण राज्य का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया हो।

३,४,५ और ६—ध्रुवराज(प्रथम)के अन्य नाम अथवा विरुद निरुपम और धारावर्ष मिलते हैं। बड़ोदा के ताम्रपत्र के अनुसार शक सं० ७५७ (वि० सं० ८९२) कार्तिक सुदि १५ (ई० स० ८३५ ता० १० अक्टोबर) को वह गद्दी पर था[2]। वेगुमरा से मिले हुए शक सं० ७८९ (वि० सं० ९२४) [अमांत] ज्येष्ठ (पूर्णिमांत आषाढ) वदि अमावास्या (ई० स० ८६७ ता० ६ जून) के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि वह दक्षिण के राठोड़ राजा अमोघवर्ष (प्रथम) से वाग़ी हो गया, जिससे उस(अमोघवर्ष)-ने उसपर चढ़ाई कर दी[3]। संभवतः इसी लड़ाई में ध्रुवराज मारा गया हो। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र अकालवर्ष हुआ, जिसे शुभतुंग भी कहते थे। उक्त वेगुमरा के ताम्रपत्र में उसके विषय में लिखा है—'उसके दुष्ट सेवक उससे वदल गये तो भी उसने वल्लभ (अमोघवर्ष) के लश्कर से दवा हुआ अपने पूर्वजों का राज्य तुरंत ही हस्तगत कर लिया[4]।'

(१) इन्डियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १४, पृ० १९७।
(२) वही; जि० १४, पृ० १९९।
(३) वही; जि० १२, पृ० १७९।
(४) वही; जि० १२; पृ० १७९।

उसके तीन पुत्रों—ध्रुवराज, दंतिवर्मा और गोविन्दराज—के नाम मिलते हैं। उसका उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र ध्रुवराज (द्वितीय) हुआ, जिसका एक और नाम अथवा विरुद धारावर्ष मिलता है। उक्त बेगुमरा का दानपत्र उसी के समय का है, जिससे पाया जाता है कि उसे एक ही समय में अपने एक भाई और कतिपय कुटुंबियों का सामना करना पड़ा। उसे एक ओर दक्षिण के राठोड़ राजा वल्लभ, दूसरी ओर गुर्जरों (गुजरात के राजा) के सैन्य और तीसरी ओर राजा मिहिर की फ़ौज से लोहा लेना पड़ा। इन सब लड़ाइयों में उसका छोटा भाई गोविन्दराज उसका सहायक बना रहा। ऊपर आया हुआ गुजरात का राजा संभवतः उत्तरी गुजरात का राजा क्षेमराज चावड़ा रहा होगा, क्योंकि वह प्रदेश उस समय उसके ही अधिकार में था। मिहिर राजा कन्नौज का रघुवंशी प्रतिहार राजा भोजदेव था। उस (ध्रुवराज) के छोटे भाई दन्तिवर्मा का एक दानपत्र शक सं० ७८९ (वि० सं० ९२४) [अमांत] पौष (पूर्णिमांत माघ) वदि ६ (ई० स० ८६७ ता० २३ दिसम्बर) का मिला है[1]। दन्तिवर्मा अपने भाई के राज्यसमय में किसी प्रदेश का शासक रहा हो, ऐसा अनुमान होता है। शक सं० ८०६ (वि० सं० ९४१) मार्गशीर्ष सुदि २ (ई० स० ८८४ ता० २२ नवंबर) तक ध्रुवराज गद्दी पर था[2], जैसा कि उसके उक्त संवत् के दानपत्र से पाया जाता है।

उसका उत्तराधिकारी उसका भतीजा (दन्तिवर्मा का पुत्र) कृष्णराज हुआ, जिसके समय का शक सं० ८१० (वि० सं० ९४५) [अमांत] चैत्र (पूर्णिमांत वैशाख) वदि अमावास्या (ई० स० ८८८ ता० १५ अप्रेल) सूर्यग्रहण का एक दानपत्र मिला है[3]। उसने प्रतिहारों को उज्जैन में हराया था। गुजरात की दूसरी शाखा का वह अन्तिम राजा हुआ। उसके बाद उसके वंशवालों का क्या हुआ इसका कुछ पता नहीं चलता। उसका

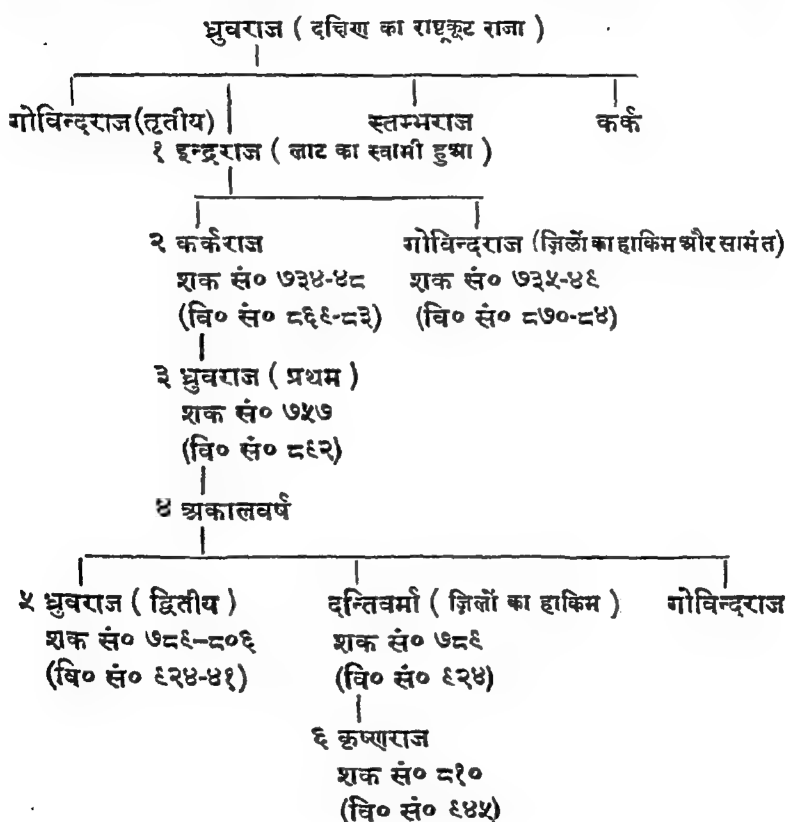
(१) एपिग्राफ़िया इन्डिका; जि० ६, पृ० २८७।

(२) वही; जि० २२, पृ० ६४।

(३) वही; जि० १३, पृ० ६६।

उत्कर्ष देखकर दक्षिण के राठोड़ राजा कृष्णराज (द्वितीय) ने उसपर चढ़ाईकर लाट का प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया।

लाट (गुजरात) के राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) की दूसरी शाखा की वंशावली



सौन्दत्ति के रट्ट (राठोड़)

यह ऊपर लिखा जा चुका है कि दक्षिण के राठोड़ों का महाराज्य

सोलंकी तैलप्प के हाथों नष्ट हुआ था। इतना होने पर भी राठोड़ों की कई छोटी शाखाओं का अस्तित्व बना रहा, जो सोलंकियों के अधीन रहीं। बम्बई अहाते के धारवाड़ ज़िले में राठोड़ों की एक जागीर का पता चलता है, जिसका मुख्य स्थान परसगढ़ तालुके का सौंदत्ति नाम का नगर था। उनकी दो शाखाओं का एक दूसरी के बाद होना पाया जाता है। वे अपने को बहुधा रट्ट लिखते और कभी-कभी राष्ट्रकूट शब्द का भी प्रयोग करते थे। वे अपने को राष्ट्रकूट कृष्ण के वंश में होना बतलाते हैं, जो ऊपर आये हुए दक्षिण के कृष्ण नाम के तीन राजाओं में से कोई एक होना चाहिये।

सौन्दत्ति के रट्टों की पहली शाखा

पहली शाखा में सर्वप्रथम नाम मेरड का मिलता है। उसके बाद क्रमशः पृथ्वीराम, पिट्टुग और शान्तिवर्मा हुए। शान्तिवर्मा का एक लेख शक सं० ९०२ (वि० सं० १०३७) पौष सुदि १० (ई० स० ९८० ता० १९ दिसंबर) का मिला है, जिसमें उसे तैलप का सामन्त लिखा है[१]। उसके बाद इस शाखा का उल्लेख नहीं मिलता।

सौन्दत्ति के रट्टों (राठोड़ों) की पहली शाखा का वंशवृक्ष

१-मेरड
|
२-पृथ्वीराम
|
३-पिट्टुग
|
४-शान्तिवर्मा
शक सं० ९०२
(वि० सं० १०३७)

(१) जर्नल ऑव् दि बॉम्बे ब्रांच ऑव् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी; जि० १०, पृ० २०४।

१ और २—सौंदत्ति के रट्टों (राठोड़ों) की दूसरी शाखा का प्रारम्भ नन्न से पाया जाता है। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र कार्तवीर्य (प्रथम) हुआ, जो तैलप्प के अधीन कुंडी प्रदेश का स्वामी था। उसके समय का शक सं० ९०२ (वि० सं० १०३७=ई० स० ९८०) का एक लेख मिला है[1], जिससे अनुमान होता है कि उसने ही रट्टों की पहली शाखा से राज्य छीनकर उसकी समाप्ति की होगी।

सौन्दत्ति के रट्टों की दूसरी शाखा

३, ४, ५ और ६—कार्तवीर्य (प्रथम) के बाद उसका पुत्र दायिम (दावरि) सौन्दत्ति के राज्य का स्वामी हुआ। दायिम का उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई कन्न (प्रथम) हुआ, जिसके बाद उसका पुत्र एरग (एरेग) गद्दी पर बैठा। एरग के समय का शक सं० ९६२ (वि० सं० १०९७) मार्गशीर्ष सुदि ५ (ई० स० १०४० ता० १२ नवंबर) का एक लेख मिला है[2], जिससे पाया जाता है कि वह सोलंकी जयसिंह (द्वितीय) का महासामन्त और लट्टलूर का हाकिम था। एरग का उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई अङ्क हुआ, जिसका शक सं० ९७० [गत शक सं० ९६९] (वि० सं० ११०४) [अमांत] पौष (पूर्णिमांत माघ) वदि ७ (ई० स० १०४८ ता० १० जनवरी) रविवार का एक लेख मिला है, जिसमें उसे सोलंकी त्रैलोक्यमल्ल (सोमेश्वर, प्रथम) का महासामन्त लिखा है[3]।

७, ८, ९, १० और ११—अंक के बाद उसका भतीजा (एरग का पुत्र) सेन (प्रथम) गद्दी पर बैठा। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र कन्न (द्वितीय) हुआ, जिसके समय का शक सं० १००४ (वि० सं० ११३९) कार्तिक सुदि १ (ई० स० १०८२ ता० २५ अक्टोबर) का ताम्रपत्र मिला है, जिसमें उसे सोलंकी विक्रमादित्य (छठा) का महासामन्त

(१) गैज़ेटियर ऑव् दि बॉम्बे प्रेसिडेन्सी; जि० १, भाग २, पृ० ५५३।

(२) इंडियन ऐंटिक्वेरी; जि० १६, पृ० १६१।

(३) जर्नल ऑव् दि बॉम्बे ब्रान्च ऑव् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी; जि० १०, पृ० १७२।

लिखा है[1]। उसके समय का एक लेख शक सं० १००६ (वि० सं० ११४४) [अमांत] पौष (पूर्णिमांत माघ) वदि १४ (? १३) (ई० स० १०८७ ता० २५ दिसम्बर) शनिवार का भी मिला है[2]। उसका उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई कार्तवीर्य (द्वितीय) हुआ। उसके पीछे उसका पुत्र सेन (द्वितीय) हुआ, जिसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र कार्तवीर्य (तृतीय) हुआ, जिसे कट्टम भी कहते थे। उसके समय के एक खण्डित लेख में उसकी उपाधियां महामण्डलेश्वर और चक्रवर्ती लिखी हैं[3], जिससे अनुमान होता है कि जिस समय सोलंकी राजा तैल (तृतीय) का राज्य उसके कलचुरिवंशी सामन्त विज्जल ने छीना, उस समय की अव्यवस्था से लाभ उठाकर कार्तवीर्य स्वतंत्र हो गया होगा। उसके समय के शक सं० १०६६[4] (वि० सं० १२०१), शक सं० १०८४[5] (वि० सं० १२१६) और शक सं० १०८६[6] (वि० सं० १२२१) के भी लेख मिले हैं।

१२, १३ और १४—उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र लक्ष्मीदेव (प्रथम) हुआ, जिसे लक्ष्मण और लक्ष्मीधर भी कहते थे। उसके पीछे उसका पुत्र कार्तवीर्य (चतुर्थ) सौंदत्ति का स्वामी हुआ, जिसके एक छोटे भाई मल्लिकार्जुन का नाम मिलता है। कार्तवीर्य के समय के शक सं० ११२१[7] (वि० सं० १२५६ = ई० स० ११६६), वर्तमान शक सं० ११२४ [गत शक सं० ११२३] (वि० सं० १२५८) वैशाख सुदि १५ (ई० स०

(१) एपिग्राफ़िया इन्डिका; जि० ३, पृ० ३०६।

(२) जर्नल ऑव् दि बॉम्बे ब्रांच ऑव् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी; जि० १०, पृ० २६७-८।

(३) जर्नल ऑव् दि बॉम्बे ब्रांच ऑव् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी; जि० १०, पृ० १८१।

(४) कर्णाटक देश इंस्क्रिप्शन्स; जि० २, पृ० ५४७।

(५) वही; जि० २, पृ० ५४८।

(६) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० ४, पृ० ११६।

(७) कर्णाटक देश इंस्क्रिप्शन्स; जि० २, पृ० ५६१।

१२०१ ता० २० अप्रेल) शुक्रवार[1], (वर्तमान) शक सं० ११२७ [गत शक सं० ११२६] (वि० सं० १२६१) पौष सुदि २ (ई० स० १२०४ ता० २५ दिसंबर) शनिवार[2], शक सं० ११३१ [गत शक सं० ११३०] (वि० सं० १२६५) कार्तिक सुदि १२ (ई० स० १२०८ ता० २२ अक्टोबर) बुधवार[3] और शक सं० ११४१ [गत शक सं० ११४०] (वि० सं० १२७५) माघ सुदि ७ (ई० स० १२१९ ता० २४ जनवरी) गुरुवार[4] के ताम्रपत्र और शिलालेख मिले हैं। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र लक्ष्मीदेव (द्वितीय) हुआ। उसके समय का एक लेख शक सं० ११५१ [गत शक सं० ११५०] (वि० सं० १२८५) [अमांत] आषाढ (पूर्णिमांत श्रावण) वदि अमावास्या (ई० स० १२२८ ता० ३ जुलाई) सोमवार सूर्यग्रहण का मिला है[5]। उसके बाद इस शाखा का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

सौंदत्ति के रट्टों (राठोड़ों) की दूसरी शाखा की वंशावली

१—नन्न
|
२—कार्तवीर्य (प्रथम)
शक सं० ९०२
(वि० सं० १०३७)

---

(१) ग्राहम; कोल्हापुर; पृ० ४१५, संख्या ९।

(२) जर्नल ऑव् दि बॉम्बे ब्रांच ऑव् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी; जि० १०, पृ० २२०।

(३) इंडियन ऐंटिक्वेरी; जि० १९, पृ० २४२।

(४) जर्नल ऑव् दि बॉम्बे ब्रांच ऑव् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी; जि० १०, पृ २४०।

(५) वही; जि० १०, पृ० २६०। आर्कियालाजिकल सर्वे रिपोर्ट्स (वेस्टर्न इन्डिया); जि० २, पृ० २२३ तथा जि० ३, पृ० १०७।

२-कार्तवीर्य (प्रथम)
शक सं० ६०२
(वि० सं० १०३७)

- ३-दायिम
- ४-कन्न (प्रथम)

(३-दायिम और ४-कन्न (प्रथम) के वंशज)

- ५-एरग
  शक सं० ६६२
  (वि० सं० १०६७)
  - ७-सेन (प्रथम)
    - ८-कन्न (द्वितीय)
      शक सं० १००४-१००६
      (वि० सं० ११३६-११४४)
    - ६-कार्तवीर्य (द्वितीय)
      - १०-सेन (द्वितीय)
        - ११-कार्तवीर्य (तृतीय)
          शक सं० १०६६-१०८६
          (वि० सं० १२०१-१२२१)
          - १२-लक्ष्मीदेव (प्रथम)
            - १३-कार्तवीर्य (चतुर्थ)
              शक सं० ११२१-११४०
              (वि० सं० १२५६-१२७५)
              - १४-लक्ष्मीदेव (द्वितीय)
                शक सं० ११५०
                (वि० सं० १२८५)
            - मल्लिकार्जुन
- ६-अङ्क
  शक सं० ६६६
  (वि० सं० ११०४)

मध्यभारत और मध्यप्रांतों के राष्ट्रकूट (राठोड़)

मध्य भारत और मध्य प्रांतों के राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—

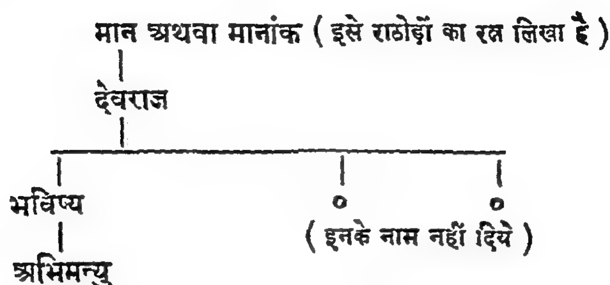
१–मानपुर के राठोड़
२–बेतुल के राठोड़ और
३–पथारी के राठोड़

राष्ट्रकूट अभिमन्यु के उंडीक वाटिका के दानपत्र में राठोड़ों की इस शाखा का उल्लेख मिलता है[1]। यह दानपत्र किस स्थान से मिला अथवा किस संवत् का है यह कुछ भी ज्ञात नहीं होता, परन्तु इसकी लिपि आदि को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह दानपत्र ई० स० की सातवीं शताब्दी के आस-पास का है। इससे पता चलता है कि अभिमन्यु ने यह दानपत्र मानपुर से जारी किया था, जो संभवतः उसकी राजधानी रही होगी। डा० फ़्लीट का अनुमान है कि यह मानपुर मालवे का मानपुर होना चाहिये, जो मऊ से बारह मील दक्षिण-पूर्व में है और जिसे उक्त राठोड़ शाखा के प्रवर्तक मानांक ने बसाया होगा। इस शाखा का दक्षिण के प्रतापी राठोड़ों से क्या सम्बन्ध था, यह कहना कठिन है। अभिमन्यु के दानपत्र में उसका राज्य-चिह्न शेर दिया है और मान्यखेट के राठोड़ों का राज्यचिह्न शिव अथवा गरुड़ था। इन दोनों घरानों के नामों में भी समानता नहीं दिखाई पड़ती।

मानपुर के राठोड़

(१) एपिग्राफ़िया इन्डिका; जि० ८, पृ० १६३।

मानपुर के राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) की वंशावली



बेतुल के राठोड़

राष्ट्रकूटों की इस शाखा का उल्लेख नन्नराज के तिवरखेड़[१] के दानपत्र में मिलता है। यह दानपत्र शक संवत् ५५३ (वि० सं० ६८८ = ई० स० ६३१) का है और इसमें नन्नराज के प्रपितामह दुर्गराज से लगाकर नन्नराज तक की वंशावली दी है[२]। नन्नराज बड़ा वीर था और उसे युद्धशूर भी कहते थे। उन राजाओं में से किसी के साथ बड़े राजा का खिताब न होने से यह अनुमान होता है कि वे किसी बड़े राजा के सामंत रहे होंगे। उनका राज्यचिह्न गरुड़ है, जो मान्यखेट के राठोड़ों का है और मान्यखेटवालों के नाम के साथ उनके नामों की समानता है, अतएव यह भी माना जा सकता है कि कदाचित् वे मान्यखेटवाले राष्ट्रकूटों के पूर्वज या संबंधी रहे हों।

इन राष्ट्रकूटों का उल्लेख मुलताई के दानपत्र में भी आता है, जो शक संवत् ६३१ (वि० सं० ७६६ = ई० स० ७०६) का है। इसमें भी नन्नराज तक के वही चार नाम हैं, जो तिवरखेड़ के ताम्रपत्र में आये हैं[३]। फ्लीट ने यह दानपत्र नंदराज के समय का माना है, पर मूललेख की छाप

(१) मध्यप्रांत में मुलताई तहसील में।

(२) एपिग्राफ़िया इन्डिका; जि० ११, पृ० २७६।

(३) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १८, पृ० २३०।

पढ़ने से यह निश्चित हो जाता है कि फ़्लीट ने इसके पढ़ने में ग़लती की है और यह नाम नन्नराज है। अतएव तिवरखेड़ और मुलताई दोनों स्थानों के दानपत्र एक ही व्यक्ति नन्नराज के समय के लिखे हुए होने चाहियें, पर ऐसी दशा में दोनों ताम्रपत्रों के लिखे जाने के समय में ७८ वर्ष का अन्तर आता है। नन्नराज का इतने समय तक गद्दी पर रहना कल्पना में नहीं आता। ऐसी दशा में यही कहना पड़ेगा कि या तो मुलताई का दानपत्र फ़र्ज़ी है अथवा उसमें दिया हुआ संवत् ग़लत है।

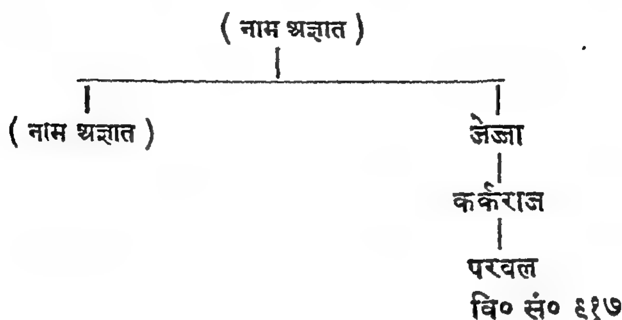
बेतुल के राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) की वंशावली

१–दुर्गराज
|
२–गोविंदराज
|
३–स्वामिकराज
|
४–नन्नराज
शक सं० ५५३
(वि० सं० ६८८)

पथारी के राष्ट्रकूट (राठोड़)

राष्ट्रकूटों की इस शाखा का उल्लेख राजा परबल के पथारी (भोपाल-राज्य) के प्रस्तर-स्तम्भ पर खुदे हुए लेख में मिलता है। यह शिलालेख वि० सं० ६१७ (चैत्रादि ६१८) चैत्र सुदि ६ (ई० स० ८६१ ता० २१ मार्च) शुक्रवार का है और इसमें जेज्ज से लगाकर परबल तक की वंशावली दी है[1]। जेज्ज के बड़े भाई ने कारणाट (करनाटक) की सेना को परास्तकर लाट देश पर अधिकार कर लिया था और उस(जेज्ज)के पुत्र कर्कराज ने वीरतापूर्वक लड़कर नागावलोक को हराया था। कीलहार्न के मतानुसार नागावलोक कन्नौज का रघुवंशी प्रतिहार नागभट (द्वितीय) रहा होगा।

पथारी के राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) की वंशावली



विहार के राष्ट्रकूट (राठोड़)

बुद्ध गया के राष्ट्रकूट

बुद्ध गया से एक लेख विना संवत् का मिला है, जिसमें राष्ट्रकूटों के नीचे लिखे नाम मिलते हैं[२]—

१–नन्न (गुणावलोक),

२–कीर्तिराज (नं० १ का पुत्र)

३–तुंग(धर्मावलोक, नं० २ का पुत्र)।

ये राष्ट्रकूट राजा कहां के थे और किस समय हुए इसका कुछ हाल लिखा हुआ नहीं मिलता। बंगाल के पालवंशी राजा नारायणपाल के पुत्र राज्यपाल की राणी भाग्यदेवी राष्ट्रकूट तुंग की पुत्री थी, ऐसा उसके वंशज महीपालदेव के ताम्रपत्र से पाया जाता है। संभवतः भाग्यदेवी बुद्ध गया के लेख के राठोड़ तुंग की पुत्री हो।

कन्नौज के गाहड़वाल राजा गोविन्दचन्द्र (ई० स० ११९४-११५४) की राणी कुमारदेवी के सारनाथ के शिलालेख में उसके नाना का नाम

(१) एपिग्राफ़िया इन्डिका; जि० ६, पृ० २४८।

(२) राजेन्द्रलाल मित्र; बुद्ध गया; पृ० १९३।

महण दिया है। बंगाल के पालवंशी राजा रामपाल का मामा राष्ट्रकूट मथन (महण) था, ऐसा सन्ध्याकर नंदी के "रामचरित" नामक काव्य से पाया जाता है। संभव है कि उपर्युक्त लेखवाला महण और "रामचरित" में आया हुआ राष्ट्रकूट मथन (महण) एक ही व्यक्ति हो।

संयुक्त प्रान्तों के राष्ट्रकूट (राठोड़)

कन्नौज के प्रतापी गाहड़वाल राजाओं के साम्राज्य के अन्तर्गत बदायूं से एक शिलालेख मिला है। उससे पाया जाता है कि पांचाल देश के आभूषण रूप वोदामयूता (बदायूं) नामक नगर में पहला राष्ट्रकूट राजा चन्द्र हुआ। उसका पुत्र विग्रहपालदेव बड़ा प्रतापी हुआ, जिसके बाद क्रमशः भुवनपाल और गोपाल हुए। गोपाल के तीन पुत्र—त्रिभुवनपाल, मदनपाल और देवपाल—थे, जो क्रमशः उक्त राष्ट्रकूट राज्य के स्वामी हुए। देवपाल के बाद क्रमशः भीमपाल और शूरपाल हुए। शूरपाल के दो पुत्र—अमृतपाल और लखनपाल—थे, जिनमें से लखनपाल के समय का यह शिलालेख है[1]।

बदायूं के राष्ट्रकूट

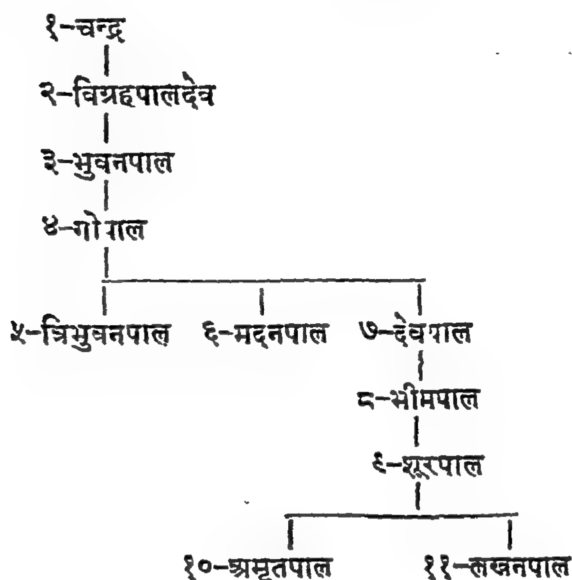
बदायूं पर मुसलमानों का अधिकार कुतुबुद्दीन ऐबक के समय में हुआ था। वहां का पहला हाकिम शम्सुद्दीन अल्तमश हुआ, जो पीछे से दिल्ली का सुलतान बना। बदायूं की जुमा मसजिद के दरवाज़े पर शम्सुद्दीन के समय का हि० स० ६२० (वि० सं० १२८० = ई० स० १२२३) का एक लेख खुदा है,[2] अतएव राठोड़ों का उपर्युक्त लेख वि० सं० १२८० (ई० स० १२२३) से पूर्व का होना चाहिये।

---

(१) एपिग्राफ़िया इन्डिका; जि० १, पृ० ६१।

(२) कनिंगहाम; आर्कियालाजिकल सर्वे ऑव् इंडिया; जि० ११, पृ० ५, प्लेट संख्या ४। आर्कियालाजिकल सर्वे ऑव् नार्दर्न इंडिया; जि० १, पृ० ७१।

बदायूं के राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) की वंशावली



इस लेख से ऊपर आये हुए राष्ट्रकूट राजाओं के नामों के अतिरिक्त और कोई वृत्त ज्ञात नहीं होता और न इससे उनमें से किसी के समय का ही पता चलता है। श्रावस्ती से मिले हुए वि० सं० ११७६ (ई० स० ११११) के वास्तव्य वंशीय विद्याधर के लेख से इस सम्बन्ध में कुछ विशेष प्रकाश पड़ता है। उससे पाया जाता है कि वह (विद्याधर) मदनपाल का मंत्री था और उसका पिता जनक (वास्तव्यवंशी विल्वशिव का पुत्र) गाधीपुर (कन्नौज) के राजा गोपाल का मंत्री था[1]। कन्नौज के गाहड़वाल राजाओं में गोपाल नाम का कोई राजा नहीं हुआ। बदायूं के राष्ट्रकूटों के शिलालेख में गोपाल और उसके दूसरे पुत्र मदनपाल के नाम आये हैं। अतएव अधिक संभव तो यही है कि विद्याधर बदायूं के राष्ट्रकूट

(१) इंडियन ऐंटिक्वेरी; जि० १७, पृ० ६२।

राजा मदनपाल का और उसका पिता जनक मदनपाल के पिता गोपाल का, जिसे गाधीपुर का राजा लिखा है, मंत्री रहा होगा। यह लेख वि० सं० ११७६ का है, अतएव हम मदनपाल का समय उक्त समय के आस पास स्थिर कर सकते हैं। यदि हम प्रत्येक राजा का औसत राज्य-समय २० वर्ष मान लें तो मदनपाल के भाई त्रिभुवनपाल का वि० सं० ११५६ के और उसके पिता गोपाल का वि० सं० ११३६ के आस-पास विद्यमान रहना स्थिर होता है। इस हिसाब से यह अनुमान होता है कि बदायूं की उक्त राठोड़ शाखा का प्रवर्तक चन्द्र वि० सं० १०७६ के लगभग विद्यमान रहा होगा।

कन्नौज के प्रतिहार राजा राज्यपाल के समय वि० सं० १०७५ (ई० स० १०१८) में महमूद ग़ज़नवी की चढ़ाई कन्नौज पर हुई। तब से ही वहां के प्रतिहारों का राज्य निर्बल होने लगा और दिन-दिन उसकी अवनति होने लगी। उस समय की प्रतिहारों की निर्बलता से लाभ उठाकर बदायूं के राष्ट्रकूट राजा गोपाल ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया, परन्तु उसका अधिकार अधिक दिनों तक वहां रहा हो ऐसा अनुमान नहीं होता क्योंकि गाहड़वाल (गहरवार) यशोविग्रह के पौत्र और महीचन्द्र के पुत्र चन्द्रदेव ने सारा पांचाल देश विजयकर कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया था। उस (चन्द्रदेव) के दानपत्र वि० सं० ११४८ से लगाकर ११५६ (ई० स० १०९१ से १०९९) तक के मिले हैं, जिससे अनुमान होता है कि वह बदायूं के चौथे राष्ट्रकूट राजा गोपाल का समकालीन रहा होगा और उससे अथवा उसके पुत्र से उसने कन्नौज लिया होगा।

काठियावाड़ के राष्ट्रकूट

जूनागढ़ राज्य के वनथली नामक स्थान से मिला हुआ एक शिलालेख राजकोट म्यूज़ियम् में रक्खा हुआ है, जिसके ऊपर का बांई तरफ़ का कुछ अंश जाता रहा है। उसमें वहां के राष्ट्रकूट सामन्तों के नाम

क्रमशः उद्दल, जैत्रसिंह और भीमसिंह मिलते हैं[1]। भीमसिंह की पुत्री नागलदेवी का विवाह किसी अन्य वंश (वंश के नाम का पता नहीं चलता) के क्षेमानन्द के पुत्र विजयानन्द से हुआ था। क्षेमानन्द का विवाह चौलुक्य (वघेल) वीरधवल की पुत्री प्रीमलदेवी से हुआ था। चौलुक्य वीरधवल का देहांत वि० सं० १२९४ (ई० स० १२३८) में हुआ था। अतएव वि० सं० १२६० के आस-पास राष्ट्रकूट भीमसिंह का विद्यमान होना अनुमान होता है और उसके पिता तथा दादा का उससे पूर्व।

काठियावाड़ के राष्ट्रकूटों से सम्बन्ध रखनेवाला एक दूसरा शिलालेख वि० सं० १३४६ (चैत्रादि १३४७) [अमांत] वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) वदि ६ (ई० स० १२९० ता० १ मई) सोमवार का चौलुक्य (वघेल) सारंगदेव के समय का वनथली से मिला है, जिसमें राष्ट्रकूट मल्ल और हरिपाल के नाम मिलते हैं[2]। हरिपाल उपर्युक्त क्षेमानन्द के पुत्र विजयानन्द के लिए लड़ा था। ये राष्ट्रकूट उपर्युक्त काठियावाड़ के राठोड़ों के वंशधर रहे होंगे।

---

(१) दि एनल्स ऑव् दि भंडारकर इन्स्टिट्यूट; जि० ५, पृ० १७१-६।

(२) वही; जि० ५, पृ० १७४ का टिप्पण।

वि० सं० १४०० (ई० स० १३४३) के पीछे मारवाड़ के राठोड़ों के वंशधर काठियावाड़ में पहुंचे। वाढेल ने छल से द्वारिका और बेट के स्वामियों को मारकर वहां अधिकार कर लिया। उसके वंश के वाढेले राठोड़ कहलाये। वेजा ने दक्षिणी तट पर अधिकार कर गीर (जूनागढ़ राज्य) के दक्षिण की रावल नदी के किनारे अपने नाम से वैजलकोट बसाया। उसके वंशज वाजा राठोड़ कहलाये। वैजलकोट से आगे बढ़कर उन्होंने ऊना (जूनागढ़) लिया और अपने राज्य का पूर्व में झांझमेर और मनारी तक प्रसार किया, परन्तु पीछे से उन्हें आसियों ने निकाल दिया। तब उन्होंने भावनगर राज्य की शरण ली, जहां पर वे अब छोटे-छोटे जमींदार हैं।

वि० सं० १४४२ (ई० स० १३८५) का एक लेख वेरावल (जूनागढ़ राज्य) से मिला है, जिसमें राष्ट्रोड़ (राठोड़) वंशी धर्म का नाम मिलता है (नागरी प्रचारिणी पत्रिका नवीन संस्करण; भाग ४, पृ० ३४७)। वह काठियावाड़ के राठोड़ों की किस शाखा में से था यह कहा नहीं जा सकता।

गुर्जरेश्वर पुरोहित सोमेश्वर स्वरचित "कीर्तिकौमुदी" नामक काव्यग्रन्थ में गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव दूसरे के समय की उसके राज्य की दुर्दशा का वर्णन करते हुए लिखता है कि राष्ट्रकूटवंशी वीर प्रतापमल्ल आज नहीं है, जो शत्रुओं का निकट आना सहन नहीं कर सकता था, जैसे गन्ध हस्ती शत्रुओं के मदमत्त हाथियों की गन्ध को सहन नहीं कर सकता। प्रतापमल्ल सोलंकियों का कोई वीर सामन्त होना चाहिये। उसकी जागीर कहां थी, इसका कुछ भी पता नहीं चलता। इस प्रतापमल्ल का समय भीमदेव (?) की गद्दीनशीनी अर्थात् वि० सं० १२३५ (ई० स० ११७८) के निकट या कुछ पूर्व होना चाहिये।

राजपूताने के पहले के राष्ट्रकूट (राठोड़)

राजपूताने के कुछ हिस्सों में राष्ट्रकूटों का प्राचीन काल में भी राज्य होना पाया जाता है। वहां के पहले के राष्ट्रकूट राजाओं को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) हस्तिकुंडी (हथुंडी) के राठोड़

(२) धनोप के राठोड़

(३) बागड़ के राठोड़

ये राठोड़ गुजरात के राठोड़ों की नाई दक्षिण के राठोड़ों के ही वंशज रहे हों, ऐसा अनुमान होता है।

हस्तिकुंडी (हथुंडी, मारवाड़ के गोड़वाड़ इलाके में) से लाकर बीजापुर में रक्खे हुए दो विभाग के एक शिलालेख से हस्तिकुंडी में राठोड़ों का राज्य होना पाया जाता है। इस राठोड़ शाखा के सबसे पहले राजा का नाम हरिवर्मा मिलता है, जिसका पुत्र विदग्धराज वि० सं० ९७३ (ई० स० ९१६) में विद्यमान था। उसने हस्तिकुंडी में एक चैत्यगृह (जैन मन्दिर) बनवाया। उसका पुत्र मम्मट हुआ, जो वि० सं० ९९६ (ई० स० ९३९) में राजगद्दी

हस्तिकुंडी के राठोड़

पर था। मम्मट का पुत्र धवल बड़ा वीर था। उसने मालवे के परमार राजा मुंज की मेवाड़ पर चढ़ाई होने पर मेवाड़वालों की सहायता की, दुर्लभराज (सांभर का चौहान) से महेन्द्र (नाडोल का चौहान) को बचाया और धरणीवराह (आबू का परमार राजा) को आश्रय दिया, जिसको मूलराज (गुजरात का सोलंकी राजा) जड़ से उखाड़ना चाहता था। उक्त लेख से पाया जाता है कि उसके लिखे जाने अर्थात् वि० सं० १०५३ माघ सुदि १३ (ई० स० ९९७ ता० २४ जनवरी) रविवार को धवल विद्यमान था। उसकी राजधानी हस्तिकुंडी थी। वृद्ध होने पर उसने बालप्रसाद को अपना उत्तराधिकारी बनाया[1], जिसके बाद का कोई हाल नहीं मिलता।

हथुंडी के राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) की वंशावली

१-हरिवर्मा
|
२-विदग्धराज (वि० सं० ९७३ = ई० स० ९१६)
|
३-मम्मट (वि० सं० ९९६ = ई० स० ९३९)
|
४-धवल (वि० सं० १०५३ = ई० स० ९९७)
|
५-बालप्रसाद

बालप्रसाद के पीछे भी हथुंडी के राठोड़ इधर विद्यमान थे और अब भी हैं। वे हथुंडिये राठोड़ कहलाते हैं। सिरोही राज्य के कांटल (पींडवाड़ा के पास) गांव के निकट के एक शिवालय के बाहर खड़े हुए स्तम्भ पर खुदे हुए वि० सं० १२७४ माघ सुदि १५ (ई० स० १२१८ ता० १३ जनवरी) शनिवार चंद्रग्रहण के लेख में हथुंडिया राठउड़ (राठोड़) आना और उसके पुत्र लखणसी, कमण तथा शोभा के नाम मिलते हैं[2]।

(१) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० १०, पृ० २०।

(२) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० ४६, पृ० ३१।

सिरोही राज्य के नांदिया गांव के विशाल जैन मंदिर के स्तम्भ पर वि० सं० १२६८ पौष सुदि ३ (ई० स० १२४१ ता० ७ दिसंबर) का लेख है, जिसमें राठउड़ (राठोड़) पुनसी, उसके पुत्र कमण और पौत्र भीम के नाम मिलते हैं[1]। ये भी हथुंडिये राठोड़ होने चाहियें।

नाडोल के चौहान राजा आल्हणदेव की स्त्री अन्नलदेवी राष्ट्रौड़ (राठोड़) सहुल की पुत्री थी[2]। यह सहुल भी हथुंडिया राठोड़ होना चाहिये।

मेवाड़ के राजा भर्तृपट्ट (भर्तृभट्ट दूसरा) की राणी महालक्ष्मी राष्ट्रकूट (राठोड़) वंश की थी[3]। यह भी हथुंडी के किसी राठोड़ राजा की पुत्री होनी चाहिये। हम ऊपर लिख आये हैं कि हथुंडी के राठोड़ राजा धवल ने मालवे के राजा मुंज की मेवाड़ पर चढ़ाई होने के समय मेवाड़ के राजा की सहायता की थी, जो संभवतः मेवाड़ और हथुंडी के परस्पर के सम्बन्ध के कारण हो।

धनोप के राठोड़

राठोड़ों की इस शाखा का उल्लेख राठोड़ चच्च के धनोप (शाहपुरा) के वि० सं० १०६३ वैशाख सुदि ५ (ई० स० १००६ ता० ५ अप्रेल) के शिलालेख में मिलता है[4]। उसके अनुसार राठोड़ भल्लील हुआ, जिसका पुत्र दन्तिवर्मा था। उसके बाद क्रमशः उसके दो पुत्र—बुद्धराज और गोविन्द—हुए, जिनमें से किसी एक का वंशधर चच्च था। संभव है कि धनोप के राठोड़ दक्षिण के राठोड़ों के वंशज रहे हों। उनके नाम भी इसकी पुष्टि करते हैं।

नौगामा (बांसवाड़ा) गांव के निकट के एक नाले के किनारे एक स्मारक स्तम्भ खड़ा है, जिसके ऊपर के भाग में हाथ में तलवार लिये हुए

---

(१) राजपूताना म्यूज़ियम् (अजमेर) की रिपोर्ट; ई० स० १६२३-४, पृ० ३।

(२) वि० सं० १२१८ (ई० स० ११६१) का नाडोल के चौहान कीर्तिपाल का दानपत्र (इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० ४०, पृ० १४६)।

(३) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० १ (प्रथम संस्करण), पृ० ४२४।

(४) इण्डियन ऐन्टिक्वेरी; जि० ४०, पृ० १७५।

बागड़ के राठोड़

एक वीर पुरुष की आकृति बनी है और नीचे के भाग में लेख खुदा है[1]। लेख का आशय यह है कि वि० सं० १३६१ वैशाख वदि……(ई० स० १३०५ अप्रेल) को राठोड़ राका का पुत्र वीरम [स्वर्ग को सिधारा]। ये राठोड़ बागड़िये राठोड़ कहलाते थे। मेवाड़ के छप्पन ज़िले में, जो बागड़ से मिला हुआ है, पुराने समय से राठोड़ रहते हैं, जो छप्पनिये राठोड़ कहलाते हैं। ये राठोड़ बागड़िये राठोड़ों के ही वंशधर होने चाहियें। महाराणा उदयसिंह के समय मेवाड़वालों का छप्पन पर अधिकार हुआ था।

(१) मूल लेख की छाप से।

चौथा अध्याय

राठोड़ और गाहड़वाल (गहरवार)

राठोड़ों और गाहड़वालों के सम्बन्ध में एक भ्रान्तिमूलक धारणा फैली हुई है, जिसका निराकरण करना आवश्यक है। कुछ लोगों का ऐसा मानना है कि ये दोनों एक ही वंश के विभिन्न नाम हैं और एक ही जाति के सूचक हैं। इस धारणा की उत्पत्ति का मूल चन्द वरदाई-कृत "पृथ्वीराज रासा" है, जिसमें उसने कन्नौज के राजा विजयचन्द्र और जयचन्द्र को, जो गाहड़वाल थे, कमधज्ज तथा राठोड़ लिखा है[1]। उसके आधार पर कर्नल टॉड ने भी उक्त राजाओं को राठोड़ ही मान लिया[2] और वास्तविक इतिहास के अज्ञान में भाटों आदि ने भी अपनी वंशावलियों आदि में उन्हें राठोड़ लिख दिया। परिणाम यह हुआ कि राजपूताने के वर्तमान राठोड़ भाटों आदि के कथन को प्रामाणिक मानकर अपने आपको गाहड़वाल जयचन्द्र का वंशज मानते हैं।

कुछ समय पूर्व तक मैं भी टॉड के कथनानुसार राठोड़ों को गाहड़वालों का ही वंशज मानता था, पर क्रमशः इतिहास-क्षेत्र में शोध की वृद्धि होने के फल-स्वरूप इस सम्बन्ध में नई बातें प्रकाश में आईं, जिससे मुझे अपना पूर्व मत बदलने पर बाध्य होना पड़ा। टॉड-कृत "राजस्थान" के प्रकाश में आने के बाद भारतीय विद्वानों में भी इतिहास-प्रेम की जागृति

---

(१) कमधज्ज के लिए देखो 'पृथ्वीराज रासा' (नागरी प्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित); समय ४९, पृ० १२९९ और राठोड़ के लिए समय १, पृ० ९४ तथा समय ५९, पृ० १४१७। ये दोनों शब्द 'पृथ्वीराज रासा' में कई जगह आये हैं।

(२) टॉड राजस्थान (ऑक्सफ़र्ड संस्करण); जि० १, पृ० १०९।

हुई और यहां के निवासियों में वास्तविक इतिहास जानने की रुचि पढ़ी। शनैः-शनैः शोध का कार्य आगे बढ़ा और कितने ही नये महत्वपूर्ण लेखों, ताम्रपत्रों आदि का पता चला।

कन्नौज के राजाओं के पहले के प्रकाशित ताम्रपत्रों में उनका वंशपरिचय नहीं दिया था, जिससे बहुत समय तक टॉड के कथनानुसार सब विद्वान् उन्हें राठोड़ वंश का ही मानते रहे, पर पीछे से राजा गोविन्दचंद्र के कितने ही ऐसे ताम्रपत्र मिले, जिनमें उसे गाहड़वाल वंश का बतलाया है[1]। इसी प्रकार गोविन्दचंद्र की राणी कुमारदेवी के शिलालेख में भी उन्हें गाहड़वाल ही लिखा है[2]। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जयचन्द्र और उसके पूर्वज गाहड़वाल वंश के थे। इस ओर सर्वप्रथम विद्वानों का ध्यान आकर्षित करने का श्रेय डाक्टर हॉर्नली को है, जिसने गाहड़वालों को राठोड़ों से भिन्न बतलाने का प्रयत्न किया है[3]।

भाटों आदि का यह कथन कि जयचंद्र आदि राठोड़ थे प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। इस बात के लिए "पृथ्वीराज रासा" के अतिरिक्त उनके पास और कोई आधार नहीं है। यही कारण है कि उनकी वंशावलियों में दो नामों को छोड़कर शेष सभी नाम और संवत् कल्पित दिये हुए हैं। जयचन्द्र के पुत्र हरिश्चन्द्र का मछली शहर से वि० सं० १२५३ (ई० स० ११९६) का

(१) बसही का वि० सं० ११६१ का ताम्रपत्र
(इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १४, पृ० १०३);
कमोली का वि० सं० ११६२ का ताम्रपत्र
(एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० २, पृ० ३५९);
राहन का वि० सं० ११६६ का दानपत्र
(इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १८, पृ० १५);
आदि।

(२) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० ९, पृ० ३२३।

(३) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १४, पृ० ८९।

दानपत्र मिला है[1], परन्तु भाटों की वंशावलियों में उसका नाम भी नहीं मिलता, जिसका कारण यही है कि उनकी वंशावलियां "पृथ्वीराज रासा" के आधार पर ही बनी हैं, जिसमें उसका नाम नहीं है। वर्तमान रूप में मिलनेवाले वि० सं० की सोलहवीं सदी के आस-पास के बने हुए "पृथ्वीराज रासा" के विषय में यहां इतना कह देना अप्रासंगिक न होगा कि वह केवल कवि-कल्पना है। उसमें दी हुई कुछ घटनाएं भले ही ऐतिहासिक हों, पर अधिकांश काल्पनिक ही हैं। फलतः प्रगतिशील इतिहास के लिए यह ग्रन्थ सर्वथा उपयोगी नहीं कहा जा सकता।

भाटों को वास्तविकता का ज्ञान न होने के कारण उनके प्राचीन इतिहास-संबंधी वर्णन अधिकांश अशुद्ध और काल्पनिक हैं। उन्होंने गाहड़वाल वंशियों को ही राठोड़ वंशी लिखने में ग़लती खाई, इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने कई दूसरे वंशों का वर्णन भी ऐसा ही निराधार लिख दिया है। काठियावाड़ के गोहिल वस्तुतः मेवाड़ के सूर्यवंशी गुहिल राजा शालिवाहन के वंशज हैं और मारवाड़ के खेड़ इलाक़े से ही उधर गये हैं[2]। गिरनार (काठियावाड़) के यादव राजाओं के सम्बन्ध के वि० सं० की पंद्रहवीं-शताब्दी के आस-पास के बने हुए "मण्डलीक-महाकाव्य" में उन्हें सूर्यवंशी ही लिखा है[3], पर भाटों ने उनको चंद्रवंशी तथा शक संवत् के प्रवर्तक शालिवाहन का, जिसको जैन लेखक लकड़हारा[4] या कुम्हार का

(१) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० १०, पृ० ६५।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ४५७-६०। कालीदास देवशंकर पंड्या; गुजरात राजस्थान (गुजराती); पृ० ३४६। अमृतलाल गोवर्द्धनदास शाह और काशीराम उत्तमराम पंड्या; हिन्द राजस्थान (गुजराती); पृ० ११३। मार्कंड एन० मेहता ऐंड मनु एन० मेहता; हिन्द राजस्थान (अंग्रेज़ी); पृ० ४८७। नागरी प्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण); जि० ३, पृ० ३६१-२।

(३) गंगाधर; मंडलीक महाकाव्य; सर्ग ६, श्लोक २३। मूल अवतरण के लिए देखो मेरा 'राजपूताने का इतिहास'; जि० २, पृ० १३५५ टि० ३।

(४) मेरुतुंग; प्रबन्धचिन्तामणि (सातवाहन, शालिवाहन प्रबन्ध); पृ० १० (निर्णयसागर संस्करण)।

पुत्र[1] मानते हैं, वंशधर बना लिया[2]। पोरबन्दर (काठियावाड़) के जेठवा राजाओं को, जो कन्नौज के रघुवंशी प्रतिहारों के वंशधर हैं, भाटों ने हनुमान का वंशज माना है[3]। वि० सं० की छठी से सोलहवीं शताब्दी तक सोलंकी अपने को चंद्रवंशी ही मानते थे[4]। उनको भाटों ने अग्निवंशी लिख दिया[5]। मारवाड़ और कन्नौज के प्रतापी प्रतिहारों को, जो अपने को सूर्यवंशी लिखते रहे[6] तथा चौहानों को, जिनको बीसलदेव (चतुर्थ) के समय के चौहानों के इतिहास के शिलाओं पर खुदे हुए एक संस्कृत काव्य[7] तथा पृथ्वीराज (तृतीय) के "पृथ्वीराज विजय महाकाव्य[8]" में सूर्यवंशी लिखा है, भाटों ने अग्निवंशी मान लिया[9]। अब ये सब अपने को, जैसा भाटों ने लिखा, वैसा ही मानने लगे हैं। भाटों की तैयार की हुई गाहड़वालों की वंशावली और संवत् कहां तक कल्पित हैं, यह नीचे दिये हुए नक़्शे से स्पष्ट हो जायगा—

---

(१) राजशेखर; चतुर्विंशति प्रबन्ध (प्रबन्धकोष); पत्र ७३-८२ । श्रीहेमचन्द्राचार्य ग्रन्थावली; संख्या २० ।

(२) कालीदास देवशंकर पंड्या; गुजरात राजस्थान (गुजराती); पृ० २४६ । अमृतलाल गोवर्द्धनदास शाह और काशीराम उत्तमराम पंड्या; हिन्द राजस्थान (गुजराती); पृ० ११२ । मार्कंड एन० मेहता ऐंड मनु एन० मेहता; हिन्द राजस्थान (अंग्रेज़ी); पृ० ४८७ ।

(३) गैज़ेटियर ऑव् दि बॉम्बे प्रेसिडेन्सी; जि० १, भाग १, पृ० १३५ । कालीदास देवशंकर पंड्या; गुजरात राजस्थान; पृ० २५३ । अमृतलाल गोवर्द्धनदास शाह और काशीराम उत्तमराम पंड्या; हिन्द राजस्थान; पृ० १६५ । मार्कंड एन० मेहता ऐंड मनु एन० मेहता; हिन्द राजस्थान; पृ० ७०२ ।

(४) देखो मेरा "सोलंकियों का प्राचीन इतिहास"; भाग १, प्रकरण १, पृ० १-१३ ।

(५) पृथ्वीराज रासा; समय १, पृ० ५४-५ ।

(६) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० १ (द्वितीय संस्करण); पृ० ७४-५ ।

(७) वहीं; जि० १ (द्वितीय संस्करण); ७२ और ७३ टि० १ ।

(८) वही; जि० १ (द्वितीय संस्करण); पृ० ७१, टि० १ ।

(९) पृथ्वीराज रासा; समय १, पृ० ५४-५ ।

जोधपुर राज्य की ख्यात से नाम	ख्यात में दिया हुआ समय	ताम्रपत्रादि से नाम	ताम्रपत्रादि से निश्चित ज्ञात समय
सेतुग	... ...	यशोविग्रह	... ...
भरथ	वि० सं० ५१६–२६	महीचंद्र (महीपाल)	... ...
पुंज	... ...	चंद्रदेव	वि० सं० ११४८–५६
धर्मवंभ	... ...	मदनपाल	वि० सं० ११६३–६६
अभयचंद	... ...	गोविन्दचंद्र	वि० सं० ११७१–१२११
विजयचंद	... ...	विजयचंद्र	वि० सं० १२२४–२५
जयचंद	वि० सं० ११३२–८१	जयचंद्र	वि० सं० १२२६–५०
वरदाईसेन	... ...	हरिश्चंद्र	वि० सं० १२५३ (जन्म वि० सं० १२३२)

गाहड़वालों और राठोड़ों में समानता का अनुमान करना निरा भ्रम ही है। हम ऊपर बतला आये हैं कि राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) का बड़ा प्रतापी राज्य सर्वप्रथम दक्षिण में रहा[1]। दक्षिण का राज्य सोलंकियों-द्वारा छीने जाने पर भी उनका कई जगह अधिकार बना रहा। दक्षिण, गुजरात, काठियावाड़, सौन्दत्ति, हथुंडी, गया, बेतुल, पथारी, धनोप आदि से उनके शिलालेख एवं ताम्रपत्र मिले हैं[2]। उनमें उन्होंने अपने आपको राष्ट्रकूट ही लिखा है। सौन्दत्तिवाले अपने को बहुधा "रट्ट" लिखते रहे, जो "राष्ट्र" या "राष्ट्रकूट" (राठोड़) का ही संक्षिप्त रूप है और दक्षिण के राठोड़ों के

(१) देखो ऊपर; पृ० ८८।

(२) देखो ऊपर; पृ० ८८-१३४।

ताम्रपत्रों में भी कभी-कभी मिलता है। यदि गाहड़वालों के साथ उनकी किसी प्रकार की भी समानता होती तो इसका उल्लेख उन(राठोड़ों)के ताम्रपत्रों आदि में अवश्य होता अथवा यदि गाहड़वाल ही अपने को राठोड़ों का वंशज मानते होते तो भी वे अपने ताम्रपत्रों आदि में इसका उल्लेख गर्व के साथ अवश्य करते, क्योंकि राठोड़ वंश गाहड़वालों से अधिक प्रतापी रहा, जैसा कि उनके दक्षिण के इतिहास से स्पष्ट है।

जिन दिनों कन्नौज में गाहड़वालों का राज्य था, उन्हीं दिनों राष्ट्रकूटों की एक शाखा कन्नौज-राज्य के अंतर्गत वदायूं में राज्य करती थी, जिसका प्रवर्तक चन्द्र था। उसके तथा कन्नौज के गाहड़वाल चन्द्रदेव के नामों में समानता होने के कारण कुछ लोगों ने दोनों को एक ही व्यक्ति मानकर उस(गाहड़वाल चन्द्रदेव)के दो पुत्रों—मदनपाल एवं विग्रहपाल[1]—से क्रमशः कन्नौज और वदायूं की शाखाओं का चलना मान लिया है, पर यह निर्मूल ही है। कन्नौज के चन्द्रदेव के लेख वि० सं० ११४८ से वि० सं० ११५६ तक के[2] और उसके पुत्र मदनपाल के वि० सं० ११६१, ११६३ (११६४) और ११६६ के मिले हैं[3]। उधर वदायूं के चन्द्र के पांचवें वंशधर मदनपाल के समय का एक लेख वि० सं० ११७६ का मिला है[4]। यह मदनपाल कन्नौज के चन्द्रदेव के दूसरे वंशधर गोविन्दचन्द्रदेव का समकालीन था, जिसके वि० सं० ११७६ के कई ताम्रपत्र मिले हैं[5]। इससे वदायूं के चन्द्र का

(१) विग्रहपाल कन्नौज के गाहड़वाल चंद्रदेव का पुत्र नहीं, किन्तु उससे भिन्न वदायूं के राठोड़ चंद्र का पुत्र था। इन दोनों को एक ही व्यक्ति का पुत्र मानना सरासर ग़लती है।

(२) डा० देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर; ए लिस्ट ऑव् दि इन्स्क्रिप्शन्स ऑव् दि नॉर्दर्न इंडिया; संख्या १५४, १५७, १६२ और १६४।

(३) वही; संख्या १६८ और १७१।

(४) आर्कियालाजिकल सर्वे ऑव् नॉर्दर्न इंडिया (न्यू सीरीज़); जि० १; पृ० ७१।

(५) डा० देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर; ए लिस्ट ऑव् दि इन्स्क्रिप्शन्स ऑव् नॉर्दर्न इंडिया; संख्या २०१, २०२ और २०३।

वि० सं० १०७६ में विद्यमान होना निश्चित है। ऐसी दशा में बदायूं का चन्द्र और कन्नौज का चन्द्रदेव समकालीन एवं एक नहीं हो सकते। बदायूं के चन्द्र को वहां के शिलालेख में वोदामयूता (बदायूं) का पहला राजा लिखा है[1] और गाहड़वाल चन्द्रदेव को उसके ताम्रपत्र में गाधीपुर (कन्नौज) के राज्य को विजय करनेवाला लिखा है[2]। इन विभिन्नताओं को देखते हुए तो यही अनुमान दृढ़ होता है कि ये दोनों एक नहीं वरन् भिन्न व्यक्ति थे।

राजपूतों में एक ही वंश में परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं होता। पहले भी राजपूताने में कोई गाहड़वाल नहीं था और न अब है, पर संयुक्त प्रान्त में गाहड़वाल और राठोड़ दोनों ही हैं। वहां के राठोड़ राठोड़ों में[3] और गाहड़वाल गाहड़वालों में[4] शादी नहीं करते, पर इन दोनों वंशों में

(१) ...प्रख्याताखिलराष्ट्रकूटकुलजक्ष्मापालदोः पालिता।
पंचालाभिधदेशभूषणकरी वोदामयूता पुरी ॥...
तत्रादितोभवदनन्तगुणो नरेन्द्र-
श्चंद्रः स्वखड्गभयभीपितवैरिवृन्दः।

एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० १, पृ० ६४।

(२) आसीदशीतद्युतिवंशजातक्ष्मापालमालासु दिवं गतासु।
साक्षाद्विवस्वानिव भूरिधाम्ना नाम्ना यशोविग्रह इत्युदारः ॥
तत्सुतोभून्महीचन्द्रश्चन्द्रधामनिभं निजम्।...॥
तस्याभूत्तनयो नयैकरसिकः क्रान्तद्विषन्मंडलो
विध्वस्तोद्धतधीरयोधतिमिरः श्रीचन्द्रदेवो नृपः।
येनो......श्रीमद्गाधिपुराधिराज्यमसमं दोर्विक्रमेणार्जितम् ॥

चंद्रदेव के वि० सं० ११४८ के दानपत्र से।
(एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० ६, पृ० ३०४)।

(३) ए० एच० बिंग्ले; राजपूत्स; पृ० १२१।

(४) वही; पृ० ७२।

वहां परस्पर विवाह सम्बन्ध होते हैं,[१] जिसके कई ताज़े उदाहरण भी विद्यमान हैं[२]। यदि गाहड़वाल और राठोड़ एक ही वंश के होते तो ऐसा कभी न होता। इन दोनों वंशों के गोत्र भी भिन्न हैं, पर गोत्र नये पुरोहित बनाने के साथ बदलते रहे हैं, जिससे इसपर विचार करना निरर्थक है।

गाहड़वाल राजपूताने में आये हों, ऐसा पाया नहीं जाता। यदि वे राजपूताना में आये होते तो उनकी बड़ी ख्याति हुई होती, परन्तु बांकीदास के समय तक गाहड़वाल भी राठोड़ हैं, ऐसा कोई मानता न था, क्योंकि उसने राठोड़ों की शाखाओं और उपशाखाओं के जो नाम दिये हैं उनमें गाहड़वालों का नाम नहीं है[३]। अन्य ख्यातों आदि में न तो इनका अलग नामोल्लेख किया है और न इन्हें राठोड़ों की शाखाओं अथवा उपशाखाओं (खाँपों) में ही लिखा है। मुंहणोत नैणसी की ख्यात में राठोड़ों के प्रसंग में गाहड़वालों का उल्लेख नहीं है[४], पर बुंदेलों के वृत्तान्त में उन्हें गाहड़वालों का वंशज लिखा है[५]। "पृथ्वीराज रासा" में जहां छत्तीस राजवंशों के नाम दिये हैं वहां तो गाहड़वालों का नाम नहीं है, परन्तु आगे चलकर एक स्थल पर

---

(१) ए० एच० बिंग्ले; राजपूत्स; पृ० ७३। क्रुक; ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स ऑव् दि नार्थ वेस्टर्न प्रॉविंसेज़; जि० २, पृ० ३७१। इलियट्; ग्लॉसरी (बीम्स); जि० १, पृ० ४५ और १२१।

(२) जुब्बल के राठोड़ राजा भगतचन्द की बहिन का विवाह वर्तमान ओरछा नरेश गाहड़वाल वीरसिंहजूदेव के पिता स्वर्गवासी राजाबहादुर भगवंतसिंहजू के साथ हुआ था। पुराहाट (चक्रधरपुर) के राठोड़ राजा नरपतिसिंह की पुत्री का विवाह रामगढ़ (पन्ना संस्थान) के स्वर्गवासी राजा दुर्गानारायणसिंह गाहड़वाल के साथ हुआ था। दुर्गानारायणसिंह का पुत्र राजा कामाख्यानारायणसिंह गाहड़वाल इस समय विद्यमान है। ऐसे उदाहरण और भी मिलते हैं।

(३) कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १३५ और २३६।

(४) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ४७।

(५) वही; जि० २, पृ० २१२।

गाहड़वालों का भी नामोल्लेख किया है[1]। टॉड ने अपने ग्रन्थ "राजस्थान" में जहां राजपूतों के ३६ राजवंशों के परिशोधित नाम दिये हैं, वहां उसने इन दोनों वंशों को भिन्न माना है[2] और गाहड़वालों के विषय में तो यह लिखा है—

'गहरवाल राजपूत को राजस्थान में उसके राजपूत भाई कठिनता से जानते हैं, क्योंकि वे लोग उसके अशुद्ध रक्त[3] को अपने में मिलाना स्वीकार नहीं करेंगे, यद्यपि वीर योद्धा होने के कारण वह उनकी समानता के योग्य है[4]।'

डॉ० देवदत्त भंडारकर ने उत्तर भारत के शिलालेखों आदि की एक सूची प्रकाशित की है। उसमें उसने जयचन्द्र और उसके पूर्वजों के मिले हुए समस्त ताम्रपत्रों आदि में उनको गाहड़वाल ही लिखा है[5]। अब कोई

---

(१) "चन्देल वैस जागरां सूर।
चेरे सुसहस इक मल्हन नूर॥
सोलंखी जद्दव सजि अनेक।
सजि गहरवार गोहिल अनेक"॥

पृथ्वीराज रासा; महोबा समय; पृ० २५०६।

(२) टॉड; राजस्थान; जि० १, पृ० ६८ के सामने का नक़्शा।

(३) यह कर्नल टॉड का भ्रम ही है, क्योंकि गाहड़वाल उच्चकुल के राजपूत हैं। कन्नौज का प्रसिद्ध राजा जयचन्द्र और उसके पूर्वज गाहड़वाल थे। संयुक्त प्रांत में, जहां यह जाति अबतक विद्यमान है, उच्चकुल के शुद्ध राजपूत वंशों अर्थात् गौड़, वैस, चंदेल, चौहान, राठोड़, भदोरिया, कछवाहा, निकुंभ, पड़िहार आदि के साथ इनका विवाह सम्बन्ध होता है (कप्तान ए० एच० विंगले; राजपूत्स; पृ० ७३। कप्तान लुअर्ड; सेंट्रल इंडिया गैज़ेटियर सीरीज़; जि० ६, पृ० १०। क्रुक; ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स ऑव् दि नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज़; जि० २, पृ० ३७१। इलियट्; ग्लासरी (बीम्स); जि० १, पृ० ४५ और १२१)।

(४) राजस्थान; जि० १, पृ० १३६।

(५) डॉ० डी० आर० भंडारकर; ए लिस्ट ऑव् दि इन्स्क्रिप्शन्स ऑव् दि नॉर्दर्न इंडिया; संख्या १५४, १५७, १६२, १६४, १७१, १७४, १७८, १८५, १८७, १८८, १९२, १९३, १९५, २०१, २०२, २०३, २०५, २०७, २०६, २१७, २१८,

पुरातत्ववेत्ता उनको गाहड़वाल मानने में संकोच नहीं करता। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहासलेखक वी० ए० स्मिथ ने स्वरचित "अर्ली हिस्ट्री ऑव् इंडिया" नामक ग्रन्थ में इन दोनों जातियों को भिन्न माना है और लिखा है—

'कन्नौज का राठोड़वंश कल्पनामात्र है। वहां के राजा गाहड़वाल अथवा गहरवाल जाति के थे, जैसा कि गोविन्दचंद्र के वि० सं० ११६१ (ई० स० ११०४) के बसाही के ताम्रपत्र से पूर्णतया स्पष्ट है और गौतम जाति की कथाओं से भी यही पाया जाता है। कन्नौज के राजाओं के साथ राठोड़ शब्द लगने का कारण मुख्यतया यह है कि जोधपुर के राठोड़ राजा अपने आपको राजा जयचन्द्र के वंश के एक बच निकले हुए बालक का वंशज मानते हैं। ऐसी बहुत सी कथाएं प्रसिद्ध हैं, पर वे इतिहास के लिए सर्वथा निरुपयोगी हैं'[1]।'

"मध्यभारत के विस्तृत गैज़ेटियर सीरीज़" के कर्ता कैप्टेन ई० सी० लुअर्ड ने ओरछा राज्य के वृत्तान्त में राठोड़ों और गाहड़वालों को भिन्न लिखा है[2] तथा डॉक्टर रामशङ्कर त्रिपाठी[3] और डॉ० हेमचन्द्र राय[4] ने भी अपनी पुस्तकों में इन दोनों वंशों को भिन्न ही माना है।

इन सब बातों पर विचार करने से तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वस्तुतः गाहड़वाल और राठोड़ दो भिन्न-भिन्न जातियां हैं और इनमें परस्पर किसी प्रकार की भी समानता नहीं है। गाहड़वाल एक अलग जाति है, जो सूर्यवंशी[5] है और राठोड़ इससे विपरीत चंद्रवंशी[6] हैं, जैसा

२२१, २२७, २२८, २५१, २६२, २६६, २७१, २७६, २८१, ३२२, ३४५, ३६८, ३६६, ३७२, ३७४, ३७५, ३७८, ३८७, ३८८, ३८६, ४०६, ४३३ और १५२५।

(१) वी० ए० स्मिथ; अर्ली हिस्ट्री ऑव् इंडिया (चतुर्थ संस्करण); पृ० ३६६ टि० ५।

(२) जि० ६ ए, पृ० १०।

(३) पृ० ३००।

(४) डाइनेस्टिक् हिस्ट्री ऑव् नॉर्दर्न इंडिया; जि० १, पृ० ५५१-२।

(५) देखो ऊपर; पृ० १४१ टि० २।

(६) देखो ऊपर; पृ० ८६।

कि उनके शिलालेखों, दानपत्रों तथा प्राचीन पुस्तकों से निश्चित है। इनमें आपस में विवाह सम्बन्ध होना भी इनके भिन्न होने का प्रबल प्रमाण है। राजपूताना के वर्तमान राठोड़ों के मूलपुरुष राव सीहा के मृत्यु स्मारक में उसे राठोड़ ही लिखा है[1] तथा बीकानेर के महाराजा रायसिंह की बीकानेर के क़िले की वि० सं० १६५० की बृहत् प्रशस्ति में उसने अपने वंश को राठोड़ वंश ही लिखा है। ऐसी दशा में बुंदेलों के समान राजपूताना के राठोड़ों को गाहड़वाल जयचन्द्र का वंशधर मानने के लिए हम किसी प्रकार भी प्रस्तुत नहीं हैं। संभवतः राजपूताना के वर्तमान राठोड़ बदायूं के राठोड़ों के वंशधर हों। राठोड़ सर्वत्र अपने लिए राष्ट्रकूट या राठोड़ ही लिखते रहे हैं। इसीलिए राठोड़ों के इतिहास में हमने गाहड़वालों का इतिहास दर्ज करना उचित नहीं समझा।

---

(१) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० ४०, पृ० १८१ तथा ३०१।

पांचवां अध्याय

राव सीहा से राव रणमल तक

राव सीहा

जोधपुर आदि राज्यों के वर्तमान राठोड़ों का मूलपुरुष सीहा[1] था, जिसका वास्तविक वृत्तान्त ख्यात-लेखकों को नहीं मिला, जिससे उन्होंने उसके सम्बन्ध में बहुधा कल्पित बातें लिख दीं। उनका सरांश नीचे उद्धृत किया जाता है।

मुंहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात में लिखा है—

नैणसी की ख्यात और सीहा

'राव सीहा (सिंहसेन) कन्नौज से यात्रा के लिये द्वारिका चला। उसने गोत्रहत्या बहुत की थी, इससे मन विरक्त होने पर अपने पुत्र को राजपाट सौंप वह १०१ राजपूत ठाकुर आदि को साथ ले पैदल ही चल पड़ा। मार्ग में वह गुजरात में ठहरा, जहां चावड़े व सोलंकी राज करते थे। उनकी राजधानी पाटण (अणहिलवाड़ा) थी। उन्होंने उसका स्वागत किया और उससे सिंध के मारू लाखा जाम राजा के साथ अपने वैर की बात कहकर उससे लाखा को पराजित करने में सहायता मांगी। राव सीहा ने उन्हें आश्वासन दिया और द्वारिका से लौटने पर लाखा के साथ युद्ध करने का वचन दे उन्हें फ़ौजें इकट्ठी करने का आदेश कर उसने द्वारिका की ओर प्रयाण किया। एक मास बाद लौटने पर उसका लाखा से युद्ध हुआ, जिसमें लाखा अपने भानजे राखायत के साथ काम आया। अनन्तर

---

(१) जैसा हम ऊपर लिख आये हैं, राव सीहा बदायूं के राठोड़ों का वंशधर होना चाहिये। बदायूं वि० सं० १२५२ में मुसलमानों के हाथ में चला गया था, जिससे सेतराम अथवा उसका पुत्र सीहा मारवाड़ में चला गया हो।

पाटण में पहुंचने पर चावड़ों के यहां उसका विवाह हुआ। कन्नौज लौटने पर चावड़ी रानी से उसके तीन पराक्रमी पुत्र हुए। कुंवरों के कुछ सयाने होने पर राव सीहा का परलोकवास हो गया।'

दूसरे स्थान पर नैणसी लिखता है—

'राव सीहा की एक राणी सोलंकनी प्रसिद्ध राव जयसिंह की पुत्री थी, जिसके पेट से आस्थान का जन्म हुआ। दूसरी राणी चावड़ी सोभागदे मूलराज वागनाथोत की बेटी से ऊदड़ और सोनिंग का जन्म हुआ[1]।'

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—

जोधपुर राज्य की ख्यात और सीहा

'राव सीहा वरदाईसेन का पौत्र और सेतराम का पुत्र था। वह जब कन्नौज से पुष्कर-यात्रा के लिए गया तो भीनमाल के ब्राह्मणों ने उसके पास उपस्थित हो मुलतान के बादशाह के जुल्मों का वर्णन कर उससे सहायता की याचना की। सीहा ने उन्हें आश्वासन दे लौटाया और आप, शत्रु उसका पता पाकर सावधान न हो जाय इस आशंका से फ़ौजों को भिन्न-भिन्न मार्ग से प्रवेश करा मुसलमानों पर चढ़ गया। युद्ध में उसकी विजय हुई। अनन्तर वह भीनमाल ब्राह्मणों को देकर वहां से कन्नौज चला गया।

'भीनमाल में मुसलमानों पर सीहा की विजय होने का समाचार चारों ओर द्रुतवेग से फैल गया। गुजरात के सोलंकी राजा ने उसकी वीरता के समाचार सुन उसके साथ अपनी पुत्री (जिसकी सगाई लाखा फूलाणी से हो चुकी थी) के विवाह के नारियल भेजे। तब वह (सीहा) कन्नौज से द्वारिका-यात्रा को रवाना हुआ। मार्ग में उसे कितने ही स्थानों में भोमियों से लड़ाई करनी पड़ी। भीलड़ी गांव के स्वामी ईडर के प्रधान आसा डाभी को मारकर वह पाटण पहुंचा, जहां उसका मूलराज से मिलना हुआ। द्वारिका पहुंचने पर उसे वहां भाटियों से युद्ध करना पड़ा, जिसमें भाटी लाखा का भाई दलपत मारा गया। वहां से लौटने पर उसने

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ५०-५५ और ५८।

अणहिलवाड़ा पाटण में जाकर मूलराज सोलंकी की कन्या से विवाह किया। अनन्तर उसने लाखा फूलाणी पर चढ़ाई कर दी, जिसमें वि० सं० १२०६ कार्तिक सुदि ७ (ई० स० ११५२) को वह (लाखा) मारा गया।

'लाखा फूलाणी पर विजय प्राप्तकर जब सीहा कन्नौज को लौट रहा था तो मार्ग में पाली के पल्लीवाल (पालीवाले) ब्राह्मण जसोधर ने उपस्थित हो एक लाख रुपया सीहा के नज़र कर उससे वालेचा चौहान सरदार के कष्टों से पल्लीवाल ब्राह्मणों की रक्षा करने की प्रार्थना की। इस-पर उसने दस दिन वहां ठहर कर वालेचा चौहानों को मार वहां के ब्राह्मणों का दुःख मोचन किया। वहां पर ही उसके पुत्र आस्थान का जन्म हुआ।

'कन्नौज लौटने पर वहां का राज्य अल्ह को सौंप वह स्वयं गोयंदाणा के गढ़ में रहने लगा जहां तेरह वर्ष राज्य करने के बाद उसकी मृत्यु हुई। मृत्यु से पूर्व उसने अपने पुत्रों को पाली में जाकर रहने का आदेश दिया।

'उसकी छः राणियों से पांच पुत्र हुए—(१) आस्थान; जिसका जन्म वि० सं० १२१८ कार्तिक वदि १४ (ई० स० ११६१) गुरुवार को हुआ; (२) सोनिंग, जिसका जन्म वि० सं० १२२३ पौष वदि १ (ई० स० ११६६) और (३) अज, जिसका जन्म वि० सं० १२२५ आषाढ वदि १ (ई० स० ११६८) को हुआ; (४) भीम और (५) रामलेन (पैदा होते ही मर गया)। एक पुत्री रूपबाई भी हुई जो बचपन में मर गई। राव सीहा सोनगरों का भानजा था[१]।'

बीकानेर के सिंढायच कवि दयालदास ने अपनी ख्यात में लिखा है—

दयालदास की ख्यात और सीहा

'राव सीहा, जिसका जन्म वि० सं० ११७५ कार्तिक सुदि ५ (ई० स० १११८) को हुआ था, वि० सं० १२१२ वैशाख वदि १२ (ई० स० ११५५) को गद्दी पर बैठा। मुसलों से वह ५२ लड़ाइयां लड़ा और उनको

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०-११।

उसने कन्नौज में बसने न दिया, जिसपर दिल्ली के बादशाह ने उसे अपने पास बुलाकर अपना मनसबदार बनाया और चौबीस लाख की आय के कन्नौज के तीस परगने दिये। अनन्तर अपने ज्येष्ठ पुत्र जसवंतसिंह को कन्नौज का राज्य सौंपकर उसने दस हज़ार फ़ौज अपने साथ लेकर रणछोड़जी (द्वारिका) की यात्रा की। मार्ग में मूलराज सोलंकी ने उसका स्वागत किया और उससे लाखा फूलाणी को मारने का वचन ले उसके साथ अपनी कन्या ब्याह दी। लाखा फूलाणी को मारकर वह कन्नौज लौटा, जहां वि० सं० १२४३ माघ सुदि ६ (ई० स० ११८७) को उसकी मृत्यु हुई।

'सोलंखणी राणी से उसके तीन कुंवर अज, सोनिंग और आस्थान हुए; ४७ पुत्र पहले के भी थे (जिनके नाम भी उसमें दिये हैं)। सबसे बड़ा कुंवर जसवन्तसिंह था[1]।'

कर्नल टॉड ने अपने इतिहास "राजस्थान" में लिखा है—

टॉड राजस्थान और सीहा

'राठौड नैनपाल ने कन्नौज में अपना राज्य वि० सं० ५२६ (ई० स० ४७०) में स्थापित किया। उस समय से लगाकर उसके वंशज जयचन्द्र तक राठोड़ों का वहां राज्य रहा। शहाबुद्दीन गोरी ने वि० सं० १२४६ (ई० स० ११९३) में उससे कन्नौज छीन लिया।

'कन्नौज का राज्य चले जाने के १८ वर्ष बाद वि० सं० १२६८ में वहां के अंतिम राजा (जयचन्द्र) के पोते सीहा और सेतराम अपनी जन्म-भूमि का परित्याग कर २०० साथियों के साथ पश्चिमी रेगिस्तान की ओर, ख्यातों के अनुसार द्वारिका की यात्रा करने के लिए परन्तु वास्तव में कोई नया ठिकाना क़ायम करने की गरज़ से, रवाना हुए।

'राव सीहा सर्वप्रथम बीकानेर से २० मील पश्चिम कुलुमद के सोलंकी सरदार के यहां गया, जिसने उसका बड़ा आदर किया। उसके बदले में उसने लाखा फूलाणी से युद्ध करने में उक्त सरदार की सहायता की, जिसमें लाखा की पराजय हुई। सोलंकी सरदार ने इसके एवज़ में

(१) दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० २९-४१।

अपनी बहन उसको ब्याह दी। वहां से लौटते हुए अणहिलवाड़ा पाटण में उसका अच्छा स्वागत हुआ। वहां फिर लाखा फूलाणी से सामना होने पर उसने उसे अकेले मारा। अनन्तर उसने मेवा (महेवा) के डाभियों तथा खेड़धर (खेड़) के गोहिलों पर विजय प्राप्तकर खेड़ में अपनी राजधानी स्थापित की। उसके तीन पुत्र अश्वथामा (आसथान), सोनिंग और अज हुए[1]।'

पाली के वर्णन में टॉड ने इतना और लिखा है कि वहां के ब्राह्मणों की रक्षा करने के पश्चात् उसने स्वयं होली के दिन उनकी हत्या कर वहां की भूमि अपने अधिकार में कर ली, परन्तु बारह मास बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। वहां पर ही उसके पुत्र अश्वथामा (आसथान) का जन्म हुआ[2]।

नैणसी के कथनानुसार सीहा के समय गुजरात पर चावड़े और सोलंकी दोनों राज्य करते थे, परन्तु अपने मामा गुजरात के

नैणसी के कथन की जांच

अन्तिम चावड़ा राजा सामन्तसिंह (भूयड, भूभट) को मारकर तो सोलंकी राजा मूलराज ने वि० सं० ६६८ (ई० स० ६४१) में गुजरात का राज्य छीन लिया था। तब से वहां सोलंकियों का ही राज्य स्थिर हुआ। सीहा (अनुमान वि० सं० १३०० से १३३०) के समकालीन तो गुजरात के तीन सोलंकी राजा, त्रिभुवनपाल, राणा वीसलदेव (बघेल) और अर्जुनदेव थे, जिन्होंने वि० सं० १३०० से १३३१ (ई० स० १२४३ से १२७४) तक गुजरात पर राज्य किया था।

आगे चलकर नैणसी ने सीहा के हाथ से सिन्ध के स्वामी लाखा फूलाणी का मारा जाना लिखा है, जो सर्वथा कल्पित ही है क्योंकि लाखा तो कच्छ के जाड़ेजा (जाड़ेचा, यादवों की एक शाखा) राजा फूल का पुत्र (फूलाणी) था। वह सीहा का सम-

(१) टॉ० रा०; जि० २, पृ० ६३६-४२।
(२) टॉ० रा०; जि० २, पृ० ६४१-४२।

कालीन नहीं वरन् सीहा की मृत्यु से २०० से भी अधिक वर्ष पूर्व सोलंकी मूलराज के हाथ मारा गया था, जैसा कि हेमचन्द्र के "द्व्याश्रयमहाकाव्य[1]", गुर्जरेश्वर-पुरोहित सोमेश्वर-रचित "कीर्तिकौमुदी[2]", मेरुतुंग की "प्रबंधचिन्तामणि[3]", अरिसिंह-विरचित "सुकृत-संकीर्तन[4]" आदि प्राचीन ग्रन्थों से पाया जाता है। मूलराज ने सोरठ के राजा गृहरिपु पर जब चढ़ाई की उस समय उस (गृहरिपु) की सहायता के लिए लाखा गया था और वहीं मारा गया। एक पुरानी गुजराती कविता में वि० सं० १०३६ (ई० स० ९७९) में आटकोट (सौराष्ट्र, दक्षिणी काठियावाड़) में उसका मारा

---

(१) हेमचन्द्राचार्य; द्व्याश्रयमहाकाव्य; सर्ग २-५ में इस लड़ाई का और पांचवें सर्ग में लाखा के मारे जाने का विस्तृत हाल है।

कुन्तेन सर्वसारेणावधील्लक्षं चुलुक्यराट्

द्व्याश्रयमहाकाव्य; सर्ग ५। १२८।

द्वाश्रय महाकाव्य की रचना वि० सं० १२१७ (ई० स० ११६०) के आस-पास हुई थी।

(२) सपत्राकृतशत्रूणां संपराये स्वपत्रिणाम्।
महेच्छकच्छभूपालं लक्षं लक्षी चकार यः॥

कीर्तिकौमुदी; सर्ग २। ४।

(३) स्वप्रतापानले येन लक्षहोमं वितन्वता।
सूत्रितस्तत्कलत्राणां बाष्पावग्रहनिग्रहः॥ १॥

कच्छपलक्षं हत्वा सहसाधिकलस्वजालमायातम्।
संगरसागरमध्ये धीवरता दर्शिता येन॥ २॥

प्रबन्धचिंतामणि (बंबई का ई० स० १८८८ का संस्करण); पृ० ४७।

(४) न भूभृतः केऽपि यदग्रभागे भेजुर्गुरुत्वं किल सापि मग्ना।
अदृश्यतां यत्तरवारिवारिनिधौ दधौ कच्छपलक्षसेना॥ ६॥

सुकृतसंकीर्तन; सर्ग २। ६।

जाना मिलता है[1] और कच्छ की कविता में भी उसका मूलराज के हाथ से मारा जाना पाया जाता है[2]। ऐसी दशा में सीहा के हाथ से लाखा फूलाणी का मारा जाना सर्वथा असंभव है। लाखा फूलाणी बड़ा ही सम्पत्तिशाली और दानी राजा होने के कारण उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी और चारण, भाट आदि उसकी दानशीलता के कवित्त, दोहे आदि गाया करते थे। इस प्रकार उसका नाम प्रसिद्ध होने से, उसके मारे जाने की कथा सीहा के साथ जोड़ दी गई है।

इसी प्रकार जयसिंह की पुत्री के साथ सीहा का विवाह होने का नैणसी का कथन भी निर्मूल है, क्योंकि उस (जयसिंह, सिद्धराज) ने वि० सं० ११५० से ११६६ (ई० स० १०६४ से ११४३) तक राज्य किया था[3] और सीहा की मृत्यु वि० सं० १३३० (ई० स० १२७३) में होना उसके मृत्यु स्मारक लेख से निश्चित है, जैसा कि आगे बतलाया जायगा। इस लिए वह उसका समकालीन नहीं हो सकता।

भीनमाल के ब्राह्मणों का पुष्कर में जाकर मुलतान के बादशाह से अपनी रक्षा के लिए सीहा से प्रार्थना करना, उसका वहां जाकर मुसल-

---

(१) शाके नव एक में, मास कार्तिक निरंतर

....

आठमे पक्ष शुक्र चांदणे मूलराज हाथ लाखो मरे।

रासमाला (गुजराती अनुवाद, द्वितीय संस्करण); पृ० ८६।

(२) अची फुलाणी फरोरयो, रारो मंडाणू,

मूलराज सांग ऊखली लाखो मराणू,

वही; पृ० ८६।

(३) गैज़ेटियर ऑव् दि बाम्बे प्रेसिडेंसी; जि० १, भा० १, पृ० १७१-८१।

सिद्धराज जयसिंह के समय के आठ शिलालेखादि अब तक प्राप्त हुए हैं, जो वि० सं० ११५० (ई० स० १०६४) से ११६६ (ई० स० ११४३) तक के हैं।

[देखो मेरा राजपूताने का इतिहास; जि० १ (द्वितीय संस्करण), पृ० २४६ और टि० १]।

जोधपुर राज्य की ख्यात के कथन की जांच

मानों को हराना और फिर भीनमाल ब्राह्मणों को दे देना, उपर्युक्त ख्यात में लिखा हुआ यह सारा वर्णन एवं उसके संबंध की बनाई हुई कविता[1] कल्पित हैं, क्योंकि सीहा के समय अर्थात् अनुमान वि० सं० १३०० से १३३० (ई० स० १२४३ से १२७३) तक भीनमाल में चौहान राजा उदयसिंह और उसका पुत्र चाचिगदेव राज्य करते थे और उनके पीछे भी बहुत वर्षों तक वहां उनके वंशजों का राज्य रहा था[2]।

जोधपुर राज्य की ख्यात का यह कथन भी कि सीहा ने मूलराज की कन्या से विवाह किया और फिर वि० सं० १२०६ (ई० स० ११५२) में उसके वैरी लाखा फूलाणी को मारा, कल्पित है, जैसा कि ऊपर नैणसी की ख्यात की जांच में दिखलाया जा चुका है। ऐसे ही भाटी लाखा के भाई दलपत का सीहा के हाथ से मारा जाना भी निराधार है।

हां, वालेचा चौहानों से पाली के (पल्लीवाल) ब्राह्मणों की रक्षा करने और उनसे १००००० रुपये मिलने के वर्णन में संभवतः कुछ सत्यता हो, क्योंकि उस समय वहां के पल्लीवाल ब्राह्मण सम्पन्न थे और उधर चौहानों की वालेचा शाखा के सरदारों की जागीरें थीं। हो सकता है कि वे या मीने आदि ब्राह्मणों को कष्ट देते या लूटते हों, जिससे उन(ब्राह्मणों)

---

(१) भीनमाल लीधी भिड़े, सीहे सेल बजाय।
दत दीधो सत संग्रह्यो, सो फल कधे न जाय॥
लख दल सींह लंकाल, विप्र तिय बाल छुड़ावते।
किलमां सिर व्हे काल, किरमर गहि आयो कमध॥

(जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ११)।

बहुत पीछे की बनी हुई ख्यातों में ऐसी कल्पित कविताएं जगह-जगह मिलती हैं, जो पीछे की बनाई हुई हैं। ऐसी कविताओं को, जो समकालीन कवियों की कृति नहीं हों, हम अपने इतिहास में स्थान देना उचित नहीं समझते।

(२) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० ११; पृ० ७८ के सामने का वंशवृक्ष।

की रक्षा करने के एवज़ में सीहा ने कुछ द्रव्य पाया हो।

परन्तु उसका वहां से कन्नौज जाना, अल्ह को वहां की गद्दी पर बैठाना और स्वयं गोयंदाणा के गढ़ में रहकर तेरह बरस तक राज्य करना, अपने बेटों को पाली जाकर रहने का आदेश देना तथा उसी गढ़ (गोयंदाणा) में देहांत होना आदि शेप सारा वर्णन निर्मूल कल्पना है, क्योंकि कन्नौज का राज्य सीहा के जन्म से पूर्व ही मुसलमानों के अधिकार में चला गया था। इसी से वह मारवाड़ में गया और पाली में ठहरा था। उसकी मृत्यु वि० सं० १३३० (ई० स० १२७३) में पाली से चौदह मील उत्तर-पश्चिम के बीठू गांव में हुई थी, जहां से उसका मृत्यु-स्मारक लेख (देवली) मिल चुका है। ऐसी दशा में उपर्युक्त कथन पर किस प्रकार विश्वास किया जा सकता है।

दयालदास के कथन की जांच

सीहा का वि० सं० ११७५ (ई० स० १११८) में जन्म होना, वि० सं० १२१२ (ई० स० ११५५) में कन्नौज की गद्दी पर बैठना, मुग़लों से बावन लड़ाइयां लड़ना और कन्नौज पर उनका अधिकार न होने देना, परन्तु फिर दिल्ली के बादशाह के पास जाना तथा मनसब में चौबीस लाख की आय के कन्नौज के तीस परगने पाना, अपने ज्येष्ठ पुत्र जसवंतसिंह को कन्नौज का राज्य दे १०००० सेना के साथ द्वारिका की तरफ़ जाना, मार्ग में मूलराज सोलंकी के शत्रु लाखा को मारकर उसकी कन्या से विवाह करना, तदनन्तर कन्नौज लौटने पर वि० सं० १२४३ (ई० स० ११८६) में उसकी मृत्यु होना, उपर्युक्त ख्यात की ये सारी की सारी बातें कल्पित हैं और बहुधा इनका खंडन ऊपर की जांचों में हो चुका है। मुग़लों का राज्य तो वि० सं० १५८३ में स्थापित हुआ था। आस्थान, अज और सोनिंग से पूर्व ९७ पुत्रों का होना भी मानने योग्य नहीं है, क्योंकि दूसरी ख्यातों में बहुधा केवल इन्हीं तीन पुत्रों के होने का उल्लेख मिलता है।

राठोड़ नैनपाल का वि० सं० ५२६ (ई० स० ४७०) में कन्नौज का राज्य स्थापित करना और जयचन्द्र (गहरवार) की मृत्यु अर्थात् वि० सं०

कर्नल टॉड के कथन की जांच

१२५० (ई० स० ११६३) तक वहां राठोड़ों का राज्य रहना कपोलकल्पना है। वि० सं० ५२६ (ई० स० ४७०) में तो कन्नौज पर गुप्तवंशियों का राज्य था। फिर मोखरियों का वहां आधिपत्य हुआ। उक्त वंश के राजा गृहवर्मा के मालवे के राजा के हाथ से मारे जाने पर महाप्रतापी वैसवंशी राजा श्रीहर्ष ने कन्नौज को अपने अधीन कर लिया और उसे अपनी नई राजधानी बनाया। वि० सं० ७०५ (ई० स० ६४८) के आसपास उसकी मृत्यु होने पर कुछ समय तक वहां पर अव्यवस्था रही, जिसके पीछे मारवाड़ (भीनमाल) के पड़िहार नागभट (दूसरा) ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया। तब से लगाकर वि० सं० की बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के आस-पास तक पड़िहारों का वहां राज्य रहा। अनन्तर वि० सं० ११५० (ई० स० १०९३) से कुछ ही वर्ष पूर्व गहरवार यशोविग्रह के पौत्र और राजा महिचन्द्र के पुत्र चन्द्रदेव ने कन्नौज को ले लिया, जिसका चौथा वंशधर जयचन्द्र हुआ। जयचन्द्र के पीछे उसका पुत्र गहरवार हरिश्चन्द्र उसके रहे-सहे राज्य का स्वामी हुआ, जिसका वि० सं० १२५३ (ई० स० ११९६) का एक दानपत्र मछलीशहर (यू० पी०) से मिला है, परन्तु ख्यातों में हरिश्चन्द्र का नाम तक नहीं है।

ऐसे ही सेतराम और सीहा भाई-भाई नहीं, वरन् पिता-पुत्र थे, क्योंकि सीहा के स्मारक लेख में उसे कुंवर सेतराम का पुत्र और राठोड़ लिखा है। उसकी मृत्यु भी उसी लेख से वि० सं० १३३० (ई० स० १२७३) में होना सिद्ध है। ऐसी दशा में उसका वि० सं० १२६८ (ई० स० १२११) में नहीं, किन्तु वि० सं० १३०० (ई० स० १२४३) के आस-पास मारवाड़ में जाना मानना युक्तिसंगत है।

सीहा की एक स्त्री सोलंकिनी पार्वती अवश्य थी, जिसने उसका स्मारक (देवली) बनवाया था। संभव है कि वह टॉड के कथनानुसार कोलूमद के सोलंकी सरदार की पुत्री हो। लाखा फूलाणी के मारने की बात का निराकरण ऊपर किया जा चुका है।

आगे का यह कथन भी कि सीहा ने मेवा (महेवा) के डाभियों और खेड़धर (खेड़) के गोहिलों पर विजय प्राप्तकर खेड़ में अपनी राजधानी स्थापित की, निर्मूल है, क्योंकि सीहा तो पाली के आस-पास ही रहता था और उसके निकट ही मरा था। खेड़ के गोहिलों से तो उनका इलाक़ा उसके पुत्र सोनिंग ने लिया था, जैसा कि नगर गांव (जोधपुर) से मिले हुए महेचे राठोड़ जगमाल (रावल मल्लीनाथ के वंशधर) के वि० सं० १६८६ (ई० स० १६२६) के लेख से ज्ञात होता है[1]।

पाली के ब्राह्मणों को मारकर सीहा का वहां की भूमि पर अधिकार करना भी निराधार कल्पना है। पाली पर उस समय ब्राह्मणों का राज्य भी नहीं था। वे तो अन्य जातियों के समान वहां के धनाढ्य निवासी थे। वहां के स्वामी तो जालोर के चौहान थे और उसके आस-पास का प्रदेश वालेचा चौहानों की जागीर में था। यह अधिक सम्भव है कि उन धनाढ्य ब्राह्मणों के जान-माल की रक्षार्थ सीहा शत्रुओं से लड़ता हुआ मारा गया हो।

सीहा के सम्बन्ध का निश्चित हाल और उसकी मृत्यु

सीहा के समय का उसकी देवली पर के छोटे लेख के अतिरिक्त न तो कोई शिलालेख या दानपत्र मिला है और न कोई समकालीन लेखक-द्वारा लिखा हुआ उसका वृत्तान्त। नैणसी की ख्यात का लिखा जाना भी सीहा की मृत्यु के प्रायः ३७५ वर्ष बाद प्रारम्भ हुआ था। अन्य ख्यातें तथा टॉड का 'राजस्थान' तो उससे भी बहुत पीछे के लिखे हुए हैं। इस कारण इतिहास के वास्तविक अंधकार की दशा में उनमें मनमानी गढ़न्त बातों का लिखा जाना बहुत संभव है।

सीहा के विषय में जो कुछ हमें निश्चय-रूप से ज्ञात होता है, वह यह है कि वह राठोड़ कुंवर सेतराम का पुत्र था। उसकी एक स्त्री पार्वती सोलंकी वंश की थी और पाली से चौदह मील उत्तर-पश्चिम में बीठू गांव के

(१) डॉ० दे० रा० भंडारकर; ए लिस्ट ऑव् दि इन्स्क्रिप्शन्स ऑव् नॉर्दर्न इंडिया; संख्या ६८२।

पास वि० सं० १३३० कार्तिक वदि १२ (ई० स० १२७३ ता० ६ अक्टोबर) सोमवार को उसकी मृत्यु हुई, जैसा कि उसके देवली के लेख से प्रकट है[1]। उक्त देवली के ऊपरी भाग में शत्रु की छाती में भाला मारते

(१) ओं ॥ सांवछ १३३०
कार्तिक वदि १२ सोम-
वारे रठडा श्री सेत-
कवर सुनु सीहो दे-
वलोके गतः सो [लं]-
क पारवतिः तस्यार्थे दे-
वली स्थापिना [ता] करापिव सुभं भवतुः

(इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० ४०, पृ० ३०१)।

जोधपुर राज्य के इतिहास के लिए यह लेख बड़े महत्व का है, क्योंकि विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी तक के राजाओं के जो संवत् जोधपुर राज्य की ख्यात एवं अन्य ख्यातों आदि में मिलते हैं, वे बहुधा कल्पित हैं। उनकी जांच करने के लिए यही एक निश्चित साधन है। इसका संवत् ख्यातों के संवत् से न मिलने के कारण, जोधपुर राज्य के इतिहास कार्यालय के कार्यकर्ताओं ने इसे कृत्रिम ठहराने का प्रयत्न किया और इस सम्बन्ध में जांच करने के लिए उपर्युक्त इतिहास कार्यालय के अध्यक्ष गुमानसिंह का ई० स० १६१२ ता० २० मार्च का अंग्रेज़ी का एक लम्बा पत्र मय लेख की छाप के मेरे पास आया। गुमानसिंह की भी यही धारणा थी कि लेख जाली है, परन्तु लिपि पर विचार करने से, मुझे वह असली मालूम हुआ। मैंने अपना विचार उसे लिख दिया तथा यह भी सूचित कर दिया कि निश्चित मत दे सकने के लिए मूल लेख को देखना आवश्यक है। इसपर वह लेख राजपूताना म्यूज़ियम् (अजमेर) में लाया गया, जहां कई महीने तक वह मेरे दफ़्तर में पड़ा रहा। मूल लेख देखकर मुझे उसके असली होने में कोई सन्देह न रहा। मैंने तदनुसार इतिहास-कार्यालय के अध्यक्ष को सूचित कर दिया कि लेख कृत्रिम नहीं है। वह उसी ज़माने का है, क्योंकि उसके ऊपर भाला मारते हुए जो अश्वारूढ़ राव सीहा की आकृति बनी है वह कारीगरी की दृष्टि से उसी समय की बनी मूर्तियों के समान ही सुन्दर है। उसका सिर खुला है, केश का जूड़ा बंधा है तथा नीचे की तरफ़ लटकती हुई दाढ़ी है, जो उसके पुरानी होने के साक्षी रूप हैं। स्वर्गगत पुरुषों की अथवा देवमन्दिर बनानेवालों की जो मूर्तियां प्राचीन समय में

हुए अश्वारूढ़ सीहा की सुंदर मूर्ति बनी हुई होने से उसका लड़कर काम आना ज्ञात होता है।

उसके तीन पुत्रों—आस्थान, सोनिंग और अज—का उल्लेख अधिकांश ख्यातों में मिलता है।

राव आस्थान (अश्वत्थामा)

मुंहणोत नैणसी अपनी ख्यात में लिखता है—

'राव सीहा देवलोक पहुंचा, तब चावड़ी अपने तीनों पुत्रों

स्थापित की जाती थीं, वे ऐसी ही बनती थीं। ऐसी दो मूर्तियां इस समय राजपूताना म्यूज़ियम् (अजमेर) में सुरक्षित हैं, जिनमें से एक पर वि० सं० १३८९ (चैत्रादि १३९०) ज्येष्ठ सुदि ५ बुधवार का लेख है, जिससे पाया जाता है कि वह स्त्री सहित पंवार भावसीह (भावसिंह) की मूर्ति है। दूसरी मूर्ति पर कोई लेख नहीं है। आबू पर के प्रसिद्ध विमलशाह के मन्दिर की हस्तिशाला में अश्वारूढ विमलशाह की मूर्ति तथा तेजपाल के बनवाये हुए लूणवसही नामक मन्दिर में वस्तुपाल, तेजपाल और उनके पिता की मूर्तियां हैं, जिनके भी सिर खुले, केश बंधे हुए एवं नीचे लटकती हुई लम्बी, चपटी दाढ़ी हैं। ऐसी और भी बहुतसी राजपूतों की मूर्तियां आबू पर के अचलेश्वर के मन्दिर में तथा राजपूताना के कई दूसरे स्थानों में मेरे देखने में आई हैं। ये चिह्न प्राचीनता के ही सूचक हैं।

इस लेख के शोध का श्रेय जोधपुर निवासी (स्वर्गवासी) ब्रह्मभट्ट नानूराम को है। जोधपुर के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुंशी देवीप्रसाद के साथ रहने से उसको भी इतिहास का शौक लग गया था, जिससे वह जहां जाता वहां प्राचीन लेखों को तलाश कर उनकी छापें लिया करता था। सीहा के पौत्र और आस्थान के पुत्र धूहड़ के स्मारक लेख की छाप भी तिंगड़ी (तिरसींगड़ी) गांव से वही लाया था, जिसको जोधपुर राज्य के इतिहास कार्यालय के कार्यकर्ताओं में से एक व्यक्ति पढ़ाने के लिए मेरे पास लाया था। लेख पानी में रहने के कारण अधिकांश बिगड़ा हुआ था, परन्तु उसमें—

'संवत (त्) १३६६······आस्था[मा]सुत धूहड़'

पढ़ने में आया। इन दोनों मृत्यु-संवतों को छोड़कर विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी के आस-पास तक के मारवाड़ के राजाओं के जन्म, गद्दीनशीनी और देहांत के शुद्ध संवत् अब तक अंधकार में ही हैं।

मुंहणोत नैणसी का कथन

(आस्थान, सोनिंग और अज) को लेकर अपने पीहर जा रही। काल पाकर वे जवान हुए और चौगान खेलने जाने लगे। एक दिन खेलते-खेलते उनकी गेंद किसी बुढ़िया के पांवों में जा लगी, जो वहां कंडे चुन रही थी। एक कुंवर गेंद लेने गया और बुढ़िया से कहा कि इसे उठा दो। बुढ़िया बोली 'मेरे सिर पर भार है तुम ही उतर कर लेलो।' तब कुंवर ने बुढ़िया को धक्का मारा, जिससे उसके सब कंडे बिखर गये। क्रोध कर बुढ़िया कहने लगी—"हमारे ही घर में पाले-पोसे गये और हमीं को धक्का मारते हो। मामा का माल खाकर मोटे हुए और उसी की प्रजा को सताते हो। तुम्हारे तो कोई ठौर है नहीं।" ऐसे ताने सुनकर कुंवर घर आये, माता से पूछा कि हमारा पिता कौन है, हमारा देश कहां है और हम किसके यहां पलते हैं। माता ने बात टालने की चेष्टा की, पर कुंवरों ने न माना तब उसने कहा कि तुम अपने नाना के घर पलते हो। कुंवर मामा के पास गये और विदा मांगी। मामा ने बहुत कहा, पर आस्थान न रहा। वह विदा होकर ईडर गया और वहां से चलकर पाली गांव में डेरा किया। वहां कन्ह नाम का मेर शासक था। जो प्रजा से कर भी लेता था और उनके साथ अनीति भी करता था। आस्थान ने उसे मारकर ८४ गांवों के साथ पाली को अपने अधिकार में कर लिया[1]। साथ ही उसने भाद्राजण की चौरासी भी जा दबाई।

'उन दिनों खेड़ में गोहिल राज करते थे। उनका प्रधान एक डाभी राजपूत था। किसी कारणवश प्रधान और उसके भाई-बन्धु गोहिलों से अप्रसन्न होकर खेड़ से चल दिये और आस्थान का राज्य बढ़ता हुआ देखकर उन्होंने मन में विचारा कि इनसे गोहिलों को मरवावें। उन्होंने

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में इस विषय में लिखा है—'भाई से अनबन होने के कारण वि० सं० १२३३ (ई० स० ११७६) में आस्थान अपने छोटे भाई सोनिंग और अज को साथ ले पाली आया, भोमियों से पल्लीवालों का वित्त छुड़ाकर उनकी कृपा प्राप्त की और फिर वहीं रहकर उनकी रक्षा करने लगा, जिसके बदले में

आस्थान के पास जाकर सारी बात कही और यह भी कहा कि हम तुम्हें खेड़ का राज्य दिलाते हैं, जब हम तुमको सूचना करावें तब तुरन्त चूक करना। इधर गोहिलों ने भी विचार किया कि इन राठोड़ों का पड़ोस में आकर राज्य बांधना ठीक नहीं, इसलिए किसी प्रकार इनको यहां से हटाना चाहिये। मित्रता करने के लिए उन्होंने डाभी को आस्थान के पास भेजा और उसे अपने यहां गोठ में शामिल होने का निमन्त्रण दिया। डाभी ने सब बात आस्थान से तय कर इसकी सूचना गोहिलों के पास भेज दी और उसने खेड़ जाकर गोहिलों से कहा हम तुम्हारे चाकर हैं, तुह्मारी बराबरी नहीं कर सकते अतएव दाहिनी तरफ़ आप लोग रहना, हम बांई तरफ़ खड़े रहेंगे। आस्थान के आते ही डाभी ने आगे बढ़कर उसका स्वागत किया और कहा कि "डाभी डावैं गोहिल जीमणै।" यह सुनकर राठोड़ गोहिलों पर टूट पड़े और उन्होंने उन्हें मार गिराया तथा खेड़ का राज्य लेकर आस्थान ने वहां अपनी राजधानी स्थापित की[१],

उसे कुछ कर मिलने लगा।'

(जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १५-१६)।

दयालदास की ख्यात में लिखा है—'जसवन्तसिंह के गद्दी पर बैठने पर आस्थान, जिसका जन्म वि० सं० १२०४ भाद्रपद सुदि १ (ई० स० ११४७) को हुआ था, भाइयों को साथ ले वि० सं० १२४४ कार्तिक वदि ५ (ई० स० ११८७) को कन्नौज से पाटण (ननिहाल) की तरफ़ चला। मार्ग में वह पाली में ठहरा जहां उन दिनों मेरों-द्वारा अनेकों अत्याचार होते थे, जिनको वि० सं० १२४७ मांघ वदि २ (ई० स० ११९१) को मार पल्लीवाल ब्राह्मणों से कुछ कर ठहराकर वह वहीं रहने लगा।'

(दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० ४१)।

(१) कुछ अन्तर के साथ इसका उल्लेख जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० १, पृ० १६) एवं दयालदास की ख्यात (जि० १, पृ० ४१-२) में भी मिलता है। बांकीदास-कृत 'ऐतिहासिक बातें' में भी इसका उल्लेख है (संख्या ७८०); परन्तु इनके विरुद्ध इन सब ख्यातों से पूर्व वि० सं० १६८६ (ई० स० १६२९) का राठोड़ महारावल जगमाल के समय का नगर गांव से जो लेख मिला है, उसमें सीहा के पुत्र सोनिंग-द्वारा गोहिलों से खेड़ लिये जाने का उल्लेख है। (डॉ० भंडारकर; ए लिस्ट

जिससे उसके वंशज "खेड़ेचा" प्रसिद्ध हुए[1]।'

जोधपुर राज्य की ख्यात में आस्थान के विषय में इतना और लिखा मिलता है—

जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन

'अनंतर आस्थान ने भीलों को मारकर ईडर को अपने अधिकार में किया और उसे अपने छोटे भाई सोनिंग को दे दिया[2]। उसके वंश के ईडरिया राठोड़ कहलाये।

ऑव् दि इन्स्क्रिप्शन्स ऑव् नॉर्दर्न इंडिया; संख्या ६८२)। इससे यह प्रमाणित है कि खेड़ आस्थान ने नहीं, किन्तु उसके भाई सोनिंग ने विजय किया था। संभव है कि उसने अपने बड़े भाई आस्थान की आज्ञा से जाकर खेड़ विजय किया हो।

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ५५-५७।

(२) टॉड राजस्थान में लिखा है कि डाभियों को छल से मारकर आस्थान ने ईडर का राज्य सोनिंग को दिया था, जिसके वंशज हथुंडिया राठोड़ कहलाये (जि० २, पृ० ६४३)।

टॉड का यह कथन निर्मूल है क्योंकि इन राठोड़ों के मारवाड़ में आने से पहले हथुंडी में राठोड़ों का राज्य था, जो हथुंडिया राठोड़ कहलाते थे। उनके समय का एक शिलालेख वि० सं० १०५३ माघ सुदि १३ (ई० स० ९९७ ता० २४ जनवरी) का मिल चुका है (देखो ऊपर; पृ० ६२)।

ऊपर आये हुए ख्यात के कथन के समान ही टॉड का ईडर की विजय के संबंध का कथन केवल कल्पना मात्र है। उस समय वहां भीलों अथवा डाभियों का राज्य नहीं, किन्तु सोलंकियों का राज्य था, जैसा कि ईडर के मुरलीधर के मन्दिर में लगी हुई संस्कृत की वि० सं० १३५४ कार्तिक सुदि ११ (ई० स० १२९७ ता० २७ अक्टोबर) रविवार की बड़ी प्रशस्ति से पाया जाता है (बुद्धिप्रकाश; पुस्तक ५७, जनवरी, ई० स० १९१०; पृ० २७)। ईडर एक सम्पन्न, प्राचीन और प्रसिद्ध नगर था, जहां सोलंकी कुमारपाल ने "कुमारपाल विहार" नाम का जैन मन्दिर बनवाया था। उस मन्दिर का तथा उसके जीर्णोद्धार का उल्लेख प्रतिष्ठासोम-रचित "सोमसौभाग्यकाव्य" में, जिसकी रचना वि० सं० १५२४ में हुई थी, मिलता है। वि० सं० १३५६ में अलाउद्दीन ख़िलजी के समय उसके छोटे भाई उलग़ख़ां ने बघेल कर्णदेव से गुजरात छीना था (जिनप्रभसूरि; तीर्थकल्प में सत्यपुरकल्प; पृ० ९५; कलकत्ता संस्करण)। गुजरात-विजय का यही वर्ष "तज़ियतुल अम्सार", "तारीख़े अलाई" तथा "तारीख़े फ़ीरोज़शाही"

अज के साथ फ़ौज देकर आस्थान ने उसे द्वारका की तरफ़ भेजा, जहां का स्वामी चावड़ा विक्रमसेन था। वहां जलदेवी ने अज को स्वप्न दिया कि मैं यहां की भूमि तुझे देती हूं, तू विक्रमसेन का सिर काटकर मुझे चढ़ा। अज ने तदनुसार विक्रमसेन को मारकर उस प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया[1] और उसका सिर जलदेवी को चढ़ाया। इसीसे उसके वंशज वाढ़ेल कहलाये।

'कुछ दिनों बाद बादशाह फ़ीरोज़शाह[2] ने मक्का जाते हुए मार्ग में पाली को लूटा और स्त्रियों आदि को पकड़ा। इसपर आस्थान ने खेड़

में भी मिलता है। संभव है कि ख़िलजियों के राज्य की अवनति होने पर पीछे से राठोड़ों ने ईडर पर अधिकार किया हो।

(१) टॉड के कथनानुसार अज ने ओखामंडल के राजा वीकमसी को मारकर उसके राज्य पर अधिकार किया (जि०२, पृ० ६४३)। दयालदास लिखता है कि अज ने शंखोद्धार (द्वारका) का राज्य प्राप्त किया (जि० १, पृ० ४२), पर यह कथन निर्मूल है। उस समय तक सारा काठियावाड़ सोलंकियों के अधीन था, न कि चावड़ों के और वाढ़ेल तो वि० सं० १४०० के पीछे उधर गये थे। जब वि० सं० १३६६ में आस्थान के पुत्र धूहड़ का देहान्त हुआ था (देखो ऊपर; पृ० १५८; टिप्पण) तो फिर वि० सं० १४०० के पीछे उसके चाचा अज का जीवित रहना और काठियावाड़ में जाना कैसे संभव हो सकता है?

(२) यह कथन निर्मूल है, क्योंकि वि० सं० १२४६ (ई० स० ११६२) तक तो अजमेर पर भी मुसलमानों का राज्य नहीं हुआ था और वहां प्रसिद्ध पृथ्वीराज चौहान राज्य करता था। आस्थान का समकालीन यदि कोई फ़ीरोज़ नाम का मुसलमान सुलतान हो तो वह जलालुद्दीन फ़ीरोज़ ख़िलज़ी (वि० सं० १३४६-१३५३) हो सकता है, परन्तु न तो वह कभी मक्के गया और न कभी मारवाड़ में आया। वह तो एक बार हि० स० ६६० (वि० सं० १३४८ = ई० स० १२६१) के लगभग रणथम्भोर का क़िला जीतने के लिए गया था, परन्तु उसे जीतना असम्भव जान मालवे के दो-चार मन्दिरों को तोड़ वह पुनः दिल्ली लौट गया (ब्रिग; फ़िरिश्ता; जि० १, पृ० ३०१-२)। इस चढ़ाई का उल्लेख टॉड और नैणसी ने भी नहीं किया है। इस विषय की किसी अज्ञात कवि की कविता भी मिलती है, जो समकालीन लेखक की नहीं, किन्तु पीछे से बनी हुई है। मारवाड़ में तो सर्वप्रथम अलाउद्दीन ख़िलज़ी ने ही प्रवेश किया था।

से आकर उसके साथ युद्ध किया और उसी लड़ाई में पाली के तालाव के निकट वि० सं० १२४८ वैशाख सुदि १५ (ई० स० ११९१) को वह अपने १४० राजपूतों के साथ काम आया[1]।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार उसकी दो राणियां थीं, जिनसे उसके आठ पुत्र हुए[2]—(१) धूहड़, (२) जोप[3], (३) धांधल[4],

(१) जि० १, पृ० १७-१९। बांकीदास ने भी पाली में ही आस्थान का काम आना लिखा है (ऐतिहासिक बातें; संख्या १६१५)। दयालदास के अनुसार उसकी वि० सं० १२७० वैशाख वदि १ (ई० स० १२१३) को मृत्यु हुई (दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० ४३), परन्तु ख्यातों के संवत् निराधार और कल्पित ही हैं।

(२) जि० १, पृ० १९-२०।

(३) ख्यात के अनुसार इसके नीचे लिखे हुए छः पुत्र हुए—

१—सींधल इसके वंशज सींधल राठोड़ कहलाये।
२—जोलू ,, जोलू ,,
३—जोरा ,, जोरा ,,
४—ऊहड़ ,, ऊहड़ ,,
५—राजिग
६—मूलू ,, मूलू ,,

(४) धांधल के तीन पुत्र—पावू, बूड़ा और ऊदल—हुए। धांधल के वंश के धांधल राठोड़ कहलाये। उसके पुत्रों में पावू करामाती माना जाता है, जिसका विवाह सोढ़ों के यहां हुआ था। विवाह कर लौटने पर रात्रि को जिंदराव खीची (पावू का बहनोई) ने काछेले चारणों की गायें लूटीं, जिसकी पुकार चारणों ने बूड़ा और पावू के महलों पर की। बूड़ा तो न उतरा, परन्तु पावू ने तुरन्त तैयार हो अपने साथ सहित खीची का पीछा किया और उससे गायें वापस छीन लीं। खीची कुंडल, कम्मा धोरंधार को साथ ले फिर पावू पर चढ़ आया। इस बार पावू अपने सब साथियों के साथ काम आया और अपना नाम अमर कर गया। इस वीरतापूर्ण कार्य के लिए वह देवताओं की तरह पूजा जाता है और उसके थानक (स्थान) कोलू आदि गांवों में अब तक विद्यमान हैं।

(मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १६७-१८१)।

दयालदास ने पावू को धांधल का पौत्र लिखा है, परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि कोलू के पास के पावू के थानकों में से दो पर के, वि० सं० १५१५ भाद्रपद सुदि

संतति

(४) हिरडक, (५) पोहड़[1], (६) खीपसाव, (७) आसल और (८) चाचिग[2]।

दयालदास की ख्यात के अनुसार उसके छः पुत्र—धूहड़, सांधल, बाहुप, चन्द्रसेन, ऊड और धांधल—हुए[3]। बांकीदास ने भी छः पुत्रों के ही नाम दिये हैं[4]।

टॉड के अनुसार उसके आठ पुत्र हुए—

धूहड़, जोपसी, खम्पसाव, भोपसू, धांधल, जेठमल, बांदर और ऊहड़[5]।

उपर्युक्त ख्यातों में केवल धूहड़, धांधल और ऊहड़ के नाम परस्पर मिल जाते हैं।

राव आस्थान के विषय में जैसा कि हम आरम्भ में कह आये हैं, ख्यातों में कपोलकल्पित बातें भरी हुई हैं। निश्चयात्मक रूप से हम

आस्थान के सम्बन्ध का निश्चित हाल

इतना ही कह सकते हैं कि वह वि० सं० १३३० (ई० स० १२७३) में अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ और वि० सं० १३३० और वि० सं० १३६६ (ई० स० १२७३ और १३०६) के बीच किसी समय उसकी मृत्यु हुई होगी[6],

११ (ई० स० १३४८) तथा वि० सं० १५१५ भाद्रपद सुदि ११ (ई० स० १४५८) के लेखों में उसे धांधल का पुत्र लिखा है (बंगाल एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल; जि० १२, पृ० १०७-८)।

(१) ख्यात में इसके नौ पुत्र होना लिखा है, पर उसमें उनके नाम नहीं दिये हैं।

(२) ख्यात में इसके छः पुत्र होना और इसके वंशजों का चाचिग राठोड़ कहलाना लिखा है।

(३) जि० १, पृ० ४३।

(४) ऐतिहासिक बातें; संख्या १५०।

(५) राजस्थान; जि० २, पृ० ९४३।

(६) जोधपुर राज्य की ख्यात में उसके देहांत का संवत् १२४८ और दयालदास की ख्यात में १२७० दिया है, परन्तु दोनों कपोलकल्पित हैं। एक अन्य ख्यात में उसका मृत्यु संवत् १३४८ दिया है, जो संभवतः ठीक हो, परन्तु उसके साथ की घटना (फ़ीरोज़शाह की फ़ौज से उसका लड़कर मरना) विश्वास के योग्य नहीं है।

क्योंकि वि० सं० १३६६ में धूहड़ का देहांत हुआ, जैसा कि उसकी देवली पर के लेख से ज्ञात होता है। उसके समय में इन राठोड़ों ने खेड़ की जागीर गोहिलों को छल से मारकर हस्तगत की थी[1]।

राव धूहड़

मुंहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात में धूहड़ की राणी और पुत्रों के नाम देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं लिखा है[2]। जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—

जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन

'धूहड़ वि० सं० १२४८ ज्येष्ठ सुदि १३ (ई० स० ११९१) को गद्दी पर बैठा और वि० सं० १२८५ (ई० स० १२२८) में चौहानों के साथ के युद्ध में मारा गया[3]। उसने अपने जीवन-काल में कर्णाटक से चक्रेश्वरी की मूर्ति लाकर नागाणा गांव में स्थापित की, जो बाद में नागणेची के नाम से प्रसिद्ध हुई[4]।'

दयालदास उसके विषय में लिखता है—'धूहड़ का जन्म वि० सं० १२२४ भाद्रपद वदि १ (ई० स० ११६७) को हुआ था और वह वैशाख

(१) इस विषय में यह प्रसिद्धि चली आती है कि गोहिलों के मन्त्री आदि डाभियों ने विश्वासघात कर राठोड़ों को बुलाया और गोहिलों को छल से मरवा दिया। इस घटना से बहुत पूर्व यहां के गोहिलों में से साहार का पुत्र सहजिग (सेजक) गुजरात के सोलंकी राजा (सिद्धराज जयसिंह, वि० सं० ११५० से ११९९) का अंगरक्षक हुआ और पीछे से वह तथा उसके पुत्र सौराष्ट्र (दक्षिणी काठियावाड़) के हाकिम रहे, ऐसा उनके समय के काठियावाड़ से मिले हुए वि० सं० १२०२ और सिंह संवत् ३२ आश्विन वदि १३ (ई० स० ११४५ ता० १५ अक्टोबर) के शिलालेख से पाया जाता है। उनके वंशज भावनगर, पालीताना, लाठी, वळा और राजपीपला के राजा हैं।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १६९।

(३) बांकीदास ने भी धूहड़ का चौहानों के हाथ से मारा जाना लिखा है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ७८२)।

(४) जि० १, पृ० २०।

दयालदास की ख्यात का कथन

वदि १२ वि० सं० १२७० (ई० स० १२१३) को गद्दी पर बैठा। कुलदेवी चक्रेश्वरी की मूर्ति लाकर स्थापित करने के अनन्तर उसने पड़िहार थिरपाल से वि० सं० १२७२ (ई० स० १२१५) में मंडोवर लिया, परन्तु दो मास बाद ही वह प्रदेश उसके हाथ से जाता रहा। वि० सं० १२८७ (ई० स० १२३०) के आश्विन मास में उसकी मृत्यु हुई[1]।'

धूहड़ के सम्बन्ध में टॉड लिखता है—

टॉड का कथन

'गद्दी पर बैठते ही उसने कन्नौज जीतने की असफल चेष्टा की। अनन्तर पड़िहारों के हाथ से मंडोवर लेने के प्रयत्न में ही उसकी मृत्यु हो गई[2]।'

सन्तति

भिन्न-भिन्न ख्यातों आदि में धूहड़ के पुत्रों की संख्या तथा नाम भिन्न-भिन्न लिखे मिलते हैं। जोधपुर राज्य की ख्यात[3] तथा टॉड-कृत "राजस्थान[4]" के अनुसार उसके सात पुत्र—रायपाल, कीर्तिपाल, बेहड़, पेथड़ (पीतल), जोगापत (जुगेल), डालू और बेगड़—हुए। "तवारीख जागीरदारान राज मारवाड़" नामक पुस्तक में भी सात पुत्रों के नाम दिये हैं, जो इस प्रकार हैं—रायपाल, बेहड़, पीथल, कीतपाल, ऊनड़, जोगा तथा चन्द्रपाल[5]। मुंहणोत नैणसी[6] तथा दयालदास[7] ने पांच और बांकीदास[8] ने केवल चार पुत्रों

(१) जि० १, पृ० ५३।

(२) राजस्थान; जि० २, पृ० ६४३।

(३) जि० १, पृ० २०।

(४) जि० २, पृ० ६४३।

(५) पृ० ६।

(६) मुंहणोत नैणसी की ख्यात में रायपाल, पीथड़, बाघमार, कीरतपाल और लगहथ नाम दिये हैं (जि० २, पृ० ६६ और १६५)।

(७) दयालदास की ख्यात में रायपाल, कीर्तसेन (कीर्तसेन से कीर्तसेनोत), बंच, पृथ्वीपाल (पृथ्वीपालोत) और बीकमसी (बीकमसी से बीकमसीहोत) नाम दिये हैं।

(८) ऐतिहासिक बातें; संख्या १५३०।

के नाम दिये हैं। मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली के अनुसार धूहड़ के नौ पुत्र—रायपाल, चन्द्रपाल, शिवराज, जीवराज, भीमराज, मनोहरदास, मेघराज, सांवतसिंह तथा सूरसिंह—हुए। इनमें से चंद्रपाल के वंशज बीलाड़ा के दीवान हैं[1]।

उपर्युक्त वर्णन और संवत् कल्पित हैं। धूहड़ के विषय में हम निश्चयपूर्वक जो कुछ कह सकते हैं, वह यह है कि उसकी मृत्यु वि० सं० १३६६ में पचपदरा हकूमत के तिंगड़ी (तिरसिंगड़ी) गांव के पास हुई थी, जैसा कि उक्त गांव के तालाब से मिली हुई उसकी देवली (स्मारक) पर के लेख से पाया जाता है[2]। यह बात संभव है कि उसके समय में चक्रेश्वरी की मूर्ति, जो राठोड़ों की कुलदेवी थी, मारवाड़ में लाई गई हो और नागाणा (पचपदरा ज़िला) में स्थापित करने से नागणेची कहलाई हो।

निश्चित हाल और मृत्यु

राव रायपाल

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में केवल उसकी राणी और पुत्रों का उल्लेख है[3]। जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—

'अकाल के समय बहुत से मनुष्यों की अन्न इत्यादि से रक्षा करने के कारण रायपाल "महिरेलण" (इन्द्र) नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने परमारों

---

(१) हमारे संग्रह की हस्तलिखित प्रति; पृष्ठ ६-७।

(२) ओं॥ संवत (त्) १३६६.........
आस्था [मा] सुत धुहड़......

(मूल लेख की छाप से)।

इन्डियन ऐन्टिक्वेरी (जि० ४०, पृ० ३०१) में भी इस लेख का उल्लेख है।

महाभट्ट नानूराम की ली हुई छाप से ही इस लेख का पता लगा, पर मूल लेख अबतक नहीं मिला है।

(३) जि० २, पृ० १६५।

जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन

का ठिकाना बाड़मेर ५६० गांवों के साथ जीता और यादववंशी राजपूत मांगा को सर्वस्व दे अपना भिक्षुक (चारण) बनाया । इसी मांगा का बेटा चन्द हुआ, जिसके वंश के रोहड़िया बारहट कहलाये। वि० सं० १३०१ (ई० स० १२४४) में रायपाल का स्वर्गवास हो गया[1] ।'

दयालदास का कथन

दयालदास लिखता है—'वि० सं० १२४१ माघ वदि ५ (ई० स० ११८४) को रायपाल का जन्म हुआ था और वि० सं० १२८७ आश्विन सुदि १२ (ई० स० १२३०) को उसे राज्याधिकार प्राप्त हुआ। वह बड़ा दानी और वीर था। उसने बाड़मेर के परमारों को मारकर ५०० गांवों पर अधिकार कर लिया और वि० सं० १२६० (ई० स० ११३३) में महेवे पर भी उसका अधिकार हो गया। अनन्तर उसने पाबूजी को मारने में योग देनेवाले कुंडल के स्वामी को परास्त किया और वि० सं० १२६१ आश्विन सुदि १ (ई० स० १२३४) को ८४ गांवों के साथ उस प्रदेश को भी अपने राज्य में मिला लिया। चंद मंगावत बंदी हुआ, जिसे उसने अपना चारण बनाया। उसके वंशज रोहड़िया बारहट कहलाये। वि० सं० १२६१ (?) चैत्र वदि ४ (ई० स० १२३५) को रायपाल का देहांत हुआ[2] ।'

टॉड का कथन

टॉड का कथन है—'धूहड़ के उत्तराधिकारी रायपाल ने मंडोर (मंडोवर) के पड़िहार स्वामी को मारकर अपने पिता की मृत्यु का बदला लिया। कुछ समय तक उक्त प्रदेश पर उसका अधिकार भी रहा[3] ।'

---

(१) जि० १, पृ० २० । बांकीदास ने उसका चौहानों के हाथ से मारा जाना लिखा है (ऐतिहासिक बातें; संख्या १६१४)।

(२) जि० १, पृ० ५३-४ ।

(३) राजस्थान; जि० २, पृ० ९४३ । बांकीदास भी लिखता है कि रायपाल ने पड़िहारों से मंडोर लिया, पर वहां उसका बहुत दिनों तक अधिकार न रहा (ऐतिहासिक बातें; संख्या; १८)।

ख्यातों आदि में रायपाल के कहीं तेरह[1], कहीं बारह[2], कहीं दस[3], कहीं आठ[4] और कहीं चार[5] पुत्रों के होने का उल्लेख है। इन नामों का परस्पर मिलान करने से भी यह निश्चय नहीं होता कि उसके कितने पुत्र थे और वास्तव में उनके नाम क्या थे। केवल एक पुत्र कान्ह का नाम सब में है, जो उसका ज्येष्ठ पुत्र था।

संतति

विभिन्न ख्यातों के अन्तर्गत आई हुई उपरोक्त बातें किसी समकालीन लेखक-द्वारा न लिखी होने के कारण अधिकांश में विश्वास के योग्य

---

(१) टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० ६४३।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० १, पृ० २१) के अनुसार—

पुत्रों के नाम—१ कान्ह, २ केलण (केलण के थांथी और थांथी के फिटक (फिटक के वंश के फिटक राठोड़ कहाये), ३ सूंडो (इसके सूडा कहाये), ४ लाखणसी, ५ थांथी, ६ डांगी, ७ मोहण (इसको जैसलमेर का राव पकड़ ले गया और मांगा का बैर लेने के लिए उसका विवाह एक महाजन की पुत्री से कर दिया। इसके वंशज मुंहणोत ओसवाल कहलाये), ८ जाजण, ९ राजो, १० जोगो, ११ रादो (इसके रादा राठोड़ कहाये) और १२ हाथुडियो।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० ४४।

पुत्रों के नाम—कन्न, २ केलण (इसके केलणोत कहाये), ३ राजसी (इसके राजसीहोत कहाये), ४ मोहण (इसके मुंहणोत कहाये), ५ महिपाल (इसके महिपालोत कहाये), ६ सिवराज (इसके सिवराजोत कहाये), ७ सोढ़ल (इसके सोढलोत कहाये), ८ वलू (इसके वलूओत कहाये), ९ रामसिंह (इसके रामसिंहोत कहाये) और १० डांगी (इसके डांगी कहाये)।

(४) (१) कान्ह, (२) केल्हण, (३) रांदो, (४) सूंडो, (५) सूंपो, (६) वेहड़, (७) महणसी और (८) थांथी तथा इसका पुत्र फिटक हुआ।

बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १६७२।

(५) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ६६।

पुत्रों के नाम—१ कान्ह, २ समरांग, ३ लखमणसिंह और ४ सहनपाल।

ख्यातों के कथन की समीक्षा

नहीं है। असंदिग्धभाव से हम इतना ही कह सकते हैं कि वि० सं० १३६६ में अपने पिता की मृत्यु होने पर रायपाल उसका उत्तराधिकारी हुआ। पंवारों से रायपाल का बाड़मेर लेना भी निर्मूल बात है, क्योंकि उस समय तो वहां चौहानों का अधिकार था। पंवारों से तो बाड़मेर का इलाक़ा चौहानों ने बहुत पहले ले लिया था जैसा कि इन दोनों वंशों के उधर मिलनेवाले शिलालेखों से पाया जाता है।

जोधपुर राज्य की ख्यात में उसका देहांत वि० सं० १३०१ में और दयालदास की ख्यात में वि० सं० १२६१ में होना लिखा है, जो सर्वथा कल्पित है, क्योंकि उसके पिता धूहड़ का देहांत वि० सं० १३६६ (ई० स० १३०६) में होना उसकी देवली (स्मारक) के लेख से निश्चित है।

राव कन्हपाल

ख्यातों आदि में कन्हपाल के सम्बन्ध में उसके जन्म, सिंहासनारोहण और मृत्यु के कल्पित संवतों[1] के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता।

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार—

जन्म वि० सं० १२६१
राज्य प्राप्ति वि० सं० १३०१
मृत्यु वि० सं० १३८५
(जि० १, पृ० २१)।

दयालदास की ख्यात के अनुसार—

जन्म वि० सं० १२६२
राज्य प्राप्ति वि० सं० १२६१
मृत्यु वि० सं० १३०२
(जि० १, पृ० ५४)।

टॉड ने इसका और इसके एक पुत्र जालणसी का नाम देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं लिखा (राजस्थान; जि० २, पृ० ६४३)।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार देवड़ी राणी कल्याणदे

संतति

(सलखा की पुत्री) के गर्भ से उसके निम्नलिखित तीन पुत्र हुए[1]—

१. भीमकरण[2]

२. जालणसी

३. विजयपाल

राव जालणसी

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार तो यही प्रतीत होता है कि भीमकरण कन्हपाल का ज्येष्ठ पुत्र था, पर संभवतः उसके जीवनकाल में ही भीमकरण के मारे जाने के कारण दूसरा पुत्र जालणसी उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके सम्बन्ध में ख्यातों में बहुत कम वर्णन मिलता है। टॉड ने केवल उसका नाम[3] और नैणसी ने राणी तथा पुत्रों के नाम दिये हैं[4]। जोधपुर राज्य और दयालदास की ख्यातों में जालणसी के जीवन-काल की कुछ और घटनाओं का उल्लेख मिलता है, परन्तु परस्पर विभिन्न होने के कारण वे भी विश्वास के योग्य नहीं हैं।

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—"चांदाणी गांव के एक प्रसिद्धि प्राप्त अमर वृक्ष के फल को सोढों ने बिना आज्ञा के तोड़ा, जिसके

(१) बांकीदास ने भी इन्हीं तीन पुत्रों के नाम दिये हैं (ऐतिहासिक बातें; संख्या ७८४)। दयालदास केवल जालणसी का नाम देता है (दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० ४४)। नैणसी ने भीमकरण का नाम नहीं दिया (मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ६६ तथा १६५)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार यह काक नदी (जैसलमेर राज्य में लोद्रवा के निकट) की लड़ाई में मारा गया (जि० १, पृ० २१, बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ७८४)। संभव है कि इसने जैसलमेर पर चढ़ाई की हो और वहीं मारा गया हो।

(३) राजस्थान; जि० २, पृ० ९४३।

(४) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ६६ और १६५।

जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन

अपराध में जालणसी ने फ़ौज लेजाकर उनके डेरे इत्यादि लूट लिये और उनके स्वामी गांगा से दंड वसूल किया तथा अन्य ग्रामों[1] से भी दंड लिया, अनन्तर मुलतान[2] से भी चौथ वसूल की[3]।"

दयालदास जालणसी के सम्बन्ध में अपनी ख्यात में लिखता है—"वि० सं० १२९९ पौष वदि ४ (ई० स० १२४२) को उसका जन्म हुआ

दयालदास का कथन

और वि० स० १३०३ भाद्रपद वदि १२ (ई० स० १२४६) को वह गद्दी पर बैठा। वि० सं० १३२४ (ई० स० १२६७) में जब महेवे पर नवाब हाजीखां ने ४००० फ़ौज के साथ चढ़ाई की तो उस (जालणसी) ने खेड़ से चढ़कर उसका सामना किया और हाजीखां को अपने हाथ से मारकर विजय प्राप्त की। वि० सं० १३२७ माघ वदि ५ (ई० स० १२७०) को उसका देहांत हुआ[4]।"

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार उसके तीन राणियां थी, जिनसे उसके तीन पुत्र—छाडा, भाखरसी और डूंगरसी—हुए[5]। नैणसी

संतति

ने केवल उसकी एक राणी और एक पुत्र का नाम दिया है[6]। दयालदास के अनुसार उसके चार

(१) उक्त ख्यात में इन गांवों के नाम इस प्रकार दिये हैं—

कान्हराव, कोहर, सुध, जत्रिहर, दीलाहर, सतेहर, खुडिया, पांचल, वुडकिया तथा कीतल (जि० १, पृ० २२)।

(२) मुलतान से चौथ लेने का उल्लेख बांकीदास ने भी किया है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ७८६), पर यह कथन विश्वास के योग्य प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उस समय तक राठोड़ों की शक्ति इतनी नहीं बढ़ी थी कि वे मुलतान तक बढ़ते।

(३) जि० १, पृ० २२।

(४) जि० १, पृ० ५४।

(५) जि० १, पृ० २२।

(६) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ६६ और १९५।

पुत्र—छाड़ा, फिटक, खोखर और सीमलोत—हुए[1]।

ख्यातों के कथन की जांच

ख्यातों में दिये हुए जालणसी के जन्म मृत्यु आदि के संवत् कल्पित ही हैं। वि० सं० १३६६ में तो उसका प्रपितामह मरा था, फिर वि० सं० १३२७ में उसका विद्यमान रहना कैसे माना जा सकता है। उसका आस-पास के गांवों से दंड लेना सम्भव हो सकता है। उपर्युक्त हांजीखां कहां का था, यह ख्यातकार ने नहीं लिखा और न जोधपुर राज्य की ख्यात में ही इस घटना का उल्लेख मिलता है। यदि इस कथन में कुछ भी सत्यता हो तो वह जालोर अथवा नागोर के मुसलमान अफ़सरों में से कोई हो सकता है। वि० सं० १३६८ (ई० स० १२०६) में अलाउद्दीन खिलजी ने चौहानों से जालोर विजय कर लिया था और वहां उसकी तरफ़ से पठान हाकिम रहने लग गये थे। नागोर में भी रायपाल के पूर्व से ही मुसलमानों का अधिकार हो गया था।

राव छाड़ा

राव जालणसी की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र छाड़ा उसका उत्तराधिकारी हुआ। मुंहणोत नैणसी की ख्यात में केवल उसका नामोल्लेख ही मिलता है[2]। टॉड ने उसका नामोल्लेख करने के साथ-साथ इतना और लिखा है कि वह अपने पड़ोसी जैसलमेर के भाटियों के लिए बड़ा कष्टदायक था[3]।

जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन

जोधपुर राज्य की ख्यात में उसके विषय में लिखा है—'मृत्यु के समय जालणसी ने अपने पुत्र छाड़ा से कहा था कि सोढ़ों पर हमारा दंड निकलता है, सो दुर्जनसाल सोढ़ा से वसूल करना। छाड़ा ने इसपर चौगुने घोड़े और चौगुना दंड वसूल किया। अनन्तर उसने जैसलमेर के

(१) जि० १, पृ० ५४।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १६५।

(३) राजस्थान; जि० २, पृ० ९४४।

भाटियों से कहलाया कि गढ़ के बाहर गांव बसाया है, अतएव हमें अपनी पुत्री तथा नालबंधी दो, पर यह बातें भाटियों ने स्वीकार न कीं, तब उसने जैसलमेर पर चढ़ाई कर दी तो उन्होंने अपने यहां की बेटी उसे ब्याह दी[1]।'

दयालदास की ख्यात का कथन

दयालदास उसके विषय में लिखता है—'छाड़ा का जन्म वि० सं० १३२० श्रावण सुदि ५ (ई० स० १२६३) को हुआ था और वह वि० सं० १३२७ माघ सुदि १ (ई० स० १२७०) को राव हुआ। वि० सं० १३४० चैत्र वदि ५ (ई० स० १२८३) को उसने जैसलमेर पर चढ़ाई की। वहां के रावल जैतसी (तेजराव का पुत्र) ने उसका सामना किया, पर भाटी युद्ध में जम न सके, जिससे छाड़ा की विजय हुई और जैसलमेर नगर की लूट में उसके हाथ बहुत माल अस्बाब लगा। उसी वर्ष उसने उमरकोट पर चढ़ाई की और सोढ़ों को अपना आश्रित बनाया। फिर उसने महेवे का नुकसान करनेवाले भीनमाल के सोनगरों पर चढ़ाई की, पर उसी युद्ध में वि० सं० १३४५ आश्विन वदि ५ (ई० स० १२८८) को वह मारा गया[2]।'

संतति

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार उसकी हुलणी राणी से उसके निम्न लिखित सात पुत्र हुए[3]—

(१) टीड़ा
(२) खोखर[4]
(३) वानर
(४) सीमाल

(१) जि० १, पृ० २२। बांकीदास ने भी राव छाड़ा का सोढ़ा व भाटियों से लड़ना लिखा है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ७८७)।

(२) जि० १, पृ० २४-५।

(३) जि० १, पृ० २३।

(४) इसके वंशज खोखर राठोड़ कहलाये।

(५) रुद्रपाल
(६) खींपसा
(७) कान्हड़दे

मुंहणोत नैणसी[1] दयालदास[2] तथा टॉड[3] ने केवल एक पुत्र टीड़ा का ही नाम दिया है।

ख्यातों के कथन की जांच

पहले के राजाओं के समान ही ख्यातों में दिये हुए राव छाड़ा के सम्बन्ध के संवत् भी कल्पित ही हैं। उसका होना हम वि० सं० १४०० के पीछे ही मान सकते हैं, क्योंकि जैसा ऊपर लिखा जा चुका है कि वि० सं० १३६६ में तो धूहड़ मरा था। राव छाड़ा के जैसलमेर पर चढ़ाई करने के सम्बन्ध में जैसलमेर के इतिहास में बिल्कुल विपरीत वर्णन मिलता है। जैसलमेर के इतिहास में रावल चाचिगदेव (प्रथम) के हाल में टॉड लिखता है — "खेड़ में जा बसनेवाले राठोड़ बड़े कष्ट दायक पड़ोसी हो उठे थे। चाचिग ने उन्हें दंड देने के लिए सोढ़ों की सेना की सहायता प्राप्त की और जसल तथा भालोत्रा की ओर अग्रसर हुआ, लेकिन छाड़ा और उसके पुत्र टीड़ा ने एक कन्या का विवाह उसके साथ कर उसका क्रोध शान्त किया[4]।' लक्ष्मीचंद ने अपनी "तवारीख जैसलमेर" में चाचिग के वर्णन में लिखा है—'सोढ़ोंने उस-(चाचिग) की तावेदारी में हाजिर होकर अर्ज की कि राठोड़ों ने गोहिलों से खेड़ छीन ली व राव छाडा हमसे भी अदावत रखता है, इसपर चाचिग फ़ौरन वहां पहुंचा। राव छाड़ा ने कुंवर तीडा की सलाह से फ़ौज खर्च दे, बेटी परणा सुलह कर ली[5]।' "वीरविनोद" में भी जैसलमेर के इतिहास में चाचिगदेव का सोढ़ों की सहायता से छाड़ा से लड़ना और

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १६५।
(२) दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० ५५।
(३) राजस्थान; जि० २, पृ० ६४४।
(४) वही; जि० २, पृ० १२०६।
(५) पृ० ३२।

उसकी पुत्री से विवाह करना लिखा है[1]। ऐसी दशा में किसका कथन ठीक है यह निर्णय नहीं किया जा सकता। जैसलमेर की तवारीख़ में दिया हुआ चाचिग का समय यदि ठीक माना जाय तो वह छाड़ा का समकालीन नहीं ठहरता। इसी प्रकार उक्त तवारीख़ के अनुसार राव जैतसी भी उसका समकालीन नहीं होता।

दयालदास की ख्यात का यह कथन कि छाड़ा ने भीनमाल के सोनगरों से लड़ाई की और उसी में मारा गया ठीक नहीं है, क्योंकि उससे बहुत पूर्व उधर मुसलमानों का अधिकार हो गया था।

राव टीडा

राव छाड़ा का देहान्त होने पर टीडा उसका उत्तराधिकारी हुआ। मुंहणोत नैणसी की ख्यात में उसके विषय में लिखा है—

मुंहणोत नैणसी की ख्यात का कथन

'राव टीडा और राव सामन्तसिंह सोनगरा के बीच भीनमाल नामक स्थान में युद्ध हुआ। सोनगरे हार खा कर भागे और टीडा ने उनका पीछा किया सोनगरा राव की राणी सीसोदणी सुवली भी युद्ध में साथ थी। उसके रथ को राठोड़ों ने जा घेरा। टीडा ने आगे आकर रथ को मोड़ने की आज्ञा दी। सीसोदणी के कारण पूछने पर उसने उत्तर दिया कि मैं तुझे ले जाकर अपनी राणी बनाऊंगा। सीसोदणी ने कहा कि यह तभी हो सकता है जब तुम मेरे पुत्र को युवराज करो। राव ने इसको मंजूर किया और सीसोदणी को घर लाया। उसके एक पुत्र कान्हड़देव हुआ जो युवराज नियुक्त हुआ। कुछ समय पीछे गुजरात के बादशाह की फ़ौज महेवे पर आई, जिसके साथ झगड़ा करने में टीडा काम आया और उसका एक पुत्र सलखा बन्दी हुआ[2]।'

---

(१) भाग २, प्रकरण १५, पृ० ७२।

(२) जि० २, पृ० ६५।

जोधपुर राज्य की ख्यात में उसके सम्बन्ध में लिखा है—

जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन

'राव टीड़ा, जिसका जन्म वि॰ सं॰ १३२१ मार्गशीर्ष सुदि ७ (ई॰ स॰ १२६४) को हुआ था, महेवे का स्वामी हुआ। उसने कितने ही समय तक भीनमाल पर राज्य किया और वहां के सोनगरे स्वामी के यहां जबरन विवाह किया। इसके अतिरिक्त उसने सिरोही के स्वामी, लोद्रवा के भाटियों तथा सोलंकियों से दंड वसूल किया और वालेचों से अपनी चाकरी कराई। सिवाणे के सातलसोम और बादशाह अलाउद्दीन में जब लड़ाई हुई तो उसी में वि॰ सं॰ १३५२ ज्येष्ठ सुदि ११ (ई॰ स॰ १२९५) को टीड़ा मारा गया[1]।'

दयालदास की ख्यात का कथन

दयालदास की ख्यात में राव टीड़ा के सम्बन्ध में मुंहणोत नैणसी की ख्यात जैसा ही वर्णन है। उसमें दिये हुए संवतों तथा जोधपुर राज्य की ख्यात के संवतों में अन्तर है, परन्तु वे भी उसी प्रकार कल्पित ही हैं। सवली के साथ उसके विवाह करने एवं उसके पुत्र सलखा के वन्दी होने का उसमें भी उल्लेख है, जो जोधपुर राज्य की ख्यात में नहीं है[2]।

टॉड का कथन

टॉड के कथनानुसार अपने पिता के समान टीड़ा भी अपने पड़ोसी भाटियों के लिए कष्टदायक हो गया था, जिससे उन (भाटियों) को खेड़ तक घुसकर लड़ाई करनी पड़ी। टीड़ा ने सोनगरों से भीनमाल लेने के अतिरिक्त देवड़ों और वालेचों से भूमि छीनकर अपने राज्य का विस्तार किया[3]।

(१) जि॰ १, पृ॰ २३-४। बांकीदास ने भी टीड़ा का सातल की सहायता करने में अलाउद्दीन की सेना के साथ लड़ते हुए मारा जाना लिखा है (ऐतिहासिक बातें; संख्या १६१६), पर यह कथन कल्पित है, जैसा कि आगे बतलाया जायगा।

(२) जि॰ १, पृ॰ ५५-६।

(३) राजस्थान; जि॰ २, पृ॰ ९४४।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार उसके तीन पुत्र—त्रिभुवनसी, कान्हड़ और सलखा—हुए[1]। मुंहणोत नैणसी की ख्यात में कान्हड़देव और सलखा के नाम ही मिलते हैं और उसमें त्रिभुवनसी को कान्हड़देव का पुत्र लिखा है[2]। टॉड के ग्रन्थ से केवल यह पता चलता है कि उसका उत्तराधिकारी सलखा हुआ[3]।

संतति

ऊपर आये हुए संवतों के समान ही ख्यातों के अधिकांश वर्णन निराधार हैं। टीड़ा का सोनगरों से भीनमाल लेना विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि उस समय तक तो वहां पर मुसलमानों का अधिकार हो गया था। जालोर के सोनगरों में सामन्तसिंह नाम का एक राजा अवश्य हुआ था, पर उसका समय वि० सं० १३३६ से १३५५ तक है[4]। वह टीड़ा का नहीं, किन्तु आस्थान अथवा उसके पुत्र धूहड़ का समकालीन था। यदि ख्यातों के कथन में कुछ भी सत्यता हो तो यही मानना पड़ेगा कि सामन्तसिंह नाम का उधर कोई छोटा-मोटा सोनगरा जागीरदार रहा होगा, जिससे टीड़ा की लड़ाई हुई हो। सोनगरों के हाथ से राज्य चला जाने पर भी उधर उनकी छोटी-छोटी जागीरें रह गई थीं। सिरोही के स्वामी से उसका दंड लेना भी कल्पना मात्र है, क्योंकि उसके समय तक तो सिरोही की स्थापना भी नहीं हुई थी[5]। इसी प्रकार

ख्यातों के कथन की जांच

(१) जि० १, पृ० २४। बांकीदास ने भी येही तीन नाम दिये हैं (ऐतिहासिक बातें; संख्या १०६३)।

(२) जि० २, पृ० ६५-६।

(३) राजस्थान; जि० २, पृ० ६४४।

(४) भीनमाल से सामन्तसिंह के वि० सं० १३३६ से वि० सं० १३४५ तक के लेख मिले हैं (देखो ऊपर पृ० ५२ तथा डॉ० भंडारकर; ए लिस्ट ऑव् दि इन्स्क्रिप्शन्स ऑव् नॉर्दर्न इंडिया; संख्या ६०२ और ६२२)।

(५) पुरानी सिरोही वि० सं० १४६२ (ई० स० १४०५) में महाराव शिवभाण ने बसाई थी और वर्तमान सिरोही की स्थापना उक्त महाराव के पुत्र सहस्रमल (सैंसमल) ने वि० सं० १४८२ (ई० स० १४२५) वैशाख वदि २ को की थी।

लोद्रवा के भाटियों एवं सोलंकियों से दंड लेना भी ख्यातकार की कल्पना ही है। टॉड के कथनानुसार उसने देवड़ों और वालेचों का राज्य भी विजय किया था, पर यह कथन भी निर्मूल है। वे खेड़ से बहुत दूर थे और वहां तक उसकी पहुंच होने में संदेह है। टीडा का सिवाणे में अलाउद्दीन के साथ की लड़ाई में मारा जाना भी विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि अलाउद्दीन वि० सं० १३७२ में ही मर गया था। वह तो उसके चौथे पूर्व पुरुष रायपाल का समकालीन था। टीडा के समय में मारवाड़ के अधिकांश हिस्से पर मुसलमानों का अधिकार हो गया था। सम्भव है वह किसी दूसरे मुसलमान शासक अथवा अफ़सर के साथ की लड़ाई में मारा गया हो।

(कान्हड़देव तथा त्रिभुवनसी)

मुंहणोत नैणसी की ख्यात का कथन

मुंहणोत नैणसी लिखता है—

'राव टीडा के बाद कान्हड़देव पाट बैठा। सलखा को मुसलमानों के हाथ से छुड़ाने के राठोड़ों ने कई प्रयत्न किये, पर कुछ न चली। तब बाहड़ तथा बीजड़ नाम के दो पुरोहित योगी का भेष धरकर गुजरात गये। वहां उन्होंने वीणा सुनाकर बादशाह को प्रसन्न किया और इस प्रकार बदले में सलखा को मुक्त करा लिया। फिर वे उसे लेकर महेवा गये, जहां कान्हड़देव ने उसे जागीर निकाल दी।

'एक दिन सलखा अपनी जागीर सलखावासी से सामान ख़रीदने के लिए महेवा गया। एक राठी के सिर पर सामान रखकर जब वह लौट रहा था तो उसे मार्ग में एक स्थान पर चार नाहर (सिंह) एक नाले पर अपना भक्ष्य खाते हुए मिले। उसको देख सलखा पास ही उतर कर बैठ गया

उससे पहले देवड़ों की राजधानी आबू पहाड़ के नीचे चन्द्रावती थी, जो उनके पहले आबू के परमारों की राजधानी थी।

(मेरा; सिरोही राज्य का इतिहास; पृ० १६३-४ तथा १९०)।

और उस राठी ने शकुन का फल पूछने के बहाने जाकर राव कान्हड़देव को इसकी सूचना दी तथा कहा कि जो राणी वे चीज़ें खावेगी उसका पुत्र राजा होगा, अतएव आप उन चीज़ों को सलखा सहित मंगवा लीजिये। उसने उसी समय इस कार्य के लिए अपने आदमी रवाना किये, परन्तु इसी बीच राठी के इतनी देर तक न आने के कारण सलखा अपना सामान घोड़े पर रखकर चला गया था, जिससे कान्हड़देव के मनुष्यों को वापिस लौटना पड़ा। अनन्तर राठी ने जाकर सलखा को पूर्वोक्त शकुन का फल बतलाया। दूसरे शकुन जाननेवालों ने भी ऐसी ही बात कही। काल पाकर सलखा के चार पुत्र—माला (मल्लीनाथ), वीरम, जैतमाल और सोभित (शोभित)—हुए।

'बारह वर्ष की अवस्था में माला कान्हड़देव के पास गया, जिसने उसपर बड़ी कृपा दिखलाई और उसे अपने साथ रख लिया। कुछ दिनों बाद उसके विशेष आग्रह करने पर कान्हड़देव ने उसे तीसरा भाग देने की पक्की लिखा पढ़ी कर दी। तब माला तन-मन से राव की सेवा करने लगा और राव ने भी उसे अपना प्रधान बनाया। माला ने अपना अमल अच्छी तरह जमा लिया और राज्य-कार्य भी उत्तमता के साथ चलाने लगा, परन्तु राव के सरदार इस बात को पसंद नहीं करते थे।

'एक बार दिल्ली के बादशाह ने देश में दंड डाला। महेवा में भी उसके किरोड़ी दंड उगाहने पहुंचे। राव ने अपने सरदारों, भाइयों और पुत्रों को एकत्र कर राय ली, कि क्या करना चाहिये। माला ने कहा कि दंड नहीं देंगे, करोड़ी को मारेंगे। अन्त में सब को अलग-अलग ले जाकर मारने की राय तय हुई। किरोड़ी को बुलाकर कहा गया कि अपने आदमियों को तुम अलग-अलग गांवों में दंड वसूल करने के लिए भेजो। बादशाही नौकरों में जो सरदार था उसे माला अपने साथ ले गया और दूसरे आदमी पृथक्-पृथक् स्थानों में गये। पांचवां दिन उन्हें मारने के लिए निश्चित हुआ था। दूसरे सब सरदारों ने तो बादशाही नौकरों को नियत समय पर मार दिया, परन्तु माला ने किरोड़ी की खूब खातिर की

और उससे सब हाल कह दिया। किरोड़ी ने कहा कि यदि एक बार सही-सलामत दिल्ली पहुंच गया तो तुझे महेवे का स्वामी बनवा दूंगा। माला ने उससे वचन ले अपने आदमी के साथ उसे दिल्ली पहुंचवा दिया। किरोड़ी ने जाकर बादशाह से सारी बातें अर्ज़ कीं और कहा कि माला बड़ा योग्य और हुजूर का खैरख्वाह है। इसपर बादशाह ने माला को अपने पास बुलवाया। माला ने भी बड़े ठाट-बाट से दिल्ली जाकर बादशाह की क़दमबोसी की। बादशाह ने उसे रावलाई का टीका दिया। माला कुछ समय तक दिल्ली में ही रहा।

'इसी बीच इधर कान्हड़देव का देहांत हो गया और उसका पुत्र त्रिभुवनसी उसका उत्तराधिकारी हुआ। तब माला महेवे लौटा। त्रिभुवनसी ने अपने राजपूत एकत्र कर उससे लड़ाई की, पर उसे सफलता न मिली। वह घायल हुआ और उसकी सेना भाग गई। उसका विवाह ईंदा पड़िहारों के यहां हुआ था। ससुरालवाले उसे अपने यहां ले गये और मरहम-पट्टी कराने लगे। माला ने सोचा कि बादशाह ने टीका दिया तो क्या; जब तक त्रिभुवनसी जीता है, राज मेरे हाथ लगने का नहीं। तब उसने त्रिभुवनसी के भाई पद्मसिंह को मिलाकर यह दम दिया कि जो तू त्रिभुवनसी को मार डाले तो तुझे महेवे की गद्दी पर बिठा दूं। राज्य के लोभ में फंसकर पद्मसिंह ने मरहम पर लगाई जानेवाली पट्टियों में विष मिला दिया, जिससे सारे शरीर में विष फैल जाने से त्रिभुवनसी की मृत्यु हो गई। यह हत्या कर जब पद्मसिंह माला के पास गया तो उसने उसे केवल दो गांव देकर टाल दिया। त्रिभुवनसी से राठोड़ों की ऊदावत[1] शाखा चली[2]।'

---

(१) मारवाड़ में इस समय एक ऊदावत शाखा विद्यमान है, जिसके रायपुर, नींबाज, रास, लांबिया आदि कई ठिकाने हैं। ये ऊदावत राव जोधा के पौत्र और राव सूजा के पुत्र ऊदा के वंशधर हैं। नैणसी ने त्रिभुवनसी के वंश में ऊदावत शाखा का होना लिखा है। या तो यह कथन ग़लत है अथवा उसकी लिखी हुई ऊदावत शाखा अब नष्ट हो गई हो।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ६५-६, ६८-७१।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, जोधपुर राज्य की ख्यात में त्रिभुवनसिंह को कान्हड़देव का पुत्र नहीं वरन् भाई[1] और मल्लीनाथ का

अन्य ख्यातों आदि के कथन

जालोर के मुसलमानों की सहायता से कान्हड़देव को मार महेवा का राज्य लेना लिखा है[2]। दयालदास की ख्यात के अनुसार वि० सं० १३७५ मार्गशीर्ष वदि ४ (ई० स० १३१८) को कान्हड़देव राव हुआ। आगे चलकर उक्त ख्यात में मुंहणोत नैणसी की ख्यात जैसा ही वर्णन है, पर उससे यह स्पष्ट नहीं होता कि त्रिभुवनसी का कान्हड़देव के साथ क्या सम्बन्ध था[3]। बांकीदास के अनुसार वह कान्हड़देव का छोटा भाई था और कान्हड़देव को कुंवरपदे में मारकर मल्लीनाथ (माला) ने खेड़ का राज्य लिया था[4]। टॉड ने उन दोनों के नाम नहीं दिये हैं। बीकानेर के महाराजा रायसिंह की बृहत् प्रशस्ति तथा रावल जगमाल के नगर गांव से मिले हुए शिलालेख में दी हुई वंशावली में भी उन दोनों के नाम नहीं हैं। संभव है अनौरस पुत्र होने के कारण उक्त दोनों लेखों में उनके नाम छोड़ दिये गये हों अथवा ख्यातों में दी हुई सवली और उसके पुत्र की कथा ही सारी की सारी कल्पित हो।

राव सलखा

राव सलखा राव टीड़ा का पुत्र था। उसके मुसलमानों के यहां बन्दी होने, अनन्तर पुरोहित वाहड़ एवं वीजड़-द्वारा छुड़वाये जाने तथा कान्हड़देव-द्वारा उसे सलखावासी गांव जागीर में दिये जाने का उल्लेख ऊपर आ गया है[5]।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में इतना और लिखा है — 'राव सलखा

(१) देखो ऊपर; पृ० १७८।

(२) जि० १, पृ० २४।

(३) जि० १, पृ० ५६-८।

(४) ऐतिहासिक बातें; संख्या १०६३।

(५) देखो ऊपर; पृ० १७६।

के पुत्र नहीं था। एक दिन वह वन में शिकार के वास्ते गया और दूर जा निकला। साथ के लोग सब पीछे रह गये। जब प्यास लगी तो जल की खोज में इधर उधर फिरने लगा। एक स्थान पर उसने धुआं निकलते देखा। जब वहां पहुंचा तो देखता क्या है कि एक तपस्वी बैठा तप कर रहा है। उसने अपना परिचय उसे देकर जल की याचना की। तपस्वी ने कमंडल की तरफ़ इशारा करके कहा कि इसमें जल है तू भी पीले और अपने घोड़े को भी पिला। सलखा ने ऐसा ही किया, लेकिन फिर भी कमंडल भरा का भरा रहा। तब तो उसने जाना कि यह कोई सिद्ध है। हाथ जोड़ विनती करनें लगा कि महाराज आपकी कृपा से और तो सब आनन्द है, पर एक पुत्र नहीं है। जोगी ने अपनी झोली में से भस्म का एक गोला और चार सुपारी निकाल कर उससे कहा कि इन्हें राणी को खिलाना, उसके चार पुत्र होंगे। उसने घर पहुंचकर ऐसा ही किया, जिससे उसके चार पुत्र हुए। योगी की आज्ञानुसार उसने ज्येष्ठ पुत्र का नाम मल्लीनाथ रक्खा और उसे योगी के कपड़े पहनाकर युवराज बनाया[1]।'

मुंहणोत नैणसी का कथन

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार सलखा एक छोटा ठाकुर था और सिवाणा के गांव गापेड़ी में रहता था, जहां उसके ज्येष्ठ पुत्र मल्लीनाथ का जन्म हुआ[2]। दयालदास की ख्यात से इतना और पाया जाता है कि सलखा का जन्म वि० सं० १३६५ (ई० स० १३०८) में और उसकी मृत्यु वि० सं० १४१४ श्रावण वदि ३ (ई० स० १३५७) को हुई[3]। टॉड के अनुसार उसके वंशज सलखावत अब तक महेवा तथा राड़धरा में बड़ी संख्या में विद्यमान हैं, जो भोमिये हैं[4]।

अन्य ख्यातों आदि के कथन

(१) जि० २, पृ० ६७।

(२) जि० १, पृ० २४।

(३) जि० १, पृ० २६।

(४) राजस्थान; जि० २, पृ० ९४४।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार सलखा के दो राणियां थीं, जिनसे उसके चार पुत्र—मल्लीनाथ, जैतमाल,[1] वीरम[2] तथा

---

(१) दयालदास की ख्यात के अनुसार माला ने समीयाणा विजयकर अपने भाई जेतमाल को दिया (जि० १, पृ० ५८)।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार जैतमाल के वंश के जैतमालोत कहलाये। उसके निम्नलिखित छः पुत्र हुए—

१. हापा—इसके वंश के धवेचा कहलाये।
२. खींवा— ,, राडधरे कहलाये।
३. जीवा
४. लूंढा
५. वीजड़
६. खेतसी

(जि० १, पृ० २५)।

बांकीदास के अनुसार जैतमाल के बारह पुत्र हुए, जिनमें से खींवकरण बड़ा प्रतापी हुआ। उसने सोढ़ा को मार राड़धरा के अड़तालीस गांव दबाये (ऐतिहासिक बातें; संख्या ११४)।

(२) वीरम को माला (मल्लीनाथ) ने ७ गांवों के साथ गुढ़ा दिया, जहां वह रहने लगा (दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० ५८)। माला के नहीं, किन्तु वीरम के वंश में राजपूताने में जोधपुर, बीकानेर तथा किशनगढ़ के राज्य हैं।

बीकानेर के स्वामी महाराजा रायसिंह के समय की बीकानेर दुर्ग के सूरजपोल द्वार की बड़ी प्रशस्ति एवं "रायसिंहोत्सव" (वैद्यक ग्रंथ) से भी जोधपुर, बीकानेर और किशनगढ़ राज्यों का वीरम के वंश में होना निश्चित है—

श्रीरायवीरमस्तस्य पुत्रश्चंडप्रतापवान् ।
चामुंडरायस्तत्पुत्रो रणमल्लस्तदंगजः ।

बीकानेर दुर्ग के सूरजपोल द्वार की प्रशस्ति।

....
....

वीरः श्रीवीरमाख्यस्तदनुसुरसरिन्नीरडिंडीरगौर-
स्तोकश्लोकस्तनुजोभवदवनिपतिस्तस्य चामुंडरायः ॥ २२ ॥

रायसिंहोत्सव (वैद्यकसार ग्रंथ); पत्र ४। १।

संतति

सोभित[1] एवं एक पुत्री विमली हुई, जिसका विवाह जैसलमेर के रावल घड़सी के साथ हुआ[2]। टॉड ने केवल उसके उत्तराधिकारी वीरमदेव का नाम ही दिया है[3]।

ख्यातों आदि के कथन की जांच

मुंहणोत नैणसी तथा दयालदास का यह कथन कि सलखा गुजरात के बादशाह के यहां क़ैद हुआ निर्मूल है, क्योंकि उस समय तक तो गुजरात की बादशाहत क़ायम भी नहीं हुई थी। गुजरात का सूबेदार जफ़रखां मुज़फ्फ़रशाह नाम धारणकर वि० सं० १४५४ (ई० स० १३९७) में गुजरात का प्रथम स्वतंत्र सुलतान बना। उस समय के आस-पास तो राव चूंडा का विद्यमान होना अनुमान किया जा सकता है। सलखा से पूर्व ही मारवाड़ के कई हिस्सों में मुसलमानों का राज्य हो गया था। संभव है उनमें से किसी के हाथ सलखा क़ैद हुआ हो। वह कान्हड़देव के समय एक मामूली जागीरदार ही रहा।

रावल मल्लीनाथ

रावल मल्लीनाथ (माला) का बहुत कुछ वृत्तान्त ऊपर आ गया है[4]। उसके सिवाय ख्यातों आदि से जो अन्य बातें उसके सम्बंध की ज्ञात होती हैं, वे नीचे दी जाती हैं—

मुंहणोत नैणसी लिखता है—

'त्रिभुवनसी को मरवाने के बाद माला शुभ मुहूर्त दिखा महेवा में आकर पाट बैठा और अपनी आण दुहाई फेरी। सब राजपूत भी उससे आकर मिल गये और उसकी ठकुराई दिन-दिन बढ़ने लगी। अपने भाई

(१) दयालदास सोभित का वीरम के पास रहना लिखता है; परन्तु जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार वह रुष्ट होकर सिंध चला गया और वहां एक लड़ाई में २५ मनुष्यों के साथ काम आया (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २५)।

(२) जि० १, पृ० २४। लक्ष्मीचंद लिखित "तवारीख़ जैसलमेर" के अनुसार सलखा की नहीं, किन्तु मल्लीनाथ तथा उसके पुत्र जगमाल की पुत्रियां उसे ब्याही थीं (पृ० ३९-४०)। मुंहणोत नैणसी ने भी ऐसा ही लिखा है और विमलादे को मल्लीनाथ की पुत्री लिखा है (मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ७१)।

(३) राजस्थान; जि० २, पृ० ९४४।

(४) देखो ऊपर; पृ० १८०-८१।

जैतमाल को उसने सिंघाड़ा गांव जागीर में दिया। उसके वैमातृज भाई वीरम और सोभित भी महेवा के पास ठिकाना बांधकर रहने लगे। रावल माला ने दिल्ली और मांडू के बादशाहों की फ़ौजों से युद्ध कर उन्हें हराया। वह बड़ा सिद्ध हुआ और जगमाल को उसने अपना युवराज बनाया।

'माला के राज्य-समय बादशाही फ़ौज महेवे पर आई। माला ने अपने सरदारों को बुलाकर पूछा कि अब क्या करना चाहिये। उन्होंने उत्तर दिया कि तुर्कों से युद्ध कर उन्हें जीत लेने की सामर्थ्य तो हमारी नहीं है। हेमा (सीमालोत[1]) ने कहा कि रात्रि के समय छापा मारा जाय। औरों की भी यही राय ठहरी। माला की आज्ञा से सरदारों के नाम लिखे गये और उन्हें रात्रि के समय मुसलमानों की सेना पर आक्रमण करने का आदेश हुआ। सेना के महेवे पहुंचने पर जगमाल मालावत, कूंपा मालावत, हेमा आदि सरदारों ने मुसलमान अफ़सरों को मारने का ज़िम्मा लिया और यह तय हुआ कि मुग़ल (? मुसलमान) सरदार घरों में रहते हैं सो थानों को तोड़कर घोड़ों को घरों में ले जाकर उनपर हमला किया जाय, पर एक सरदार दूसरे के बनाये मार्ग से न जावे। तदनुसार पहर रात गये दूसरे सवार तो शाही सेना पर भेजे गये और ऊपर लिखे हुए सरदार अफ़सरों के डेरों पर चले। हेमा ने पहले सेनानायक के तंबू का थंभा तोड़कर उसको मारडाला और उसका टोप उतार लिया। जगमाल तंबू का थंभा तोड़ने में समर्थ न हुआ, जिससे उसने हेमा के बनाये हुए मार्ग से जाकर आक्रमण किया। हेमा ने यह देख लिया। सरदार के मारे जाते ही मुग़ल सेना भागी, जिसे राठोड़ों ने लूटा। सवेरा होने पर सब सरदार रावल माला के दरबार में उपस्थित हुए। जगमाल बोला कि सेनापति को मैंने मारा है। हेमा से न रहा गया। उसने कहा कि कुछ निशानी बताओ। रावल ने भी यही कहा कि जिसने मारा होगा उसके पास कोई निशानी अवश्य होगी। हेमा ने तुरंत टोप निकालकर सामने रक्खा और जगमाल

(१) सीमाल को दयालदास की ख्यात में जगमाल का पुत्र लिखा है (जि० १, पृ० ६९)। इस प्रकार हेमा माला का पौत्र होता है।

से कहा "मैंने मारा सो तुमने ही मारा। हम तो तुम्हारे राजपूत हैं। तुम हमारी इज़्ज़त जितनी बढ़ाओ उतना ही अच्छा। मेरे किये हुए मार्ग में तुम घोड़ा लाये और मुर्दे के ऊपर घाव किया, यह तुम्हारी भूल है।" ऐसी बातें सुनकर जगमाल हेमा से नाराज़ हो गया।

'कुछ समय बीतने पर जगमाल ने हेमा से कहा कि तुम अपना घोड़ा हमें दे दो और उसके बदले में दूसरा घोड़ा ले लो। हेमा ने इसे स्वीकार न किया। फिर जगमाल के हठ करने पर भी जब हेमा ने इन्कार ही किया तो जगमाल ने कह दिया कि तुम हमारे चाकर नहीं। इसपर हेमा महेवे का परित्याग कर घूघरोट के पहाड़ों में जा रहा और मेवासी (विद्रोही) बनकर महेवे के इलाक़े को उजाड़ने लगा। वहां के १४० गांवों में उसकी धाक से धुंआ तक न निकलने पाता था और लोग उसके डर के मारे भागकर जैसलमेर जा बसे। कई साल तक यह उपद्रव बना रहा। जब माला रोगग्रस्त हुआ और उसका शरीर बहुत निर्बल हो गया तो उसने अपने परिवार के लोगों तथा सरदारों आदि को बुलाकर कहा—"इतने दिन तो मैं देश में बैठा था, अब मेरा काल निकट आ गया है। मेरे मरते ही हेमा महेवे के दरवाज़ों पर आ डटेगा और गढ़ की पोल पर छापा मारेगा। है कोई ऐसा राजपूत जो हेमा को मारे।" रावल ने ये शब्द दो-तीन बार कहे, परंतु किसी ने भी ज़बान न खोली। तब कुंभा[1] ने खड़े होकर राजपूतों को ललकारा लेकिन इसपर भी बीड़ा उठाने की किसी

(१) कुंभा मल्लीनाथ का पौत्र और जगमाल का पुत्र था। मुंहणोत नैणसी लिखता है—'एक बार रावल (मल्लीनाथ) से आज्ञा ले जगमाल, हेमा सीमालोत तथा रावल घड़सी के साथ शिकार खेलने गया। एक दिन वन-विहार करते-करते उन्हें एक साठी (२० पुरुष गहरा) कुंआ नज़र आया। वहां केवल एक स्त्री खड़ी थी। उसने लाव (रस्सा) समेट कंधे पर लटकाई, चरस को बांह में डाला और सिर पर पानी का भरा हुआ घड़ा रखकर चली। इन्होंने उसके पास जाकर महेवे का मार्ग पूछा तो उसने वैसे ही हाथ लंबा कर मार्ग बतला दिया। उसका ऐसा बल देखकर सब चकित रह गये। फिर यह पता पाकर कि वह कुमारी है सब उसके साथ हो लिये। बस्ती में पहुंचने पर, जो सोलंकियों की थी, उन्होंने उसका परिचय पूछकर उसके पिता को बुलवाया और उससे उसका

की हिम्मत न पड़ी। इसपर उस(कुंभा)ने स्वयं हेमा को मारने का बीड़ा उठाया[1]। रावल ने उसकी बड़ी प्रशंसा की और अपनी तलवार तथा कटार

विवाह कुंवर जगमाल के साथ कर देने को कहा। पहले तो वह राज़ी न हुआ, लेकिन पीछे से उसने उसी दिन शाम को विवाह सम्पन्न करा दिया। तीन-चार दिन सब वहां रहे। सोलंकणी सगर्भा हुई। फिर अपनी स्त्री को वहां पर ही छोड़ जगमाल महेवा लौट गया। कालान्तर से उसी स्त्री के गर्भ से कुंभा का जन्म हुआ, जो बड़ा होने पर अपने दादा के पास आ रहा (मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ७२-३)।'

ऐसा ही वर्णन दयालदास की ख्यात में भी है (जि० १, पृ० ५६-६०)।

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात में हेमा के मारे जाने का विस्तृत हाल दिया है, जो संक्षेप में नीचे लिखे अनुसार है—

रावल माला की मृत्यु, जगमाल के गद्दी बैठने तथा कुंभा के बीड़ा उठाने की ख़बर सुन हेमा मन में संकोच कर बैठ रहा तथा ऐसा अवसर ढूंढने लगा कि कुंभा कहीं बाहर जावे तो धावा करे। उधर कुंभा सदा सावधान रहता। काल पाकर हेमा पर कुंभा का आतङ्क जम गया और उसने देश में दौड़ना छोड़ दिया। यह चर्चा सारे देश में फैल गई और कुंभा का प्रताप भी बहुत बढ़ गया। इससे प्रभावित होकर ऊमरकोट के स्वामी सोढ़ा राव मांडण ने ऊमरकोट से पचास कोस महेवा की तरफ़ आकर अपनी कन्या का उससे विवाह किया। यह कार्य गुप्त रीति से ही सम्पन्न हुआ था, पर इसकी ख़बर अपने गुप्तचरों-द्वारा हेमा को मिल गई। वह तो ऐसा अवसर ढूंढता ही था। उसने महेवा पर आक्रमण कर दिया। पाणिग्रहण होते ही कुंभा ने विदा मांगी। इतने में ही हेमा के महेवे पर चढ़ आने की ख़बर उसे मिली। लोगों के अनुरोध करने पर घोड़े पर चढ़े-चढ़े ही अपनी स्त्री का मुख अवलोकन कर वह वहां से रायसिंह (सोढ़ा राव का पुत्र) के साथ चल दिया। सीधे महेवे की ओर न जाकर वे घूघरोट की तरफ़ अग्रसर हुए। मार्ग में हेमा के घर जाने की ख़बर उन्हें एक पनिहारिन से मिली। दो कोस तक पैदल आगे बढ़ने पर हेमा से कुंभा की मुठभेड़ हुई। हेमा ने कहा, हम दोनों ही लड़ें। इसपर कुंभा घोड़े से उतर गया। रायसिंह ने मना किया, पर वह न माना और उसने हेमा को वार करने को कहा। हेमा ने कहा कि पहले तू ही वार कर क्योंकि मैं तुझ से बड़ा हूं। कुंभा ने उत्तर दिया कि उमर में भले ही बड़ा हो, पर पद में मैं ही बड़ा हूं। फलतः हेमा ने पहला वार किया, जिससे कुंभा की खोपड़ी कान तक कट गई। फिर कुंभा ने वार कर हेमा के दो टुकड़े कर दिये। उसके गिरते ही कुंभा ने अपनी कटार उसके हृदय में भोंक दी। कुछ ही क्षण बाद उसका प्राण निकल गया। हेमा, जगमाल के वहां पहुंचने पर मरा। कुंभा की स्त्री सोढ़ी उस(कुंभा)के साथ सती हुई। हेमा के पुत्र को जगमाल ने अपने पास रख लिया। (जि० २, पृ० ७६-८१)।

उसे दीं। इसके कुछ ही समय बाद माला का देहांत हो गया[1]।'

एक दूसरे स्थल पर उसके जीवनकाल के वृत्तांत में उक्त ख्यात में लिखा है—'जैसलमेर के स्वामी मूलराज तथा रतनसी शाका करके मरे, तब रतनसी के पुत्र घड़सी, ऊनड़, कान्हड़ तथा भानजा देवड़ा (मेलगदे) मूलराज के पगड़ी-बदल भाई कमालदीन के आश्रय में रहे। उस (कमालदीन) ने तथा उसकी स्त्री ने उन्हें बड़े लाड़-प्यार से रक्खा। कपूर मरहटे-द्वारा बादशाह को इस बात का पता लगने पर उसने कमालदीन को बुलाकर उन लड़कों के बारे में पूछा। उसने वहां तो बात बना दी और घर आकर चारों लड़कों को चार घोड़ों पर चढ़ाकर निकाल दिया। वे नागोर में सकरसर आकर ठहरे। बादशाही फ़रमान उन चारों के हुलिये समेत गिरफ़्तारी के लिए जगह-जगह पहुंच चुके थे। नागोर के हाकिम ने उन चारों को पकड़ लिया और वह बादशाही हुजूर में रवाना हुआ। मार्ग में नमाज़ पढ़ते समय घड़सी ने उसी की तलवार से उसका मस्तक उड़ा दिया और वे उसी के घोड़ों पर चढ़कर निकल भागे। चांमू पहुंचकर अपने भाइयों को उसने वहीं छोड़ा और भानजे मेलगदे को पहुंचाने के लिए वह आबू गया। वहां से लौटता हुआ वह महेवे में एक माली के घर ठहरा। रावल मल्लीनाथ का पुत्र जगमाल शिकार को जाता हुआ उधर से निकला, तब घड़सी बाहर खड़ा था। उसने जगमाल से जुहार न किया। जगमाल ने पिता को इसकी सूचना दी। रावल ने इसपर उसके वंश आदि का पता लगाकर उसे अपने पास बुलाया और सत्कार-पूर्वक रक्खा तथा जगमाल की पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया। पांच सात महीने वहां रहकर वह बादशाही चाकरी में चला गया[2]। रावल घड़सी को जैसलमेर मिला उस समय द्रेग में हइया पोहण (भाटी) सबल थे। वे रावल की आज्ञा नहीं मानते थे। मालदेव (माला) हइयों का जमाई था, जिससे वह उन्हीं का पक्ष लेता था। वह जब देवी की

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ७१, ७३-६।

(२) वहीं; जि० २, पृ० ३०६-११।

यात्रा के लिए द्रेग गया तब घड़सी और जगमाल भी उसके साथ थे। घड़सी ने जगमाल से हइयों के सम्बन्ध में कहा। जगमाल ने उसे सन्तोष दिलाया कि हम इन्हें किसी न किसी तरह अवश्य मारेंगे। एक दिन उसने मल्लीनाथ से कहा कि हम अमुक गांव पर छापा मारेंगे आप सेना को हुक्म दें। फिर जब वह एक दिन सन्ध्या कर रहा था उस समय जगमाल ने उसके पास जाकर राजपूतों को आज्ञा देने के लिए कहा। माला सन्ध्या करते समय बोलता न था। उसने हाथ से इशारा करके आज्ञा दी। तब अपने राजपूतों को साथ ले जगमाल ने हइया पोहणों को मार डाला[1]।'

उक्त ख्यात के अनुसार वीरम की मृत्यु हो जाने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र चूंडा भी रावल माला के पास जा रहा था[2], जिसका उल्लेख आगे चूंडा के हाल में किया जायगा।

जोधपुर राज्य की ख्यात में रावल मल्लीनाथ के विषय में लिखा है—'उसने जालोर के तुरकों (मुसलमानों) की सहायता से कान्हड़देव को मारकर महेवा का राज्य लिया और सिद्ध जोगी की दुआ से रावल कहलाया। वह बड़ा प्रतापी हुआ। उसने बहुत सी भूमि अपने अधिकार में की, अनेकों आसियों को मारा और बहुतेरों को अपनी चाकरी में रक्खा। घड़सी के साथ जगमाल को भेज उसने उसका गया हुआ जैसलमेर का राज्य मुसलमानों से पीछा उसे दिला दिया। माला अवतारी व्यक्ति था। वि० सं० १४३१ (ई० स० १३७४) में वह महेवे और खेड़ का स्वामी हुआ। वह बड़ा शक्तिशाली था। उसने मंडोवर, मेवाड़, सिरोही और सिंध आदि देशों का बड़ा बिगाड़ किया। इसपर दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ने उसपर फ़ौज भेजी, जिसके तेरह तुंग (फ़ौज की टुकड़ियां) थे। वि० सं० १४३५ (ई० स० १३७८) में महेवे की हद में लड़ाई हुई, जिसमें मल्लीनाथ की विजय हुई और बादशाह की फ़ौज भाग गई। इस लड़ाई में जैसलमेर का रावल घड़सी

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० २१४-५।

(२) वही; जि० २, पृ० ८८।

उसकी सहायतार्थ आया था, वह घायल हुआ[1]। इस लड़ाई के विषय में नीचे लिखा पद प्रसिद्ध है—

तेरे तुंगा भांजिया माले सलखाणी[2]।

दयालदास की ख्यात में मल्लीनाथ के सम्बन्ध में मुंहणोत नैणसी जैसा ही वर्णन दिया है। उससे इतना और पाया जाता है कि ग्यारह सौ गांवों पर उसका अधिकार था और मुसलमानों के साथ की लड़ाई में रावल घड़सी भी शामिल था[3]। टॉड ने जोधपुर राज्य के इतिहास में रावल मल्लीनाथ का हाल नहीं दिया, पर जैसलमेर के इतिहास में उसकी पुत्री विमलादे का विवाह रावल घड़सी के साथ होना लिखा है[4]।

मल्लीनाथ की संतति

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार उसके नौ पुत्र[5]—(१) जगमाल[6], (२) जगपाल, (३) कूंपा[7], (४) मेहा, (५) चूंडराव, (६) अडवाल, (७) उदैसी,

---

(१) लक्ष्मीचंद-लिखित "तवारीख़ जैसलमेर" में भी खेड़ पर बादशाह की फ़ौज आने पर रावल घड़सी का रावल मल्लीनाथ की तरफ़ से लड़कर ज़ख़्मी होना लिखा है (पृ० ३६)।

(२) जि० १, पृ० २४-५।

(३) जि० १, पृ० ५६-६५।

(४) जि० २, पृ० ८।

(५) जि० १, पृ० २५। दयालदास की ख्यात में भी उसके नौ पुत्र होना लिखा है, परन्तु नाम केवल सात पुत्रों के दिये हैं, जिनमें से सीमाल, सहसमल और मेहाजल के नाम जोधपुर राज्य की ख्यात से भिन्न हैं (जि० १, पृ० ६५)।

(६) रावल माला का ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण जगमाल उसकी मृत्यु के बाद महेवे का स्वामी हुआ। उसके वंश के महेचे कहलाये। उसके एक पुत्र वीर कुंभा का नाम और वर्णन ऊपर आ गया है। उसके अन्य पुत्र मंडलीक, रणमल, वैरसी, भारमल और डूंगरसी हुए (दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० ६५)। मुंहणोत नैणसी कुंभा के अतिरिक्त केवल तीन पुत्रों—मंडलीक, भारमल और रणमल—के नाम देता है (जि० २, पृ० ८१)।

(७) इसके वंश के कोटड़िया कहलाये।

(८) अरडकमल[1] और (९) हरभू—हुए[2]।

ख्यातों के कथन की जांच

मुंहणोत नैणसी की ख्यात का यह कथन कि मुग़लों से माला की सेना की लड़ाई हुई अथवा जोधपुर राज्य की ख्यात का यह वर्णन कि अलाउद्दीन की फ़ौज से उसकी लड़ाई हुई कल्पित हैं, क्योंकि मुग़लों का अमल तो उसके बहुत पीछे हुआ था और अलाउद्दीन उसके बहुत पहले हो गया था। उक्त दोनों ख्यातों का कथन एक ही प्रतीत होता है। यदि उसमें कुछ भी सत्यता हो तो यही मानना पड़ेगा कि जालोर के अथवा आस-पास के किसी दूसरे मुसलमान अफ़सर अथवा शासक की सेना की चढ़ाई माला के समय में हुई हो, जिसे उसने हराया हो। इसी प्रकार मेवाड़, सिरोही आदि को उसका उजाड़ना भी विश्वास के योग्य नहीं है। ये राज्य काफ़ी दूर पड़ते थे और उसकी वहां तक पहुंच होना माना नहीं जा सकता। लक्ष्मीचंद लिखित "तवारीख़ जैसलमेर" में रावल घड़सी का समय वि० सं० १३७३–९१ तक दिया है, पर ख्यातों आदि में दिये हुए पहले के संवत् कल्पित होने से उनपर विश्वास नहीं किया जा सकता। रावल घड़सी का देहांत वि० सं० १४१८ भाटिक संवत ७३८ मार्गशीर्ष वदि ११ (ई० स० १३६१ ता० २५ अक्टोबर) को हुआ, ऐसा उसके साथ सती होनेवाली चार राणियों के स्मारक शिला लेखों से निश्चित है[3]।

---

(१) इसके वंश के वाहड़मेरा कहलाये।

(२) नगर गांव से मिले हुए वि० सं० १६८६ चैत्र वदि ७ (ई० स० १६३० ता० २३ फरवरी) मङ्गलवार के शिलालेख में मालानी के स्वामी माला के वंशजों की उस समय तक की निम्नलिखित वंशावली दी है—

(१) रावल माला, (२) जगमाल, (३) मंडलीक, (४) भोजराज, (५) वीदा, (६) नीसल, (७) वरसिंह, (८) हापा, (९) मेवराज, (१०) मन्न दुर्योधनराज, (११) तेजसी, (१२) जगमाल तथा (१३) कुंवर भारमल।

(३) मूल शिलालेखों की छापों से।

माला बड़ा पराक्रमी था, इसमें संदेह नहीं। उसने सारा महेवा प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया था, जो पीछे से उसके नाम पर मालानी कहलाया और वहां पर उसके वंशजों का अधिकार रहा। उसने रावल पदवी धारण की और उसके वंशज भी रावल या महारावल कहलाते रहे। जोधपुर का वर्तमान राजवंश मल्लीनाथ के छोटे भाई वीरम के वंश में है, जिसका क्रमानुसार आगे वर्णन किया जायगा।

राव वीरम

मुंहणोत नैणसी लिखता है—'वीरम महेवे के पास गुढ़ा (ठिकाना) बांध कर रहता था। महेवा में खून कर कोई अपराधी वीरमदेव के गुढ़े में शरण लेता तो वह उसे अपने पास रख लेता।

मुंहणोत नैणसी का कथन

एक समय जोहिया दल्ला भाइयों से लड़कर गुजरात में चाकरी करने चला गया, जहां रहते समय उसने अपना विवाह कर लिया। कुछ दिनों बाद वह वहां से अपनी स्त्री सहित स्वदेश की तरफ़ लौटा। मार्ग में महेवे पहुंचकर वह एक कुम्हारी के घर ठहरा और एक नाई को बुलवाकर अपने बाल बनवाये। नाई ने उसके पास अच्छी घोड़ी, सुन्दर स्त्री और बहुतसा धन देखा तो तुरन्त जाकर इसकी ख़बर जगमाल को दी। अनन्तर जगमाल की आज्ञानुसार उसके गुप्तचर कुम्हारी के घर जाकर सब कुछ देख-भाल आये। कुम्हारी ने इसका पता पा दल्ला से कहा कि तुम पर चूक होनेवाली है। फिर रक्षा का मार्ग पूछे जाने पर उसने उसे वीरम के पास जाने की सलाह दी। तदनुसार दल्ला अविलम्ब स्त्री-सहित वीरम के गुढ़े में जा पहुंचा। पांच-सात दिन तक वीरम ने दल्ला को अपने पास रक्खा और उसकी भले प्रकार पहुनाई की। विदा होते समय दल्ला ने कहा कि वीरम, आज का शुभ दिवस मुझे तुम्हारे प्रताप से मिला है। जो तुम भी कभी मेरे यहां आओगे तो चाकरी में पहुंचूंगा। मैं तुम्हारा राजपूत हूं। वीरम ने कुशलतापूर्वक उसे उसके घर पहुंचवा दिया।

'माला के पुत्रों और वीरमदेव में सदा झगड़ा होता रहता था, अतएव वह (वीरम) महेवे का परित्याग कर जैसलमेर गया। वहां भी वह ठहर न सका और पीछा आया तथा गांवों को लूटने और धरती का बिगाड़ करने लगा। कुछ दिनों वाद वहां का रहना भी कठिन जान वह जांगलू में ऊदा मूलावत के पास पहुंचा। ऊदा ने कहा कि वीरम, मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं, कि तुम्हें अपने पास रख सकूं, अतएव आगे जाओ। तुमने नागोर को उजाड़ दिया है, यदि उधर का खान आवेगा तो मैं उसे रोक दूंगा। तब वीरमदेव जोहियावाटी में चला गया। पीछे से नागोर के खान ने चढ़ाई कर जांगलू को घेर लिया, जिसपर गढ़ के द्वार वंद कर ऊदा भीतर बैठ रहा। खान के कहलाने पर ऊदा उससे मिलने गया, जहां वह बन्दी कर लिया गया। खान ने उससे वीरम का पता पूछा, पर उसने बताने से इनकार कर दिया। इसपर उसकी माता से पुछवाया गया, पर वह भी डिगी नहीं। दोनों की दृढ़ता से प्रसन्न होकर खान ने ऊदा को मुक्त कर दिया और वीरम का अपराध भी क्षमा कर दिया।

'वीरम के जोहियों के पास पहुंचने पर उन्होंने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया और दाण में उसका बिस्वा (भाग) नियत कर दिया। तब वीरम के कामदार कभी-कभी सारा-का-सारा दाण उगाहने लगे। यदि कोई नाहर वीरम की एक बकरी मारे तो यह कहकर कि नाहर जोहियों का है वे बदले में ११ बकरियां ले लेते थे। एक बार ऐसा हुआ कि आभोरिया भाटी बुकण को, जो जोहियों का मामा व बादशाह का साला था और अपने भाई सहित दिल्ली में रहता था, बादशाह ने मुसलमान बनाना चाहा। इसपर वह भागकर जोहियों के पास जा रहा। उसके पास बादशाह के घर का बहुत सा माल और वस्त्राभूषण आदि थे। गोठ जीमने के बहाने उसके घर जाकर वीरम ने उसे मार डाला और उसका माल-असबाब तथा घोड़े आदि ले लिये। इससे जोहियों के मन में उसकी तरफ़ से शंका हो गई। इसके पांच-सात दिन बाद ही वीरम ने ढोल बनाने के लिए एक फरास का पेड़ कटवा डाला। इसकी पुकार भी जोहियों के पास पहुंची

पर वे चुप्पी साध गये। एक दिन दल्ला जोहिये को ही मारने का विचार कर वीरम ने उसे बुलाया। दल्ला खरसल (एक प्रकार की छोटी हलकी बैल गाड़ी) पर बैठकर आया, जिसके एक घोड़ा और एक बैल जुता हुआ था। वीरम की स्त्री मांगलियाणी ने दल्ला को अपना भाई बनाया था। चूक का पता लगते ही उसने दल्ला को इसका इशारा कर दिया। इसपर जंगल जाने का बहाना कर दल्ला खरसल पर चढ़कर घर की तरफ़ चल दिया। कुछ दूर पहुंचकर खरसल को तो उसने छोड़ दिया और घोड़े पर सवार होकर घर पहुंचा। वीरम जब राजपूतों सहित वहां पहुंचा उस समय दल्ला जा चुका था। दूसरे दिन ही जोहियों ने एकत्र होकर वीरम की गायों को घेरा। इसकी ख़बर मिलने पर वीरम ने जाकर उनसे लड़ाई की। वीरम और दयाल[1] परस्पर भिड़े। वीरम ने उसे मार तो लिया पर जीता वह भी न बचा और खेत रहा। वीरम के साथी गांव वड़ेरण से उसकी ठकुराणी (भटियाणी) को लेकर निकले। धाय को अपने एक वर्ष के पुत्र चूंडा को आल्हा चारण के पास पहुंचाने का आदेश दे वह राणी मांगलियाणी सहित सती हो गई[2]।'

अन्य ख्यातों आदि के कथन

जोधपुर राज्य की ख्यात में वीरम के सम्बन्ध में लिखा है—'वीरम और जगमाल मालावत में बनी नहीं, जिससे वीरम खेड़ जाकर रहा। मल्लीनाथ भिरडकोट में रहता था। एक बार अकाल पड़ने पर साहचांण का स्वामी जोहिया दला (दल्ला) अपने परिवार को साथ लेकर महेवे गया, जहां मल्लीनाथ ने उसके रहने का प्रबन्ध कर दिया। दला को वीरम की राणी मांगलियाणी ने अपना राखी-बन्ध भाई बनाया। कुछ समय बाद उस (दला) के भाई मदू के यहां एक बड़ी सुंदर बछेरी पैदा हुई। मल्लीनाथ ने उसे लेना चाहा, पर मदू ने इनकार कर दिया। जगमाल ने गोठ के बहाने जोहियों को मारने का विचार किया, परंतु इसकी ख़बर एक मालिन के द्वारा दला को मिल गई, जिससे जोहिये अपना

(१) यह जोहिया दल्ला का भाई था। कहीं देपालदे नाम भी मिलता है।
(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ८२-७।

माल-असबाब लेकर वहां से निकल गये और खेड़ में वीरम के पास पहुंचे। इसपर जगमाल ने खेड़ पर चढ़ाई की। मल्लीनाथ को जब इसकी ख़बर मिली तो वह खेड़ जाकर जगमाल को लौटा लाया। अनन्तर स्वयं वीरम जोहियों को साहचांण पहुंचा आया। उसके लौटते समय वह बछेरी दल्ला ने वीरम को दे दी। मार्ग में वीरम ने आसायचों को मारकर कितने ही गांवों के साथ सेतरावा पर क़ब्ज़ा कर लिया और अपने पुत्रों में से देवराज, जयसिंह और वीजा को वहां रक्खा। उसके खेड़ पहुंचते ही जगमाल ने उस पर मंडोवर के तुर्कों की सहायता से चढ़ाई की। उनके सिवाणे पहुंचने की ख़बर मिलते ही वीरम अपने परिवार सहित निकल गया। सांखली राणी को पूगल पहुंचाकर उसने लाडणूं से मोहिल माणिकराव के घोड़े छीने और गांव डांवरे में मोहिलों से लड़कर उन्हें परास्त किया। वहां से आगे बढ़ने पर उसने सिंध के बादशाह की तरफ़ से दिल्ली के बादशाह के पास तीस ऊंटों पर जाते हुए पेशकशी के रुपये वि० सं० १४३४ (ई० स० १३७७) में लूट लिये। मंडोवर से मुसलमानी फ़ौज के चढ़ आने पर वह जांगलू की तरफ़ चला। सांखले ऊदा व भीम आकर उसकी तरफ़ से मुसलमानों से लड़े और उसे जांगलू ले गये। वहां बादशाह की फ़ौज के पहुंचने पर कई दिन तो उसके साथ लड़ाई हुई, पर पीछे से ख़बर मिलने पर जोहिया देपालदे और मदू उसे गढ़ से निकालकर जोहियावाटी में ले गये तथा बारह गांवों के साथ गांव लखवेरा एवं ऊछरां आदि उसे देकर अपने पास रक्खा। वहां रहते समय उसने जोहियों के साथ बड़ा बुरा व्यवहार करना आरंभ किया। दला के कितने ही आदमियों को मारने और लूटने के अतिरिक्त उसने विवाह करने के बहाने जाकर भाटी बुक्कण को, जो दल्ला के भाई देपाल का साला था, मार डाला। अनन्तर उसने ढोल बनवाने के लिए एक फरास का पेड़ कटवा डाला। इसकी फ़रियाद होने पर देपाल, मदू आदि दस हज़ार जोहिये वीरम पर चढ़ गये। दला ने आकर उन्हें मना किया, पर वे माने नहीं। तब उसने उनसे कहा कि इस प्रकार आक्रमण करना कलंक का कारण होगा, अतएव हम उसकी गायें घेर लें, वीरम स्वयं आकर हमसे

लड़ेगा। तदनुसार जोहियों ने लखबेरा की गायें घेर लीं। इसपर वीरम ने जाकर उनसे लड़ाई की, जिसमें वि० सं० १४४० कार्तिक वदि ५ (ई० स० १३८३ ता० 17 अक्टोबर) को वह मारा गया। इस लड़ाई में जोहिया देपाल भी काम आया[1]।'

दयालदास की ख्यात में प्रायः मुंहणोत नैणसी की ख्यात जैसा ही वर्णन है। उसमें संवत् विशेष दिये हुए हैं और वीरम का चूंडराव को मारने एवं सिंहाणकोट विजय करने में जोहियों को सहायता देना लिखा है[2]।

टॉड ने उसके सम्बन्ध में केवल इतना लिखा है कि उसने उत्तर के जोहियों से लड़ाई की और उसी में मारा गया[3]।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार वीरम के चार राणियां थीं, जिनसे उसके नीचे लिखे पांच पुत्र हुए[4]—

राणियां तथा संतति

देवराज[5], जयसिंह, बीजा, चूंडा और गोगादे[6]।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में भी चार राणियों

(१) जि० १, पृ० २६-८। बांकीदास के अनुसार भी वीरम जोहियों के साथ की लड़ाई में मारा गया (ऐतिहासिक बातें; संख्या ७६१)।

(२) जि० १, पृ० ६५-७१।

(३) जि० २, पृ० ९४४।

(४) जि० १, पृ० २८।

(५) इसके वंश के देवराजोत कहलाये। इसके निम्नलिखित छः पुत्र हुए—

(१) राजो।

(२) चाहड़देव—इसके वंश के चाहड़देवोत कहलाये।

(३) मोकल।

(४) खींवकरण।

(५) मेहराज।

(६) दुरजणसाल।

(६) मुंहणोत नैणसी ने इसे चंदन आसराव (रिणमलोत) की पुत्री का पुत्र (मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ८७) तथा जोधपुर राज्य की ख्यात में गांव

और पांच पुत्रों के नाम दिये हैं, पर उनमें जोधपुर राज्य की ख्यात के

कुंडल की भटियाणी राणी का पुत्र लिखा है (जि० १, पृ० २८) । इसके वंश के गोगाद राठोड़ कहलाये । मुंहणोत नैणसी की ख्यात में इसके सम्बन्ध में लिखा है—

'गोगादेव थलवट में रहता था । वहां दुष्काल पड़ने पर उसका चाकर तेजा भी अन्य लोगों के समान वहां से चला गया था, परन्तु वर्षा होने पर वह पीछा लौटा। मार्ग में वह मीतासर में ठहरा, जहां के तालाव में बैठकर नहाने के कारण वहां के मोहिल (चौहानों की शाखा) स्वामी ने उसे मारा, जिससे उसकी पीठ चिर गई । गोगादेव को जब इसका पता लगा तो उसने साथ एकत्र कर मोहिलों पर चढ़ाई की । उस दिन वहां बहुतसी बरातें आई थीं । लोगों ने समझा कि यह भी कोई बरात है । द्वादशी के दिन प्रातःकाल ही गोगादेव ने मोहिल राणा माणकराव पर चढ़ाई की । राणा भाग गया, दूसरे कई मोहिल मारे गये । २७ बरातों को लूटकर गोगादेव ने अपने राजपूत का वैर लिया । अनन्तर बड़ा होने पर साथ इकट्ठाकर अपने पिता का वैर लेने के लिए उसने जोहियों पर चढ़ाई की। इस बात की सूचना मिलते ही जोहिये भी युद्ध के लिए उपस्थित हुए । गोगादेव अपना एक गुप्तचर वहां पर ही छोड़ उस समय बीस कोस पीछा लौट गया । जोहियों ने समझा कि गोगादेव चला गया अतएव वे भी अपने स्थान को लौट गये । फिर अपने गुप्तचर-द्वारा दल्ला और उसके पुत्र धीरदेव के रहने के स्थान का पता पाकर वह अपने गुप्त स्थान से निकला । धीरदेव उन दिनों पूगल के राव राणगदे भाटी के यहां विवाह करने गया था और उसके पलंग पर उसकी पुत्री सोती थी । गोगादेव ने पहुंचते ही दल्ला पर हाथ साफ़ किया और उसे काट डाला । ऊदा ने धीरदेव के धोखे में उसकी पुत्री को मार डाला । दल्ला के भतीजे हांसू ने पडाइये नाम के घोड़े पर पूगल जाकर इस घटना की ख़बर धीरदेव को दी, जिसपर वह उसी समय वहां से चल पड़ा । राणगदे भी उसके साथ हो लिया। गोगादेव पदरोला के पास ठहरा हुआ था और उसके घोड़े खुले हुए चर रहे थे । भाटियों और जोहियों ने उन्हें पकड़ लिया । इसपर दोनों दलों में युद्ध हुआ । गोगादेव घावों से पूर होकर पड़ा । उसकी दोनों जांघें कट गईं । उसका पुत्र ऊदा भी पास ही गिरा । इतने में राणगदे उधर आया । गोगादे ने उसे युद्ध के लिए ललकारा, पर वह गाली देता हुआ चला गया । फिर धीरदेव भी उधर आया । गोगादेव की ललकार सुनकर वह घूम पड़ा और गोगादेव की तलवार खाकर वहीं गिर पड़ा । धीरदेव ने कहा कि हमारा वैर तो मिट गया, क्योंकि हम दोनों ने एक दूसरे को मार डाला है । गोगादेव ने चिल्लाकर कहा कि राठोड़ों और जोहियों का वैर तो समाप्त हो गया, पर भाटियों से बदला लेना शेष है, क्योंकि राणगदे ने मुझे गाली दी है (जि० २, पृ० ६६-६) । उक्त ख्यात से यह भी पता चलता है कि योगी गोरखनाथ ने रणक्षेत्र

विपरीत जयसिंह के स्थान में सत्ता नाम दिया है[1]। दयालदास की ख्यात में आठ पुत्रों के नाम दिये हैं[2]। बांकीदास ने जोधपुर राज्य की ख्यात के समान ही पांच पुत्रों के नाम दिये हैं[3]। टॉड-कृत "राजस्थान" में उसके उत्तराधिकारी चूंडा और एक दूसरे पुत्र बीजा के नाम ही मिलते हैं[4]।

ख्यातों आदि के कथन की जांच

ख्यातों आदि में राव वीरम का वृत्तान्त लगभग एकसा मिलता है। नागोर और मंडोवर की तरफ़ उसके समय तक मुसलमानों का अधिकार हो गया था। उसका सेतरावा आदि पर अधिकार करना संभव माना जा सकता है। जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार वह जोहियों से लड़ने में वि० सं० १४४० कार्तिक वदि ५ (ई० स० १३८३ ता० १७ अक्टोबर) को मारा गया। उसकी मृत्यु की यही तिथि बीकानेर के गजनेर गांव के एक चबूतरे पर लगी हुई देवली के लेख में भी दर्ज है[5]। वीरम के चौथे वंशधर

में जाकर गोगादेव की जांघें जोड़ दीं और वह उसे अपना शिष्य बनाकर ले गया (जि० २, पृ० ६६)।

जोधपुर राज्य की ख्यात से भी पाया जाता है कि वीरम के वैर में गोगादेव ने गांव साहवांण जाकर जोहिया दल्ला को मारा। उक्त ख्यात के अनुसार धीरदेव दल्ला के भाई मदू का पुत्र था, जिसने गांव लखूसर में जाकर गोगादेव को मारा। इस लड़ाई में वह स्वयं भी काम आया (जि० १, पृ० २८)। दयालदास की ख्यात में भी कहीं-कहीं कुछ अन्तर के साथ गोगादेव का ऊपर जैसा ही विस्तृत हाल दिया है। उससे पाया जाता है कि राव चूंडा ने अपने दूसरे भाइयों को जागीरें दी थीं, जहां वे रहते थे और दल्ला पर चढ़ाई करने में उसने भी गोगादे को सहायता दी थी (जि० १, पृ० ८०-८२)।

(१) जि० २, पृ० ८७।

(२) (१) चांडा, (२) गोगादे, (३) देवराज, (४) जयसिंह, (५) बीजा, (६) नरपत, (७) हम्मीर और (८) नारायण (जि० १, पृ० ७१)।

(३) ऐतिहासिक बातें; संख्या ६६०।

(४) जि० २, पृ० ९४४।

(५) संवत् १४४० काती वदि ५ राज श्री सलखाजी तत्पुत्र राज श्री वीरमजी .... जोइया सुं हुई काम आया ....

(मूल लेख से)।

राव रणमल की मृत्यु वि० सं० १४९६ (ई० स० १४३९) के पूर्व किसी वर्ष हुई, जैसा कि आगे बतलाया जायगा। इसको दृष्टि में रखते हुए भी वीरम की मृत्यु की ऊपर आई हुई तिथि ग़लत नहीं प्रतीत होती। उसका जोहियों के हाथ से मारा जाना सब ख्यातों में पाया जाता है, जिसपर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है।

राव चूंडा (चामुंडराय)

वीरम का उत्तराधिकारी उसका पुत्र चूंडा[1] हुआ। मुंहणोत नैणसी लिखता है—

मुंहणोत नैणसी की ख्यात का कथन

'धाय चूंडा को लेकर कालाऊ गांव में आल्हा चारण के यहां पहुंची और उसकी माता के अन्तिम आदेशानुसार उसने लालन-पालन के लिए बालक को उसे सौंप दिया और स्वयं भी वहीं उसके साथ रहने लगी। आठ-नव वर्ष का होने पर चारण उसे अच्छे वस्त्र पहना, शस्त्रों से सुसज्जित कर और घोड़े पर सवार करा रावल मल्लीनाथ के पास ले गया, जिसने उसे अपने पास रख लिया। फिर उसकी चाकरी से प्रसन्न होकर माला ने उसे गुजरात की तरफ़ अपनी सीमा की चौकसी करने के लिए नियत किया और सिरोपाव आदि देकर ईंदा पड़िहार सिखरा के साथ उसे विदा किया। काछे के थाने पर रहकर उसने अच्छा प्रवन्ध किया। एक बार सौदागर

यह लेख बीकानेर के महाराजा कर्णसिंह के राज्यसमय का वि० सं० १७१३ वैशाख सुदि ५ (ई० स० १६५६ ता० १९ अप्रेल) का है और इसमें राव सलखा से लगाकर उदयभाण तक महाजन के स्वामियों की नीचे लिखी वंशावली दी है—

(१) सलखा, (२) वीरम, (३) चूंडा, (४) रणमल, (५) जोधा, (६) बीका, (७) लूणकरण, (८) रत्नसिंह, (९) अर्जुन, (१०) जसवंत, (११) देवीदास, (१२) उदयभाण।

(१) दयालदास की ख्यात में इसे वीरम का ज्येष्ठ पुत्र लिखा है (जि० १, पृ० ७१)। मुंहणोत नैणसी भी इसका नाम सर्वप्रथम देता है, पर जोधपुर राज्य की ख्यात में इसका नाम चौथा लिखा है (जि० १, पृ० २८)।

घोड़े लेकर उधर से निकले। चूंडा ने उनके सब घोड़े छीनकर अपने राजपूतों को बांट दिये और एक अपनी सवारी को रक्खा। सौदागरों ने दिल्ली (?) जाकर पुकार मचाई। इसपर बादशाह ने घोड़े वापस दिलवाने के लिए अपने आदमी को भेजा। उसके ताकीद करने पर माला ने चूंडा से घोड़े मंगवाये तो उसने जवाब दिया कि घोड़े तो मैंने बांट दिये; यह एक घोड़ा मैंने अपनी सवारी के लिए रक्खा है। इसे ले जाओ। लाचार माला को उन घोड़ों का मूल्य देना पड़ा, पर इस घटना के कारण उसने चूंडा को अपने राज्य से निकाल दिया। तब चूंडा ईंदावाटी में जाकर ईंदों के पास रहा और वहां साथ एकत्र करने लगा। इसके कुछ दिनों पीछे उसने डीडणा (? डीडवाणा) गांव लूट लिया।

'इसके पूर्व ही तुर्कों ने पड़िहारों से मंडोवर छीन लिया था। वहां के सरदार ने सब गांवों से घास की दो-दो गाड़ियां मंगवाने का हुक्म दिया। जब ईंदों के पास भी घास भिजवाने की ताकीद आई तो उन्होंने चूंडा से मिलकर मंडोवर लेने की सलाह की। घास की गाड़ियां भरवाकर उनमें चार-चार हथियारबन्द राजपूत छिपा दिये गये। एक हांकनेवाला और एक पीछे चलनेवाला रक्खा गया। पिछले पहर इनकी गाड़ियां मंडोवर के गढ़ के बाहर पहुंचीं। जब ये भीतर जाने लगीं तो वहां के मुसलमान द्वारपाल ने यह देखने के लिए कि घास के नीचे कुछ कपट तो नहीं है अपना बर्छा घास के अन्दर डाला। बर्छे की नोक एक राजपूत के जा लगी, पर उसने तुरंत उसे कपड़े से पोंछ डाला, क्योंकि यदि उसपर लोहू का चिह्न रह जाता तो सारा भेद खुल जाता। दरबान ने गाड़ियां भरी देख भीतर जाने दीं। तब तक अंधेरा हो गया था। गाड़ियां भीतर पहुंचने पर छिपे हुए राजपूत बाहर निकले और दरवाज़ा बन्द कर तुर्कों पर टूट पड़े। सब को काटकर उन्होंने चूंडा की दुहाई फेर दी और मंडोवर लेने के अनन्तर इलाक़े से भी तुर्कों को खदेड़कर निकाल दिया। जब रावल माला ने सुना कि चूंडा ने मंडोवर पर अधिकार कर लिया है तब वह भी वहां आया और उसने चूंडा की प्रशंसा की। उसी दिन ज्योतिषियों ने चूंडा का

अभिषेक कर दिया और वह मंडोवर का राव कहलाने लगा। मंडोवर के बाद चूंडा ने और भी बहुतसी भूमि अपने अधिकार में की और उसका प्रताप दिन-दिन बढ़ता गया। उन दिनों नागोर में खोखर[1] राज करता था, अपने राजपूतों से सलाहकर, चूंडा ने एक दिन नागोर पर चढ़ाई की और खोखर को मारकर वहां अपना अधिकार स्थापित किया। अपने पुत्र सत्ता को मंडोवर में रखकर चूंडा स्वयं नागोर में ही रहने लगा।

'कुछ ही समय बाद चूंडा के एक दूसरे पुत्र अरड़कमल ने अपने पिता का इशारा पाकर गोगादेव को गाली देने के वैर में राणगदे के पुत्र सादा (सादूल) को मार डाला[2]। इसके बदले में राव राणगदे ने सांखला

(१) खोखर कौन था यह निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता। ख्यातों से इसका परिचय नहीं मिलता। "मिराते सिकन्दरी" में नागोर के सूबेदार का नाम जलालख़ां खोखर दिया है, जिसकी जगह हि० स० ८०६ (वि० सं० १४६०=ई० स० १४०३) में शम्सख़ां नियत हुआ था (आत्माराम मोतीराम दीवानजी-कृत उक्त पुस्तक का गुजराती अनुवाद; पृ० १८। बेले; हिस्ट्री ऑव् गुजरात; पृ० ८३)।

(२) इसका विस्तृत हाल मुंहणोत नैणसी की ख्यात में दिया है, जो संक्षेप में इस प्रकार है—

'एक दिन अरड़कमल चूंडावत ने भैंसे पर लोह किया। एक ही हाथ में भैंसे के दो टूक हो गये, तब सरदारों ने उसकी बड़ी प्रशंसा की। राव चूंडा बोला, क्या अच्छा हुआ? अच्छा तो तब हो, जब ऐसा घाव राव राणगदे अथवा कुंवर सादा (सादूल) पर किया जाय। मुझे भाटी (राणगदे) खटकता है। उसने गोगादेव को जो गाली दी वह निरन्तर मेरे हृदय में साल रही है। अरड़कमल ने पिता के इस कथन को मन में धर लिया और स्थल-स्थल पर राणगदे या सादा का पता पाने के लिए अपने भेदिये नियुक्त कर दिये। उस समय छापर-द्रोणपुर में मोहिल राज करते थे। वहां के स्वामी ने अपनी कन्या के विवाह के नारियल सादूल के पास भेजे। उसके पिता ने तो राठोड़ों के भय से यह सम्बन्ध स्वीकार न किया, परन्तु सादूल इस विवाह के लिए तैयार हो गया। छापर पहुंचकर उसने माणकदेवी के साथ विवाह किया। अनन्तर ओरींठ गांव में उसके दो विवाह और हुए। मोहिलों की राय थी कि सादूल पहले ही चला जाय और पीछे से उसके विश्वासपात्र व्यक्ति के साथ उसकी दुलहिन को भेज दिया जाय, पर सादूल इसपर राज़ी न हुआ। त्याग आदि बांटकर वह सपत्नीक चला। राठोड़ों के भेदिये ने मोहिलों के यहां सादूल के विवाह होने की ख़बर अरड़कमल को दी। वह तुरन्त नागोर से चढ़ा।

मेहराज को मारा। मेहराज के भानजे राखसिया सोमा ने राव चूंडा के पास जाकर पुकार की और कहा कि यदि आप भाटी से मेरे मामा का वैर लेवें तो मैं आपको अपनी कन्या व्याह कर एक सौ घोड़े दहेज में दूंगा। राव चूंडा ने तुरंत चढ़ाई की और पूगल के पास जाकर राणगदे को मारा

लायां के मगरे (पहाड़ी) के पास उसने सादूल को जा घेरा और कहा—"बड़े सरदार जब्रो मत मैं बड़ी दूर से तुम्हारे वास्ते आया हूं।" तब ढाढी बोला—"उड़ै मोर करै पलाई, मोरै जाई पर सादो न जाई।" राजपूतों ने अपने-अपने शस्त्र संभाले। युद्ध हुआ। कई आदमी मारे गये। अरड़कमल ने घोड़े से उतर कर मोर (सादूल का अश्व) पर एक हाथ ऐसा मारा कि उसके चारों पांव कट गये। साथ ही उसने सादूल का भी काम तमाम कर दिया। मोहिलाणी ने अपना एक हाथ काटकर सादूल के साथ जलाया और आप पूगल जा अपने सास-ससुर के दर्शन करने के अनन्तर सती हो गई। अरड़कमल ने भी नागोर आकर पिता के चरणों में सिर नवाया। राव चूंडा ने उसके इस कार्य से प्रसन्न होकर डीडवाणे का पट्टा उसके नाम कर दिया (जि० २, पृ० ६२ तथा ६६-१०२)।

जोधपुर राज्य की ख्यात में तो इसका उल्लेख नहीं है, परन्तु दयालदास की ख्यात में लगभग ऊपर जैसा ही वर्णन है (जि० १, पृ० ७७-८०)। टॉड के अनुसार मोहिलों के सरदार माणिक की पुत्री का विवाह पहले अरड़कमल के साथ निश्चय हुआ था, पर राणगदेव भाटी के पुत्र सादू के गांव ओरींठ में रहते समय माणिक की पुत्री उसके प्रेम में आबद्ध हो गई। माणिक ने भी अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया। जब वह अपनी स्त्री के साथ लौट रहा था तब अरड़कमल ने सांखला मेहराज तथा ४००० राठोड़ों के साथ मार्ग में उसे घेर उससे लड़ाई कर उसे मार डाला। यह लड़ाई वि० सं० १४६२ (ई० स० १४०६) में हुई। उसकी स्त्री ने अपना एक हाथ काटकर मोहिलों के चारण को दिया और स्वयं सती हो गई। माणिक ने उसकी स्मृति में कूरमदेसर (कोड़मदेसर) नाम का तालाब बनवाया। मरते मरते सादू ने अरड़कमल को भी घायल किया था, जिससे छः मास बाद उसका भी देहांत हो गया (राजस्थान जि० २, पृ० ७३०-३३)।

टॉड ने मोहिल स्वामी की पुत्री का नाम और उसकी स्मृति में कूरमदेसर (कोड़मदेसर) तालाब बनवाये जाने के विषय में ग़लती खाई है। कोड़मदे तो जोधा की माता का नाम था, जिसकी स्मृति में बीकानेर राज्य का कोड़मदेसर नाम का तालाब है, ऐसा उसके पास के लगे लेख से स्पष्ट है (जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; ई० स० १६१७, पृ० २१७-८)।

और उसका माल लूटकर नागोर ले गया।

'राव की मोहिल राणी के पुत्र होने पर उसने उसे घूंटी न दी। यह ख़बर मिलने पर राव ने जाकर उससे इसका कारण पूछा। राणी ने कहा कि रणमल (राव चूंडा के ज्येष्ठ पुत्र) को निकालो तो घूंटी दूं। राव ने रणमल को बुलाकर कहा कि बेटा तू तो सपूत है, पिता की आज्ञा मानना पुत्र का धर्म है। रणमल बोला—"यह राज्य कान्हा (मोहिल राणी का पुत्र) को दीजिये। मुझे इससे कुछ काम नहीं है।" ऐसा कह, पिता के चरण छूकर वह वहां से निकला और सोजत जा रहा[1]।'

आगे चलकर मुंहणोत नैणसी ने इस सम्बन्ध में दूसरा मत दिया है, जो इस प्रकार है—

'भाटी राव राणगदे को जब राव चूंडा ने मारा तो उसके पुत्रों ने भाटियों को इकट्ठा किया और फिर मुलतान के बादशाही सूबेदार के पास गया। वहां अपने बाप का वैर लेने के लिए उसने मुसलमान धर्म ग्रहण कर लिया और मुलतान से मुसलमानों की सहायता ले नागोर आया। उस वक्त राव चूंडा ने अपने पुत्र रणमल को कहा कि तू बाहर कहीं चला जा, क्योंकि तू तेजस्वी है और मेरा वैर ले सकेगा। जो राजपूत तेरे साथ जाते हैं उनको सदा प्रसन्न रखना। मैंने कान्हा को टीका देना कहा है सो इसको काहूजीरे खेजड़े लेजाकर तिलक किया जायगा। इसी बीच राणी मोहिलाणी ने रसोड़े का प्रबन्ध अपने हाथ में लेकर राजपूतों की ख़ातिरदारी में बहुत कमी कर दी। बारह मन घृत प्रति दिन के स्थान में केवल पांच मन ख़र्च होने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि राजपूत अप्रसन्न रहने लगे और उनमें से बहुत से रणमल के साथ चले गये। जब नागोर पर भाटी व तुर्क चढ़ आये तो राव चूंडा मुक़ाबिले के वास्ते गढ़ से बाहर निकला। लड़ाई होने पर सात आदमियों सहित चूंडा खेत रहा[2]।'

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ८७-९३।
(२) वहीं; जि० २, पृ० ९३-४।

जोधपुर राज्य की ख्यात में राव चूंडा के विषय में लिखा है—'जोहियावाटी में राव वीरम की मृत्यु होने पर चूंडा की माता मांगलियाणी चूंडा को लेकर कालाऊ गांव के चारण आल्हा बारहठ के पास गई और वहां ही गुप्त रूप से निवास करने लगी। कुछ समय पश्चात् जब आल्हा को यह ज्ञात हुआ कि चूंडा रावल मल्लीनाथ का भतीजा है तो वह उसे वस्त्र और शस्त्रादि से सुसज्जित कर रावल के पास ले गया, जिसने अपने प्रियपात्र एक नाई की सिफ़ारिश पर उसे जोधपुर से आठ कोस दूर सालोड़ी[1] गांव में भेज दिया। वहां चूंडा का प्रताप बहुत बढ़ा और उसके पास घोड़ों और राजपूतों का अच्छा जमाव हो गया। इसकी खबर मिलने पर राव ने भावे (नाई) से कहा और स्वयं भी वास्तविकता का ज्ञान करने के लिए सालोड़ी गया, पर भावे ने उसके जाने का समाचार पहले ही चूंडा के पास भिजवा दिया था, जिससे वहां पहुंचने पर मल्लीनाथ ने किसी प्रकार का भी जमाव न देखा। चूंडा चावंडा (चामुंडा) माता का भक्त था। उसकी कृपा से उसे धन और घोड़ों की प्राप्ति हुई। उन दिनों मंडोवर नागोर के अधीन था और वहां तुर्कों का थाना था, जो वहां

जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन

आगे चलकर उसी ख्यात में भाटियों के वृत्तान्त में इस सम्बन्ध में निम्नलिखित वर्णन भी मिलता है—

'राव राणगदे के निःसन्तान मारे जाने पर उसकी स्त्री ने रावल केलण से कहलाया कि जो तू मुझको घर में रक्खे तो मैं गढ़ (पूगल का) तुझको दूं। केलण स्वीकार-सूचक उत्तर देकर पूगल गया और वहां पाट बैठकर उसने अपने अच्छे व्यवहार से सबको प्रसन्न कर लिया। फिर राणी ने उसे उसकी प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाया तो उसने कहा कि ऐसी बात कभी हुई नहीं, मैं कैसे कर सकता हूं। हां, राव का वैर मैं लूंगा। राणी ने भी कहा कि मेरा अभिप्राय भी वैर लेने से ही था। इस प्रकार पूगल पर अपना अधिकार कर केलण ने मुलतान के सुलेमानख़ां की सहायता से नागोर पर चढ़ाई की और चूंडा को मरवा डाला (जि० २; पृ० ३१८)।'

(१) कविराजा श्यामलदास-कृत "वीरविनोद" में भी उसका मल्लीनाथ-द्वारा सालोड़ी गांव में ही नियुक्त किया जाना लिखा है (भाग २, पृ० ८०३)।

पर बसनेवाले ईंदा राजपूतों को बड़ा तंग करते थे। एक बार जब ईंदों से घास मंगवाई गई तो वे घास से भरी बैलगाड़ियों के भीतर अपने राजपूतों को बैठालकर ले गये और सूबेदार के गाड़ियां देखने के लिए बाहर आते ही मुसलमानों पर टूट पड़े तथा उन्हें मारकर उन्होंने मंडोवर पर अधिकार कर लिया। पीछे ईंदा रायधवल तथा ऊदा ने अपने भाई-बन्धुओं से कहा कि मंडोवर का गढ़ अपने पास अधिक समय तक रहेगा नहीं, अतएव इसे सालोड़ी के थाने पर रहनेवाले माला के भतीजे, वीरम के पुत्र चूंडा को दे दिया जाय। सब ही ईंदा राजपूतों ने यह बात मान ली। तब ईंदा रायधवल ने अपनी पुत्री का विवाह चूंडा के साथ कर मंडोवर उसे दे दिया[1]। इस संबंध में यह सोरठा अब तक प्रसिद्ध है—

यह इन्दारो पाड़, कमधज कदें न वीसरे।
चूंडो चंवरी चाड़, दियो मंडोवर दायजे॥

'मंडोवर प्राप्त हो जाने पर चूंडा ने वहां रहनेवाले सिंधल, कोटेचा, मांगलिया, आसायच आदि राजपूतों को निकालने के बजाय उन्हें अपनी सेवा में रख लिया। अनंतर अपनी फ़ौज तैयार कर उसने नागोर के शासक खानज़ादा पर चढ़ाई की। खानज़ादा भाग गया, जिससे नागोर पर चूंडा का अधिकार हो गया। फिर उसे ही उसने स्थाई रूप से अपना निवासस्थान बना लिया। अनन्तर उसने सांभर तथा डीडवाणे पर अधिकार किया तथा और भी बहुत से झगड़े किये। पठानों के पास से नागोर लेने के कारण वह राव की उपाधि से प्रसिद्ध हुआ। मोहिलों की बहुत सी भूमि पर अधिकार करने के कारण मोहिल आसराव माणिकरावोत ने उसे अपनी पुत्री व्याह दी। चूंडा अपने राजपूतों की बड़ी खातिरदारी करता था, जिससे उसके रसोड़े का ख़रच बहुत बढ़ा हुआ था। उसके वृद्ध होने पर रसोड़े का प्रबंध मोहिलाणी राणी ने अपने हाथ में ले लिया, जिसने क्रमशः ख़र्च इतना घटा दिया कि राजपूत अप्रसन्न होकर उसका साथ छोड़ने

(१) "वीरविनोद" में भी इसका उल्लेख है (भाग २, पृ० ८०३)।

लगे । उसका साथ कम होने की खबर मिलते ही केलण भाटी मुलतान के शासक सलेमखां को नागोर पर चढ़ा लाया[1] । इस अवसर पर उसके बचे हुए राजपूतों ने उसे निकल जाने की सलाह दी, परन्तु चूंडा ने उनकी राय न मानी । उसने अपने पुत्रों को बुलाकर निकल जाने का आदेश दिया और रणमल को अपने पास बुलाकर कहा—"मोहिलाणी के पुत्र कान्हा को राज्य का उत्तराधिकारी बनाने का वचन दो तो मुझे सुख हो ।" रणमल ने उसी समय अपने हाथ से कान्हा को टीका देने का वचन दिया और अन्य कुंवरों के साथ नागोर से निकल गया । नागोर में लड़ाई होने पर चूंडा अपने एक हज़ार राजपूतों के साथ काम आया[2] ।'

दयालदास की ख्यात का कथन

दयालदास की ख्यात के अनुसार राव चूंडा का जन्म वि० सं० १४०१ भाद्रपद सुदि ५ (ई० स० १३४४) को हुआ था । वि० सं० १४६२ माघ वदि ५ (ई० स० १४०६) को उसने मंडोवर तथा वि० सं० १४६५ भाद्रपद सुदि १५ (ई० स० १४०८) को नागोर पर अधिकार किया । वि० सं० १४७१ में उसने राणगदे भाटी को मारा तथा वि० सं० १४७५ वैशाख वदि १ (ई० स० १४१८) को वह केलण और मुलतान के नवाब के साथ लड़ाई करता हुआ मारा गया । इन घटनाओं के वर्णन उक्त ख्यात में कहीं नैणसी की ख्यात और कहीं जोधपुर राज्य की ख्यात जैसे ही हैं, नामों में अवश्य कहीं-कहीं विभिन्नता पाई जाती है । उक्त ख्यात से इतना और पाया जाता है कि चूंडा के मारे जाने पर सत्ता ने मंडोवर और कान्हा ने जांगलू में सैन्य का संगठन किया । नागोर में मुहम्मद फ़ीरोज़ का अमल हुआ । कुछ समय बाद नवाब मुलतान को लौट गया और केलण

(१) बांकीदास के अनुसार केलण भाटी के साथ लखी जंगल का स्वामी जलाल खोखर चढ़कर चूंडा पर गया था (ऐतिहासिक बातें; संख्या ७९२ तथा १६१८)। कविराजा श्यामलदास ने सिंध के मुसलमानों का भाटियों के साथ चढ़कर आना लिखा है (वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०३)।

(२) जि० १, पृ० २८-३२ ।

पूगल गया। चूंडा ने चांडासर बसाया था, जहां रणमल की माता रहती थी, जो चूंडा के साथ सती हुई[1]।

टॉड का कथन

टॉड के अनुसार राव वीरम के उत्तराधिकारी राव चूंडा का राठोड़ों के इतिहास में प्रमुख स्थान है। उसने समस्त राठोड़ों का संगठन किया और पड़िहार राजा को मारकर मंडोर पर अपनी ध्वजा फहराई। इसके बाद उसने सफलतापूर्वक नागोर के शाही सैन्य पर आक्रमण किया। अनन्तर उसने दक्षिण की तरफ़ बढ़कर गोड़वाड़ की राजधानी नाडोल में अपनी फ़ौज रक्खी। वि० सं० १४६५ (ई० स० १४०८) में वह मारा गया[2]। जोधपुर राज्य के इतिहास के अन्तर्गत टॉड ने उसकी मृत्यु के विषय में केवल इतना ही उल्लेख किया है, पर एक दूसरे स्थल पर इसका विस्तृत वर्णन है, जो इस प्रकार है—

'मंडोर के शासक का सामना करने की सामर्थ्य न होने के कारण राणिगदेव के बचे हुए दोनों पुत्र—ताना और मेरा—मुलतान के बादशाह खिज़रखां के पास गये और धर्म परिवर्तन कर तथा बादशाह को प्रसन्न कर वहां से सहायक सेना ले चूंडा के विरुद्ध अग्रसर हुए, जिसने उन्हीं दिनों नागोर भी अपने राज्य में मिला लिया था। इस कार्य में जैसलमेर के रावल का तृतीय पुत्र केलण भी उनके शामिल हो गया, जिसने चूंडा को छल से मारने की सलाह दी। उसने चूंडा को लिखा कि पारस्परिक वैर मिटाने के लिए हम अपनी कन्या का तुम्हारे साथ विवाह करने को प्रस्तुत हैं। यदि इसमें संदेह की संभावना हो तो हम राजकुमारी को, अपने सम्मान और रीति रिवाज के विरुद्ध, नागोर तक भेजने को तैयार हैं। चूंडा भी इसके लिए तैयार हो गया। फलतः पचास बन्द रथ निर्माण किये गये, जिनमें बजाय दुलहिन और उसकी दासियों के पूगल के वीर व्यक्ति छिपाये गये। जिनके आगे-आगे घोड़े तथा सातसौ ऊंटों पर

(१) जि० १, पृ० ७१-८४।

(२) राजस्थान; जि० २, पृ० ९४४। कविराजा श्यामलदास ने भी चूंडा की मृत्यु का समय वि० सं० १४६५ ही दिया है (वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०३)।

सवार राजपूत थे और पीछे भी इसी प्रकार सैनिक रक्खे गये थे। बादशाह की एक हज़ार सवार सेना पीछे की तरफ़ कुछ दूरी पर चल रही थी। चूंडा उनके स्वागत के लिए नागोर से चला, पर रथों के निकट पहुंचते ही उसे कुछ सन्देह हुआ, जिससे वह पीछा लौटा। यह देख ऊंटों और रथों से उतरकर शत्रु चूंडा पर टूट पड़े। इस आकस्मिक आक्रमण के कारण नागोर के फाटक के निकट पहुंचते-पहुंचते वह मारा गया[1]।'

संतति

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार उसके निम्नलिखित चौदह पुत्र और एक पुत्री हुई[2]—रणमल, सत्ता, रणधीर[3], भींव, अरड़कमल[4], पूंना, बीजा, कान्हा[5], अज, शिवराज, लुम्भा, रामदेव, सहसमल[6], रावत तथा हंसाबाई[7]। मुंहणोत नैणसी की ख्यात में भी चौदह पुत्रों और एक पुत्री के नाम दिये हैं, पर उसमें लाला, सुरताण और बाघा के नाम भिन्न हैं। इनके अतिरिक्त उसमें उसकी पांच राणियों—सांखली सूरमदे, गहलोताणी तारादे, भटियाणी लाडां, मोहिलाणी सोना तथा ईंदी केसर—के नाम भी मिलते हैं[8]। कविराजा श्यामलदास भी जोधपुर राज्य की ख्यात जैसे ही उसके पुत्रों के नाम देता है[9]। टॉड ने

(१) राजस्थान; जि० २, पृ० ७३४।

(२) जि० १, पृ० ३२-३।

(३) इसके वंश के रणधीरोत कहलाये।

(४) इसके वंश के अरड़कमलोत कहलाये।

(५) इसके वंश के कान्हावत कहलाये।

(६) इसके वंश के सहसमलोत कहलाये।

(७) इसका विवाह चित्तोड़ के महाराणा लक्षसिंह (लाखा) के साथ हुआ था, जिससे मोकल का जन्म हुआ। दयालदास की ख्यात से पाया जाता है कि यह विवाह चूंडा के जीवनकाल में हुआ था (जि० १, पृ० ७५-६), परन्तु मुंहणोत नैणसी की ख्यात के अनुसार यह विवाह रणमल के चित्तोड़ में जा रहने पर उसने किया था (जि० १, पृ० २४)।

(८) जि० २, पृ० ६०।

(९) वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०४।

२७

भी चौदह पुत्रों के ही नाम दिये हैं, पर उनमें दो एक नाम जोधपुर राज्य की ख्यात से भिन्न हैं[1]।

जैसा हम स्थल-स्थल पर ऊपर लिख आये हैं, जोधपुर के पहले के राजाओं से संबंध रखनेवाले ख्यातों के वृत्तान्त और संवत् आदि अधिकांश कल्पित ही हैं। विभिन्न ख्यातों में एक ही व्यक्ति के भिन्न-भिन्न वृत्तान्त मिलते हैं। मुंहणोत नैणसी की ख्यात में तो कहीं-कहीं एक ही घटना के एक से अधिक भिन्न वृत्तान्त दिये हैं। चूंडा के संबंध का भी जो हाल ख्यातों आदि में मिलता है, वह कल्पित सा ही है। यदि मुंहणोत नैणसी वीरम की मृत्यु के समय चूंडा को केवल एक वर्ष का लिखता है, तो किसी ख्यात के अनुसार वह उस समय छः वर्ष और किसी के अनुसार इससे भी अधिक अवस्था का था। जहां मुंहणोत नैणसी उसका स्वयं ईंदों के साथ जाकर मंडोवर लेना लिखता है, वहां जोधपुर राज्य की ख्यात एवं "वीरविनोद" आदि से पाया जाता है कि ईंदों ने स्वयं मंडोवर विजयकर बाद में उसकी समुचित रूप से रक्षा करने में असमर्थ होने के कारण वह प्रदेश दहेज में चूंडा को दे दिया। मुंहणोत नैणसी की ख्यात के अनुसार मल्लीनाथ ने उसे काछे के थाने पर नियुक्त किया था, पर जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन है कि वह उसकी तरफ़ से सालोड़ी गांव में रहा था। यही दशा ख्यातों में दिये हुए उसके मृत्युसंबंधी वर्णन की भी है। ऐसी दशा में निश्चयात्मक रूप से यह कहना कठिन है कि कौनसा वृत्तान्त सही है और कौनसा गलत।

ख्यातों आदि के कथन की जांच

चूंडा का जन्म कब हुआ और अपने पिता की मृत्यु के समय उसकी अवस्था कितनी थी, यह कहना कठिन है। मंडोवर पर चूंडा का अधिकार हो गया था इसमें संदेह नहीं, पर वह उसे कैसे मिला था यह विवादास्पद है। प्रायः सभी ख्यातों में उसके नागोर विजय करने की बात लिखी है, पर इसपर विश्वास नहीं किया जा सकता। नागोर पर मुसलमानों का अधिकार मुहम्मद तुग़लक के समय से ही था, जिसका एक लेख नागोर से

(१) राजस्थान; जि० २, पृ० ९४६।

मिला है[1]। अनन्तर दिल्ली की बादशाहत कमज़ोर होने पर गुजरात का सूबेदार ज़फ़रखां हि० स० ७९८ (वि० सं० १४५३ = ई० स० १३९६) में गुजरात का स्वतंत्र सुलतान बना और उसने अपना नाम मुज़फ़्फ़रशाह रक्खा। उसका एक भाई शम्सखां दंदानी था। मुज़फ़्फ़र अपने भाई को ही अपना राज्य-पाट सौंप देना चाहता था, पर उसके इनकार करने के कारण उसने बाद में जलाल खोखर को नागोर से हटाकर शम्सखां को वहां का हाकिम नियुक्त किया। शम्सखां के पीछे उसका पुत्र फ़ीरोज़ नागोर का शासक हुआ[2], जिसे राणा मोकल ने हराया[3]। "मिरातेसिकंदरी" से भी खोखर के बाद क्रमशः शम्सखां और उसके पुत्र फ़ीरोज़ का नागोर का शासक होना पाया जाता है[4]। इससे स्पष्ट है कि उधर चूंडा के राज्यकाल में लगातार मुसलमानों का ही अधिकार बना रहा था, अतएव उसके वहां अधिकार करने का ख्यातों का कथन माननीय नहीं कहा जा सकता। ऐसी दशा में उसके नागोर में मारे जाने का ख्यातों का वर्णन भी ठीक नहीं प्रतीत होता। चूंडा-द्वारा निर्वासित किये जाने पर रणमल महाराणा लाखा की सेवा में चला गया था, जिसके पुत्र मोकल ने नागोर विजय कर उसको दिया[5]। दयालदास की ख्यात में उसकी मृत्यु वि० सं० १४७५ (ई० स० १४१८) तथा टॉड एवं श्यामलदास ने वि० सं० १४६५ (ई० स० १४०८) में लिखी है, पर जैसा कि हम ऊपर लिख आये हैं, ख्यातों आदि में दिये हुए ये

(१) कनिंगहाम; आर्कियालॉजिकल सर्वे ऑव् इंडिया; जि० २३, पृ० ६४। एपिग्राफ़िया इंडो-मोस्लेमिका; ई० स० १९०९-१०, संख्या १०४८, पृ० ११४।

(२) बेले; हिस्ट्री ऑव् गुजरात; पृ० ८२-३ तथा १२१।

(३) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० २, पृ० ४१७। भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० १२०, श्लोक ४४। शृंगी ऋषि नामक स्थान का वि० सं० १४८९ का शिलालेख; श्लोक १४ (मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ५८९)।

(४) आत्माराम मोतीराम दीवानजी-कृत गुजराती अनुवाद; पृ० १८ तथा ६१।

(५) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ६२७। उक्त पुस्तक में महाराणा का नाम लाखा दिया है, जो ठीक नहीं है। उसका नाम मोकल होना चाहिये।

संवत् विश्वसनीय नहीं कहे जा सकते। चूंडा की मृत्यु का निश्चित समय अब तक अंधकार में ही है।

"मिराते सिकन्दरी" में एक स्थल पर लिखा है—'हि० स० ७६८ (वि० सं० १४५२-५३=ई० स० १३६६) में ज़फ़रखां को यह खबर मिली कि मांडू के हिन्दू वहां बसनेवाले मुसलमानों पर ज़ुल्म करते हैं। इसपर अमीरों की सम्मति से उसने अपनी फ़ौज के साथ मांडू पर चढ़ाई की। मांडू का राजा डरकर क़िले में घुस गया। खान ने क़िले पर घेरा डाला। क़िला बहुत मज़बूत होने से खान को देर लगी और घेरा एक वर्ष कुछ मास तक लगा रहा। अन्त में मांडू का राजा डरकर उसकी शरण आया और उसने इक़रार किया कि भविष्य में मैं मुसलमानों को दुःख न दूंगा और उचित खिराज देता रहूंगा। वहां से ज़फ़रखां ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की ज़ियारत के लिए अजमेर और वहां से सांभर तथा डीडवाणा गया। फिर वह गुजरात होता हुआ पाटण को लौट गया[1]।'

यह कथन अतिशयोक्ति से खाली नहीं है, परंतु यह घटना राव चूंडा के समय की है और मंडोवर की चढ़ाई से सम्बन्ध रखती है। यहां पर "मांडू" के स्थान पर "मंडोवर" पाठ होना चाहिये। फ़ारसी वर्णमाला की अपूर्णता के कारण स्थानों के नाम पुरानी हस्तलिखित पुस्तकों में शुद्ध नहीं मिलते, जिससे उनमें स्थानों के नामों में बहुत कुछ गड़बड़ पाई जाती है। मण्डल (काठियावड़ में), मांडलगढ़ (मेवाड़ में), मांडू (मांडवगढ़, मालवे में) और मंडोवर (मंडोर, मारवाड़ में) के नामों में इससे बहुत-कुछ भ्रम हो गया है। ज़फ़रखां का मांडू से अजमेर जाना भी इसी बात की पुष्टि करता है कि यह स्थान मंडोर होना चाहिये। मांडू पर तो उस समय मुसलमानों का ही अमल था और वहां का शासक दिलावरखां (अमीशाह) था।

राव चूंडा का एक ताम्रपत्र वि० सं० १४५२ माघ वदि अमावास्या (ई० स० १३६६) का मिला है, जिसमें पुरोहित ब्राह्मण जगरूप

(१) आत्माराम मोतीराम दीवानजी-कृत गुजराती अनुवाद; पृ० १२। वेले-कृत "हिस्ट्री ऑव् गुजरात" में यह घटना हि० स० ७६६ में दी है (पृ० ७७-८)।

राजगुरु को सूर्यग्रहण के अवसर पर गांव जैतपुर में २००० बीघा ज़मीन देने का उल्लेख है[1]। यह ताम्रपत्र शैली आदि के विचार से सही प्रतीत नहीं होता, क्योंकि इसमें चूंडा के पहले "श्री श्री १०८" और सबसे ऊपर "सही" लिखा है। राजाओं के नाम के साथ इस प्रकार ताम्रपत्रादि में अनेक "श्री" लगाने की शैली नैणसी के समय तक राजपूताने में प्रचलित हुई हो ऐसा पाया नहीं जाता। उस वर्ष अथवा उसके एक वर्ष पूर्व कोई भी सूर्य ग्रहण नहीं पड़ा था। इस ताम्रपत्र के अन्तिम भाग में "दसगत" (दस्तख़त) मूता डुगमल रा छे लिखा है। उस समय तक इस फ़ारसी शब्द का राजपूताने की सनदों में प्रवेश नहीं हुआ था। उसके समय का वि० सं० १४७८ कार्तिक सुदि १५ (ई० स० १४२१ ता० ६ नवम्बर) रविवार का एक दूसरा ताम्रपत्र भी प्रकाशित हुआ है[2], जो बिलकुल ही अशुद्ध महाजनी लिपि में लिखा हुआ और कृत्रिम है। पहले ताम्रपत्र के ऊपर "सही" लिखा है, जो इसमें नहीं है। एक राजा के समय के दो ताम्रपत्रों में ऐसी विभिन्नता राजपूताने में कहीं पाई नहीं जाती।

राव कान्हा

राव चूंडा का उत्तराधिकारी उसका छोटा पुत्र कान्हा हुआ। मुंहणोत नैणसी की ख्यात से उसके सम्बन्ध में केवल इतना पाया जाता है कि

मुंहणोत नैणसी की ख्यात का कथन

अपने पिता के मारे जाने पर रणमल ने नागोर से जाकर उसे टीका दिया और आप सोजत में रहने लगा[3]। एक दूसरे स्थल पर लिखा है कि राव चूंडा को मारने में देवराज का भी हाथ होने के कारण कान्हा ने जांगलू जाकर कई सांखलों को मारा। इस विषय का यह दोहा भी उसमें दिया हुआ है—

सधर हुआ भड़ सांखला, ग्यो भाजै काफाल।
वीर रतन ऊदौ विजो, वछो नै पुनपाल॥

(१) सुमेर लाइब्रेरी (जोधपुर) की रिपोर्ट; ई० स० १९३३, पृ० ५।
(२) वही; ई० स० १९३२, पृ० ८।
(३) जि० २, पृ० १०५।
(४) जि० १, पृ० २४३।

जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन

जोधपुर राज्य की ख्यात में उसके विषय में लिखा है—'राव रणमल ने मंडोवर जाकर कान्हा को टीका दिया और आप चित्तोड़ के राणा मोकल के पास गया, जो उसका भानजा लगता था। उसने उसे गांव धणला जागीर में दिया। जिन दिनों मंडोवर में कान्हा का राज्य था, उन दिनों जांगलू में माणकराव सांखले का पुत्र पुण्यपाल राज्य करता था। उनमें आपस में शत्रुता हो जाने पर राव कान्हा ससैन्य जांगलू पर गया। जब सांखलों को इसकी खबर लगी तो उन्होंने रणमल से सहायता की प्रार्थना की। इसपर रणमल अपनी सेना सहित सारुंडा जाकर ठहरा। उधर युद्ध के बढ़ने पर सांखलों ने उसे शीघ्रतापूर्वक आने को कहलाया। वह जाने की तैयारी कर ही रहा था कि त्रिभुवनसी के पुत्र ऊदा (राठोड़) ने उससे कहा कि आप ढील करें तो अच्छा हो, क्योंकि अगर कान्हा मारा गया तो आपको ही भूमि मिलेगी और यदि सांखला मारा गया तो जांगलू आपके क़ब्ज़े में आ जायगा। यह सुनकर रणमल सारुंडा में ही ठहरा रहा। फलस्वरूप कान्हा की विजय हुई और माणकराव सांखले के चारों पुत्र मारे गये। सांखला बरसिंह (आपमलोत) वहां से निकला। उसे रोकने का सींधल जेता ने प्रयत्न किया, पर वह मारा गया। इसके कुछ ही समय बाद पेट में शूल की बीमारी होने से कान्हा का देहान्त हो गया[1]।'

अन्य ख्यातों आदि के कथन

दयालदास की ख्यात में एक स्थान पर तो लिखा है कि राव चूंडा ने कान्हा को नागोर की गद्दी दी,[2] पर आगे चलकर लिखा है कि मंडोवर की गद्दी पर सत्ता बैठा और जांगलू का राज्य कान्हा को मिला[3]। वि० सं० १४७५ फाल्गुन सुदि

(१) जि० १, पृ० ३३-४। ख्यात में लिखा है कि करणीजी ने इसे श्राप दिया था, जिससे पेट में दर्द होने के कारण इसका देहांत हुआ।

(२) जि० १, पृ० ८३।

(३) जि० १, पृ० ८५।

१४ (ई० स० १४१६) को कान्हा का देहांत हुआ[1]। "वीरविनोद" में केवल इतना लिखा है कि राव चूंडा के बाद उसके छोटे बेटे कान्हा के गद्दी पर बैठ जाने से बड़ा रणमल नाराज़ होकर चित्तोड़ महाराणा मोकल के पास चला गया। कान्हा ने जांगलू के सांखला पर विजय पाई और फिर मर गया[2]। टॉड ने चूंडा के बाद कान्हा और सत्ता के नाम छोड़ दिये हैं तथा रणमल का गद्दी बैठना लिखा है[3]।

ख्यातों आदि के कथन की जांच

राव चूंडा का उत्तराधिकारी उसका छोटा पुत्र कान्हा हुआ, पर उसके सम्बंध में ख्यातों आदि में जो वृत्तान्त मिलते हैं वे बहुत थोड़े हैं और उनमें परस्पर अन्तर भी बहुत है। इसलिए उनपर विश्वास नहीं किया जा सकता। कई ख्यातों का यह कथन कि रणमल महाराणा मोकल के पास जा रहा था ठीक नहीं है। वह तो महाराणा लाखा के समय में ही चित्तोड़ चला गया था, जैसा आगे रणमल के वृत्तान्त में लिखा जायगा। दयालदास का यह कथन कि नागोर अथवा जांगलू का राज्य कान्हा को मिला सर्वथा अमाननीय हैं, क्योंकि नागोर पर तो मुसलमानों का ही अधिकार था, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है और जांगलू में राव जोधा के समय भी सांखलों का ही राज्य बना रहा था, जिनको जोधा के पुत्र बीका ने जीता। संभव है कि कान्हा का सांखलों से युद्ध हुआ हो, पर उसके परिणाम के विषय में हम किसी अन्य प्रमाण के अभाव में जोधपुर राज्य की ख्यात के कथन को अन्तिम नहीं मान सकते। वह कितने दिनों तक गद्दी पर रहा यह कहना कठिन है, क्योंकि मुंहणोत नैणसी अथवा जोधपुर राज्य की ख्यातों से इस विषय पर कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ता। दयालदास की ख्यात के अनुसार उसने लगभग ग्यारह महीने ही राज्य किया था।

(१) जि० १, पृ० ८१।

(२) भाग २, पृ० ८०४।

(३) राजस्थान; जि० २, पृ० ९४-५।

राव सत्ता

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में राव सत्ता के विषय में कई मत मिलते हैं। एक स्थान पर लिखा है—'उसे पेहर की जागीर राव चूंडा ने पहले से ही दी थी। रणमल और उसके पुत्र जोधा ने नर्बद (सत्ता का पुत्र) से युद्ध किया। तीर लगने से नर्बद की एक आंख फूट गई और उसके बहुतसे राजपूत मारे गये। राव रणमल ने मंडोवर ली। राव सत्ता को आंखों से दिखता नहीं था, इसलिए राव रणमल ने उसे गढ़ में ही रहने दिया और जब वह उससे गढ़ में मिलने गया तो उसने अपने पुत्रों को उसके पांव लगाया। जब जोधा उसके चरण छूने गया तो उसने पूछा कि यह कौन है? यह जानकर कि वह जोधा है सत्ता ने कहा कि टीका इसको ही देना यह धरती रक्खेगा। रणमल ने भी ऐसा ही किया'[1]।'

मुंहणोत नैणसी की ख्यात का कथन

उसी ख्यात में एक दूसरे स्थल पर लिखा है—'राव चूंडा काम आया तब टीका रणमल को देते थे कि रणधीर चूंडावत दरबार में आया। सत्ता वहां बैठा हुआ था। रणधीर ने उससे कहा—"सत्ता कुछ देवो तो टीका तुम्हें देवें।" सत्ता ने कहा—"टीका रणमल का है जो मुझे दिलाओ तो भूमि का आधा भाग तुझे देऊं।" तब रणधीर ने दरबार में जाकर सत्ता को गद्दी पर बिठा दिया और रणमल को कहा कि तुम पट्टा लो, पर उसने यह स्वीकार न किया और राणा मोकल के पास जा रहा। राणा ने उसकी सहायता की और मंडोर पर चढ़ आया। सत्ता भी सम्मुख लड़ने को आया। रणधीर नागोर जाकर वहां के खान को सहायतार्थ लाया। सीमा पर युद्ध हुआ। रणमल तो ख़ान से भिड़ा और सत्ता व रणधीर राणा के सम्मुख हुए। राणा भागा और नागोरी ख़ान को रणमल ने पराजित कर भगाया। सत्ता और रणमल दोनों की फ़ौजवालों ने कहा कि विजय रणमल की हुई है। दोनों भाई परस्पर मिले। तदनन्तर रणमल पीछा राणा के पास

(१) जि० २, पृ० १०५-६।

गया और सत्ता मंडोवर जा रहा[1]।'

एक दूसरे स्थल पर लिखा है—

'सत्ता के पुत्र का नाम नर्वद और रणधीर के पुत्र का नाम नापा था। सत्ता आंखों से बेकार हो गया था, इसलिए राज-काज उसका पुत्र नर्वद करता था। उसे रणधीर का आधा भाग लेना बुरा लगता था, अतएव उसने एक दासी को लोभ देकर उस (रणधीर) के पुत्र को विष दिलवाया, जिससे वह मर गया। अनन्तर उसने रणधीर को मारने के लिए सैन्य एकत्र करना प्रारम्भ किया। इसका किसी प्रकार पता लग जाने पर रणधीर मेवाड़ में महाराणा के पास गया और उसे साथ ले सत्ता पर चढ़ा। नर्वद ने उनका सामना किया, पर घायल होकर हारा। उसकी एक आंख फूट गई थी। महाराणा उसको उठवाकर अपने साथ ले गया और रणमल को उसने मंडोवर की गद्दी पर बिठाकर टीका दिया। सत्ता भी राणा के पास जा रहा और वहीं उसका देहांत हुआ[2]।'

जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन

जोधपुर राज्य की ख्यात में राव सत्ता के विषय में लिखा है—'कान्हा की मृत्यु होने पर उसका भाई सत्ता गद्दी पर बैठा। सत्ता दारू बहुत पीता था, जिससे राज्य-कार्य उसका भाई रणधीर चलाता था। सत्ता का पुत्र नर्वद बड़ा पराक्रमी हुआ। उससे रणधीर से बनी नहीं। तब रणधीर ने मारवाड़ का परित्याग कर धणला में राव रणमल के पास जाकर उससे कहा कि चूंडा ने कान्हा को राज्य दिया था, उसपर सत्ता का क्या अधिकार है? आप चलकर सत्ता से मंडोवर ले लें। इसपर अपनी सेना एकत्र कर तथा राणा की फ़ौज साथ ले रणमल मंडोवर पहुंचा। सत्ता को इसकी खबर मिलने पर वह तो निकल गया, पर नर्वद ने सम्मुख आकर मंडोवर से दो कोस की दूरी पर युद्ध किया। नर्वद घायल हुआ तथा रणमल की विजय हुई। रणधीर के कहने से उसने महाराणा की फ़ौज

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १११-२ तथा ११४।

(२) वही; जि० २, पृ० ११२-१४।

को वहां से ही विदा कर दिया। नर्वद को महाराणा के सैनिक चित्तोड़ ले गये, जहां महाराणा ने उसे अपने पास रख लिया। उस समय मेवाड़ की गद्दी पर महाराणा मोकल था और उसका कुंवर कुंभा था[१]।'

अन्य ख्यातों आदि के कथन

दयालदास की ख्यात में लगभग मुहणोत नैणसी की ख्यात जैसा ही वर्णन दिया है[२]। उससे इतना विशेष पाया जाता है कि रणमल को करणीजी की कृपा से जांगलू का राज्य प्राप्त हो गया था और वि० सं० १४८७ ज्येष्ठ सुदि ७ (ई० स० १४३०) को उसका मंडोवर पर अधिकार हो गया। उसकी मंडोवर पर चढ़ाई होने पर सत्ता पीपाड़ जा रहा था, जहां से वह महाराणा के पास चित्तोड़ गया[३]। बांकीदास ने कान्हा के विषय में तो कुछ नहीं लिखा है, पर सत्ता के विषय में वह लिखता है कि वह चूंडा का उत्तराधिकारी हुआ। वह अत्यधिक मद्यपान करता था, जिससे राज्य-कार्य उसका भाई रणधीर चलाता था[४]। "वीरविनोद" के अनुसार कान्हा के पश्चात् रणधीर आदि भाइयों ने सत्ता को मंडोवर का मालिक बनाया, जिसपर महाराणा मोकल से सहायता प्राप्तकर रणमल चढ़ आया। सत्ता के पुत्र नर्वद से रणमल का मुक़ाबिला होने पर नर्वद ज़ख़्मी हुआ और रणमल ने फ़तह पाकर मंडोवर पर क़ब्ज़ा कर लिया। नर्वद[५] महाराणा मोकल के पास आया, जिसको उसने एक लाख रुपये का कायलाणे का पट्टा दिया, जो अब जोधपुर के पास है[६]।

कान्हा का उत्तराधिकारी उसका भाई सत्ता हुआ यह प्रायः सभी

(१) जि० १, पृ० ३४-५।

(२) जि० १, पृ० ८६-६२।

(३) जि० १, पृ० ८६ तथा ६२।

(४) ऐतिहासिक बातें; संख्या ७६८।

(५) नर्वद के विस्तृत हाल के लिए देखो मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० १, पृ० ५०४ टिप्पण २।

(६) भाग २, पृ० ८०४।

ख्यातों में मिलता है। मुंहणोत नैणसी का यह कथन कि रणमल की सहायता को जाकर राणा मोकल रणधीर से हारकर भागा और रणमल अन्त में युद्ध में विजयी होकर भी सत्ता से केवल मिलकर वापस लौट गया, केवल कल्पना ही है। मेवाड़ की शक्ति ऐसी गई-गुज़री न थी कि राणा को हार खाकर भागना पड़ता। फिर मंडोवर तक चढ़कर रणमल का वापस चित्तोड़ लौट जाना भी मानने योग्य नहीं है। मुंहणोत नैणसी की ख्यात में कान्हा और सत्ता के विषय में विभिन्न स्थलों पर परस्पर विरोधी बातें लिखी हुई होने से, यह कहना कठिन है कि उनमें से कौनसी ठीक है और कौनसी ग़लत। सत्ता का राज्य कब से कब तक रहा, यह मुंहणोत नैणसी अथवा जोधपुर राज्य की ख्यातों से पाया नहीं जाता। दयालदास की ख्यात के संवतों पर विचार करने से तो यही ज्ञात होता है कि लगभग बारह वर्ष तक उसका राज्य रहा था, पर अन्य संवतों के समान ही ये संवत् भी कल्पित ही हैं और इनपर भरोसा नहीं किया जा सकता।

ख्यातों आदि के कथन की जांच

राव रणमल

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में राव रणमल के प्रारंभिक वृत्तान्त के सम्बन्ध में अलग-अलग मत मिलते हैं। एक जगह लिखा है कि राव चूंडा के सरदार रणमल को ढूंढाड़ की तरफ़ ले गये। रणमल ने पिता की आज्ञानुसार साथ के सब राजपूतों को राज़ी कर लिया। केलण भाटी उसके पीछे लगा। एक गांव में पहुंचने पर वहां की स्त्रियों के अपने सम्बन्ध में व्यंगपूर्ण शब्द सुनकर वह अपने साथियों सहित पीछा फिरा। लिखरा ने बादशाही निशान छीन लिया। मुग़ल और भाटी भागे और रणमल नागोर में आकर पाट बैठा[1]।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात का कथन

(१) जि० २, पृ० ६६।

एक दूसरे स्थान पर उसी ख्यात में लिखा है कि जब राव रणमल विदा हुआ तो अच्छे-अच्छे राजपूत अर्थात् सिखरा, उगमणोत ईंदा, ऊदा त्रिभुवनसीहोत, राठोड़ कालो टिंवाणो आदि उसके साथ हो लिये। मार्ग से कुछ सरदारों के लौट जाने पर पांच सौ सवारों के साथ रणमल नाडोल के गांव धणले में जाकर ठहरा, जहां सोनगरे (चौहान) राज्य करते थे। वहां कुछ दिनों रहकर वह चित्तोड़ के राणा लाखा के पास चला गया[1]। इसके आगे ही यह लिखा मिलता है कि पिता के मारे जाने पर रणमल ने नागोर जाकर कान्हा को गद्दी पर बिठाया और आप सोजत में रहने लगा। भाटियों से वैर होने के कारण वहां रहते समय वह उनका इलाक़ा लूटने लगा। तब उन्होंने चारण भुज्जा संढ़ायच को उसके पास भेजा, जिसके यश-गान करने से प्रसन्न होकर उसने भाटियों का बिगाड़ करना छोड़ दिया। भाटियों ने अपनी कन्या उसे व्याह दी, जिससे राव जोधा का जन्म हुआ[2]।

राव रणमल की बहिन हंसबाई का विवाह महाराणा लाखा के साथ होने[3] और पीछे से महाराणा मोकल की सहायता से उसके मंडोवर

---

(१) जि० २, पृ० १०२-४। आगे चलकर एक स्थल पर मुंहणोत नैणसी ने उसके नाडोल पर अधिकार करने की बात लिखी है, जो इस प्रकार है—

'रणमल का वैभव देखकर सोनगरों के भले आदमियों ने नागोर जाकर कहा कि राठोड़ काम का नहीं है, तुम पर चूक करेगा, इसलिए अपने यहां इसका विवाह कर दो। तब उन्होंने लोला सोनगरे की पुत्री का उसके साथ विवाह कर दिया। फिर भी जब उन्हें रणमल का उद्देश्य बुरा ही दीख पड़ा तो उन्होंने उसपर चूक करने का विचार किया। इसकी ख़बर लग जाने पर रणमल की सास और स्त्री ने उसे वहां से निकाल दिया। अपने स्थान पर पहुंचकर उसने सोनगरों से शत्रुता चलाई और अवसर पाकर आशापुरी के देहरे में जाकर, जहां सोनगरे गोठ करने जाया करते थे, उन्हें मार डाला और अखावे के कुंए में डाल दिया। उनका इलाक़ा लेने के अनन्तर वह राणा मोकल के पास गया और वहीं रहने लगा (जि० २, पृ० ११५)।

(२) जि० २, पृ० १०५।

(३) इस विवाह के सम्बन्ध के विस्तृत वृत्तान्त के लिए देखो मेरा राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ५७७-७८।

पर अधिकार करने का उल्लेख ऊपर आ गया है[1]। उसके सम्बन्ध की उक्त ख्यात में दी हुई अन्य घटनायें नीचे लिखे अनुसार हैं—

'एक दिन राव रणमल सभा में बैठा अपने सरदारों से कह रहा था कि बहुत दिनों से चित्तोड़ की तरफ़ से कोई खबर नहीं आई, इसका क्या कारण है? थोड़े ही दिन पीछे एक आदमी चित्तोड़ से पत्र लेकर आया और उसने खबर दी कि मोकल मारा गया। राव इससे बड़ा विस्मित और शोकातुर हुआ और उसने उसी समय मोकल का वैर लेने की प्रतिज्ञा की तथा ससैन्य चित्तोड़ पहुंचा। मोकल के घातक भागकर पई के पहाड़ों में चले गये और वहां घाटा बांधकर रहने लगे। रणमल ने वहां घेरा डाला और छः महीने तक वहां रहकर उसे सर करने के कई उपाय किये, परन्तु सफलता न मिली। वहां मेर लोग रहते थे। सीसोदियों ने उन्हें वहां से निकाल दिया था। उनमें से एक मेर ने राव से मिलकर कहा कि यदि दीवाण की खातिरी का परवाना मिल जावे तो मैं पहाड़ सर करा दूं। राव रणमल ने परवाना करा दिया। तब उस मेर ने उसको सैन्य सहित पहाड़ों में ले जाकर चाचा व मेरा के घरों पर खड़ा कर दिया[2]। रणमल के कई साथी तो चाचा के घर पर चढ़े और राव आप चढ़कर महपा (पंवार) पर गया। उसकी यह प्रतिज्ञा थी कि जहां स्त्री-पुरुष दोनों एक घर में हों उसके भीतर न जाता था, अतएव उसने बाहर ही से महपा को बाहर आने के लिए ललकारा। वह तो शब्द सुनते ही भयभीत हो स्त्री के भेष में निकल

(१) देखो ऊपर; पृ० २०६ टिप्पण ७ तथा पृ० २१७।

(२) इस विषय का उक्त ख्यात में एक दूसरे स्थल पर दूसरे रूप से वर्णन किया है, जो इस प्रकार है—

एक भील के बाप को रणमल ने मारा था। वह भील चाचा व महपा का सहायक बन गया, जिसके कारण रणमल पहाड़ों पर विजय न प्राप्त कर सका। अन्त में एक दिन वह उस भील के घर जा पहुंचा और उसकी मां को बहन कहकर पुकारा। तब उसने अपने पुत्रों का क्रोध शांत कर उन्हें उसका सहायक बना दिया। उन्हीं की सहायता से पहाड़ों के भीतर पहुंचने में वह समर्थ हुआ।

जि० २, पृ० ११७-१८।

भागा। यह पता पाकर रणमल वहां से लौट गया। उसने चाचा व मेरा को मारकर और भी कई सीसोदियों को मारा। अनन्तर उसने चित्तोड़ जाकर राणा कुंभा को गद्दी बैठाया[1] और अन्य बाग़ी सरदारों को मेवाड़ से निकालकर देश में सुख-शान्ति की स्थापना की।

'महपा पंवार पई के पहाड़ों से भागकर मांडू के बादशाह महमूद के पास जा रहा। जब राणा कुंभा ने बादशाह पर चढ़ाई की तब राव रणमल भी उसके साथ था और उसने ही बादशाह को मारा[2]। उसके मांडू पहुंचने पर महपा घोड़े पर चढ़े-चढ़े ही गढ़ से नीचे कूद गया। घोड़ा तो पृथ्वी पर पड़ते ही मर गया और महपा भागकर गुजरात के बादशाह के पास पहुंचा। जब वहां भी बचाव की कोई सूरत न देखी तो वह चितोड़ ही की तरफ़ चला। वहां राज तो राणा करता था, परन्तु राज का सारा काम रणमल के हाथ में था। गुप्त रूप से रात्रि के समय नगर में प्रवेशकर महपा वहां रहनेवाली अपनी एक पत्नी के पास जा रहा। फिर राणा के पास उपस्थित होकर उसने राठोड़ों की तरफ़ से उसके मन में शंका उत्पन्न करा दी[3]। तब तो राणा को भी भय हुआ और उसने रणमल पर चूक करने

(१) बांकीदास ने भी इसका उल्लेख किया है (ऐतिहासिक बातें; संख्या १६)।

(२) एक दूसरे स्थल पर उक्त ख्यात में लिखा है कि महपा के भागकर मांडू के बादशाह के पास जाने की ख़बर राणा एवं रणमल को होने पर उन्होंने बादशाह पर दबाव डालकर कहलाया कि हमारे चोर को भेज दो। इसपर बादशाह ने महपा से कह दिया कि हम तुमको नहीं रख सकते। तब महपा वहां से कूदकर निकल गया (भाग २, पृ० ११८)।

(३) एक दूसरे स्थल पर उक्त ख्यात में लिखा है कि एक दिन राणा कुंभा सोया हुआ था और एका चाचावत पैर दाब रहा था, उसकी आंखों से आंसू की बूंदें निकलकर राणा के पैरों पर गिरीं। राणा की आंख खुली। एका को रोते हुए देखकर उसने जब इसका कारण पूछा तो उसने उत्तर दिया कि अब देश सीसोदियों के हाथ से निकल जायगा और उसे राठोड़ लेंगे। राणा ने पूछा कि क्या तुम रणमल को मार सकते हो। उसने उत्तर दिया कि यदि दीवाण का हाथ हमारे सिर पर रहे तो हम ऐसा कर सकते हैं। महाराणा की आज्ञा मिलने पर उसने महपा पंवार से मिलकर यह कार्य पूरा किया (जि० २, पृ० १०८-९)।

का विचार किया। किसी प्रकार इसकी खबर एक डोम को लग जाने पर उसने इसकी सूचना रणमल को दी, पर उसको विश्वास न हुआ तो भी उस समय से वह अपने पुत्रों को तलहटी में ही रखने लगा। अवसर पाकर एक दिन चूक हुआ। राव जिस पलंग पर सोया हुआ था उसी के साथ वह बांध दिया गया और सत्रह मनुष्य उसे मारने के लिए आये। उनमें से सोलह को तो राव ने मार डाला, पर महपा भागकर बच गया। रणमल भी मारा गया[1] और उसके पुत्र जोधा, सीहा, नापा आदि जो तलहटी में थे खबर पाते ही भाग निकले। उनको पकड़ने के लिए फ़ौज भेजी गई, जिसने आड़ावळा (अर्वली) के पहाड़ के पास उन्हें जा लिया। वहां युद्ध होने पर राठोड़ों के कई सरदार और मारे गये, पर जोधा सकुशल मंडोवर पहुंच गया[2]।'

जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार राव कान्हा को राज्याधिकार प्रदान करने के बाद तुरन्त ही रणमल अपने भानजे राणा मोकल के पास चित्तोड़ चला गया, जिसने उसे ४०-५० गांवों के साथ धणला की जागीर दी, जहां वह रहने लगा[3]। सत्ता के राज्य-समय महाराणा की सेना की सहायता से रणमल के मंडोवर पर अधिकार करने का उल्लेख ऊपर आ गया है। महाराणा मोकल के मारे जाने[4], उसके वैर में रणमल का चाचा मेरा

(१) बांकीदास ने नर्बद सत्तावत का चूंडा लाखावत के शामिल हो रणमल पर चूक करना लिखा है (ऐतिहासिक बातें; संख्या १६०.)।

(२) जि० २, पृ० १०६-८, ११०-११ और ११८-१६।

(३) जि० १, पृ० ३३।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात में एक दूसरे स्थल पर यह भी लिखा है कि गागरोन के खींची अचलसिंह पर मालवे के खिलजी बादशाह की चढ़ाई होने पर महाराणा मोकल उससे लड़ने के लिए चित्तोड़ से रवाना हुआ। ईडर का सांवलदास भी आकर उससे मिला। सीसोदिया चाचा भी राणा के साथ आया। उसका सांवलदास से मेल होने के कारण उसे राणा पर चूक होने का सारा भेद ज्ञात था। कुंभा को तो उसने निकाल दिया, पर राणा मोकल ने उसके कथन पर विश्वास न किया और वहां से तीसरी मंज़िल पर मारा गया (जि० १ पृ० ३७)।

को मारने, कुम्भा को चित्तोड़ की गद्दी पर बैठाने तथा बाद में धोखे से स्वयं मारे जाने का उक्त ख्यात का वर्णन लगभग मुंहणोत नैणसी जैसा ही है। उसमें मोकल के मारे जाने का समय वि० सं० १४६५ (ई० स० १४३८) और रणमल के मारे जाने का समय वि० सं० १५०० का आषाढ (ई० स० १४४३) दिया है[1]। उसके सम्बन्ध की अन्य बातें जो उक्त ख्यात से पाई जाती हैं वे इस प्रकार हैं—

'उसने राव चूंडा के वैर में बहुत से भाटियों को मारा और ४१ बार जैसलमेर पर चढ़ाई की, जिससे उन्होंने अपनी पुत्री का उसके साथ विवाह करना स्वीकार किया[2]। झावर में युद्ध कर उसने कचरा सींधल, जैतारण में तोगा सींधल, बगड़ी में चरडा सींधल तथा सोजत में नाढ़ा सींधल को मारा। अनन्तर उसने केलण भाटी को मारकर बीकमपुर को लूटा और मेरों से वि० सं० १४८५ (ई० स० १४२८) में जालोर लिया। गया की यात्रा के समय उसने वहां बहुत सा दान-पुण्य किया। दिल्ली के बादशाह फ़ीरोज़ के मारवाड़ पर चढ़ाई करने पर उसने युद्ध कर उसे हराया। बादशाह मुहम्मद के राणा मोकल पर चढ़ाई करने पर उसने उसके लौटते समय उसे भी मारा[3]।'

दयालदास की ख्यात का राव रणमल का वृत्तान्त अधिकांश मुंहणोत नैणसी की ख्यात जैसा ही है। किसी-किसी घटना का वर्णन जोधपुर राज्य की ख्यात से मिलता-जुलता है। जैसलमेर पर चढ़ाई होने का उल्लेख उसमें भी है और वहां के रावल का नाम लक्ष्मण दिया है। उक्त ख्यात के अनुसार रणमल ने वि० सं० १४९५ (ई० स० १४३८) में नागोर के नवाब फ़ीरोज़ तथा उसके भाई को मारा, अनन्तर वि० सं० १४९६ आश्विन सुदि

अन्य ख्यातों आदि के कथन

(१) जि० १, पृ० २५-२६। बांकीदास ने रणमल के मारे जाने का समय वि० सं० १५०० चैत्र वदि ६ (ई० स० १४४३) दिया है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८१२)।

(२) बांकीदास ने भी इसका उल्लेख किया है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८१२)।

(३) जि० १, पृ० २६-७।

७ (ई० स० १४३९) को वह स्वयं एका चाचावत, महपा आदि द्वारा धोखे से मारा गया[1]।

सोनगरों से रणमल के लड़ाई करने, मोकल के वैर में चाचा तथा मेरा को मारने और फिर स्वयं धोखे से मारे जाने का उल्लेख कविराजा श्यामलदास-कृत "वीरविनोद" में भी है। उसमें अन्तिम घटना का समय जोधपुर राज्य की ख्यात के समान वि० सं० १५०० (ई० स० १४४३) ही दिया है। उससे यह भी पाया जाता है कि उसने मांडू के बादशाह महमूद को गिरफ़्तार कर महाराणा के हवाले किया तथा कुंभा के काका महाराणा लाखा के पुत्र राघवदेव को मारा[2]।

टॉड के अनुसार रणमल भीमकाय और वीर व्यक्ति था, जिसकी बहिन के साथ विवाह करने पर महाराणा लाखा ने उसे चालीस गांवों के साथ धणला जागीर में दिया। मेवाड़ की सेना के साथ एक पुत्री अजमेर के सूबेदार के पास ले जाने के बहाने उसने वहां पहुंचकर उसपर मेवाड़ का अधिकार स्थापित किया। उसने गया की यात्रा की तथा अपने राज्य भर में निश्चित वज़न के बाँट जारी किये। उसकी मृत्यु के विषय में टॉड लिखता है कि मेवाड़ की गद्दी हस्तगत करने का प्रयत्न करने के कारण उसे उचित ही दंड मिला[3]।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार उसके चौबीस पुत्र हुए[4]— (१) जोधा, (२) अखैराज[5], (३) कांधल[6], (४) चांपा[7], (५) लखा[8],

(१) जि० १, पृ० ९०-१०५।

(२) भाग २, पृ० ८०५।

(३) जि० २, पृ० ९४६।

(४) जि० २, पृ० ३७-८।

(५) उक्त ख्यात के अनुसार इसके दो पुत्र मेहराज तथा पंचायण हुए। मेहराज के पुत्र कूंपा के वंशज कूंपावत तथा पंचायण के पुत्र जेता के वंश के जेतावत कहलाये।

टॉड के अनुसार अखैराज के सात पुत्र हुए (राजस्थान; जि० २, पृ० ९४६)।

(६) इसके वंश के कांधलोत कहलाये। इसका वृत्तान्त यथास्थान आगे आवेगा।

(७) इसके वंश के चांपावत कहलाये।

(८) इसके वंश के लखावत कहलाये, जो इस समय बीकानेर में हैं।

संतति

(६) भाखर[1], (७) डूंगरसी[2], (८) जैतमाल[3], (६) मंडल[4], (१०) पाता[5], (११) रूपा[6], (१२) करण[7], (१३) सांडा[8], (१४) मांडण[9], (१५) नाथा[10], (१६) ऊदा[11], (१७) वेरा[12], (१८) हापा, (१६) अड़वाल, (२०) सावर, (२१) जगमाल, (२२) सगता, (२३) गोइन्द और (२४) करमचन्द।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में केवल जोधा का ही नाम मिलता है। ऊपर सीहा और नापा के नाम आये हैं, पर वे दूसरी ख्यातों में नहीं मिलते। दयालदास की ख्यात[13], वीरविनोद[14] तथा टॉड-कृत 'राजस्थान'[15] में भी कुछ हेर-फेर के साथ रणमल के चौबीस पुत्रों के ही नाम दिये हैं।

---

(१) इसका पुत्र बाला हुआ, जिसके वंशज बालावत कहलाये।

(२) इसके वंशवाले डूंगरोत कहलाये, जो भाद्राजूण में रहे।

(३) इसका पुत्र भोजराज हुआ, जिसके वंश के भोजराजोत कहलाये। भोजराज को राव जोधा ने पालासणी दिया। पालासणी के तालाब पर का जोगी का आसन भोजराज का बनवाया हुआ है।

(४) इसके वंश के मंडलावत कहलाये। इसे राव जोधा ने सारूंडा दिया था।

(५) इसके वंश के पातावत कहलाये।

(६) इसके वंश के रूपावत कहलाये।

(७) इसके वंश के करणोत कहलाये। इन्हें राव जोधा ने चवां का पट्टा दिया।

(८) इसके वंश के सांडावत कहलाये।

(६) इसके वंश के मांडणोत कहलाये।

(१०) इसके वंश के नाथूओत कहलाये। ये बीकानेर में नाथूसर आदि गांवों में हैं।

(११) इसके वंश के ऊदावत कहलाये। ये बीकानेर में भी ऊदासर आदि गांवों में हैं।

(१२) इसके वंश के वेरावत कहलाये।

(१३) जि० १, पृ० १०५।

(१४) भाग २, पृ० ८०५-६।

(१५) जि० २, पृ० ९४६-७।

मुंहणोत नैणसी के ये कथन कि रणमल चूंडा की मृत्यु के पश्चात् सोजत अथवा नागोर में रहा, माननीय नहीं कहे जा सकते। वह तो अपने पिता के जीवनकाल में ही उसकी इच्छानुसार मारवाड़ का परित्याग कर चित्तोड़ के राणा लाखा के पास जा रहा था और बहुत समय तक वहीं रहा। नागोर तो उन दिनों गुजरात के सुलतानों के अधिकार में था, जिनकी तरफ़ से वहां मुसलमान शासक रहते थे; अतएव नागोर में उसके रहने की बात मानी नहीं जा सकती।

ख्यातों आदि के कथन की जांच

उसकी भाटियों के साथ लड़ाई होने का उल्लेख प्रायः प्रत्येक ख्यात में मिलता है। कई ख्यातों में तो उसका ४१ वार भाटियों से लड़ना लिखा है, पर यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण है और इसका उल्लेख जैसलमेर की तवारीख में नहीं है। यदि ख्यातों के इस कथन में कुछ भी सत्यता हो तो यही मानना पड़ेगा कि भाटियों के साथ रणमल की लड़ाई उसके मंडोवर पर अधिकार करने के बाद हुई होगी।

मांडू के सुलतान के संबंध में ख्यातों आदि का यह कथन कि जब उसने चित्तोड़ पर चढ़ाई की उस समय वह रणमल के हाथ से मारा गया कपोलकल्पना ही है। जोधपुर राज्य की ख्यात में महाराणा का नाम मोकल दिया है। यह कथन ठीक नहीं है। वस्तुतः महपा पंवार के मांडू के सुलतान के पास जाने की खबर पाने पर महाराणा कुंभा ने सुलतान पर चढ़ाई की थी। इस चढ़ाई और उसमें राणा के विजयी होने का उल्लेख उसके राणपुर के शिलालेख[1] तथा कुंभलगढ़ की प्रशस्ति[2] में है। "वीरविनोद" में इस लड़ाई का समय वि० सं० १४९६ (ई० स० १४३९) दिया है और उस समय रणमल का भी उसमें विद्यमान होना तथा उसका सुलतान को गिरफ़्तार करना लिखा है[3]। यह ठीक नहीं है, क्योंकि रणमल

(१) राणपुर का जैनमंदिर का शिलालेख; पंक्ति १७-१८। भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० ११४।

(२) कुंभलगढ़ की प्रशस्ति; श्लोक २६८-७०।

(३) भाग १, पृ० ३१९-२०।

तो उक्त संवत् के पूर्व ही मारा गया था, जैसा कि आगे बतलाया जायगा। महमूद वि० सं० १४९३ (ई० स० १४३६) में अपने स्वामी मुहम्मद (ग़ज़नीख़ां) को मारकर मालवे का सुलतान बन गया था और वह वि० सं० १५३१ (ई० स० १४७४) तक विद्यमान था। यदि ऊपर आई हुई लड़ाई में रणमल का भी साथ रहना माना जाय, तो यही मानना पड़ेगा कि वह वि० सं० १४९३ और १४९६ के बीच किसी समय हुई होगी; पर उसमें महमूद रणमल या किसी अन्य व्यक्ति के हाथ से मारा नहीं गया।

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि जब दिल्ली के बादशाह फ़ीरोज़ ने मारवाड़ पर चढ़ाई की तो रणमल ने उसे हराया। यह कथन भी निराधार है। फ़ीरोज़शाह तुग़लक नाम का दिल्ली का बादशाह तो वि० सं० १४०८ से १४४५ (ई० स० १३५१ से १३८८) तक दिल्ली का शासक रहा था, अतएव वह रणमल का समकालीन नहीं था। इस नाम का नागोर का शासक अवश्य हुआ था और वह रणमल का समकालीन भी था, पर उसकी कभी कोई चढ़ाई मंडोर पर हुई हो ऐसा पाया नहीं जाता। इस संबंध में दयालदास का यह लिखना भी कि रणमल ने फ़ीरोज़ और उसके भाई मुहम्मद को अपने पिता के वैर में मारा[1] निरी कल्पना ही है। फ़ीरोज़ तो हि० स० ८५५ (वि० सं० १५०८ = ई० स० १४५१) में, रणमल की मृत्यु के लगभग तेरह वर्ष बाद, मरा था[2], अतएव उसका रणमल के हाथ से मारा जाना कैसे संभव हो सकता है।

टॉड का यह कथन कि रणमल ने मेवाड़ की सेना ले जाकर अजमेर पर राणा का अधिकार स्थापित किया, संभवतः राणा लाखा के राज्यकाल से संबंध रखता हो जिसके समय में वह वहां ही रहता था।

चित्तोड़ में रणमल के धोखे से मारे जाने का वृत्तान्त जोधपुर के इतिहास से संबंध रखनेवाली प्रायः सब ही ख्यातों में मिलता है, पर उनसे

(१) जि० १, पृ० १०१-२।

(२) मिराते सिकन्दरी (आत्माराम मोतीराम दीवानजी-कृत अनुवाद); पृ० ६१। बेले; हिस्ट्री ऑव् गुजरात; पृ० १४८।

इसके कारण पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। बात वस्तुतः यह थी कि मेवाड़ में रणमल का प्रभाव बढ़ गया था, जो सीसोदिये सरदारों को खटकने लगा था। फिर जब उसने महाराणा कुंभा के चाचा राघवदेव को छल से मरवा डाला, तबसे इन दोनों वंशों के बीच वैर उत्पन्न हो गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि अन्त में रणमल चित्तोड़ में मारा गया[1]। ख्यातों में कहीं रणमल के मारे जाने का समय वि० सं० १४९६ (ई० स० १४३९) और कहीं वि० सं० १५०० (ई० स० १४४३) दिया है, पर ये संवत् भी ऊपर आये हुए ख्यातों के अन्य संवतों के समान ही कल्पित हैं। रणमल की मृत्यु के पश्चात् ही महाराणा कुंभा ने मंडोवर पर अधिकार कर लिया था। वि० सं० १४९६ (ई० स० १४३९) के उसके राणपुर के शिलालेख में मंडोवर-विजय का स्पष्ट उल्लेख है[2]। अतएव रणमल का मारा जाना हम उक्त संवत् के पूर्व ही मान सकते हैं।

पांचवें अध्याय का सिंहावलोकन

जो ख्यातें इस समय उपलब्ध हैं, वे बहुत प्राचीन नहीं हैं। सबसे पुरानी ख्यात मुंहणोत नैणसी की है, जो वि० सं० १७०५ (ई० स० १६४८) और १७२५ (ई० स० १६६८) के बीच लिखी गई थी। दूसरी ख्यातें तो उससे बहुत पीछे की बनी हैं। ख्यातों के लिखे जाने के समय से अधिक से अधिक सौ वर्ष पूर्व तक के उनमें आये हुए इतिहास को हम कुछ अंशों में प्रमाणिक मान सकते हैं, लेकिन उससे पहले के वृत्तान्त अधिकांश कल्पित ही हैं। उनमें दिये हुए वृत्तान्तों का परस्पर एक दूसरी ख्यात से बहुधा मिलान भी नहीं होता। यदि एक ख्यात लेखक एक घटना का एक प्रकार से वर्णन करता है तो दूसरा उसी

---

(१) विस्तृत वृत्तान्त के लिए देखो मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ५९४-५ तथा ५९९-६०२।

(२) राणपुर का जैनमन्दिर का शिलालेख; भावनगर इन्स्क्रिपशन्स; पृ० ११४। आर्कियालाजिकल सर्वे ऑव् इंडिया (एन्युअल रिपोर्ट); ई० स० १९०७-८; पृ० २१४-५।

घटना का बिल्कुल भिन्न वर्णन करता है। मुंहणोत नैणसी की ख्यात में तो एक ही घटना के कई वृत्तान्त मिलते हैं। सच बात तो यह है कि वास्तविक इतिहास के ज्ञान के अभाव में ख्यात लेखकों ने जैसा कुछ भी सुना वैसा ही अपनी ख्यातों में दर्ज कर दिया। परिणाम यह हुआ कि उनके वृत्तान्तों में ऐतिहासिक सत्य का स्थान औपन्यासिक कल्पना ने ले लिया। साथ ही अपने देश या राज्य की गौरव-वृद्धि करने की लालसा से प्रेरित होकर ख्यात-लेखक अनेक प्रकार की झूठी और असंभव कल्पनाएं करने तथा उन्हें अपनी ख्यात में स्थान देने से भी बाज़ न आये। यही कारण है कि हमें ख्यातों में स्थान-स्थान पर घटनाओं के रूप बदले हुए और वर्णन अतिशयोक्ति एवं आत्मश्लाघा से पूर्ण मिलते हैं।

पहले विस्तृत इतिहास लिखने की ओर लोगों की रुचि नहीं थी। केवल राजाओं, उनकी राणियों, कुंवरों एवं कुंवरियों के नाम ही बहुधा संग्रहों में लिखे जाया करते थे। इन नामों के संग्रह बहियों के रूप में अब भी मिलते हैं, पर उनमें दिये हुए सभी नाम ठीक हों, ऐसा देखने में नहीं आया। भिन्न-भिन्न संग्रहों में एक ही राजा के कुंवरों आदि के नामों में बहुत भिन्नता पाई जाती है। ऐसी दशा में वे भी ख्यातों के समान ही वास्तविक इतिहास के लिए प्रामाणिक नहीं ठहरते। पीछे से विस्तृत इतिहास लिखने की ओर लोगों की रुचि का झुकाव होने पर उन्होंने पहले के नामों के साथ जगह-जगह कल्पित वृत्तान्त बढ़ा दिये। यहां तक ही नहीं, बल्कि जो कुछ भी उन्होंने सुना था अथवा जो भी उन्हें ज्ञात था, वह सब भी, अप्रासंगिकता की ओर दृष्टिपात न करते हुए, उन वृत्तान्तों में भर देना वे न भूले। फल यह हुआ कि ख्यातों में दिये हुए प्रारम्भिक वृत्तान्त ऊटपटांग बातों का अच्छा-खासा संग्रह बन गये। ख्यात-लेखकों का ज्ञान कितना कम था, यह इसीसे स्पष्ट हो जाता है कि राव सीहा की राणी पार्वती और उससे बहुत पीछे होनेवाले राव रणमल की राणी कोड़मदे (राव जोधा की माता) एवं जोधा की पुत्री शृंगारदेवी के नाम तक उन्हें ज्ञात न थे। जहां ख्यातों में राणियों और सन्तति का विस्तृत हाल मिलता है,

वहां इन नामों का न होना ख्यातों की प्रामाणिकता के विषय में गहरा सन्देह उत्पन्न कराता है।

यही हाल ख्यातों में दिये हुए संवतों का भी है। जब वास्तविक इतिहास से ही ख्यात-लेखक अनभिज्ञ थे तो भला सही संवत् वे कहां से लाते ? यही कारण है कि पूर्व के राजाओं का कल्पित वृत्तान्त देने के समान ही उन्होंने जगह-जगह उनके जन्म, गद्दीनशीनी, मृत्यु आदि के संबंध के कल्पित संवत् धर दिये। राव सीहा और राव धूहड़ के स्मारक लेखों के मिल जाने से अब इस विषय में ज़रा भी सन्देह नहीं रह जाता कि राव जोधा से पहले के जोधपुर के राजाओं के ख्यातों में दिये हुए संवत् पूर्णतया कल्पित हैं। भिन्न-भिन्न ख्यातों में दिये हुए एक ही घटना के संवतों में भी बड़ा अन्तर पाया जाता है, जैसा कि ऊपर आये हुए राव सीहा से लगाकर राव रणमल तक के वृत्तान्तों में बतलाया गया है। वस्तुतः पहले के ठीक-ठीक संवत् ख्यात-लेखकों को ज्ञात न थे, जिससे उन्होंने मनगढ़न्त संवतों का अपने ग्रन्थों में समावेश कर दिया, जो वास्तविक इतिहास के लिए सर्वथा निरुपयोगी हैं।

जोधपुर राज्य के इन पहले के राजाओं के संवतों की अप्रामाणिकता उस समय और भी स्पष्ट हो जाती है, जब हम निश्चित ज्ञात संवतों के सहारे उनका औसत राज्यकाल निकालते हैं। वि० सं० १३३० में राव सीहा का देहांत हुआ था, यह अब सब इतिहासवेत्ता मानने लगे हैं। राव रणमल की मृत्यु हम वि० सं० १४६५ से पीछे नहीं मान सकते, क्योंकि वि० सं० १४९६ से पूर्व महाराणा कुंभा ने मंडोवर ले लिया था, जैसा उक्त संवत् की राणपुर की प्रशस्ति से निश्चित है। यदि हम राव आसथान से लगाकर राव रणमल तक जोधपुर के सोलह राजाओं का औसत राज्य समय निकालें तो वह केवल दस वर्ष आता है। इस थोड़ी अवधि को इतिहास स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि किसी भी राज-वंश के सोलह या उससे एक-दो कम राजाओं का निश्चित समय के आधार पर निकाला हुआ औसत राज्यसमय इससे बहुत अधिक आता है। उदाहरणार्थ—

(१) महाराणा रत्नसिंह से लगाकर महाराणा हम्मीरसिंह तक उदयपुर के १६ राजाओं का औसत राज्यसमय लगभग १५$\frac{3}{4}$ वर्ष।

(२) राव कल्याणसिंह से लगाकर महाराजा डूंगरसिंह तक बीकानेर के १६ राजाओं का औसत राज्यसमय लगभग २१ वर्ष।

(३) महाराजा मानसिंह (प्रथम) से लगाकर महाराजा माधोसिंह (द्वितीय) तक जयपुर के १४ राजाओं का औसत राज्यसमय लगभग २४ वर्ष।

(४) रावराजा भोज से लगाकर रावराजा रघुवीरसिंह तक बूंदी के ११ राजाओं का औसत राज्यसमय लगभग ३१ वर्ष।

(५) बादशाह अकबर से लगाकर बहादुरशाह (द्वितीय) तक १६ मुग़ल शासकों का औसत राज्यसमय लगभग १६ वर्ष।

स्वयं जोधपुर के पीछे के राजाओं का औसत राज्यसमय पहले के राजाओं से कहीं अधिक आता है। महाराजा सूरसिंह से लगाकर महाराजा सुमेरसिंह तक जोधपुर के पीछे के १४ राजाओं का औसत राज्यसमय लगभग २३ वर्ष होता है। ऐसी दशा में यही मानना पड़ेगा कि या तो जोधपुर के राव धूहड़ से लगाकर राव रणमल तक के १६ नामों में कुछ नाम भाटों ने कृत्रिम धर दिये या यह कहना पड़ेगा कि एक भाई का वंश समाप्त होने पर पीछे से जब दूसरे भाई का वंश गद्दी पर आया तो भाटों ने दूसरी शाखा के पूर्वजों के नाम भी पहली शाखावालों के साथ जोड़ दिये। उदयपुर राज्य के इतिहास में ऐसा होने का उदाहरण मिलता है। रावल रणसिंह (कर्णसिंह) से दो शाखाएं फटीं—बड़ी चित्तोड़ की रावल शाखा और छोटी सीसोदे की राणा शाखा। रावल शाखा की समाप्ति वि० सं० १३६० (ई० स० १३०३) में रावल रत्नसिंह के साथ हुई, जिसका उत्तराधिकारी सीसोदे की शाखा का हम्मीरसिंह हुआ। भाटों ने रत्नसिंह के पीछे हम्मीरसिंह तक के उसके पूर्वपुरुषों के १३ नाम भी शामिल कर दिये[1]। यह अशुद्धि प्राचीन शिलालेखों तथा पुस्तकों आदि से ही ठीक हो सकी।

(१) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० १, पृ० ४२२।

ख्यातों में बहुधा कई स्थलों पर कल्पित वृत्तान्तों की पुष्टि में कवितायें भी मिलती हैं, परन्तु वे समकालीन लेखकों की रचनायें न होकर बहुत पीछे की बनी हुई प्रतीत होती हैं। अधिकांश में तो उनके रचयिताओं के नाम का भी पता नहीं चलता। ऐसी दशा में वे भी वास्तविक इतिहास के लिए न तो प्रामाणिक हैं और न उपयोगी ही।

इन सब बातों पर दृष्टि रखते हुए तो हमें यही कहने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि राव सीहा से लगाकर राव रणमल तक का जोधपुर राज्य का वास्तविक इतिहास अब तक अन्धकार में ही है। उनमें से दो—राव सीहा और राव धूहड़—के मृत्यु के संवतों को छोड़कर अन्य किसी भी राजा के जन्म, राज्यारोहण, मृत्यु आदि के ठीक संवत् और स्थान ज्ञात नहीं हुए हैं और न उनके समय के शिलालेख, प्रशस्तियां, पुस्तकें आदि ही मिली हैं। जो दो स्मारक लेख मिले हैं, उनको ढूंढ निकालने का श्रेय, जैसा हम ऊपर लिख आये हैं, ब्रह्मभट्ट नानूराम को है। वर्तमान जोधपुर के राजवंश के मूलपुरुष राव सीहा और उसके पौत्र राव धूहड़ के स्मारकों का मिल जाना ही यह सिद्ध करता है कि उनके यहां स्मारक बनाने की रीति प्रारम्भ से ही चली आती है। अतएव उनके पीछे के राजाओं के स्मारक भी कहीं न कहीं अवश्य विद्यमान होने चाहियें। आवश्यकता है ऐसे लगनशील सच्चे इतिहासप्रेमी व्यक्ति की जो मारवाड़ के गांव-गांव में उनकी तलाश करे। जब तक ऐसा नहीं होगा तब तक हमें जोधा से पूर्व के जोधपुर के राजाओं के इतिहास के लिए ख्यातों का ही आश्रय लेना पड़ेगा। परस्पर विभिन्न और अधिकांश कल्पनामूलक होने के कारण ख्यातों के वर्णन भरोसे के लायक़ नहीं हैं, जिसकी ओर हमने स्थान-स्थान पर ऊपर संकेत किया है। अन्य साधनों के अभाव में हमें ऊपर आये हुए जोधपुर के १७ राजाओं के वृत्तान्त के लिए ख्यातों का ही आश्रय लेना पड़ा है। उनका वृत्तान्त हमने ख्यातों में जैसा कुछ भी लिखा पाया वह ऊपर ज्यों का त्यों संग्रह कर दिया है। विवादास्पद तथा संदिग्ध विषयों पर यथास्थान टिप्पणों एवं प्रत्येक राजा के वृत्तान्त के अन्त में दिये हुए "ख्यातों के कथन

३०

की जांच" शीर्षक के अन्तर्गत हमने यथासंभव प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। इससे अधिक, जब तक और शोध न हो जाय, लिखना असंभव है और यदि बिना प्रमाण कुछ लिखा भी जाय तो वह ख्यातों के समान ही निराधार एवं काल्पनिक होगा।



छठा अध्याय

राव जोधा से राव गांगा तक

राव जोधा

राव जोधा का जन्म (श्रावणादि) वि० सं० १४७२ (चैत्रादि १४७३) वैशाख वदि (? सुदि) ४ (ई० स० १४१६ ता० १ अप्रेल) बुधवार[1] को हुआ था[2]। अपने पिता के मारे जाने के समय वह अपने अन्य भाइयों सहित तलहटी में था । राव रणमल पर चूक होते ही एक डोम ने क़िले की दीवार पर चढ़कर उच्च स्वर से यह दोहा गाया—

जोधा का मेवाड़ से भागना तथा चूंडा का मंडोवर पर अधिकार करना

चूंडा अजमल आविया, मांडू हूं धक आग ।
जोधा रणमल मारिया, भाग सके तो भाग[3] ॥

(१) चन्डू के यहां के जन्मपत्रियों के संग्रह में वैशाख वदि ४ बुधवार ही दिया है और उसके साथ में सूर्य का मेष के छः अंश पर होना लिखा है। श्रावणादि अथवा चैत्रादि वर्ष मानने से वैशाख वदि ४ को बुधवार नहीं आता। जोधपुर राज्य में वर्ष का आरम्भ श्रावण से होता है। इसको दृष्टि में रखते हुए वैशाख वदि ४ को मङ्गलवार और उस दिन सूर्य का मीन के सत्रह अंश पर होना पाया जाता है। सूर्य मेष के छः अंश पर वैशाख सुदि ४ को आया था और उस दिन बुधवार भी था। अतएव जोधा की जन्मतिथि में सुदि के स्थान में वदि लिख दिया गया हो, यही मानना पड़ेगा।

(२) दयालदास की ख्यात में भी चंडू के जन्मपत्रियों के संग्रह के समान ही वैशाख वदि ४ बुधवार दिया है (जि० १, पृ० १०६), पर यह ठीक नहीं है (देखो ऊपर टि० १)। "वीरविनोद" में चतुर्थी के स्थान में चतुर्दशी तिथि है (भाग २, पृ० ८०६) तथा टॉड ने जोधा का जन्म वि० सं० १४८४ के वैशाख मास में माना है (राजस्थान; जि० २, पृ० ९४७), पर इन दोनों के कथन ग़लत हैं। कोई-कोई अखैराज को जोधा से बड़ा मानते हैं, जो भ्रम ही है।

(३) मेवाड़ में यह पूरा दोहा इसी तरह प्रसिद्ध है। ख्यातों में इसके अंतिम दो चरण ही मिलते हैं। किसी-किसी ख्यात में एक ढोली का सहनाई में उपर्युक्त दोहे का पिछला चरण गाकर सुनाना लिखा है (दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० १०९)।

ये शब्द सुनते ही तलहटीवालों ने जान लिया कि राव रणमल मारा गया और जोधा अपने भाइयों आदि सहित मारवाड़ की तरफ़ भागा। राठोड़ भीम चूंडावत को शराब के नशे में बेहोश पड़े रहने के कारण उसने वहीं छोड़ दिया। उस समय जोधा के पास सात सौ सवार थे। चूंडा[1] ने उसका सैन्य सहित पीछा किया। चित्तोड़ से कपासण जाते हुए मार्ग में[2] दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई, जहां दोनों तरफ़ के बहुत से आदमी काम आये। इसके बाद कई स्थानों पर और कई लड़ाइयां हुईं, पर अन्त में बचे हुए सात सवारों सहित जोधा मारवाड़ पहुंच गया[3]। तब चूंडा ने मारवाड़ में प्रवेशकर मंडोवर पर अधिकार कर लिया। फिर अपने पुत्रों—कुन्तल, मांजा, सूवा—तथा झाला विक्रमादित्य एवं हिंगुलू आहाड़ा आदि को वहां के प्रबन्ध के लिए छोड़कर वह स्वयं चित्तोड़ लौट गया[4]। जोधा निराश होकर वर्तमान बीकानेर से दस कोस दूर काहूनी (कावनी) गांव में जा रहा[5]। मंडोवर के राज्य पर महाराणा का अधिकार हो गया और जगह-जगह उसकी तरफ़ से थाने क़ायम कर दिये गये[6]।

एक मास तक जोधा काहूनी गांव[7] में ठहरकर फिर मंडोवर लेने

---

(१) यह राव रणमल के चित्तोड़ में रहते समय ही महाराणा कुंभा के बुलाने पर चित्तोड़ आ गया था (मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ६००-१)।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात से पाया जाता है कि मांडल पहुंचने पर जोधा की कांधल से भेंट हुई। वहीं पर जोधा ने उसे रावताई का टीका दिया (जि० २, पृ० १०६)। दयालदास की ख्यात में भी इसका उल्लेख है (जि० १, पृ० १०६)।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४०। उक्त ख्यात के अनुसार इन्हीं लड़ाइयों में से एक में वरजांग (भीमोत) घायल होकर सीसोदियों के हाथ में पड़ गया था।

(४) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३२२।

(५) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४१।

(६) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ६०२।

(७) दयालदास की ख्यात से पाया जाता है कि महाराणा के आदेशानुसार उसके आश्रय में रहनेवाले सत्ता के पुत्र नर्बद ने कई बार जोधा से युद्ध किया, पर उसे सफलता नहीं मिली (जि० १, पृ० १०६-७)। इस कथन में सत्य का अंश कितना है यह कहना कठिन है, क्योंकि अन्य ख्यातों आदि में इसका उल्लेख नहीं मिलता।

की कोशिश करने लगा। कई वार उसने मंडोवर पर आक्रमण किया, परन्तु प्रत्येक वार हारकर ही भागना पड़ा। एक दिन मंडोवर से भागता हुआ, भूख से व्याकुल होकर वह एक जाट के घर में ठहरा, जिसकी स्त्री ने थाली भर गरम 'घाट' (मोठ और बाजरे की खिचड़ी) उसके सामने लाकर रख दी। जोधा ने तुरंत उस थाली के बीच में हाथ डाल दिया, जिससे वह जल गया। यह देखकर उस स्त्री ने कहा-"तू तो जोधा जैसा ही निर्बुद्धि दीख पड़ता है।" इसपर उसने पूछा—"बाई, जोधा निर्बुद्धि कैसे है?" उसने उत्तर में कहा—"जोधा निकट की भूमि पर तो अपना अधिकार जमाता नहीं और एकदम मंडोवर पर जाता है, जिससे अपने घोड़े और राजपूत मरवाकर उसे प्रत्येक वार निराश होकर भागना पड़ता है। इसीसे मैं उसको निर्बुद्धि कहती हूं। तू भी वैसा ही है, क्योंकि किनारे से तो खाता नहीं और एकदम बीच की गरम घाट पर हाथ डालता है।" इस घटना से शिक्षा पाकर जोधा ने मंडोवर लेना छोड़कर सबसे पहले अपने निकट की भूमिपर अधिकार करना ठाना[1], क्योंकि पहले कई वर्षों तक उद्योग करने पर भी मंडोवर लेने में उसे सफलता न हुई थी।

मंडोवर-प्राप्ति का प्रयत्न

जोधा की यह दशा देखकर महाराणा की दादी हंसबाई ने एक दिन कुंभा को अपने पास बुलाकर कहा—"मेरे चित्तोड़ व्याहे जाने में राठोड़ों का सब प्रकार नुक़सान ही हुआ है। रणमल ने मोकल को मारनेवाले चाचा और मेरा को मारा, मुसलमानों को हराया और मेवाड़ का नाम ऊंचा किया, परन्तु अन्त में वह भी मरवाया गया और आज उसी का पुत्र जोधा निस्सहाय होकर मरुभूमि में मारा-मारा फिरता है।" इसपर महाराणा ने कहा कि "मैं प्रकट रूप से तो चूंडा के विरुद्ध जोधा को कोई सहायता नहीं दे सकता, क्योंकि रणमल ने उसके भाई राघवदेव को मरवाया था। आप जोधा को लिख दें कि वह मंडोवर पर अपना अधिकार

जोधा के पास हंसबाई का सन्देश भिजवाना

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४१-२।

कर ले, मैं इस बात से नाराज़ न होऊंगा।" तदनन्तर हंसबाई ने आशिया चारण डूला को जोधा के पास यह सन्देश देने के लिए भेजा। वह चारण उसे ढूंढता हुआ मारवाड़ की थलियों के गांव भाडंग और पड़ावे के जंगलों में पहुंचा, जहां जोधा अपने कुछ साथियों सहित बाजरे के सिट्टों से अपनी क्षुधा शान्त कर रहा था। चारण ने उसे पहचानकर हंसबाई का सन्देश सुनाया[1]।

जोधा का सेत्रावा के रावत लूणा के घोड़े लेना

इस कथन से उसे कुछ आशा बंधी, परन्तु उसके पास घोड़े न होने से वह सेत्रावा के रावत लूणा (लूणकरण) के पास गया, जिससे उसने कहा कि मेरे पास राजपूत तो हैं, परन्तु घोड़े मर गये हैं। आपके पास ५०० घोड़े हैं, उनमें से २०० मुझे दे दें। उसने उत्तर दिया कि मैं राणा का आश्रित हूं, इसलिए यदि मैं तुम्हें घोड़े दूंगा तो राणा मेरी जागीर छीन लेगा। इसपर वह लूणा की स्त्री भटियाणी (अपनी मौसी) के पास गया। जोधा को उदास देखकर उसने उसकी उदासी का कारण पूछा, तो उस(जोधा)-ने कहा कि मैंने रावतजी से घोड़े मांगे थे, पर उन्होंने दिये नहीं। इसपर भटियाणी ने कहा कि चिन्ता मत कर मैं तुझे घोड़े दिलाती हूं। फिर उसने अपने पति को बुलाकर कहा कि अमुक आभूषण तोशाखाने में रख दो। जब रावत तोशाखाने में गया तो उसकी स्त्री ने किवाड़ बन्दकर बाहर से ताला लगा दिया और जोधा के साथ अपनी एक दासी भेजकर अस्तबल-वालों से कहलाया कि रावतजी का हुक्म है कि जोधा को सामान सहित घोड़े दे दो। जोधा वहां से १४० घोड़े लेकर रवाना हो गया। कुछ देर बाद भटियाणी ने अपने पति को ताला खोलकर बाहर निकाला। रावत अपनी ठकुराणी और कामदारों पर बहुत अप्रसन्न हुआ और उसने घोड़ों के चरवादारों को पिटवाया, परन्तु गये हुए घोड़े पीछे न मिल सके[2]। उधर हरबू

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३१३-४।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४२-३। मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १२६-३०। बांकीदास ने भी जोधा को रावत लूणा से घोड़े मिलना लिखा है (ऐतिहासिक बातें; संख्या १५६)।

(हरभम्) सांखला[1] भी, जो एक सिद्ध माना जाता था, जोधा का सहायक हो गया[2]।

इस प्रकार घोड़े पाकर सबसे पहले जोधा ने महाराणा के सबसे प्रबल चौकड़ी के थाने पर हमला किया, जहां भाटी बणवीर, राणा बीसल-देव, रावल दूदा आदि राणा के राजपूत अफ़सर मारे गये और उनके घोड़े आदि जोधा के हाथ लगे। वहां से कोसाणे को जीतकर जोधा मंडोवर पर पहुंचा जहां लड़ाई हुई, जिसमें राणा के कई आदमी मारे गये और वि० सं० १५१० (ई० स० १४५३) में वहां पर जोधा का अधिकार हो गया। इसके बाद जोधा ने सोजत पर भी अधिकार कर लिया[3]।

जोधा का चौकड़ी, कोसाणा तथा सोजत पर अधिकार होना

जोधपुर राज्य की ख्यात में यह भी लिखा मिलता है कि मंडोवर लेने की खबर पाकर राणा कुंभा बड़ी सेना के साथ जोधा पर चढ़ा और पाली में आ ठहरा। इधर से जोधा भी लड़ने को चला, परन्तु घोड़े दुबले और थोड़े होने से ५००० बैलगाड़ियों में २०००० राठोड़ों को बिठलाकर वह

जोधा पर राणा कुंभा की चढ़ाई

(१) जांगलू के सांखला राणा राजसी के दूसरे पुत्र राणा अभा के पौत्र मह-राज का पुत्र। यह बड़ा वीर व्यक्ति था और राजपूताने में सिद्ध माना जाता है।

(२) मुंहणोत नैणसी (जि० २, पृ० १२६) तथा जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० १, पृ० ४२) में जोधा का हरबू से मिलने का उल्लेख है। उक्त ख्यातों के अनु-सार यह घटना सेत्रावा के रावत से घोड़े लेने के पूर्व हुई थी। दयालदास की ख्यात में भी कुछ अन्तर के साथ ऐसा ही लिखा है (जि० १, पृ० १०७-८)।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४३-४। दयालदास की ख्यात में पहले मंडोवर लेकर तब चौकड़ी पर जोधा का आक्रमण करना लिखा है। इसके अनन्तर उसने सोजत विजय किया, जहां उक्त ख्यात के अनुसार वह दो वर्ष तक रहा। मेड़ते और अजमेर की तरफ़ जोधा ने कांधल को भेजा, जिसने भैरुंदे में रहनेवाली राणा की सेना को परास्त करके भगाया (जि० १, पृ० १०८-९)। बांकीदास ने भी चौकड़ी तथा बीलाड़ा से राणा के थाने हटाकर जोधा का सोजत लेना लिखा है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८०३)। कर्नल टॉड ने सोजत पर जोधा के अधिकार करने का समय वि० सं० १५११ (ई० स० १४५४) दिया है (राजस्थान; जि० २, पृ० ६४७)।

पाली की ओर अग्रसर हुआ। जोधा के नक्कारे की आवाज़ सुनते ही राणा अपने सैन्य सहित विना लड़े ही भाग गया। फिर जोधा ने मेवाड़ पर हमलाकर चित्तोड़ के किवाड़ जला दिये, जिसपर राणा ने आपस में समझौता करके जोधा को सोजत दिया और दोनों राज्यों के बीच की सीमा नियत कर दी[1]।

परन्तु उपर्युक्त कथन आत्मश्लाघा, खुशामद एवं अतिशयोक्ति से परिपूर्ण है। कहां तो महाराणा कुंभा, जिसने मालवे और गुजरात के सुलतानों को कई बार परास्त किया था, जिसने दिल्ली के सुलतान का कुछ प्रदेश छीन लिया था, जिसने राजपूताने का अधिकांश तथा मालवे एवं गुजरात राज्यों के कुछ भाग अपने राज्य में मिला लिये थे और जो अपने समय का सबसे प्रबल हिन्दू राजा था और कहां एक छोटे से इलाक़े का स्वामी जोधा, जिसने कुंभा के इशारे से ही मंडोवर लिया था। राजपूताने के राज्यों की ख्यातों में आत्मश्लाघापूर्ण ऐसी झूठी बातें भरी पड़ी हैं, इसीसे हम उनको इतिहास के लिए बहुधा निरुपयोगी समझते हैं। महाराणा ने दूसरी बार मारवाड़ पर चढ़ाई की ही नहीं। हां, पीछे से जोधा ने अपनी पुत्री शृङ्गारदेवी का विवाह महाराणा कुंभा के पुत्र रायमल के साथ किया, जिससे अनुमान होता है कि जोधा ने मेवाड़वालों के साथ का वैर अपनी पुत्री व्याह कर मिटाया हो, जैसी कि राजपूतों में प्राचीन प्रथा है। जोधपुर राज्य की ख्यात में न तो इस विवाह का उल्लेख है और न जोधा की पुत्री शृङ्गारदेवी का नाम मिलता है, जिसका कारण यही है कि वह ख्यात वि० सं० १८०० से भी पीछे की बनी हुई होने से उसमें पुराना

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४४-५। दयालदास की ख्यात में भी लगभग ऐसा ही वर्णन है (जि० १, पृ० १०६)। आगे चलकर उसमें जोधपुर बसने के बाद जोधा का नापा सांखले के लिखने पर एक बार फिर मेवाड़ पर चढ़ाई करना और वहां दो सरदारों के द्वन्द-युद्ध-द्वारा उसका निर्णय होना लिखा है (जि० १, पृ० १११-२)। मुंहणोत नैणसी की ख्यात में यही घटना जोधपुर बसने के पूर्व लिखी है (जि० २, पृ० १३०-३१), पर आत्मश्लाघा से पूर्ण होने के कारण ख्यातों के ये कथन माननीय नहीं कहे जा सकते।

वृत्तान्त भाटों की ख्यातों या सुनी-सुनाई बातों के आधार पर लिखा गया है, जो अधिकांश में अविश्वसनीय है। शृंगारदेवी ने चित्तोड़ से अनुमान १२ मील उत्तर के घोसुंडी गांव में वि० सं० १५६१ (ई० स० १५०४) में एक बावली बनवाई थी, जिसकी संस्कृत प्रशस्ति में, जो अब तक विद्यमान है, उसका जोधा की पुत्री होने तथा रायमल के साथ विवाह आदि का विस्तृत वृत्तान्त है[1]।

जोधपुर का गढ़ तथा नगर बसाना

(श्रावणादि) वि० सं० १५१५ (चैत्रादि १५१६) ज्येष्ठ सुदि ११ (ई० स० १४५९ ता० १२ मई) शनिवार[2] को जोधा ने चिड़ियाटूंक पहाड़ी पर नये गढ़ की नींव रक्खी। इस गढ़ की नींव में राजिया नामक भांबी ज़िंदा ही गड़ा था। गढ़ के नीचे अपने नाम पर जोधा ने नया नगर जोधपुर बसाया और मंडोवर के स्थान पर उसे अपनी राजधानी बनाया[3]।

कुछ समय पीछे राव जोधा ने प्रयाग, काशी और गया[4] की यात्रा

(१) जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बङ्गाल; जि० ५५, भाग १, पृ० ७९-८२।

(२) अधिकांश ख्यातों में यही संवत् मिलता है। केवल एक पुराने वंशावली के पत्रे में वि० सं० १५१४ दिया हुआ है।

(३) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १३१। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४६। दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० १०९। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०६।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि राव जोधा जिस समय गया-यात्रा के लिए रवाना हुआ, उस समय कन्नोज का स्वामी कान्ह था, जो आगरे में बादशाह की सेवा में रहता था। आगरे में राव का डेरा होने पर राजा कान्ह उससे आकर मिला। उसने उसका अच्छा स्वागत किया और ये दोनों भाई शामिल रहे। उससे परामर्श कर जोधा उसके साथ बादशाह के पास उपस्थित हुआ, जिसने उस (जोधा) के प्रार्थना करने पर गया के यात्रियों पर लगनेवाला कर माफ़ कर दिया। वहां से विदा होते समय बादशाह ने उसे गया के मार्ग में पड़नेवाली भोमियों की दो गढ़ियां तोड़ने का आदेश किया, जिसकी पूर्ति जोधा ने गया से लौटते समय की (जि० १, पृ० ४५-६)। आगे चलकर

की। इसका उल्लेख उसकी पुत्री शृङ्गारदेवी की घोसुंडी गांव में बनवाई हुई बावड़ी पर के वि० सं० १५६१ (ई० स० १५०४) के लेख में आया है[1], एवं उसकी प्रयाग और गया की यात्रा का उल्लेख बीठू सूजा-रचित "जैतसी रो छन्द" नामक पुस्तक में भी है[2]। घोसुंडी के लेख से यह भी पता

जोधा की प्रयाग, काशी तथा गया यात्रा

उसी ख्यात में लिखा है कि पीछे से जब दिल्ली के बादशाह बहलोलख़ां लोदी ने मारवाड़ पर चढ़ाई की तब जोधा ने उससे लड़ाई कर उसे भगा दिया जि० १, पृ० ४६)। राव जोधा ने प्रयाग और काशी के साथ-साथ गया की यात्रा अवश्य की थी, पर ख्यात का तत्सम्बन्धी वर्णन कपोल-कल्पना ही है। कन्नोज पर तो उन दिनों मुसलमानों का राज्य था (देखो इम्पीरियल गैज़ेटियर ऑव् इंडिया; जि० १४, पृ० ३७१), अतएव कान्ह का वहां का स्वामी होना कैसे माना जा सकता है। बहलोलख़ां लोदी उस समय दिल्ली का शासक अवश्य था, पर उसने मारवाड़ पर चढ़ाई की हो ऐसा पाया नहीं जाता। जोधपुर राज्य की ख्यात के इन वर्णनों की मुंहणोत नैणसी आदि की ख्यातों से भी पुष्टि नहीं होती।

(१) ···श्रीयोधक्षितिपतिरुग्रः(रुग्रखङ्ग)खङ्गधारानिर्घोतप्रहत-
पठाणपारशीकः ॥ ५ ॥

पूर्वानताप्सीत(त्) गयया विमुक्तया
काश्यां सुवर्णैर्विपुलैर्विपश्चितः ॥
वितीर्य कन्याविधिवत्तुतोष यो
यो(ऽ)यात्प्रयागे मरुमेदिनीपतिः ॥ ६ ॥

राव जोधा की पुत्री शृङ्गारदेवी की बनवाई हुई घोसुंडी (मेवाड़) की बावड़ी की प्रशस्ति (जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; जि० ५५, भाग १, ई० स० १८८६, पृष्ठ ८०)।

(२) पुत्रे जात्रे कउँण गुण
वाजइ तूर अनन्त।
मात गया तटि पिण्डड़उ
दियइ भुकन्त भुकन्त ॥ ३१ ॥

चलता है कि आगे चलकर जोधा का मुसलमानों से भी युद्ध हुआ। नैणसी के कथनानुसार एक युद्ध उसे दिल्ली के लोदी बादशाह बहलोल (वि० सं० १५०८ से १५४६=ई० स० १४५१ से १४८९) के अफ़सर सारंगख़ां से करना पड़ा था, जिसका वर्णन हम आगे चलकर करेंगे।

कुंवर बीका का नवीन राज्य स्थापित करना

इसके थोड़े समय पीछे ही उसके कुंवर बीका ने अपने चाचा कांधल और सांखला नापा आदि को साथ ले ससैन्य जांगलू की तरफ़ प्रस्थान किया। फिर क्रमशः उधर के इलाक़ों पर अधिकार कर उसने बीकानेर के स्वतंत्र राज्य की नींव डाली। इसका सविस्तर हाल आगे बीकानेर राज्य के इतिहास में राव बीका के वृत्तांत में लिखा जायगा।

ऊदा का जोधा को अजमेर तथा सांभर देना

वि० सं० १५२५ (ई० स० १४६८) में एक दिन कुंभा का राज्य-लोभी ज्येष्ठ पुत्र ऊदा (उदयसिंह) अपने पिता महाराणा कुंभा को कटार से मारकर मेवाड़ का स्वामी बन गया, परन्तु उसके इस दुष्ट कार्य से बड़े-बड़े सरदार उसके विरोधी हो गये और उस पितृघाती को राज्यच्युत करने का उद्योग करने लगे। ऊदा ने यह स्थिति देख अपना पक्ष सबल करने के लिए पड़ोसियों को अपना सहायक बनाना निश्चय किया और वह उन्हें भूमि देने लगा। ऐसा कहा जाता है कि राव जोधा को भी उसने अजमेर और सांभर के इलाक़े दिये थे।

छन्द पाधड़ी

जोध रा जोध जस राति जागि
पुन करण गया पुहतउ प्रियागि।
सनान करिय करि पिण्ड सारि
तरपणइ पितर सन्तोखि तारि॥ ३२॥

बीठू सूजा; राव जैतसीरो छन्द।

इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० १५९२ (ई० स० १५३५) के लगभग हुई थी।

नैणसी का कथन है कि राव जोधा की एक पुत्री राजबाई का विवाह छापर-द्रोणपुर के स्वामी मोहिल अजीतसिंह से हुआ था। एक बार जब वह अपनी सुसराल मंडोवर आया हुआ था तो राव जोधा ने मोहिलों की भूमि हस्तगत करने का विचार किया, परन्तु प्रबल अजीतसिंह के रहते वह प्रदेश हाथ नहीं आ सकता था। तब राव ने अजीत (अपने जामाता) को मार डालने का विचार किया। राव की राणी भटियाणी (अजीत की सास) को अपने पति के प्रयत्न का पता लग गया और उसने इसकी सूचना अजीत के प्रधानों को दे दी। प्रधान जानते थे कि अजीत यों भागना पसन्द न करेगा, अतएव उससे यह कहलाया गया कि छापर से समाचार आया है कि यादवों ने राणा वछराज (सांगावत) पर आक्रमण कर दिया है, जिससे उसने उस (अजीत) को सहायता के लिए बुलाया है। यह सुनते ही अजीत ने तुरंत वहां से प्रस्थान किया। राव जोधा को जब इसका पता लगा तो वह समझ गया कि अजीत पर की जानेवाली चूक का भेद खुल गया और उसने अजीत का पीछा किया। द्रोणपुर से तीन कोस दूर गणोड़ा गांव में दोनों तरफ़ की फ़ौजों का सामना हुआ। प्रधानों ने अजीत से सारा हाल सच-सच कह दिया, तब तो वह उनपर बहुत बिगड़ा। फिर उसने साथियों समेत राव जोधा का मुक़ाबिला किया, पर अपने ४५ राजपूतों सहित वह काम आया। उसी दिन से राठोड़ों तथा मोहिलों में वैर बंध गया। इस घटना के एक वर्ष पीछे राव जोधा ने सेना इकट्ठी कर फिर मोहिलों पर चढ़ाई की। इस बार राणा वछराज १६५ साथियों समेत मारा गया और राव जोधा की विजय हुई, परन्तु बोबाराव का पुत्र मेघा वहां से निकल भागा और छापर के इलाक़े पर राव जोधा का अमल हो जाने पर छापा मार-मार कर उसे तंग करने लगा। राव जोधा ने जान लिया कि जब तक मेघा जीवित है वसुधा बसने की नहीं, अतएव दो मास बाद द्रोणपुर छोड़कर वह मंडोर चला गया। उसके पीठ फेरते ही मेघा छापर द्रोणपुर में आ जमा। कुछ वर्षों बाद उसका देहान्त हो जाने पर उस प्रदेश

जोधा का छापर द्रोणपुर पर अधिकार

में फिर अराजकता फैल गई। मोहिल आपस में लड़ने लगे, जिससे उनका बल क्षीण होता गया। राव जोधा ने यह अच्छा अवसर जान उनपर फिर चढ़ाई कर दी। मेघा का उत्तराधिकारी राणा वैरसल तथा उसका छोटा भाई नरबद बिना युद्ध किये ही भाग गये। वे कुछ दिन तो फ़तहपुर, झूंझणू और भटनेर में रहे, परन्तु पीछे से मेवाड़ में राणा कुंभा के पास चले गये[1]। एक अर्से तक वहां रहने के बाद स्वयं भूमि वापस ले सकने में अपने आपको असमर्थ देख नरबद और राठोड़ बाघा (कांधल का पुत्र) किसी सबल की शरण लेने के लिए दिल्ली के लोदी (बहलोल) बादशाह के पास चले गये, जिसने सारंगख़ां पठान को पांच हज़ार सवार देकर उनकी कुमक पर भेजा। सारंगख़ां को साथ लिए नरबद व बाघा झूंझणू के पास पहुंचे, जहां राणा वैरसल भी उनसे आ मिला। छः हज़ार सेना के साथ राव जोधा भी सम्मुख आया और दोनों ओर युद्ध के आयोजन होने लगे। उस वक्त राव ने बाघा राठोड़ को गुप्त रीति से अपने पास बुलाया और कहा—"शाबाश भतीजे! मोहिलों के वास्ते तू अपने भाइयों पर तलवार उठाकर भौजाइयों और स्त्रियों को क़ैद करावेगा।" यह सुनकर बाघा के मन में भी विचार हुआ कि उसका कार्य अनुचित है और वह जोधा का मददगार हो गया। फिर युद्ध कर राव ने मोहिलों और पठानों को हराकर भगा दिया। इस युद्ध में सारंगख़ां ५५५ पठानों के साथ मारा गया और वैरसल मेवाड़ में भाग गया तथा नरबद फ़तहपुर के पास पड़ा रहा। वि० सं० १५३२ (ई० स० १४७५) में द्रोणपुर में राव जोधा का जमाव हो गया और वहां अपने पुत्र जोगा को छोड़ वह स्वयं मंडोवर लौट गया, परन्तु सीधे-सादे जोगा से वहां का इलाक़ा न संभला, अतएव राव जोधा ने उसे बुला लिया और उसके स्थान पर अपने दूसरे पुत्र बीदा को भेज दिया, जिसने

(१) नैणसी ने वि० सं० १५३२ (ई० स० १४७५) में राव जोधा का छापर द्रोणपुर पर अमल होना लिखा है। वि० सं० १५२५ (ई० स० १४६८) में ही कुंभा मारा गया था। ऐसी दशा में वैरसल और नरबद का कुंभा के पास जाकर रहना असम्भव है, क्योंकि वह तो पहले ही मर चुका था।

वहां का प्रबंध बड़ी उत्तमता के साथ किया[1]।

इसके विपरीत दयालदास ने अपनी ख्यात में इस घटना का एकदम भिन्न वर्णन दिया है, जिसका आशय नीचे दिया जाता है—

'जोधा ने छापर द्रोणपुर का इलाक़ा वरसल (वैरसल) से लेकर वहां का अधिकार पहले जोगा को दिया था, पर उसके ठीक तरह से राज्य न कर सकने के कारण उसे वहां से हटाकर बाद में बीदा को वहां का स्वामी बनाया, जिसने बड़ी उत्तमता से सारा प्रबन्ध कर मोहिलों को अपने अधीन किया। वरसल अपना राज्य खोकर अपने भाई नरबद को साथ ले दिल्ली के बादशाह (सुलतान बहलोल लोदी) के पास चला गया। उस समय उसके साथ कांधल का पुत्र बाघा भी था। बहुत दिनों बाद जब बादशाह उनकी सेवा से प्रसन्न हुआ, तो उसने वरसल का इलाक़ा उसे वापस दिलाने के लिए हिसार के सूबेदार सारंगखां को फ़ौज देकर उसके साथ कर दिया। जब वह फ़ौज द्रोणपुर पहुंची तो बीदा ने उसका सामना करना उचित न समझा, अतएव वरसल से सुलह कर वह अपने भाई बीका के पास बीकानेर चला गया। छापर द्रोणपुर पर वरसल का अधिकार हो गया। बीदा के बीकानेर पहुंचने पर बीका ने अपने पिता (जोधा) से कहलवाया कि यदि आप सहायता दें तो फिर बीदा को द्रोणपुर का इलाक़ा दिला देवें। जोधा ने एक बार राणी हाड़ी के कहने से बीदा से लाडणूं मांगा था, परन्तु उसने देने से इनकार कर दिया था। इस कारण बीदा से अप्रसन्न रहने से जोधा ने बीका की प्रार्थना पर ध्यान न दिया। तब बीका स्वयं सैन्य एकत्र कर कांधल, मांडल आदि के साथ वरसल पर गया। इस अवसर पर जोहिये आदि भी उसकी सहायतार्थ साथ थे। देशणोक में करणीजी के दर्शन कर बीका द्रोणपुर की ओर अग्रसर हुआ तथा वहां से चार कोस की दूरी पर उसकी फ़ौज के डेरे हुए। सारंगखां उन दिनों वहीं था। एक दिन बाघा को, जो वरसल का सहायक था,

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० १, पृ० १९२-६। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ६४३।

एकान्त में बुलाकर बीका ने उसे उपालम्भ देते हुए कहा—"काका कांधल तो ऐसे हुए, जिन्होंने जाटों का राज्य नष्ट कर एक नया इलाक़ा क़ायम किया और तू (कांधल का पुत्र) मोहिलों के बदले में मेरे ऊपर ही चढ़कर आया है। ऐसा करना तेरे लिए उचित नहीं।" तब तो वह भी बीका का मददगार बन गया और उसने वचन दिया कि वह मोहिलों को पैदल आक्रमण करने की सलाह देगा, जिनकी दांई ओर सारंगखां की सेना रहेगी। ऐसी दशा में उन्हें पराजित करना कठिन न होगा। दूसरे दिन युद्ध में ऐसा ही हुआ। फलतः मोहिल तथा तुर्क भाग खड़े हुए नरबद तथा बरसल मारे गये और बीका की विजय हुई। कुछ दिनों वहां रहने के उपरान्त बीका ने छापर द्रोणपुर का अधिकार बीदा को सौंप दिया और स्वयं बीकानेर लौट गया[1]।'

उपर्युक्त दोनों अवतरणों में से सारंगखां सम्बन्धी दयालदास का कथन ही अधिक विश्वसनीय प्रतीत होता है, क्योंकि आगे चलकर मुंहणोत नैणसी ने स्वयं अपने उपर्युक्त कथन का खण्डन कर दिया है वहां वह लिखता है कि बीका के कहलवाने पर, कांधल को मारने के वैर में राव जोधा ने सारंगखां पर चढ़ाई करके उसे मारा था। उस अवसर पर बीका भी ससैन्य जोधा के साथ था और सेना की हिरोल में था[2]। इससे स्पष्ट है कि सारंगखां इसके बादवाली दूसरी लड़ाई में मारा गया था। साथ ही राव बीका-द्वारा बीदा को पुनः छापर-द्रोणपुर का राज्य दिलाया जाना ही अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। इस इलाक़े का अब भी मारवाड़ राज्य के अन्तर्गत न होकर बीकानेर के अधीन होना इसका प्रमाण है। प्रारम्भ से ही बीकानेर के राजघराने के साथ मैत्री-सम्बन्ध रहने से बीदावत बाद में उन्हीं के अधीन हो गये। जोधपुर राज्य की ख्यात में

(१) जि० २, पृ० ४ ; मुंशी देवीप्रसाद के "राव बीकाजी का जीवनचरित्र" (पृ० १२-१७) और पाउलेट के 'गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट' (पृ० ६ ८) में भी ऐसा ही वर्णन दिया है।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० २०६।

उपर्युक्त घटना का उल्लेख नहीं है। यदि ख्यातकारों ने मुंहणोत नैणसी की ख्यात भी देखली होती तो उन्हें इस सम्बन्ध की थोड़ी-बहुत बातें अवश्य ज्ञात हो जातीं। आगे की कुछ घटनाएं भी जोधपुर राज्य की ख्यात में नहीं हैं, परन्तु उनका विस्तृत विवरण हमें दयालदास की ख्यात में मिलता है। अन्य ख्यातों आदि से उनकी पुष्टि होने के कारण उनकी सत्यता में सन्देह नहीं किया जा सकता। अतएव उनका उल्लेख हम यहां कर देना आवश्यक समझते हैं।

राव जोधा का भाई कांधल भी बीका के साथ चला गया था। उसने हिसार के पास रहते समय जब वहां (हिसार में) लूट-मार शुरू की तो सारंगखां ने उसका अवरोध किया। इसपर कांधल अपने राजपूतों सहित राजासर (परगना सारण) चला गया और वहां से चढ़कर हिसार में आया और वहां खूब लूट-मार कर फिर वापस चला गया। उस समय उसके तीन पुत्र—राजसी नींबा तथा सूरा—साथ थे और बाघा चाचावाद में एवं अरड़कमल बीकानेर में था। जब सारंगखां ने उसपर चढ़ाई की तो उस(कांधल)ने उसका सामना किया। लड़ाई चल रही थी उस समय अचानक कांधल के घोड़े का तंग आदि टूट गये, जिससे उसने अपने पुत्रों को बुलाकर कहा कि मेरे तंग सुधार लेने तक तुम सब शत्रु का सामना करो। परन्तु इससे पूर्व कि वह तंग आदि ठीक कर अपने घोड़े पर पुनः सवार हो सके, सारंगखां ने प्रबल आक्रमण कर उसकी सारी सेना को तितर-बितर कर दिया। कांधल ने अपने पास बचे हुए राजपूतों के साथ वीरतापूर्वक शत्रु का सामना किया, पर उनकी संख्या बहुत अधिक होने से अंत में २३ मनुष्यों को मारकर वह अपने साथियों सहित मारा गया[1]।

कांधल का मारा जाना

---

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ५। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० २८-३०। मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० २०५-६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४७६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ८। टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० ११२२।

बीका ने जब कांधल के मारे जाने का समाचार सुना तो उसने उसी समय सारंगख़ां से वैर लेने की प्रतिज्ञा की और अपनी सेना को युद्ध की तैयारी करने की आज्ञा दी। इसकी सूचना कोठारी चौथमल ने जोधपुर जाकर राव जोधा को भी दी। जोधा ने मेड़ता से दूदा और वरसिंह को भी बुला लिया तथा सेना सहित बीका की सहायता को चला। बीकानेर से बीका भी चल चुका था। द्रोणपुर में पिता-पुत्र एकत्र हो गये, जहां से दोनों फ़ौजें सम्मिलित होकर आगे बढ़ीं। सारंगख़ां भी अपनी फ़ौज लेकर सामने आया तथा गांव झांस (झांसला) में दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ, जिसमें सारंगख़ां की सेना के पैर उखड़ गये और वह बीका के पुत्र नरा के हाथ से मारा गया[1]।

कांधल को मारने के वैर में जोधा की बीका के साथ सारंगख़ां पर चढ़ाई

दयालदास ने इस लड़ाई का समय वि॰ सं॰ १५४६ पौष वदि ५ (ई॰ स॰ १४८९) दिया है, जो ठीक नहीं है। यह घटना इसके पूर्व की होनी चाहिये, क्योंकि इससे पहले ही जोधा का देहांत हो गया था।

(१) दयालदास की ख्यात; जि॰ २, पत्र ५। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ॰ ३०-३१। वीरविनोद; भाग २, पृ॰ ४७९। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ॰ ८।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में इस घटना का जो वर्णन दिया है वह नीचे लिखे अनुसार है—

'फिर कांधल सारंगख़ां से युद्ध कर काम आया। यह ख़बर राव बीका ने सुनी तो वह सारंगख़ां पर चढ़ाई करने को तैयार हुआ, परन्तु नापा (नरपाल) सांखले ने कहा कि राव जोधा को यह ख़बर देकर चढ़ाई करना उचित है। (नापा राव जोधा के पास गया और सारा हाल कहा) तब जोधा बोला कि कांधल का वैर मैं लूंगा। वह बड़ी सेना सहित चढ़ आया। राव बीका हिरोल में रहा, गांव झांसले में लड़ाई हुई। सारंगख़ां और उसके बहुतसे साथी मारे गये (जि॰ २, पृ॰ २०६)।'

ऊपर ब्रैकेट में दिया हुआ नापा का नाम संदिग्ध है। संभव है यह ख़बर लेजानेवाला कोठारी चौथमल रहा हो, जैसा कि दयालदास ने लिखा है। सारंगख़ां किसके

वहां से लौटते हुए फिर राठोड़ सेना के द्रोणपुर में डेरे हुए। उस समय राव जोधा ने बीका को अपने पास बुलाकर कहा—"बीका तू सपूत है अतएव तुझ से एक वचन मांगता हूं ?" बीका ने उत्तर दिया—"कहिये, आप मेरे पिता हैं अतएव आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।" जोधा ने कहा—"एक तो लाडणूं मुझे दे दे और दूसरे अब तूने अपने बाहुबल से अपने लिए नया राज्य स्थापित कर लिया है, इसलिए अपने भाइयों से जोधपुर के राज्य के लिए दावा न करना।" बीका ने इन बातों को स्वीकार करते हुए कहा—"मेरी भी यह प्रार्थना है कि तख़्त, छत्र आदि राज्यचिह्न तथा आपकी ढाल-तरवार मुझे मिलनी चाहिये, क्योंकि मैं बड़ा हूं।" जोधा ने इन सब वस्तुओं को जोधपुर पहुंचकर भेज देने का वचन दिया। अनन्तर दोनों ने अपने-अपने राज्य की ओर प्रस्थान किया[1]।

जोधा का बीका को पूजनीक चीज़ें देने का वचन देना

(श्रावणादि) वि० सं० १५४५ (चैत्रादि १५४६) वैशाख सुदि ५ (ई० स० १४८९ ता० ६ अप्रेल) को जोधपुर में ही राव जोधा का स्वर्गवास हो गया[2]।

राव जोधा की मृत्यु

हाथ से मारा गया यह नैणसी ने नहीं लिखा है। ऐसी दशा में नरा-द्वारा उसका मारा जाना मानने में कोई आपत्ति नहीं है।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ५। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ३१-३३। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०६। जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० १, पृ० ४६), बांकीदास-कृत "ऐतिहासिक बातें" (संख्या ७६४) तथा टॉड-कृत "राजस्थान" (जि० २, पृ० ६५१) में भी यही संवत् दिया है। दयालदास की ख्यात में राव जोधा की मृत्यु का संवत् वि० सं० १५४७ (ई० स० १४९०) दिया है (जि० २, पत्र ५)। मुंशी देवीप्रसाद (राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ३५) तथा पाउलेट (गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६) ने भी यही संवत् दिया है। इस अन्तर का तब तक ठीक-ठीक निर्णय नहीं हो सकता जब तक राव जोधा का स्मारक-लेख न मिल जावे।

ख्यातों आदि में कहीं जोधा के १६[1], कहीं १७[2] तथा कहीं १४[3] पुत्र होने के उल्लेख मिलते हैं[4]। इनके अतिरिक्त उसके कई पुत्रियां भी हुई थीं[5]।

राव जोधा की सन्तति

उसकी एक पुत्री राजबाई का नाम ऊपर आ गया है। दूसरी शृंगारदेवी थी, जिसका विवाह महाराणा कुंभा के पुत्र रायमल से हुआ था[6], परन्तु उसका नाम किसी भी ख्यात में नहीं मिलता। यदि घोसुंडी गांव की बड़ी प्रशस्ति न मिलती तो उसके होने का हमें पता भी न चलता। ऐसी दशा में ख्यातों के इन नामों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। फिर भी यह कहा जा सकता है कि जोधा के कम से कम सत्रह पुत्र थे, जिनके नाम नीचे लिखे अनुसार हैं—

१—हाड़ी राणी जसमादे से—

(१) नींबा (सबसे बड़ा)—यह कुंवरपदे में ही मर गया[7]।

(२) सातल — इसने पोकरण और फलोदी के पास के प्रदेश पर अधिकार कर सातलमेर नामक नगर बसाया। वरसिंह के मरने पर इसने मेड़ते पर भी अधिकार कर लिया था। और यह जोधा के बाद गद्दी पर बैठा।

(१) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४६-७। दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० ११६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०६।

(३) टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० ६५०। राठोड़ों की वंशावली के प्राचीन पत्रे।

(४) जोधा से जोधा राठोड़ों की शाखा चली। इस शाखा के ३० ठिकाने इस समय मारवाड़ में ही विद्यमान हैं, जिनमें से मुख्य भाद्राजूण, खेरवा, लाडनूं, दुगोली, गोराऊ, नींवी और सेवा आदि हैं।

(५) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली।

(६) जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; जि० ५६, भाग १, पृ० ६६।

(७) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली। राठोड़ों की वंशावली के प्राचीन पत्रे।

(८) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ६२२ तथा ८०४।

(३) सूजा—सातल का उत्तराधिकारी हुआ।

२—भटियाणी राणी पूरां से—

(१) कर्मसी—इसके वंशवाले कर्मसीहोत कहलाये। इसने खींवसर बसाया। जोधा ने इसे नादसर दिया था और कांधल को भी साथ भेजा था[१]। इसका एक विवाह मांगलिया भोज हमीरोत की पुत्री से हुआ था, जिससे पांच पुत्र—उदयकरण, पंचायण, धनराज, नारायण तथा पीथूराव—हुए। कर्मसी भोमियों से युद्ध करते समय लूणकरण के साथ नारनोल में मारा गया[२]।

(२) रायपाल—इसके वंशवाले रायपालोत कहलाये। इसने आसोप आबाद किया[३]।

(३) वणवीर—इसके वंश के वणवीरोत कहलाये।

(४) जसवन्त (जसूत)।

(५) कूंपा।

(६) चांदराव।

३—सांखली राणी नौरंगदे से—

(१) बीका—इसके वंशवाले बीका कहलाये, जो अब तक बीकानेर राज्य के स्वामी हैं। वि० सं० १५४५ (ई० स० १४८८) में इसने अपने नाम पर बीकानेर नगर बसाया[४]। जोधा का छोटा भाई कांधल भी इसके साथ था। इसके वंश का सविस्तर वर्णन आगे बीकानेर के इतिहास में किया जायगा।

(१) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली।

(२) विशेष वृत्तान्त के लिए देखो बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ११८, १४६, १४७, ११६७, ११६८ तथा ११६६।

(३) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली।

(४) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली। टेसिटोरी ने इसका नाहरसर में निवास करना लिखा है (जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; (ई० स० १६१६, पृ० ७१)।

(२) वीदा—इसके वंशवाले वीदावत कहलाये, जो बीकानेर राज्य में हैं। छापर द्रोणपुर को जीतकर वहां का अधिकार पहले जोधा ने जोगा को सौंपा था, परन्तु उसको अयोग्य देखकर बाद में उसने वीदा को वहां का अधिकारी बना दिया[1]। इसके पुत्र उदयकरण, हीरा और खलसी हुए[2]।

४—हूलणी राणी जमना से—

(१) जोगा—छापर द्रोणपुर का इलाका विजयकर वहां का अधिकार पहले राव जोधा ने इसी को दिया था।

(२) भारमल—इसके वंशवाले भारमलोत कहलाये[3]। राव जोधा ने इसे बीलाड़ा दिया[4]।

५—सोनगरी राणी चंपा से—

(१) दूदा—वि० सं० १५४६ (ई० स० १४८६) में इसने मेड़ते में अपना ठिकाना बांधा और इसीसे इसके वंशज मेड़तिया कहलाये[5]। पिता के इशारे से इसने केवल थोड़े से साथियों को साथ ले नरसिंह सींधल के पुत्र को जा घेरा और उसे अकेले द्वंद्वयुद्ध में मारकर राठोड़ों का पुराना वैर लिया[6]। इसने देश में बिगाड़ करनेवाले अजमेर के सूबेदार सिरियाखां को मारा[7]। इसके एक पुत्र

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० १, पृ० १६५।

(२) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली। बांकीदास ने इसके ७ पुत्र होना लिखा है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ६४४)।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४७।

(४) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली। टेसिटोरी ने इसका कोढणा में रहना लिखा है (जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; ई० स० १९१६, पृ० ७१)।

(५) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली।

(६) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १३१-२। दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० १११-१२।

(७) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ६२३।

वीरमदे का पुत्र चांदा हुआ, जिसके वंशज चांदावत कहलाये[1]। दूदा के अन्य चार पुत्र—रतनसी, रायमल, रायसल और पंचायण—हुए[2]।

(२) वरसिंह—इसके वंशवाले वरसिंहोत कहलाये। इसका एक पुत्र जेता हुआ[3]। वांकीदास लिखता है—'इसे और दूदा को राव जोधा ने शामिल में मेड़ता दिया था। वरसिंह ने पीछे से दूदा को मेड़ते से बाहर निकाल दिया, तब वह बीकानेर चला गया। एक बार वरसिंह ने दुष्काल पड़ने पर बादशाही शहर सांभर में लूट-मार की, जिसपर वह अजमेर में क़ैद कर लिया गया। बाद में बीकानेर से आकर दूदा तथा बीका ने इसे मुक्त कराया। वरसिंह की मृत्यु होने पर सातल ने मेड़ते पर अधिकार कर लिया और दूदा भी वहीं आ गया। फिर उसने आधी भूमि वरसिंह के पुत्र सीहा को दे दी[4]।'

६—बाघेली राणी बीनां से—

(१) सामन्तसिंह—इसने खेरवा पर अधिकार किया[5]।

(२) सिवराज—राव जोधा ने इसे दुनाड़ा दिया[6]।

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४७।

(२) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली। वांकीदास; ऐतिहासिक बातें; सं० १००४।

(३) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली।

(४) वांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ६२०, ६२१ तथा ६२२।

वर्तमान समय में मेड़तियों के अनेक ठिकाने हैं, जिनमें मुख्य चाणोद, कुचामण, जावला, घाणेराव, बूडसू, रीयां, मींडा, मीठड़ी, बडू, बेरी, पांचवा, पांचोटा, सरगोट, सवलपुर, सुमेल, रेण, लूणवा, बोरावड़, मंगलाना, बसन आदि हैं।

(५) जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; न्यू सीरीज़, जि० १५ (ई० स० १९१९); पृ० ७१।

(६) वही; पृ० ७१। मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली।

राव जोधा के उपर्युक्त सत्रह पुत्रों में नींवा सबसे बड़ा था, यह तो अधिकांश ख्यातों आदि से सिद्ध है, परन्तु नींवा के बाद कौनसा पुत्र बड़ा था, यह विवादग्रस्त विषय है।

अकबर के ३८ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १६५० = ई० स० १५९३) में[1] लाहोर में रहते समय जयसोम-द्वारा रचे हुए "कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्" में लिखा है—"दूसरी महाराणी जसमादेवी के तीन लड़के—नींवा, सूजा और सातल नाम के—थे और वह राजा का जीवन-सर्वस्व थी। जब दैवयोग से नींवा नाम के पुत्र की कथा ही बाक़ी रह गई (अर्थात् वह मर गया) तब जसमादेवी ने—जिसे स्त्रीस्वभाव से अपनी सौतों के प्रति द्वेष उत्पन्न हुआ—यह होनहार ही है, ऐसा सोचकर एकांत में विक्रम नाम के अपनी सौत के पुत्र की अनुपस्थिति में राजा को अपने पुत्र के विषय की कुछ रोचक कथा कही। तब राजा ने पत्नी के कपट से मोहित होकर अपने बेटे विक्रम (बीका) को जांगलदेश में निकाल देने की इच्छा से अपने पास बुलाकर यह कहा—"हे पुत्र! बाप के राज्य को बेटा भोगे इसमें कोई अचरज की बात नहीं, परन्तु जो नया राज्य प्राप्त करे वही बेटों में मुख्य गिना जाता है। पृथ्वी पर कठिनता से वश में आनेवाला जांगल नामक देश है; तू साहसी है इसलिए तुझे मैंने इस काम में (अर्थात् उसे वश करने में) नियुक्त किया है[2]।"

---

(१) श्रीजैनचंद्रसुगुरौ राज्ये विजयिनि विपक्षबलजयिनि।
क्रमतो नृपविक्रमतः खभूतरसशशि(१६५०)मिते वर्षे॥५२६॥
साहिश्रीमदकब्बरराज्यदिनादखिललोकसुखहेतोः।
अष्टत्रिंशे संवति लाभकृते लाभपुरनगरे॥ ५२७ ॥······
श्रीजयसोमैर्विहिता धीसखवंश्यावली गुरोर्वचसा।
श्लोकैः प्राथमकल्पिकमतिवैभवहेतवे मृदुभिः॥ ५३० ॥
कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यं।

(२) नींवासूजासातलनामसुतत्रययुता महाराज्ञी।
जसमादेवी नाम्नी राज्ञो जीवस्य सर्वस्वं॥ ११० ॥

उपर्युक्त अवतरण से तो यही पाया जाता है कि नींवा के बाद बीका बड़ा था, परन्तु उसने असीम पितृभक्ति-वश, पिता के वाक्यों से प्रभावित होकर नवीन राज्य स्थापित करने का दृढ़ विचार कर लिया और अपने हितचिन्तकों एवं नापा सांखला की सम्मति के अनुसार पिता के जीवनकाल ही में जांगल देश की तरफ़ जाकर निज बाहुबल से शीघ्र ही अपने वंशजों के लिए बीकानेर के बृहत् राज्य की स्थापना कर ली। यह काव्य सब ख्यातों से पुराना होने के कारण इसके कथन की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

जोधा की मृत्यु पर सांतल गद्दी पर बैठा, जिसकी अब तक कोई भी जन्म-पत्री नहीं मिली है। अतएव उसके जन्मसंवत् के विषय में निश्चित रूप से कुछ कह सकना कठिन है। सांतल के उत्तराधिकारी सूजा का जन्मसंवत्, जोधपुर से मिलनेवाली जन्मपत्रियों में १४९६ तथा बीका का १४९७ (ई० स० १४४०) दिया है। इस हिसाब से सूजा, बीका से लगभग एक वर्ष बड़ा होता है, परन्तु इसके विपरीत बीकानेर से मिलनेवाले जन्मपत्र में बीका का जन्म वि० सं० १४९५ (ई० स० १४३८) में होना लिखा मिलता है[1]। इस हिसाब से सूजा, बीका से एक वर्ष छोटा हो जाता है।

नींवाख्ये संजाते दैवनियोगात्सुते कथाशेषे।
जातिस्वभावदोषाज्जातामर्षा सपत्नीषु ॥ १११ ॥
विक्रमनामसपत्नीसुतेऽसति स्वात्मजे कथां रम्यां।
भावीति विभाव्यात्मनि विजने राजानमाचष्ट ॥ ११२ ॥
(त्रिभिः कुलकं)
ततो निजात्मजं जायामायया मोहितोऽधिपः।
विक्रमं जांगले मोक्तुं समाहूयेदमुक्तवान् ॥ ११३ ॥
पित्र्यं राज्यं सुतो भुंक्ते किं चित्रं तत्र नंदन।
नवं राज्यं य आदत्ते स धत्ते सुतधुर्यतां ॥ ११४ ॥
तेन देशोस्ति दुःसाधो जांगलो जगतीतले।
त्वं साहसीति कृत्येऽस्मिन्नियुक्तोऽसि मयाधुना ॥ ११५ ॥

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १।

इन जन्मपत्रियों में परस्पर विभिन्नता होने के कारण, कौनसी विश्वसनीय है यह कहना कठिन है। टेसिटोरी को जोधपुर की एक दूसरी ख्यात में सूजा का जन्म संवत् १४९९ (ई० स० १४४२) में होना प्राप्त हुआ है[1]। यदि यह ठीक हो तो यही सिद्ध होता है कि बीका हर हालत में सूजा से बड़ा था।

टेसिटोरी को फलोधी से मिली हुई एक ख्यात में लिखा है कि जोधा की मृत्यु पर टीका जोगा को देते थे, पर उसके यह कहने पर कि मेरे बाल सुखालेने तक ठहर जाओ, लोगों ने टीका सातल को दे दिया[2]। इस कथन से तो यही ज्ञात होता है कि सातल भी वास्तविक उत्तराधिकारी न था, परन्तु जोगा को मन्द-बुद्धि देख टीका सातल को दे दिया गया। बीका की अनुपस्थिति में ऐसा हो जाना कोई आश्चर्य की बात भी नहीं थी। फिर अधिकांश ख्यातों से यह भी पता चलता है कि जोधा ने पूजनीक चीज़ें देने का वादा कर बीका से जोधपुर के राज्य पर दावा न करने का वचन ले लिया था[3]।

बीका सातल से बड़ा न रहा हो अथवा उसने पिता को वचन दिया था इस कारण से सातल के गद्दी पर बैठने पर उसने कोई हस्तक्षेप न किया, परन्तु जब सूजा ने सातल की मृत्यु पर जोधपुर की गद्दी अपने हाथ में करली तब तो बीका ने ससैन्य उसपर चढ़ाई कर दी। इस चढ़ाई का उल्लेख जोधपुर[4] तथा बीकानेर की ख्यातों में मिलता है।

(१) जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; जि० १५ (ई० स० १९१९); पृ० ७९।

(२) वही; जि० १५ (ई० स० १९१९); पृ० ७२ तथा टिप्पण ५।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ५। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ३१-२। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात में इस घटना पर परदा डालने का प्रयत्न किया गया है। राव जोधा, सातल तथा सूजा के प्रसंग में कहीं भी इस घटना का उल्लेख नहीं है, किन्तु वरजांग भीमावत के प्रसंग में सातल की मृत्यु के बाद सूजा के मारवाड़ की गद्दी पर बैठ ने पर बीका का जोधपुर पर चढ़ आना लिखा है (जि० १, पृ० ५६)। इस घटना का विस्तृत वृत्तान्त आगे सूजा के हाल में दिया जायगा।

कविराजा बांकीदास[1], कविराजा श्यामलदास[2], रामनाथ रत्नू[3], सिंढायच दयालदास[4], मुंशी देवीप्रसाद[5], कैप्टेन पाउलेट[6] प्रभृति लेखकों ने बीका की इस चढ़ाई का अपने ग्रन्थों में उल्लेख करने के साथ ही उसे बड़ा होने के कारण जोधपुर के राज्य का वास्तविक हक़दार माना है। उक्त ख्यातों आदि के अनुसार यह स्पष्ट हो जाता है कि बीका, कम से कम सूजा से अवश्य बड़ा था, जिससे तख़्त, चमर, भुंजाई की देग आदि पूजनीक वस्तुएं उसे ही प्राप्त हुईं।

ख्यातों आदि में प्रायः कुंवरों के नाम राणियों के नामों के साथ दिये रहते हैं, अतएव उनके आधार पर पुत्रों के छोटे-बड़े होने का निर्णय करना कठिन प्रतीत होता है।

राव जोधा वीर और साहसी होने के साथ ही असाधारण धैर्यवान् व्यक्ति था। वह जल्दी घबराता नहीं था। असाधारण परिस्थिति में पिता के मारे जाने पर भी वह घबराया नहीं, वरन् पीछा करनेवाले मेवाड़ के सैन्य का वीरतापूर्वक सामना करता हुआ चित्तोड़ से निकल गया। फिर मंडोवर आदि पर मेवाड़ का अधिकार हो जाने पर उसे वर्षों तक जंगलों में रहना पड़ा। वह समय उसके लिए बड़े संकट का था, पर वह एक क्षण के लिए भी निराश न हुआ और धैर्य के साथ राज्य-प्राप्ति का सतत प्रयत्न करता रहा। उधर महाराणा कुंभा की दादी हंसबाई ने, जो जोधा की बुआ लगती थी, महाराणा से उसकी सिफ़ारिश की, जिसपर उसने मंडोवर की तरफ़ से ध्यान हटा लिया। फलतः कुछ ही समय बाद अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाकर जोधा

राव जोधा का व्यक्तित्व

(१) ऐतिहासिक बातें; संख्या २६११।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८०।

(३) इतिहास राजस्थान; पृ० १४३-४।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ५-६।

(५) राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ३५-६।

(६) गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६।

ने अपने गये हुए पैतृक राज्य पर पुनः अधिकार कर लिया। इसके बाद ही उसने जोधपुर के दुर्ग तथा नगर की स्थापना की। राव जोधा की एक पुत्री शृंगारदेवी का विवाह महाराणा कुंभा के पुत्र रायमल के साथ हुआ था, जो संभवतः मेवाड़वालों से मेल करने के लिए ही किया गया हो।

राव जोधा से पूर्व जोधपुर के नरेशों में चूंडा और रणमल भी वीर हुए थे, पर उन्होंने राज्य का प्रसार अथवा उसकी नींव दृढ़ करने की ओर जैसा चाहिये वैसा ध्यान नहीं दिया। रणमल ने तो अपना सारा समय मेवाड़ में ही बिताया था। राज्य प्राप्त करते ही जोधा ने सर्वप्रथम इस ओर ध्यान दिया और राज्य की स्थिति दृढ़ करने के साथ ही उसको बहुत बढ़ाया। उसके पुत्र भी बड़े पराक्रमी हुए और उन्होंने भी राठोड़-राज्य की उन्नति करने में पूरा-पूरा हाथ बंटाया। वस्तुतः हम राव जोधा को ही जोधपुर का पहला प्रतापी राजा कह सकते हैं।

राव सातल

गद्दीनशीनी

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है राव जोधा के ज्येष्ठ पुत्र नींबा का देहांत अपने पिता की जीवित दशा में ही हो चुका था और बीका ने अपने लिए जांगल देश में स्वतंत्र बड़ा राज्य क़ायम करके जोधपुर राज्य से स्वत्व त्याग दिया था; अतएव जोधा की मृत्यु होने पर (श्रावणादि) वि० सं० १५४५[1] (ई० स० १४८९) में सातल उसका उत्तराधिकारी हुआ[2]।

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात में उसके गद्दी पर बैठने का समय वि० सं० १५१९ (ई० स० १४६२) दिया है (जि० २, पृ० १९६), जो ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि उस समय तो उसका पिता राव जोधा विद्यमान था।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४७। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०६। टॅसिटोरी को फलोधी से मिली हुई एक ख्यात में लिखा है कि टीका पहले जोगा को देते थे, परन्तु वह उस समय स्नान करके आया था, जिससे उसने बाल सुखा लेने तक ठहर जाने को कहा। उसके इस आचरण से अप्रसन्न होकर सरदारों ने टीका सातल को दे दिया (देखो ऊपर पृष्ठ २५७)। टॉड ने इसका गद्दी पर बैठना ही नहीं

सिंहासनारूढ़ होने के कुछ दिनों बाद ही पोकरण से दो कोस की दूरी पर उसने एक गढ़ का निर्माण कराया और अपने नाम पर उसका नाम सातलमेर रक्खा[1]।

सातलमेर का निर्माण

एक प्राचीन गीत प्राप्त हुआ है, जिससे पता चलता है कि राव सातल ने, सिंहासनारूढ़ होने के बाद, जैसलमेर के रावल देवीदास (देवराज), पूगल के राव शेखा तथा नागोर के खान की सहायता प्राप्तकर बीकानेर पर चढ़ाई की, परन्तु इस कार्य में उसे सफलता न मिली[2]।

बीकानेर पर चढ़ाई

लिखा है। वह राव जोधा के बाद सूजा का राजा होना और उसका सातलमेर की रक्षा करते हुए मारा जाना लिखता है (राजस्थान; जि० २; पृ० ६४२), परन्तु सातल का राजा होना निर्विवाद है।

राव सातल के फलोधी परगने से मिले हुए एक लेख का उल्लेख टेसिटोरी ने किया है, जो वि० सं० १५१५ भाद्रपद सुदि ११ (ई० स० १४५८) का है। उसमें जोधा को महाराय और सातल को राय लिखा है (जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; ई० स० १६१६, पृ० १०८)। इस लेख के अनुसार तो यही मानना पड़ेगा कि राव जोधा ने सातल को अपने जीवनकाल में फलोधी की जागीर दी होगी।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४७। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८०४।

जोधपुर राज्य की ख्यात में ही आगे चलकर लिखा है कि राव सातल ने अपने छोटे भाई सूजा के पुत्र नरा को गोद लिया था, जिसने पोकरण को अपने अधिकार में करने के बाद वहां सातल के नाम पर सातलमेर गढ़ बसाया (जि० १, पृ० ६२-३)। "वीरविनोद" (भाग २, पृ० ८०७) में सातल के छोटे भाई के गद्दी पर बैठने के बाद सातलमेर का आबाद होना लिखा है। इन ख्यातों आदि में इसी प्रकार स्थल-स्थल पर विरोधी बातें लिखी हैं, जिससे सत्यासत्य का निर्णय करना कठिन है।

(२) जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; ई० स० १६१७, पृ० २३५।

इस गीत के समय तथा रचयिता के नाम का पता नहीं चलता, जिससे इसकी सत्यता में सन्देह है। साथ ही इस घटना का उल्लेख भी दूसरी ख्यातों में नहीं मिलता। यदि इस कथन में सत्यता हो तो आगे चलकर सूजा के राज्यकाल में राव बीका के जोधपुर पर चढ़ाई करने का यह भी एक कारण कहा जा सकता है।

राव सातल का छोटा भाई वरसिंह मेड़ता में रहता था। उसने वहां से चढ़कर सांभर को लूटा। इसपर अजमेर का सूबेदार मल्लूखां[1], सिरियाखां[2] और मीर घडूला को साथ ले ससैन्य मेड़ते पर चढ़ाई की। तब वरसिंह और दूदा दोनों भाई भागकर जोधपुर में राव सातल के पास चले गये। पीछे-पीछे मुसलमानी सेना भी आई और जोधपुर की भूमि में लूट-मारकर पीपाड़ से तीजणियों[3] को पकड़ ले गई तथा उसके कोसाणे में डेरे हुए[4]। राव सातल भी चुप न बैठा रहा। वरसिंह, दूदा, सूजा[5], वरजांग (भीमोत) आदि के साथ ससैन्य कोसाणे पहुंचकर उसने रात्रि के समय मुसलमानी सेना पर आक्रमण कर दिया। दूदा ने सिरियाखां की ओर बढ़कर उसका हाथी छीन लिया और सातल ने बड़ी वीरता से लड़कर

मुसलमानों से युद्ध और उसमें सातल का मारा जाना

(१) मांडू के सुलतान (नासिरशाह ख़िलजी) की तरफ़ का अजमेर का हाकिम। वि० सं० १५६२ (ई० स० १५०५) में राणा रायमल के पुत्र पृथ्वीराज ने अजमेर पर आक्रमण कर इसे मार डाला (दीवान बहादुर हरबिलास सारडा; अजमेर; पृ० १५७)। तारागढ़ की पहाड़ी के नीचे मल्लूखां का बनवाया हुआ तालाब अब भी विद्यमान है, जो मलूसर के नाम से प्रसिद्ध है।

(२) यह भी मांडू के सुलतान का कोई अफ़सर रहा होगा।

(३) गनगोर (गौरी) के व्रतवाली स्त्रियां। ये होली के दूसरे दिन से ही गनगोर का व्रत आरम्भ कर देती हैं और प्रति दिन पूजा के लिए उद्यान आदि से फूल, दूब, जल आदि लाने को गाती हुई जाती और आती हैं। चैत्र सुदि ३ और उसके दो तीन दिन बाद तक गनगोर को वे बाहर किसी नियत स्थान पर लेजाती हैं, जहां बड़ा मेला लगता है। राजपूताने में स्त्रियों का यह त्योहार बड़ा प्रसिद्ध है।

(४) यह घटना चैत्र वदि १ से लगाकर चैत्र सुदि ३ के बीच किसी दिन होनी चाहिये।

(५) इस स्थल पर तो नहीं, परन्तु आगे चलकर जोधपुर राज्य की ख्यात में सूजा के वृत्तान्त में उसका भी कोसाणा की लड़ाई में शामिल रहना लिखा है (जि० १, पृ० ४८)।

मीर घड़ूला[1] को मारा तथा तीजणियों को मुक्त करा दिया। इस लड़ाई में मुसलमानों के साथ की कुछ "उड़दा वेगणियों" (उर्दू वेग़मों[2]) को वरजांग ने क़ैद कर लिया, पर बाद में सातल की इच्छानुसार उसने उनके सर मुंडवाकर उन्हें छोड़ दिया। इस लड़ाई में सातल भी वहुत घायल हो गया था, जिससे वह भी जीवित न वचा[3]। इस लड़ाई का (श्रावणादि) वि० सं० १५४८ (चैत्रादि १५४६) चैत्र सुदि ३ (ई० स० १४६२ता० १ मार्च) को होना माना जाता है[4]।

---

(१) मुसलमानी सेना के साथ का अफ़सर। मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली में इसे सिन्ध का एक अमीर लिखा है। इसके मारे जाने के उपलक्ष में मारवाड़ में चैत्र वदि अष्टमी से एक वड़ा मेला लगता है, जो चैत्र सुदि ३ तक रहता है। कुंभकार के यहां से उस दिन स्त्रियां एक वहुतसे छेदों वाला घड़ा लाती हैं, जिसके वीच में जलता हुआ दीपक रहता है। उस घड़े से मीर घड़ूला का वोध किया जाता है और उसमें वने हुए छिद्रों से उसके शरीर में लगे हुए वाणों के घावों का। उसे लेकर प्रति दिन स्त्रियां घड़ूला का गीत गाती हुईं नगर भर में घूमती हैं। चैत्र सुदि ३ को यह मेला समाप्त होता है, जिस दिन वह घड़ा नष्ट किया जाता है।

(२) मुसलमान अफ़सर लड़ाई पर जाते समय अपनी स्त्रियों को साथ नहीं ले जाते थे, किन्तु इस अवसर पर ख़रीदी हुई ख़ूबसूरत वांदियां उनके साथ अवश्य रहती थीं। उन्हें ही "उर्दू वेग़म" कहते थे, जिसको मारवाड़ी ख्यात लेखकों ने "उड़दा वेगणियां" कर दिया है। जोधपुर राज्य की ख्यात में इस लड़ाई के समय तीन हज़ार ऐसी स्त्रियों का मुसलमानी सेना के साथ होना लिखा है, जो केवल कपोलकल्पना ही है। कुछ ऐसी स्त्रियां उक्त सेना के साथ अवश्य रही होंगी।

(३) वांकीदास-कृत "ऐतिहासिक वातें" में भी राव सातल का इसी लड़ाई में मारा जाना लिखा है (संख्या ७६५)।

टॉड लिखता है कि सातल 'सहराई' के ख़ां के साथ लड़ता हुआ उसे मारकर मारा गया (राजस्थान; जि० २, पृ० ६५०), पर टॉड का यह कथन अस्पष्ट होने के साथ ही विश्वसनीय नहीं है।

(४) जयपुर से मिली हुई राठोड़ों की एक ख्यात में सातल का वि० सं० १७६० (ई० स० १७०३) तक राज्य करना लिखा है, जो विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता। वांकीदास के अनुसार उसने केवल तीन वर्ष तक ही राज्य किया था (ऐतिहासिक वातें; संख्या ७२६)।

कोसाणे के तालाव के निकट, जहां सातल का अंतिम-संस्कार किया गया था, उसकी स्मारक छतरी अब तक विद्यमान है[1]।

जोधपुर राज्य की ख्यात में सातल के सात राणियां होना और उन सब का ही उसके साथ सती होना लिखा है[2]। उसकी एक राणी का नाम फूला था, जो भाटी वंश की थी। उसने फूलेलाव तालाव निर्माण कराया था। दूसरी राणी छरखबाई की पूजा नागणेची के साथ की जाती है।

राणियां तथा सन्तति

सातल के कोई पुत्र न था।

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४७-८। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०६-७।

वांकीदास ने राव सातल के राज्य-समय से सम्बन्ध रखनेवाली एक घटना इस प्रकार लिखी है—

'वरसिंह की मृत्यु होने पर जोधपुर से राव सातल के भेजे हुए मनुष्यों ने मेड़ते पर अधिकार कर लिया। वरसिंह का पुत्र सीहा बड़ा कपूत था जिससे वरसिंह की ठकुराणी ने बीकानेर से दूदा को बुलवाया, जिसने आकर अजमेर के सूबेदार सिरियाखां के आदमियों को मेड़ते से निकाल दिया। तब से आधा मेड़ता दूदा ने लिया और आधा सीहा (वरसिंहोत) के पास रहा। सिरियाखां ने जब अजमेर से आकर देश का बिगाड़ करना शुरू किया तो दूदा ने अजमेर के पास लड़ाई करके उसका हाथी छीना और खां को मार लिया (ऐतिहासिक बातें; संख्या ६२२-३)।'

वरसिंह की मृत्यु के बाद सातल के मेड़ते पर अधिकार करने की उपर्युक्त बात विश्वासयोग्य प्रतीत नहीं होती, क्योंकि वरसिंह की मृत्यु पर सातल के आदमियों का मेड़ते पर अधिकार करना और बाद में दूदा का जाकर सिरियाखां के आदमियों को निकालना परस्पर विरोधी बातें हैं। संभव है यहां सातल का नाम ग़लती से आ गया हो, जो अनुमानतः सिरियाखां होना चाहिये। दयालदास की ख्यात (जि० २, पत्र ६) के अनुसार वरसिंह की मृत्यु सूजा के राज्यकाल में हुई थी। इससे यह कहा जा सकता है कि यह घटना सातल के समय में नहीं, किन्तु सूजा के राज्यकाल में हुई होगी।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४८।

मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली में सातल के आठ राणियां होना लिखा है।

राव सूजा

जन्म तथा गद्दीनशीनी

राव सूजा का जन्म वि० सं० १४९६ भाद्रपद वदि ८ (ई०स० १४३९ ता० २ अगस्त) को हुआ था[1]। राव सातल के निःसन्तान मारे जाने पर वह जोधपुर राज्य का स्वामी हुआ[2]।

राव बीका की जोधपुर पर चढ़ाई

यह ऊपर लिखा जा चुका है कि राव बीका की सारंगखां पर चढ़ाई होने के समय राव जोधा भी उसकी सहायतार्थ गया था और वहां से लौटते समय द्रोणपुर में डेरे होने पर उसने उस(बीका)को पूजनीक चीज़ें देने का वचन दिया था। सूजा के गद्दी पर बैठने का समाचार मिलते ही बीका ने राज्यचिह्न आदि पूजनीक चीज़ें लाने के लिए पड़िहार वेला को उसके पास भेजा, परन्तु सूजा के पूजनीक चीज़ें देने से इनकार करने पर,

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जिल्द १, पृ० ५८। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०७। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १६७३। चंडू के यहां के जन्मपत्रियों के संग्रह में तिथि तो यही दी है, पर उसदिन गुरुवार होना लिखा है, जो ठीक नहीं है। उसदिन रविवार था। कुंडली के अनुसार ही रविवार के दिन सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति थी। टेसिटोरी को एक ख्यात में सूजा का जन्म संवत् १४९९ (ई० स० १४४२) मिला है [जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; जि० १५ (ई० स० १९१९), पृ० ७९]। इस विभिन्नता को देखते हुए इस विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है, पर जैसा ऊपर कहा जा चुका है, सूजा बीका से छोटा था।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ५८। वीरविनोद, भाग २, पृ० ८०७। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें, संख्या ८०८।

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि राव सूजा के पुत्र नरा को राव सातल ने गोद लिया था, लेकिन उसने अपनी माता के कहने से गद्दी पर बैठने का अपना हक़ त्याग दिया (जि० १, पृ० ६२-३)। उसी ख्यात में लिखा है कि नरा ने अपने भाई ऊदा के एक छड़ी मार दी, जिससे उसके पिता ने उसे फलोधी देकर अलग कर दिया (जि० १ पृ० ६२)।

मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली में सातल का सूजा के ज्येष्ठ पुत्र बाघा को गोद लेना लिखा है।

अपने सरदारों से सलाह करने के उपरान्त बीका ने फ़ौज एकत्र कर जोधपुर पर चढ़ाई कर दी। इस अवसर पर द्रोणपुर से बीदा ३००० फ़ौज लेकर उसकी सहायता को आया और कांधल के पुत्र अरड़कमल (साहिवे का), राजसी (राजासर का) और वणीर (चाचावाद का) भी अपनी-अपनी सेना के साथ आये। इनके अतिरिक्त भाटी और जोहिये आदि भी बीका के साथ थे। इस बड़ी सेना के साथ वह देशणोक होता हुआ जोधपुर पहुंचा। सूजा ने स्वयं गढ़ के भीतर रहकर कुछ सेना उसका सामना करने के लिए भेजी, परन्तु वह अधिक देर तक बीका की फ़ौज के सामने ठहर न सकी। फिर तो बीकानेर की सेना ने शहर को लूटा और जोधपुर के गढ़ को घेर लिया। दस दिन में ही पानी की कमी हो जाने के कारण जब गढ़ के भीतर के लोग घबड़ाने लगे तो सूजा की माता हाड़ी जसमादे के कहलाने पर बीका ने अपने मुसाहिबों को गढ़ में सन्धि की शर्तें तय करने के लिए भेजा, लेकिन कुछ तय न हो सका, जिससे दो दिन बाद सूजा के कहने से उसकी माता (जसमादे) ने स्वयं बीका के पास जाकर कहा—"तूने तो अब नया राज्य स्थापित कर लिया है। अपने छोटे भाइयों को रक्खेगा तो वे रहेंगे।" बीका ने उत्तर दिया—"माजी, मैं तो केवल पूजनीक चीज़ें चाहता हूं।" इसपर जसमादे ने पूजनीक चीज़ें[1] देकर उससे सुलह

---

(१) ख्यातों आदि में इन पूजनीक चीज़ों के ये नाम मिलते हैं—

(१) राव जोधा की ढाल-तरवार (२) तख़्त (३) चंवर (४) छत्र (५) ढाल-तरवार सांखले हरभू की दी हुई (६) कटार (७) हिरण्यगर्भ लक्ष्मीनारायण की मूर्ति (८) अट्ठारह हाथोंवाली नागणेची की मूर्ति (९) करंड (१०) भंवर ढोल (११) वैरिशाल नगारा (१२) दलसिंगार घोड़ा और (१३) भुंजाई की देग।

किसी-किसी ख्यात में पूरे नाम दिये हैं, परन्तु किसी-किसी (उदाहरणार्थ—बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या २६११) में कुछ नाम देकर आगे इत्यादि लिखकर छोड़ दिया है। इनमें से अधिकांश चीज़ें अर्थात् तख़्त, ढाल, तरवार, कटार, छत्र, चमर आदि बीकानेर के क़िले के एक कमरे में रक्खी हुई हैं, जिनका दशहरे (विजयादशमी) के दिन बीकानेर-नरेश स्वयं पूजन करते हैं।

करली, जिन्हें लेकर वह वीकानेर लौट गया[1]।

जोधपुर राज्य की ख्यात में वीका की इस चढ़ाई का उल्लेख तक नहीं किया है, परन्तु प्रसंगवशात् वरजांग (भीमोत) के हाल में वीका का सूजा के समय में जोधपुर पर चढ़ आना माना है[2]।

उन दिनों मेड़ते पर सूजा के भाई दूदा तथा वरसिंह का अमल था। वरसिंह इधर-उधर वहुत लूट-मार किया करता था। एक वार उसने फिर सांभर को लूटा तथा अजमेर की भूमि का वहुतसा नुक़सान किया। अजमेर के सूबेदार मल्लूखां ने अपने आप को उससे लड़ने में असमर्थ पाकर, उसे लालच देकर अजमेर बुलाया और गिरफ़्तार कर लिया। इस खबर के मिलने पर मेड़ता के प्रवन्ध के लिए अपने पुत्र वीरम को रखकर दूदा वीकानेर गया, जहां पहुंचकर उसने यह घटना वीका को कह सुनाई। वीका ने कहा — "तू मेड़ता जाकर फ़ौज एकत्र कर, मैं आता हूं।" दूदा के जाने पर वीका ने इसकी खबर सूजा के पास भेजी और स्वयं सेना लेकर रीयां पहुंचा, जहां दूदा अपनी फ़ौज सहित उससे मिल गया। जोधपुर से चलकर सूजा ने कोसाणें में डेरा किया। अजमेर का सूबेदार इन विशाल सेनाओं का आना सुनते ही डर गया और उसने वरसिंह को छोड़कर सुलह कर ली। अनन्तर दूदा तो वरसिंह को साथ लेकर मेड़ते और वीका वीकानेर चला गया। सूजा सुलह का हाल सुनकर कोसाणे से जोधपुर लौट गया। कहते हैं कि वरसिंह को खाने में ज़हर दे दिया गया था, जिससे मेड़ता लौटने के कुछ मास वाद उसका देहान्त हो गया[3]।

वरसिंह को अजमेर की क़ैद से छुड़ाने के लिए सूजा का जाना

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ५। मुंशी देवीप्रसाद; राव वीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ३५-६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०७। कविराजा वांकीदास; ऐतिहासिक वातें; संख्या २६११। रामनाथ रत्नू; इतिहास राजस्थान; पृ० १५४। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि वीकानेर स्टेट; पृ० ९।

(२) जिल्द १, पृ० ५६।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६। मुंशी देवीप्रसाद; राव वीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ३६-४१। कविराजा वांकीदास; ऐतिहासिक वातें; सं० ६२१।

राव सूजा ने अपने छोटे पुत्रों में से नरा को फलोधी जागीर में दी थी। उन दिनों पोकरण का स्वामी खींवा (खेमराज) था। उसके इलाक़े से बाहर रहते समय नरा ने छल करके पोकरण पर अधिकार कर लिया[1]। निराश खींवा किसी प्रकार अपने दिन व्यतीत करने लगा। जब उसका पुत्र लूंका बड़ा हुआ तो पोकरण के राठोड़ उसकी अध्यक्षता में देश में उत्पात करने लगे। एक बार वे पोकरण के पशु छीन ले गये। नरा छुड़ाने को चढ़ा, जिसपर बड़ी लड़ाई हुई। लूंका ने अपने ऊपर आक्रमण करने-

नरा का मारा जाना तथा सूजा का खींवा आदि का दमन करना

वीरविनोद; भाग २, पृ० ४७६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० १०।

जोधपुर राज्य की ख्यात में इस घटना का भी उल्लेख नहीं है।

(१) इस सम्बन्ध में मुंहणोत नैणसी की ख्यात में जो वर्णन दिया है, उसका सारांश नीचे दिया जाता है—

'बैंगटी के स्वामी हरभू सांखला मेहराजोत की कन्या का विवाह जैसलमेर के भाटी कलिकर्ण के साथ हुआ था, जिसके नक्षत्र (मूल) में एक पुत्री हुई, जिसे उसने वन में छोड़ दिया। हरभू ने फलोधी से लौटते समय जब उसको मार्ग में पड़े देखा तो उठा लिया और धाय रखकर उसका पालन-पोषण किया। जब वह बड़ी हुई तो शिकार के निमित्त उस तरफ़ आये हुए सूजा के साथ हरभू ने उसका विवाह कर दिया। उसके दो पुत्र बाघा और नरा हुए, जिनमें से नरा को सूजा ने सिंहासनारूढ़ होने पर फलोधी की जागीर दी, जहां वह अपनी माता राणी लक्ष्मी के साथ रहने लगा। एक बार पहले कुमारिकावस्था में राठोड़ खींवा के पास उसकी शादी का पैग़ाम जाने पर उसने अस्वीकार कर दिया था, जिससे राणी लक्ष्मी के हृदय में उस बात का ध्यान बना हुआ था। उसकी याद दिलाये जाने पर नरा ने बाद में पोकरण पर अधिकार करने का निश्चय किया। इस कार्य की पूर्ति के लिए उसने अपने पुरोहित को सिखा-पढ़ाकर उधर भेजा, जो नरा से नाराज़ होने का भाव दिखाकर वहां रहने लगा। एक दिन खींवा के पोकरण से बाहर जाने पर, वह पुरोहित दरबान का कटार सुधरवाने के बहाने से बाहर गया और इसकी सूचना पास ठहरे हुए नरा को दे आया। अमरकोट ब्याहने जाने का बहाना कर राठोड़ रात्रि के समय आगे बढ़े। इसी बीच पुरोहित ने द्वारपाल को बाहर बुलाकर उसी कटार से मार डाला। फिर तो राठोड़ नगर में घुस गये और वहां नरा के नाम की दुहाई फिरवादी (जि० २, पृ० १३७-४२)।'

वाले नरा का सिर, तलवार के एक ही हाथ में, धड़ से अलग कर दिया[1]। उसकी मृत्यु का समाचार मिलने पर उसकी स्त्रियां उसके शव के साथ सती हुईं। नरा का उत्तराधिकारी उसका पुत्र गोयन्द (गोविन्द) हुआ, पर पिता की भांति वीर और चतुर न होने के कारण उससे ठीक प्रबन्ध न हो सका, जिससे नित्य लड़ाइयां होने लगीं। तब राव सूजा ने गोयंद और खींवा को बुलाकर उन्हें आधी-आधी भूमि बांट दी और जहां नरा का मस्तक पड़ा था वहीं सीमा बांध दी, जो आज तक चली आती है। गोविंद के दो पुत्र जैतमाल और हम्मीर थे। हम्मीर को फलोधी का शासन मिला और जैतमाल को सातलमेर का[2]।

सींधलों को दबाना

राव सूजा के शासनकाल में जैतारण आदि के सींधलों[3] ने उपद्रव किया, तब उधर जोधपुर की सेना भेजी गई, जिसने उनका दमन कर वहां सुव्यवस्था की। जैतारण का परगना राव सूजा के पुत्र ऊदा को मिला था[4]।

वि० सं० १५७१ भाद्रपद सुदि १४ (ई० स० १५१४ ता० ३ सितम्बर) को राव सूजा के ज्येष्ठ पुत्र बाघा का देहांत हो गया[5]। राव सूजा भी इसके

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात में नरा के मारे जाने का समय वि० सं० १५५१ (चैत्रादि १५५२) चैत्र वदि ५ (ई० स० १४९६ ता० ४ मार्च) दिया है (जि० २, पृ० १४४)।

(२) वही; जि० २, पृ० १३७-४४। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६२-३।

(३) जोधपुर के राव आस्थान का एक पुत्र जोप (जोपा) था, जिसके एक पुत्र सींधल के वंश के सींधल राठोड़ कहलाये। अब उनके पास कोई बड़ी जागीर नहीं रह गई है और वे गोड़वाड़ प्रान्त में भोमियों की हालत में हैं।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ५९। जोधपुर के सरदारों के इतिहास में ऊदा को जैतारण का अधिकार मिलने और उसके वंशवालों का वहां से अधिकार छूटने का विस्तृत वृत्तान्त दिया है। उसमें लिखा है कि उसे वहां का अधिकार गूदड़ बाबा के आशीर्वाद से मिला था और उसने जैतारण अपने मौसा को मारकर लिया था (जि० २, पृ० ७२-३)।

(५) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ५९। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८०१। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०७।

राव सूजा की मृत्यु

बाद अधिक दिनों तक जीवित न रहा। वि० सं० १५७२ कार्तिक वदि ९ (ई० स० १५१५ ता० २ अक्टोबर) को उसका भी स्वर्गवास हो गया[1]।

जोधपुर राज्य की ख्यात में राव सूजा की चार[2] राणियों के नाम मिलते हैं, जिनसे उसके निम्नलिखित नौ पुत्र होना लिखा है[3]—

राणियां तथा संतति

(१) भाटी जीवा (उरजनोत) की पुत्री[4] लक्ष्मी (दूसरा नाम सारंगदे) से वाघा[5] और नरा;

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ५८। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १६७३। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०७।

टॉड ने इसका पीपाड़ से कुमारी स्त्रियों को पकड़ लेजानेवाले पठानों के साथ की लड़ाई में मारा जाना लिखा है (राजस्थान; जि० २, पृ० ९५२), परन्तु यह उसका भ्रम है, क्योंकि यह घटना वास्तव में राव सांतल के समय में हुई थी, जिसका उस-(टॉड)ने गद्दी बैठना भी नहीं माना है। यही कारण है कि उसने सूजा का २७ वर्ष राज्य करना लिख दिया है। इस अवधि में से तीन वर्ष तो राव जोधा के बाद राव सांतल का राज्य रहा था।

(२) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली में सूजा के सात राणियां होना लिखा है।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ५९। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०७।

बांकीदास ने ८ पुत्र (ऐतिहासिक बातें; संख्या १६७४), मुंशी देवीप्रसाद ने ११ पुत्र और ३ पुत्रियां (राठोड़ों की वंशावली) तथा टॉड ने केवल ५ पुत्र (राजस्थान; जि० २, पृ० ९५२) होना लिखा है। कहीं-कहीं पुत्रों की संख्या दस भी मिलती है।

(४) मुंशी देवीप्रसाद ने इसे भाटी केहर कलकर्णोत की पुत्री लिखा है। मुंहणोत नैणसी की ख्यात के अनुसार भी यह केहर (कलकर्णोत) की पुत्री थी (देखो ऊपर पृ० २६७ टि० १)।

(५) चंडू के यहां के जन्मपत्रियों के संग्रह में इसका जन्म वि० सं० १५१४ पौष वदि ३० (ई० स० १४५७ ता० १६ दिसम्बर) को मूल नक्षत्र में होना लिखा है। जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० १, पृ० ५९) तथा वीरविनोद (भाग २, पृ० ८०७) में वैशाख वदि ३० दिया है, जो ठीक नहीं है, क्योंकि जोधपुर राज्य के संवत् श्रावणादि होने से वि० सं० १५१५ वैशाख वदि ३० को मूल नक्षत्र नहीं, किन्तु अश्विनी था। चंडू के यहां की कुंडली में चन्द्रमा की स्थिति धन राशि पर बतलाई है, जिससे उस दिन

(२) चौहान राव तेजसिंह के पुत्र की पुत्री से शेखा[1] और देवीदास;[2] (३) राणा पातू की पुत्री मांगलियाणी सरवंगदे से ऊदा[3], प्रयाग[4] और सांगा तथा (४) सांखली राणी सहोदरा से पृथ्वीराव और नापा।

राव गांगा

जन्म तथा गद्दीनशीनी

राव गांगा का जन्म (श्रावणादि) वि० सं० १५४० (चैत्रादि १५४१) वैशाख सुदि ११ (ई० स० १४८४ ता० ६ मई) गुरुवार को हुआ था[5]। वह सूजा के स्वर्गीय ज्येष्ठ पुत्र वाघा का दूसरा पुत्र था, परन्तु सूजा की मृत्यु होने पर, राज्य के सरदारों ने

मूल नक्षत्र का होना सिद्ध होता है। अतएव चंडू का दिया हुआ मास ही शुद्ध है।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार इसकी चार राणियों से वीरमदे, गांगा, सींधल, भींव, खेतसी और प्रतापसी नामक पुत्र तथा सात पुत्रियां हुईं (जि० १, पृ० ६०-१)। मुंशी देवीप्रसाद ने इसकी पांच राणियों से सात पुत्रियों के अतिरिक्त सात पुत्र होना लिखा है (राठोड़ों की वंशावली)। बांकीदास ने केवल पांच पुत्रों के नाम दिये हैं (ऐतिहासिक बातें; संख्या १६७७। खेतसी के स्थान पर जैतसी नाम दिया है)।

(१) बांकीदास लिखता है कि शेखा सूजावत के वंश के राठोड़ मुसलमान हुए। हाड़ोती में नाहरगढ़ का स्वामी नवाब कहलाता है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ३४०)।

(२) बांकीदास के अनुसार इसके दो पुत्र अचल और हरराज हुए (ऐतिहासिक बातें; संख्या २६७५)।

(३) जोधपुर राज्य के वर्तमान ऊदावतों की शाखा इसी से प्रारम्भ हुई है। इनके प्रमुख ठिकानों का उल्लेख ऊपर आ गया है (देखो पृ० १८१ टि० १)।

(४) इसे जैतारण के अन्तर्गत गांव देवली मिला था।

(५) चंडू के यहां का जन्मपत्रियों का संग्रह। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६३। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८१०। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०७।

मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली में एकादशी के स्थान में दशमी तिथि दी है, परन्तु यह भूल है, क्योंकि चंडू के यहां के जन्मपत्रियों के संग्रह में भी एकादशी ही दी है।

उसके बड़े भाई वीरम के जीवित रहते हुए भी उसके स्थान पर गांगा को ही वि० सं० १५७२ मार्गशीर्ष सुदि ३ (ई० स० १५१५ ता० ८ नवम्बर) गुरुवार को जोधपुर के राज्यसिंहासन पर बैठाया[1]। इस सम्बन्ध में मुंहणोत नैणसी लिखता है—

'कितनेक बड़े ठाकुर जोधपुर आये। उनमें से कुछ तो मुंहता रायमल के यहां ठहरे और अन्य दरीख़ाने में बैठे। इतने में वर्षा आ गई। तब उन ठाकुरों ने वीरमदेव की माता सीसोदणी[2] को कहलाया कि बरसात के कारण हम यहां रुक गये हैं, सो भोजनादि का प्रबन्ध करा दीजिये। राणी ने उत्तर दिया कि चकमे ओढ़कर डेरे पधारो, यहां आपको कौन जिमावेगा। फिर ठाकुरों ने गांगा की माता के पास खबर भेजी, तो उसने कहलाया कि आप दरीख़ाने में ठहरें, आपकी सेवा की जायगी। उसने भोजन बनवाकर उनको जिमाया, जिससे वे बहुत प्रसन्न हुए। उसने अपनी धाय को भेजकर यह भी पुछवाया कि और जो कुछ चाहिये सो पहुंचाया जावे। ठाकुरों ने कहलाया कि सब आनन्द है और यह भी सन्देशा भेजा कि आपके कुंवर गांगा को जोधपुर की मुबारक़बादी देते हैं। राणी ने आशीष भेजी और कहलाया कि जोधपुर का राज्य देना तुम्हारे ही हाथ में है। राव सूजा का देहांत हुआ और टीका देने का समय आया तब इन ठाकुरों ने गांगा को तिलक दिया और वीरमदेव को गढ़ से नीचे उतारा। उतरते हुए मार्ग में रायमल मुंहता मिला। उसने कहा कि यह तो पाटवी (ज्येष्ठ) कुंवर है, इसको गढ़ से क्यों उतारते हो? वह उसको पीछा ले गया। तब सब सरदारों ने मिलकर उसको सोजत का स्वामी बनाया[3]।'

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६३। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०७-८। मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली। मुंहणोत नैणसी की ख्यात (जि० २, पृ० १६६) तथा टॉड-कृत "राजस्थान" (जि० २, पृ० ९५३) में भी गांगा का वि० सं० १५७२ में गद्दी बैठना लिखा है।

(२) दयालदास की ख्यात (जि० २, पत्र १२) में भी सीसोदणी ही लिखा है, परन्तु जोधपुर राज्य की ख्यात में देवड़ी दिया है (जि० १, पृ० ६२)।

(३) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १४४।

इसी समय के आस-पास राठोड़ों की सेना ने जाकर जालोर को घेर लिया। उन दिनों वहां का शासक मलिक अलीशेरखां था। चार रोज़ तक विपक्षी दलों में भीषण युद्ध होता रहा। दोनों दलों ने कई बार एक दूसरे पर आक्रमण किया, पर अन्त में विजय मलिक अलीशेरखां की ही रही और राठोड़ों को हारकर लौटना पड़ा[1]।

राठोड़ों की जालोर पर असफल चढ़ाई

हि० स० ६२६ (वि० सं० १५७७ = ई० स० १५२०) में महाराणा सांगा ने ईडर के राजा रायमल का वहां पुनः अधिकार कराने के लिए, गुजरात के सुलतान मुज़फ़्फ़रशाह की तरफ़ के ईडर के हाकिम निज़ामुल्मुल्क (मलिकहुसेन बहमनी) पर ससैन्य चढ़ाई की[2]। इस अवसर पर महाराणा ने वागड़िया डूंगरसिंह (बालावत) को राव गांगा के पास से सहायता लाने के लिए भेजा। उसके छः मास तक जोधपुर में रहने के बाद राव गांगा स्वयं उसके साथ गया और महाराणा के शामिल होकर ईडर की लड़ाई में लड़ा। अहमदनगर में इस सेना का गुजरात के सुलतान से सामना होने पर सुलतान हारकर भाग गया और गांगा तथा सांगा की फ़तह हुई[3]।

ईडर की लड़ाई और राव गांगा

ऊपर आया हुआ जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन निर्मूल है। न तो महाराणा ने इस अवसर पर जोधपुर से सहायता मंगवाई थी और न गांगा ही इस लड़ाई में शामिल हुआ था। साथ ही इस

जोधपुर राज्य की ख्यात में भी प्रायः ऊपर जैसा ही वृत्तान्त दिया है। उसमें राव सूजा की बीमारी के समय पंचायण (अखैराजोत), सगता (चांपावत) आदि ठाकुरों का जोधपुर जाना और वीरम की माता के दुर्व्यवहार से अप्रसन्न होकर सूजा की मृत्यु होने पर गांगा को टीका देना लिखा है (जि० १, पृ० ६१-२)।

टीका जैता ने अपने हाथ से दिया था। तब से बगड़ी का सरदार ही जोधपुर के राजाओं को अपने हाथ से टीका लगाता एवं तलवार बांधता है।

(१) सैयद गुलाब मियां; तारीख़ पालनपुर (उर्दू); पृ० १०४।

(२) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ६६१।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६६।

लड़ाई में सुलतान स्वयं उपस्थित न था। यह तो उसके हाकिम निज़ामुल्-मुल्क के साथ हुई थी[1]।

बाबर के साथ की लड़ाई में महाराणा सांगा की सहायतार्थ सेना भेजना

बाबर कई बार भारतवर्ष पर अधिकार करने के लिए सीमा तक आया, परन्तु वह हरबार काबुल लौट गया। हि० स० ९३० (वि० सं० १५८१ = ई० स० १५२४) में पंजाब के हाकिम दौलतखां लोदी ने भारत के कमज़ोर सुलतान इब्राहीम लोदी (दिल्ली के तख़्त के स्वामी) से विद्रोह कर बाबर को हिन्दुस्तान में बुलाया। इसपर वह गक्खरों के देश में होता हुआ लाहोर के पास आ पहुंचा और उधर का कुछ प्रदेश जीतकर उसने वहां दिलावरख़ां को नियत किया। इसके बाद वह काबुल को लौट गया। उसके जाते ही इब्राहीम लोदी ने फिर विजित प्रदेश पर अधिकार कर लिया, जिसकी सूचना मिलने पर बाबर ने पांचवीं बार भारतवर्ष में आने का निश्चय किया। ता० १ सफ़र हि० स० ९३२ (मार्गशीर्ष सुदि ३ वि० सं० १५८२ = ता० १७ नवम्बर ई० स० १५२५) को १२००० सेना के साथ प्रस्थान कर मार्ग में कई लड़ाइयां लड़ता हुआ वह पानीपत के मैदान में आ पहुंचा, जहां ता० ८ रजब हि० स० ९३२ (वैशाख सुदि ८ वि० सं० १५८३ = ता० २० अप्रेल ई० स० १५२६) शुक्रवार को उसका इब्राहीम लोदी से युद्ध हुआ। इस लड़ाई में इब्राहीम लोदी मारा गया और बाबर का दिल्ली पर अधिकार हो गया। इसके कुछ दिनों बाद ही उसने आगरा भी जीत लिया।

दिल्ली का तख़्त हाथ में आ जाने पर भी एक ओर से बाबर को भय बना हुआ था। महाराणा सांगा की बढ़ती हुई शक्ति उसके लिए चिन्ता का विषय थी। उधर महाराणा भी जान गया था कि अब इब्राहीम लोदी से प्रबल शत्रु आ गया है। अतएव उसने धीरे-धीरे अपनी शक्ति को बढ़ाना शुरू किया। सैनिक और राजनैतिक दृष्टि से बयाना बड़ा महत्वपूर्ण स्थान था। वह था तो महाराणा के ही अधिकार में, पर उसने उसे अपनी तरफ़

(१) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ६६१-६३।

से निज़ामखां को दे रक्खा था। बाबर ने जब बयाना पर अधिकार करने के लिए सेना भेजी तो उस(निज़ामखां)ने दोआब में बड़ा परगना लेकर यह स्थान बाबर के अधीन कर दिया। फिर इसी तरह बाबर ने धौलपुर और ग्वालियर के क़िलों पर भी अधिकार किया। इसी बीच अफ़ग़ानों ने जब अपने हाथ से शासन की बाग-डोर खिसकती देखी तो वे भी महाराणा के साथ मिल गये। तदनन्तर महाराणा ने खंडार को जीतकर बयाना फिर अपने अधीन कर लिया। उसकी इस विजय के समाचार से मुग़लों की निराशा बहुत बढ़ी, परन्तु बाबर हताश न हुआ। वह सेना लेकर महाराणा का सामना करने के लिए रवाना हुआ, पर कई बार अपने अफ़सरों के महाराणा-द्वारा पराजित होने का समाचार सुनकर वह भी विचलित हो उठा और उसने सन्धि करने का उद्योग किया, लेकिन वह इसमें कृतकार्य न हुआ। फलस्वरूप ता० १३ जमादिउस्सानी हि० स० ६३३ (चैत्र सुदि १४ वि० सं० १५८४ = ता० १७ मार्च ई० स० १५२७) को सवेरे ६½ बजे महाराणा और बाबर की सेनाओं का मुक़ाबिला हुआ। इस लड़ाई में अन्य राजाओं और सरदारों के अतिरिक्त मेड़ते के रायमल और रत्नसिंह भी महाराणा की सेवा में शामिल थे, जिनको राव गांगा ने अपनी तरफ़ से सेना के साथ भेजा था। भीषण लड़ाई के बाद इस युद्ध में महाराणा की पराजय हुई और उसके अनेक सरदार-तथा मेड़ते के रायमल और रत्नसिंह काम आये[1]।

यह ऊपर लिखा जा चुका है कि सरदारों ने वीरम को सोजत की जागीर दिला दी थी, जहां वह रहता था। उसके साथ उसका स्वामिभक्त

मुंहता रायमल का मारा जाना और गांगा का सोजत पर अधिकार होना

कर्मचारी मुंहता रायमल भी गया था, जो उसका सारा काम संभालता था। वह वास्तविक हक़दार वीरम को गद्दी दिलाने के पक्ष में था और इसीलिए जब राव गांगा सोजत पट्टे का एक गांव लूटता तो वह बदले में जोधपुर के दो गांव लूट लेता था। इस तरह दोनों भाइयों में विरोध चलता रहा[2]।

(१) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ६७५-६२।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १४४-५।

जैता[1] जोधपुर का, और कूंपा[2] सोजत का चाकर था। जैता की बसी बगड़ी राव वीरम के विभाग में आई। उसे राव वीरम ने अपना सेना-पति बनाया और बगड़ी उसके बहाल रक्खी। वह भी सोजत का हितेच्छु था। गांगा ने उसको कहा कि तुम बगड़ी छोड़कर बीलाड़े आ रहो। तब उसने बगड़ी में रहनेवाले अपने धायभाई को अपनी बसी (कुटुम्ब और राजपूतों-सहित रहने का स्थान) बीलाड़े ले जाने के लिए लिखा, परन्तु उस (धायभाई) ने ऐसा न किया। अनन्तर वीरम और गांगा के सैनिकों में युद्ध हुआ, जिसमें वीरम की जीत हुई और गांगा के सैनिक भाग निकले[3]। इसका कारण यह ज्ञात होने पर कि जैता के अधिकार में बगड़ी रहने से यह पराजय हुई है, गांगा ने जैता को बुलाकर उपालम्भ दिया। इसके बारे में जब जैता ने फिर अपने धायभाई को लिखा तो उसने रायमल को मारने का निश्चय किया। वह इसी उद्देश्य से सोजत जाकर रायमल से मिला। उसके साथ दरबार को जाते समय उसने मार्ग में उसपर तलवार चलाई, परन्तु वह ठीक लगी नहीं और घूमकर रायमल ने ही तलवार के एक वार में उस (धायभाई) का काम तमाम कर दिया[4]।

फिर राव गांगा ने जैता की मारफ़त बातकर कूंपा को अपनी ओर मिला लिया और उसकी सलाह के अनुसार दो-दो चार-चार गांव सोजत के प्रतिवर्ष दबाने के इरादे से धौलहरे में थाना स्थापित कर वहां अपने कई

(१) राव रणमल के पुत्र अखैराज के पौत्र पंचायण का पुत्र, जिसके वंश के जैतावत राठोड़ कहलाते हैं।

(२) राव रणमल के पौत्र मेहराज का पुत्र, जिसके वंश के कूंपावत राठोड़ कहलाते हैं।

(३) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १४६। जोधपुर राज्य की ख्यात में जोधपुर के नरेशों के हारने आदि की बात जगह-जगह या तो उड़ा दी गई है, या उसका उल्लेख किसी दूसरे प्रकार से किया गया है। गांगा की सेना की इस पराजय का उसमें हाल नहीं दिया है, परन्तु मुंहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात में इसका स्पष्ट उल्लेख किया है।

(४) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १४६-६।

प्रमुख सरदारों को सेना सहित रक्खा; पर रायमल ने उनपर चढ़ाई कर सारी सेना को मार डाला और उनके घोड़े छीनकर वीरम के हवाले कर दिये[1]। इसके बाद उसने इतनी उत्तमता से सोजत का प्रबन्ध किया कि दो वर्ष तक राव गांगा संभल न सका[2]। इसी बीच हरदास ऊहड़[3] राव गांगा का साथ छोड़कर[4] रायमल से जा मिला, जिसे वीरम ने अपना घोड़ा चढ़ने के लिए दिया। एक बार जब वह (हरदास) एक युद्ध में लड़ रहा था, उसका घोड़ा घायल हो गया और वह स्वयं घावों से पूर्ण युद्ध-क्षेत्र से लाया गया। वीरम अपना घोड़ा न देखकर उससे बड़ा नाराज़ हुआ, जिसपर वह उसका साथ छोड़ नागोर में सरखेलखां के पास जा रहा। इधर शेखा (सूजा का पुत्र) ने वीरम की माता के पास जाकर उनके शामिल होने की इच्छा प्रकट की[5]। रायमल इसके विरुद्ध था, पर उसकी

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार जब वीरम के अच्छे-अच्छे राजपूत गांगा के पक्ष में हो गये तो मुंहता रायमल ने धौलहरे पर चढ़ाई की, जहां राव गांगा के घोड़े रहते थे, लेकिन घोड़े उसके हाथ लगे नहीं; (जि० १, पृ० ६५) परन्तु नैणसी का घोड़े हाथ लगने का कथन अधिक विश्वास योग्य है।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १४६-७।

(३) मुंहणोत नैणसी ने इसे मोकलोत लिखा है (जि० २, १४९)।

(४) इसके राव गांगा का साथ छोड़ने के विषय में मुंहणोत नैणसी की ख्यात में लिखा हैं—'हरदास ऊहड़ मोकलोत के २७ गांवों सहित कोढणा पट्टे में था। वह लकड़-चाकरी (प्रतिवर्ष राज्य में नियत परिमाण में ईंधन पहुंचाना) नहीं करता, केवल आकर मुजरा कर जाता था, इसीलिए कुंवर मालदेव उससे अप्रसन्न रहता था। उसने कोढणा भांण को दिया। तीन वर्ष तक तो भांण के चाकरी करते रहने के समय हरदास ने पट्टे की आय खाई, पर जब पीछे से स्पष्ट रूप से अपने से पट्टा उतर जाने की ख़बर मिली तो वह सोजत में वीरमदेव के पास चला गया (जि० २, पृ० १४९)।'

(५) जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि राव गांगा ने एक बार शेखा (सूजावत) की गोठ की थी। दोनों अपने साथियों सहित जब झरने में खेल रहे थे, तो दो दल बनाकर एक दूसरे पर पानी के छींटे मारने लगे। खेल ही खेल में कहासुनी आरम्भ हो गई और बात यहां तक बढ़ गई कि शेखा अप्रसन्न होकर पीपाड़ चला गया और वहां से उसने अपने भाई देवीदास को नागोर भेजकर दौलतखां को बुलाया

सम्मति की परवा न कर जब वीरम की माता ने शेखा को अपने शामिल कर लिया तो उसे बड़ा क्षोभ हुआ और उसने राव गांगा को कहलाया—"अब तुम आओ तो हुंडी सिकरेगी, वीरम के पास धरती न जायेगी। मैं काम आऊंगा और धरती तुमको दूंगा।" तब राव गांगा और कुंवर मालदेव दोनों कटक जोड़कर सोजत गये। वीरम के साथ लड़ाई होने पर रायमल लड़ता हुआ मारा गया और सोजत पर राव गांगा का अधिकार हो गया[1]।

राव गांगा और शेखा की लड़ाई

इसके बाद शेखा हरदास ऊहड़ को अपने साथ पीपाड़ ले गया, जहां दोनों में रात-रात भर तक एकान्त में बैठकर जोधपुर हस्तगत करने के सम्बन्ध में मंत्रणा होती। राव गांगा ने, जिसका पक्ष बहुत बलवान था, व्यर्थ के रक्तपात से बचने के लिए कहलाया कि जितनी धरती में करड (घास विशेष) हो वह तुम ले लो और जितनी में भुरट पैदा हो वह हमारी रहे। शेखा की इच्छा तो भूमि का इस भांति विभाग कर सुलह कर लेने की थी, परन्तु हरदास ने

(जि० १, पृ० ६३)। उक्त ख्यात में शेखा का वीरमदेव के शामिल होने का उल्लेख नहीं है, परन्तु अधिक संभव तो यही है कि शेखा अप्रसन्न होकर गांगा के विरोधी वीरम के शामिल हो गया हो।

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १४७-८।

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि (श्रावणादि) वि० सं० १५८८ (चैत्रादि १५८९ = ई० स० १५३१) चैत्र सुदि ११ को गांगा कुंवर मालदेव के साथ फ़ौज लेकर सोजत पर गया था, जिसके साथ की लड़ाई में मेहता रायमल मारा गया (जि० १, पृ० ६५)। बांकीदास ने भी ऐसा ही लिखा है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८१४), परन्तु ख्यातों आदि में दिये हुए संवत् विश्वास के योग्य नहीं माने जा सकते। घटनाक्रम पर दृष्टिपात करते हुए तो यह घटना शेखा के साथ की लड़ाई से पहले की होनी चाहिये। आगे चल कर उसी ख्यात में लिखा है कि वीरम की सहायता के लिए महाराणा सांगा ने जाकर गांव सारण में डेरा किया था; परन्तु राव गांगा का सैन्यबल देखकर वह वहां से ही पीछे लौट गया (जि० १, पृ० ६६)। इस कथन की पुष्टि में एक गीत भी दिया है, परन्तु आत्मश्लाघा की भावना से लिखा हुआ यह सारा का सारा कथन निर्मूल है। ऐसे अनेक गीत तो ख्यातों में पीछे से बनाकर धर दिये गये हैं। महाराणा सांगा तो वि० सं० १५८४ (ई० स० १५२८) में ही मर गया था।

इसे स्वीकार न किया। यह समाचार पाकर राव गांगा ने सेना एकत्रित की और बीकानेर से राव जैतसी को भी सहायता के लिए बुलाया[1]। उधर शेखा तथा हरदास नागोर के सरखेलखां और उसके पुत्र दौलतखां को सहायतार्थ ले आये, जिनके साथ उन्होंने वेराही (विराई) गांव में डेरे किये। गांधाणी गांव में गांगा के डेरे हुए, जहां बीकानेर का राव जैतसी भी उससे मिल गया। राव गांगा ने शेखा से फिर कहलाया कि जहां अभी आप ठहरे हैं, वहां ही अपनी सीमा निर्धारित करके युद्ध बन्द करें, परन्तु शेखा ने उसके कथन पर ध्यान न दिया और कहलाया—"काका के बैठे जब तक भतीजा राज्य करे तब तक मुझे नींद आने की नहीं। मैंने खेत बुहारने की सेवकाई की है, अब अपना युद्ध ही हो।" दूसरे दिन विरोधी दलों की मुठभेड़ होने पर भी जब गांगा तथा उसके साथी भागे नहीं तो खान ने शेखा से कहा—"तुम तो कहते थे कि वे भाग जावेंगे।" शेखा ने उत्तर दिया—"खां साहब, जोधपुर है, योंही तो कैसे भाग जावें।" खान के हृदय में उसी समय सन्देह ने घर कर लिया कि कहीं चूक न हो। इतने ही में राव गांगा ने एक तीर मारा, जिससे खान के हाथी का महावत घायल होकर गिर पड़ा। दूसरा तीर हाथी के लगा और वह भाग निकला[2]। दौलतखां ने भी पीठ दिखाई और उसके साथ ही सारी यवन-सेना भी भाग निकली। शेखा अपने ७०० सवारों सहित लड़ता हुआ घायल होकर गिर पड़ा और हरदास इसी लड़ाई में काम आया। राव गांगा ने जब घायल शेखा को देखा तो उससे पूछा कि धरती किसकी रही। राव जैतसी ने उसपर छत्र कराया,

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि बीकानेर का राव जैतसी नागाणा यात्रा करने के लिए आया हुआ था। लड़ाई के समय वह भी गांगा की तरफ़ शामिल हो गया (जि० १, पृ० ६४)। यह कथन विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। वास्तविक बात तो यह है कि उसे राव गांगा ने सहायतार्थ बुलाया था और उसके आवेदन पर ही वह युद्ध में ससैन्य शामिल हुआ। नैणसी और दयालदास दोनों की ख्यातें इस कथन की पुष्टि करती हैं।

(२) दयालदास की ख्यात (जि० २, पत्र १३) के अनुसार बीकानेरी सेना के साथ के रतनसी ने हाथी के बरछी मारी थी।

जल पिलाया, और अमल खिलाया। तब शेखा ने आंख खोलकर पूछा— "तू कौन है ?" राव जैतसी ने इसपर उसे अपना परिचय कराया। शेखा ने कहा—"रावजी, मैंने तुम्हारे क्या बिगाड़ा था, जो यह चढ़ाई की। हम काका-भतीजे तो धरती के वास्ते लड़ते थे। अब जो मेरी गति हुई, वही तुम्हारी भी होगी।" इतना कहने के साथ ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। उसका अंतिम संस्कार करने के उपरान्त गांगा तथा जैतसी अपने डेरों में गये। वहां से विदा होकर जैतसी बीकानेर लौट गया[1]।

मेड़तियों से विरोध उत्पन्न होना

दौलतखां के भागे हुए हाथी का नाम दरियाजोश था। मुंहणोत नैणसी की ख्यात में लिखा है—'वह हाथी भागता-भागता मेड़ते पहुंचा, जहां मेड़तियों ने उसे पकड़ लिया और द्वार छोटा होने से उसको तोड़कर उसे भीतर ले गये। राव गांगा और कुंवर मालदेव ने जब सुना कि खान का हाथी वीरमदेव(दूदावत) के पास मेड़ते गया तो उसने उसको पीछा मंगवाया, परन्तु मेड़तियों ने दिया नहीं। वीरमदेव के बहुत समझाने-बुझाने पर उन्होंने कहा कि कुंवर जी हमारे यहां अतिथि होकर आवें तो उनकी मेहमानदारी कर हाथी देंगे। इसपर

---

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १४९-५२। दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ११-३। मुंशी देवीप्रसाद; राव जैतसीजी का जीवन चरित्र; पृ० ६४-७०।

टॉड का कथन भिन्न है। वह लिखता है—'शेखा ने जोधपुर के हक़ के लिए लड़ने का निश्चय किया और नागोर से राठोड़ों को निकालनेवाले दौलतखां लोदी को एतदर्थ सहायता के लिए बुलाया। दौलतखां ने आकर पहले मेल कराने का प्रयत्न किया, परन्तु गांगा ने स्वीकार न किया। फलतः लड़ाई हुई, जिसमें शेखा मारा गया और ख़ान हारकर भाग गया (राजस्थान; जि० २, पृ० ९५३)। "वीरविनोद" के अनुसार शेखा इस लड़ाई में मारा नहीं गया, बल्कि भागकर चित्तोड़ चला गया और बाद में गुजराती बहादुरशाह की लड़ाई में मारा गया (भाग २, पृ० ८०८), पर मुंहणोत नैणसी ने भी उसका इसी लड़ाई में मारा जाना लिखा है, अतएव "वीरविनोद" का उपर्युक्त कथन माननीय नहीं कहा जा सकता।

वीरविनोद (भाग २, पृ० ८०८) एवं जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० १, पृ० ६४) में इस लड़ाई का समय वि० सं० १८२६ (ई० स० १७२१) दिया है।

मालदेव मेड़ते गया। उससे जीमने के लिए कहने पर उसने कहा पहले हाथी दो तो जीमेंगे। रायमल दूदावत ने उसका हठ देखकर कहा—"कुंवरजी, ऐसे ही हठीले बालक हमारे भी हैं। सो हाथी नहीं दे सकते, आप पधारो।" मालदेव यह उत्तर पाकर क्रोधित हुआ और मेड़ते की भूमि में मूली बोने की प्रतिज्ञा कर जोधपुर लौट गया। राव गांगा ने यह बात सुनकर वीरमदेव को कहलाया—"तुमने क्या किया? जब तक मैं बैठा हूं तब तक तो तुम मेड़ता के स्वामी हो, परन्तु जिस दिन मैंने आंख बन्द की कि मालदेव तुम को दुःख देगा, इसलिए हाथी उसको दे देना ही उचित है।" तब वीरमदेव ने दो घोड़े तो राव गांगा के वास्ते और वह हाथी मालदेव के लिए भिजवाया। हाथी ज़ख़्मी तो पहले से ही था, मार्ग में मर गया। यह समाचार सुनकर राव ने कहा कि हमारी धरती में आकर मरा सो हमारे पहुंच गया, पर मालदेव ने यह बात स्वीकार नहीं की। उसने कहा—"आपके आ गया। मेरे नहीं आया, जब ले सकूंगा ले लूंगा[1]।" उसके मन में यह बात ऐसी चुभी कि गद्दी बैठने पर उसने मेड़तियों को इतना तंग किया कि उन्हें अपना ठिकाना छोड़कर भागना पड़ा, जैसा कि आगे बतलाया जायगा।

राव गांगा की मृत्यु

गांगा स्वभाव का बड़ा नम्र और सुशील था। वह राज्य-वृद्धि के लिए भी प्रयत्नशील नहीं रहा करता था। उसकी मृत्यु के समय उसके अधिकार में केवल जोधपुर और सोजत के दो परगने ही रह गये थे। उसका पुत्र मालदेव इसके विपरीत उग्र स्वभाव का और उच्चाभिलाषी था। इसीलिए ऊपर से वैसी कोई बात दृष्टिगोचर न होने पर भी वह मन ही मन अपने पिता से विरोध

---

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १५२-४। जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि दौलतख़ां के भागे हुए हाथी के मेड़ता पहुंचने पर वीरमदेव ने उसे पकड़ लिया। पीछे-पीछे मालदेव भी गया और उसने हाथी वापस मांगा, पर वीरमदेव ने उसे वापस न देकर दौलतख़ां को लौटा दिया, जिससे कुंवर मालदेव और वीरम के बीच विरोध उत्पन्न हो गया (जि० १, पृ० ६५)। दौलतख़ां को हाथी लौटाने की बातें मानी नहीं जा सकती, जब कि अन्य ख्यातों में भी उस हाथी का मालदेव के पास भेजे जाते समय मार्ग में मर जाना पाया जाता है।

रखता था। राव गांगा अफ़ीम बहुत खाया करता था। एक दिन जब वह नशे की पिनक में ऊपर की मंज़िल के झरोखे में बैठा हुआ था, मालदेव ने पीछे से जाकर उसे उठाकर नीचे फेंक दिया, जिससे उसकी जीवन-लीला उसी समय समाप्त हो गई। उस समय उसके पास भांण (तिवरी का स्वामी), पुरोहित मूला और जोगी सुखनाथ (सोमनाथ) थे। पहले-पहल मालदेव ने भांण पर वार किया, फिर दूसरा हाथ मूला पर चलाया। इसी बीच समय पाकर जोगी सुखनाथ जान बचाकर भाग गया[1]। यह घटना (श्रावणादि) वि० सं० १५८८ (चैत्रादि १५८६) ज्येष्ठ सुदि ५ (ई० स० १५३२ ता० ६ मई) को हुई[2]।

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०८। जयपुर से मिली हुई राठोड़ों की ख्यात; पृ० ११६-७। मुंशी देवीप्रसाद के यहां से आई हुई मूंदियाड़ की ख्यात; पृ० ३४ [चूक का समय वि० सं० १५८८ कार्तिक वदि १ (ई० स० १५३१ ता० २७ सितम्बर) दिया है]। मुंशी देवीप्रसाद के यहां से आई हुई राठोड़ों की एक ख्यात; पृ० १६ (इस घटना का समय कार्तिक सुदि १ दिया है)। मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली में भी मालदेव का अपने पिता गांगा को झरोखे में से गिराकर मारना लिखा है (इस पुस्तक में इस घटना का समय ज्येष्ठ वदि १ दिया है)।

इस विषय का निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है, जो मूंदियाड़ की ख्यात में भी दिया है—

भांण पेलां भरड़ियो, पड़्यो मूले पर हाथ।
गोखां गांग गुड़ावियो, भाज गयो सुखनाथ॥

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि कहीं ऐसा भी मिलता है कि मालदेव ने अफ़ीम के नशे में पिनक लेते हुए अपने पिता को झरोखे से गिराकर मार डाला (जि० १, पृ० ६३)।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०८। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या; ८१०। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६३। जयपुर से आई हुई राठोड़ों की ख्यात; पृ० ११७। जिन ख्यातों आदि में भिन्न समय दिया है, उनका उल्लेख ऊपर टिप्पण (१) में आ चुका है। ख्यातों आदि में संवतों में परस्पर विभिन्नता होने के कारण यह कहना कठिन है कि उनमें से कौनसी तिथि विश्वसनीय है।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार राव गांगा के नौ राणियां थीं, जिनसे उसके निम्नलिखित पुत्र तथा पुत्रियां हुई[1] —

विवाह तथा सन्तति

१—सांखली गंगादे।

२—सीसोदणी उत्तमदे—यह राणा सांगा की पुत्री थी। इसका पीहर का नाम पद्मावती था। जोधपुर का पद्मसर तालाब इसी का बनवाया हुआ है[2]।

३—देवड़ी माणिकदे—यह सिरोही के राव जगमाल की पुत्री थी। इससे तीन पुत्र[3] और एक पुत्री हुई—

(१) मालदेव।

(२) मानसिंह—इसकी जागीर में काकाणी था।

(३) वैरसल (वैरिशाल)।

(४) सोनबाई—इसका विवाह जैसलमेर के रावल लूणकरण से हुआ था[4]।

४—भटियाणी फूलांबाई—इससे एक पुत्री हुई—

(१) राजकुंवरबाई—यह चित्तोड़ के राणा विक्रमादित्य को ब्याही गई थी[5]।

५—भटियाणी लाडबाई—इससे एक पुत्र हुआ—

(१) किशनसिंह।

६—कछवाही चंद्रावलबाई।

---

(१) जि० १, पृ० ६७। "वीरविनोद" में भी इन्हीं छः पुत्रों के नाम दिये हैं (भाग २, पृ० ८०८)।

(२) बांकीदास-कृत "ऐतिहासिक बातें" नामक ग्रन्थ से भी इसकी पुष्टि होती है (संख्या ८१९)।

(३) बांकीदास ने इससे केवल तीन पुत्र ही होना लिखा है, जिनके नाम ख्यात के अनुसार ही हैं (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८१७)।

(४) बांकीदास-कृत "ऐतिहासिक बातें" में भी इसका उल्लेख है (संख्या ८१८)।

(५) वही; संख्या ८१८।

७—सोनगरी सबीराबाई—इससे एक पुत्री हुई—

(१) चम्पाबाई—इसका विवाह सिरोही के देवड़ा रायसिंह के साथ हुआ।

८—देवड़ी जेवंतां—इससे दो पुत्र हुए—

(१) सादूल (शार्दूल)

(२) कान्ह—इसकी जागीर माणकलाव में थी।

९—झाली प्रेमदे।

सातवां अध्याय

राव मालदेव और राव चन्द्रसेन

राव मालदेव

जन्म तथा गद्दीनशीनी

राव मालदेव का जन्म वि० सं० १५६८ पौष वदि १ (ई० स० १५११ ता० ५ दिसम्बर) शुक्रवार को हुआ था[1]। अपने पिता को मारकर (श्रावणादि) वि० सं० १५८८ (चैत्रादि १५८६) आषाढ वदि २ (ई० स० १५३२ ता० २१ मई) को वह जोधपुर के राज्य-सिंहासन पर बैठा[2]। उस समय उसके अधिकार में केवल दो परगने—जोधपुर और सोजत—थे। गांगा की सरलता से लाभ उठाकर उसके राज्य-काल में ही सरदारों ने अपना बल बढ़ा लिया था और उनमें से अधिकांश स्वतंत्र से हो गये थे।

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६८। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८२०। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०८। चंडू के यहां से मिला हुआ जन्म-पत्रियों का संग्रह। मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली में पौष वदि १४ दिया है।

(२) जयपुर से आई हुई राठोड़ों की ख्यात; पृ० ११८।

जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० १, पृ० ६८); वीरविनोद (भाग २, पृ० ८०८) तथा ऐतिहासिक बातें (संख्या ८२०) में वि० सं० १५८८ श्रावण सुदि १५ दिया है। जोधपुर राज्य की ख्यात में दिये हुए पहले के राजाओं के संवत् श्रावणादि होने से गांगा की मृत्यु वि० सं० १५८९ में माननी पड़ती है (देखो ऊपर पृ० २८१)। इस दृष्टि से वि० सं० १५८८ श्रावण सुदि १५ को मालदेव का गद्दी बैठना अशुद्ध ठहरता है। यदि गांगा के मारे जाने का संवत् चैत्रादि ही मानें तो उसकी मृत्यु और गांगा के गद्दी बैठने के बीच दो मास और दस दिन का अन्तर पड़ता है। राठोड़ों में बहुधा बारह दिन बाद गद्दी बैठने की प्रथा पाई जाती है। इस दृष्टि से यह अन्तर अधिक ठहरता है। जयपुर से आई हुई ख्यात में मालदेव का गांगा की मृत्यु के बारह दिन बाद ही गद्दी बैठना माना है, जो ठीक प्रतीत होता है।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि मालदेव का स्वभाव अपने पिता के स्वभाव से विपरीत था। वह वीर होने के साथ ही उच्चाभिलाषी भी था। गद्दी पर बैठते ही उसने राज्य-प्रसार की ओर ध्यान दिया। सर्वप्रथम उसने भाद्राजूण के सींधल स्वामी वीरा पर चढ़ाई की और उसे मारकर वहां अपना अधिकार स्थापित किया। फिर उसने वह जागीर अपने पुत्र रत्नसिंह के नाम कर दी[1]।

भाद्राजूण पर अधिकार करना

यह ऊपर लिखा जा चुका है कि दरियाजोश हाथी के कारण मालदेव और मेड़ता के स्वामी वीरमदेव के बीच विरोध उत्पन्न हो गया था, जिससे मालदेव उसे सज़ा देना चाहता था। अजमेर मुसलमानों के हाथ में चले जाने पर[2] एक बार जब वहां का हाकिम किसी कारण-वश बाहर चला गया, तब वीरम ने अपनी सेना भेजकर उस (अजमेर) पर क़ब्ज़ा कर लिया[3]। इसकी खबर मिलने पर मालदेव ने उससे कहलाया कि अजमेर मुझे दे दो, पर वीरम ने इसपर कोई ध्यान न दिया। इसपर मालदेव ने सेना भेजकर वीरम

मालदेव का वीरमदेव को मेड़ते से निकालना और अजमेर पर भी अधिकार करना

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६८। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०८। बांकीदास (ऐतिहासिक बातें; सं० ८२०) तथा टॉड (राजस्थान; जि० २, पृ० ६५४) ने वि० सं० १५९६ (ई० स० १५३९) में भाद्राजूण लेना लिखा है।

(२) वि० सं० १५९० (ई० स० १५३३) में गुजरात के बहादुरशाह ने शमशेरुलमुल्क को ससैन्य भेजकर अजमेर पर क़ब्ज़ा कर लिया था (दीवान बहादुर हरबिलास सारड़ा; अजमेर; पृ० १५७ और बेले; हिस्ट्री ऑव् गुजरात; पृ० ३७३)। ख्यात में इसके विपरीत वहां मुग़लों का थाना होना लिखा है, जो ठीक नहीं है।

(३) सारड़ा-रचित "अजमेर" (पृ० १५७) में लिखा है कि बहादुरशाह का अजमेर पर केवल दो बरस तक क़ब्ज़ा रहा, जिसके बाद वीरम ने वहां अधिकार कर लिया। इस हिसाब से वीरम का वहां वि० सं० १५९२ (ई० स० १५३५) में अधिकार हुआ होगा, पर जोधपुर राज्य की ख्यात में इस घटना का वि० सं० १५९८ (ई० स० १५४१) में होना लिखा है (जि० १, पृ० ६८), जो ठीक नहीं कहा जा सकता।

को मेड़ते से बाहर निकाल दिया[1]। वीरम अजमेर जाकर वहां से मेड़ते का बिगाड़ करने लगा। उन्हीं दिनों सहसा (तेजसिंहोत वरसिंहोत) राव के पास आ रहा, जिसे उसने रीयां की जागीर दे दी[2]। कूंपा, राणा (अखैराजोत) और भादा (पंचायणोत) रिड़ के थाने पर रहते थे। एक दिन अचानक वीरम ने रीयां पर चढ़ाई कर दी। कूंपा, राणा और भादा रीयां जाकर सहसा के शामिल हुए[3]। इस लड़ाई में वीरम के बहुतसे आदमी मारे गये और स्वयं वह भी बुरी तरह घायल हुआ, जिसे मेड़तिये लेकर निकल गये। इसपर मालदेव की सेना ने अजमेर जाकर वीरम को वहां से भी निकाल दिया और इस प्रकार मालदेव का अधिकार अजमेर पर भी स्थापित हो गया[4]। वीरम वहां से भागकर क्रमशः बौंली, और

(१) बांकीदास (ऐतिहासिक बातें; संख्या ७६०) में भी वीरमदेव का मेड़ते से निकाला जाना लिखा है।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात (जि० २, पृ० १५५) तथा बांकीदास-कृत "ऐतिहासिक बातें" (संख्या १६१६) में भी इसका उल्लेख है।

(३) बांकीदास-कृत "ऐतिहासिक बातें" (संख्या १६१७) में भी इसका उल्लेख है।

(४) दी० ब० हरबिलास सारडा ने वि० सं० १५६२ (ई० स० १५३५) में मालदेव का अजमेर पर क़ब्ज़ा होना और वहां वि० सं० १६०० (ई० स० १५४३) तक उसका अधिकार रहना लिखा है (अजमेर; पृ० १५७)।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात से पाया जाता है कि पहले जैता, कूंपा तथा राव अखैराज (सोनगरा) वीरम को अजमेर से निकालने में समर्थ न हुए। इस लड़ाई में वीरम का सहायक रायसल बुरी तरह घायल हुआ था और उसके मारे जाने की भी अफ़वाह थी। मालदेव ने पुरोहित मूला को इसका ठीक-ठीक निश्चय करने के लिए भेजा। वीरम ने उसकी बातों में आकर घायल रायसल के पास उसे भेज दिया। पुरोहित ने रायसल के जीवित रहने की ख़बर मालदेव को लाकर दी, पर इसी बीच ज़ोर पड़ने के कारण रायसल के घाव फिर फट गये, जिससे वह मर गया। यह ख़बर मिलने पर मालदेव ने फिर सेना भेजी, जिसने वीरम को अजमेर से निकाल दिया (जि० २, पृ० १५६-७)।

चाटसू गया, जहां भी पीछा किया जाने पर वह इधर-उधर फिरता हुआ शेरशाह सूर के पास चला गया[1]। इधर मालदेव का प्रभुत्व क्रमशः बढ़ता ही गया।

मुसलमानों से नागोर लेना

वि० सं० १५६२ माघ वदि २ (ई० स० १५३६ ता० १० जनवरी) को उसने नागोर के खान पर चढ़ाई की और उसे मारकर वहां अपना अधिकार स्थापित किया। इस अवसर पर उसकी सेना का संचालन कूंपा के हाथ में था। जोधपुर की तरफ़ से वीरम (मांगलियोत) वहां का हाकिम नियत किया गया[2]।

(श्रावणादि) वि० सं० १५६४[3] (चैत्रादि १५६५) आषाढ वदि ८

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६८-६। बांकीदास; ऐतिहासिक वार्तें; संख्या ८२२-३। "वीरविनोद" में भी वीरम के शेरशाह के पास जाने का उल्लेख है (भाग २, पृ० ८०६)।

मुंहणोत नैणसी यह भी लिखता है—'वीरम भागकर कछवाहा रायसल शेखावत के पास गया। उसने बारह मास तक वीरम को बड़े आदर-सत्कार के साथ अपने पास रक्खा। वहां से चलकर वीरम ने बौंली, वणहटा और बरवाड़ा लिया तथा वह वहां रहने लगा। मालदेव ने फिर उसपर फ़ौज भेजी जो मौजाबाद आई, तब उसने कहा कि अब की बार मैं काम आऊंगा। खेमा मुंहता ने कहा कि खेत (मृत्यु) की ठौर तो निश्चित करो। दोनों सवार होकर चले। मुंहता आगे बढ़ा हुआ चला गया। उसने कहा, जो मरना ही है तो मेड़ते में ही लड़ाई कर न मरें? पराई धरती में क्यों मरें? खेमा ने वीरमदेव को ले जाकर मलारणे के मुसलमान थानेदार से मिलाया और उसके द्वारा वे रणथंभोर के क़िलेदार से मिले। क़िलेदार वीरम को पादशाह (शेरशाह सूर) के हुज़ूर में ले गया, जो उसके साथ मेहरबानी से पेश आया (जि० २, पृ० १५७)।'

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६८। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०८। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८२०। टॉड (राजस्थान; जि० २, पृ० ६५४) वि० सं० १५८८ (ई० स० १५३१) में मालदेव का नागोर लेना लिखता है।

मुंहणोत नैणसी ने भी एक स्थल पर (जि० २, पृ० १५५) राव मालदेव का नागोर में रहना लिखा है, जिससे सिद्ध है कि उस (मालदेव) ने नागोर पर अधिकार कर लिया था।

(३) "वीरविनोद" में वि० सं० १५९५ (ई० स० १५३८) दिया है (भाग १, पृ० ८०१)।

(ई० स० १५३८ ता० २० जून) को राव ने सिवाणे पर सेना भेजी, जिसने वहां के स्वामी राठोड़ डूंगरसी (जैतमालोत) को निकालकर वहां जोधपुर राज्य का अधिकार स्थापित किया। जोधपुर की तरफ़ से मांगलिया देवा (भादावत) वहां का क़िलेदार नियत किया गया[1]।

सिवाणा को अधीन करना

इसी समय के आस-पास बलोचों-द्वारा निकाले हुए जालोर के स्वामी सिकंदरख़ां ने राव मालदेव के पास जाकर उससे सहायता चाही। मालदेव ने उसका आदर-सत्कार तो बहुत किया और दुनाड़ा की जागीर भी उसके नाम करदी, पर उसका मन साफ़ न था, जिससे उसने उसे मारने का षड्यंत्र किया। इसका पता सिकंदरख़ां और उसके साथियों को ठीक समय पर लग जाने से वे वहां से भाग निकले। राठोड़ों ने उनका पीछा कर दुनाड़े में सिकंदरख़ां को क़ैद कर लिया, पर दूसरे पठान वहां से निकलकर चित्तोड़ के महाराणा के आश्रय में चले गये। क़ैद में रहते समय ही सिकंदरख़ां की मृत्यु हो गई[2]।

जालोर के सिकंदरख़ां को क़ैद करना

इतिहास-प्रसिद्ध महाराणा संग्रामसिंह के बाद रत्नसिंह (दूसरा) और उसके बाद विक्रमादित्य चितोड़ राज्य का स्वामी हुआ, जिसे मारकर महाराणा रायमल के सुप्रसिद्ध कुंवर पृथ्वीराज का अनौरस पुत्र बणवीर चितोड़ के सिंहासन पर बैठ गया। उसने राज्य के दूसरे हक़दार बालक उदयसिंह को भी मारने का प्रयत्न किया, परन्तु स्वामिभक्त धाय पन्ना उसके स्थान में अपने पुत्र की आहुति देकर उदयसिंह को सुरक्षित स्थान

महाराणा उदयसिंह और सोनगरों, राठोड़ों आदि की सहायता

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६८। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०६। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८२०। टॉड वि० सं० १५९६ (ई० स० १५३९) में मालदेव का सिवाणा लेना लिखता है (राजस्थान; जि० २, पृ० ९५४), जो ठीक नहीं है, क्योंकि वि० सं० १५९४ (चैत्रादि १५९५) आषाढ वदि ८ का एक लेख सिवाणे के दूसरे फाटक पर लगा हुआ मिला है, जिसमें इस विजय का उल्लेख है।

(२) सैयद गुलाब मियां; तारीख़ पालनपुर (उर्दू); पृ० ११३-४।

कुंभलमेर में ले गई। सरदार वणवीर के इस अपकृत्य से अप्रसन्न तो थे ही, जब उन्हें उदयसिंह के जीवित होने का पता चला तो वे स्पष्टरूप से वणवीर के विरोधी बन गये और उदयसिंह को सिंहासनारूढ़ कराने का प्रयत्न करने लगे। कुंभलमेर में जाकर उन्होंने उदयसिंह को मेवाड़ का स्वामी माना और राजगद्दी पर बिठलाकर नज़राना किया। इस घटना का वि० सं० १५६४ (ई० स० १५३७) में होना माना जाता है। फिर सरदारों ने सोनगरे अखैराज (रणधीरोत) की पुत्री से उसका विवाह कराया। अनन्तर उदयसिंह ने शेष सरदारों को परवाने भेजकर बुलवाया। परवाने पाते ही बहुत से सरदार और आस-पास के राजा उसकी सहायतार्थ जा पहुंचे। उधर मारवाड़ की तरफ़ से उसका श्वसुर अखैराज सोनगरा, कूंपा महराजोत आदि राठोड़ सरदारों को भी अपने साथ ले गया। इस बड़ी सेना के साथ उदयसिंह ने माहोली (मावली) नामक गांव में वणवीर को परास्त कर चित्तोड़ पर चढ़ाई की, जहां थोड़ी लड़ाई के बाद उसका अधिकार हो गया। इस प्रकार वि० सं० १५६७ (ई० स० १५४०) में उदयसिंह अपने सारे पैतृक राज्य का स्वामी बना[1]।

इस सम्बन्ध में जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—'वि० सं० १५६० (ई० स० १५३३) में राव मालदेव ने राठोड़ जैता, कूंपा आदि सरदारों को मेवाड़ के उदयसिंह की सहायतार्थ भेजा, जिन्होंने वणवीर को निकालकर उस (उदयसिंह) को चित्तोड़ के सिंहासन पर बैठाया। इसके बदले में महाराणा ने बसन्तराय नाम का एक हाथी और चार लाख पीरोज़े (फ़ीरोज़े) पेशकशी के मालदेव के पास भेजे[2]।'

जोधपुर राज्य की ख्यात का ऊपर आया हुआ सारा कथन आत्मश्लाघा से पूर्ण होने के साथ ही कल्पित है, क्योंकि वि० सं० १५६० में तो महाराणा विक्रमादित्य विद्यमान था। पीरोज़े और हाथी भेजने की पुष्टि भी अन्य किसी ख्यात से नहीं होती। मुंहणोत नैणसी इस घटना को इस

(१) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ७०६-१६।

(२) जि० १, पृ० ६८।

अकबर लिखता है—

'जब वणवीर ने कुम्भलगढ़ आन घेरा तब उस (उदयसिंह) ने सोनगरे अखैराज (अपने श्वसुर) को कहलाया कि हमारे पर आपत्ति आई है; सहायता के निमित्त आओ। वह कूंपा महराजोत, राणा अखैराजोत, भहा कन्ह पंचायणोत और राजसी भैरवदासोत आदि मारवाड़ के सरदारों का बहुत सा साथ लेकर गया[1]।'

वस्तुतः यह घटना लगभग वि० सं० १५९७ (ई० स० १५४०) की है। उस समय वणवीर पर उदयसिंह की चढ़ाई होने पर सोनगरा अखैराज तथा कूंपा महराजोत[2] उदयसिंह के श्वसुर होने के कारण उसकी सहायतार्थ गये होंगे। निकट सम्बंधी होने के कारण उनका ऐसा करना उचित ही था।

मालदेव का कुंभलमेर पर सेना भेजना

झाला सज्जा का पुत्र जैतसिंह किसी कारण से उदयपुर की जागीर का परित्याग कर जोधपुर के राव मालदेव के पास चला आया, जिसने उसे खैरवा का पट्टा दिया। जैतसिंह ने अपनी पुत्री स्वरूपदेवी का विवाह मालदेव से कर दिया। एक दिन मालदेव अपनी ससुराल (खैरवा) गया, जहां स्वरूपदेवी की छोटी बहिन को अत्यन्त रूपवती देख उसने उसके साथ भी विवाह करने के लिए जैतसिंह से आग्रह किया, परन्तु जब उसने साफ़ इनकार कर दिया, तब मालदेव ने कहा कि मैं बलात् विवाह कर लूंगा। इस प्रकार अधिक दबाने पर उसने कहा कि मैं अभी तो विवाह नहीं कर सकता, दो महीने बाद कर दूंगा। राव मालदेव के जोधपुर लौट जाने पर उसने महाराणा उदयसिंह के पास एक पत्र भेजकर अपनी पुत्री से विवाह करने के लिए कहलाया। महाराणा के स्वीकार करने पर जैतसिंह अपनी छोटी पुत्री और अन्य घरवालों को लेकर कुंभलगढ़ के पास गुढ़ा नाम के गांव में जा रहा। स्वरूपदेवी ने, जो उस समय खैरवा में थी,

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० १, पृ० २६।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा श्री उदयसिंहजी का जीवनचरित्र; पृ० ७४।

अपनी बहिन को विदा करते समय दहेज में गहने देने चाहे, परन्तु जल्दी में गहनों के डिब्बे के बदले राठोड़ों की कुलदेवी 'नागणेची' की मूर्तिवाला डिब्बा दे दिया। उधर महाराणा ने भी कुंभलगढ़ से उसी गांव में पहुंच-कर उससे विवाह कर लिया[1]। जब वह डिब्बा खोला गया तो उसमें 'नाग-णेची' की मूर्ति निकली, जिसको महाराणा ने पूजन में रक्खा[2] और तभी से उसको साल में दो बार (भाद्रपद सुदि ७ और माघ सुदि ७ को) विशेष रूप से पूजने का रिवाज चला आता है[3]।

इस घटना का पता चलने पर राव मालदेव ने राठोड़ पंचायण (कर्मसीहोत) तथा राठोड़ वीदा (भारमलोत वालावत) आदि अपने कई प्रतिष्ठित सरदारों के साथ कुंभलमेर विजय करने के लिए बड़ी सेना भेजी। महाराणा ने भी मुक़ाबला करने के लिए सेना भेजी। युद्ध में दोनों तरफ़ के कई सरदार मारे गये तथा मालदेव की सेना को सफलता न मिली[4]।

(१) कर्नल टॉड ने लिखा है कि राव मालदेव की सगाई की हुई झाला-सरदार की कन्या को महाराणा कुंभा ले आया था (राजस्थान; जि० १, पृ० ३३८), पर आगे चलकर मालदेव के वर्णन में इसका कोई उल्लेख नहीं है। टॉड का यह कथन विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि मालदेव का जन्म महाराणा कुंभा के देहान्त से ४३ वर्ष पीछे हुआ था और झाला अज्जा व सज्जा महाराणा रायमल के समय (वि० सं० १५६३ = ई० स० १५०६) में मेवाड़ में आये थे (मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ६५३)। ऐसी दशा में कुंभा का मालदेव की सगाई की हुई कन्या, सज्जा के पुत्र जैतसिंह की पुत्री, को लाना कैसे संभव हो सकता है?

इस घटना का जोधपुर राज्य की ख्यात में वि० सं० १५६६ (ई० स० १५४०) में होना लिखा है (जि० १, पृ० १०८-६), जो विश्वास के योग्य नहीं है क्योंकि उस समय तक तो महाराणा उदयसिंह मेवाड़ का राज्य प्राप्त करने के लिए लड़ रहा था। अतएव यह घटना उक्त संवत् से कुछ पीछे की होनी चाहिए।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ६७-८।

(३) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ७१६-८।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ६८।

इसके थोड़े दिनों बाद ही उच्चाभिलाषी मालदेव ने राज्य-विस्तार की इच्छा से प्रेरित होकर कूंपा की अध्यक्षता में एक बड़ी सेना बीकानेर की तरफ़ रवाना की[1]। जयसोम के 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' से, जो सब ख्यातों से पुराना है, पाया जाता है कि इस चढ़ाई की ख़बर मिलने पर बीकानेर के राव जैतसी (जैतसिंह) ने अपने मंत्री (नगराज) से सलाह कर उसे शेरशाह के पास से सहायता लाने के लिए भेजा[2]। अपनी अनुपस्थिति में शत्रु की चढ़ाई के डर से मंत्री ने (राजकुमार) कल्याण सहित सब राज-परिवार को सारस्वत (सिरसा) नगर में छोड़ दिया था। मालदेव के मरुस्थल (बीकानेर का राज्य) लेने के लिए आने पर जैतसी मुक़ाबिले को गया, पर मारा गया। तब जांगल देश पर अधिकार कर मालदेव जोधपुर लौट गया[3]। यह लड़ाई साहेवा (सोहवा) नामक गांव में हुई थी।

बीकानेर पर चढ़ाई

जोधपुर राज्य की ख्यात में इस लड़ाई का वि० सं० १५९८ चैत्र वदि ५ (ई० स० १५४२ ता० ६ मार्च) को होना लिखा है[4]। इस लड़ाई में

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६६।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार जैतसी के मारे जाने और बीकानेर पर मालदेव का अधिकार हो जाने के बाद कल्याणमल वीरमदेव के साथ मिलकर शेरशाह को मालदेव के ख़िलाफ़ चढ़ा लाया (जि० १, पृ० ६६)। कविराजा श्यामलदास के "वीरविनोद" (भाग २, पृ० ८०६) और बांकीदास के "ऐतिहासिक बातें" नामक ग्रन्थ (संख्या ७६१) में भी कल्याणमल का स्वयं शेरशाह के पास जाना लिखा है। दयालदास की ख्यात में लिखा है कि कल्याणमल का भाई भीम इस कार्य के लिए दिल्ली गया था। पीछे से वीरम भी वहां पहुंच गया और दोनों शेरशाह के साथ लौटे (जि० २, पत्र १७-२०), परन्तु इस सम्बन्ध में जयसोम का कथन ही अधिक विश्वसनीय है।

(३) श्लोक २०५-१८। जयसोम के कथन से पाया जाता है कि मालदेव स्वयं सेना के साथ था।

(४) बांकीदास ने भी यही समय दिया है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८२१), परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि बीकानेर के राव जैतसी की स्मारक छतरी के लेख से

जोधपुर की तरफ़ के भी कई सरदार काम आये। मालदेव का गढ़, नगर तथा बीकानेर के लगभग आधे राज्य पर अधिकार हो गया[1]। चैत्र वदि १२ को राव मालदेव स्वयं बीकानेर गया, जहां पहुंचकर उसने कूंपा को डीडवाणा की जागीर के अतिरिक्त फ़तहपुर तथा झूंझणूं भी दिये[2]।

शेरशाह का दिल्ली के सिंहासन पर बैठना

शेरशाह, जिसका असली नाम फ़रीद था, हिसार का रहनेवाला था। उसका पिता हसन, सूर ख़ानदान का अफ़गान था, जिसको जौनपुर के हाकिम जमालखां ने ससराम और टांडे के ज़िले ५०० सवारों से नौकरी करने के एवज़ में दिये थे। फ़रीद कुछ समय तक बिहार के स्वामी मुहम्मद लोहानी की सेवा में रहा और एक शेर को मारने पर उसका नाम शेरखां रक्खा गया। वीर प्रकृति का पुरुष होने के कारण उसकी शक्ति दिन-दिन बढ़ती गई। उसने ता० ६ सफ़र हिजरी सन् ९४६ (वि० सं० १५९६ आषाढ शुक्ला द्वितीय १० = ई० स० १५३९ ता० २६ जून) को बादशाह हुमायूं को चौसा (बिहार) नामक स्थान में परास्त किया और दूसरी बार हिजरी सन् ९४७ ता० १० मोहर्रम (वि० सं० १५९७ ज्येष्ठ सुदि १२ = ई० स० १५४० ता० १७ मई) को उसे कन्नौज में हराकर आगरे, लाहोर आदि की तरफ़ उसका पीछा किया, जिससे हुमायूं सिंध की तरफ़

उसका वि० सं० १५९८ फाल्गुन सुदि ११ (ई० स० १५४२ ता० २६ फ़रवरी) को मारा जाना पाया जाता है—

अथास्मिन् शुभसंवत्सरे.........१५९८ वर्षे शाके १४६३ प्रवर्त्तमाने मासोत्तमेमासे फाल्गुनमासे शुभे शुक्लपक्षे तिथौ एकादश्यां ....रावजी लूणकरणजी तत् पुत्रः रावजी श्रीजैतसिंहजी नर्मा............परमधाम मुक्तिपदं प्राप्तः।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १५-६। मुंशी देवीप्रसाद; राव जैतसीजी का जीवन चरित्र; पृ० ८५।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६६। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८२१। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८३।

भाग गया। इस प्रकार हुमायूं पर विजय प्राप्तकर शेरख़ां उसके राज्य का स्वामी बना और शेरशाह नाम धारणकर हि० स० ९४८ ता० ७ शव्वाल (वि० सं० १५९८ माघ सुदि ८ = ई० स० १५४२ ता० २४ जनवरी) को दिल्ली के सिंहासन पर बैठा[1]।

मालदेव ने हुमायूं की हार का समाचार सुनकर उसके भक्कर में रहते समय उसके पास इस आशय के पत्र भेजे कि मैं तुम्हारी सहायता करने को तैयार हूं[2]। हुमायूं भक्कर की सीमा पर हि० स० ९४७ ता० २८ रमज़ान (वि० सं० १५९७ फाल्गुन वदि द्वितीय १४=ई० स० १५४१ ता० २६ जनवरी) को पहुंचा था और वहां जमादिउल्‌आख़ीर (सितम्बर) तक रहा था[3]। इसी बीच शेरशाह को फ़ौज के साथ बंगाल के हाकिम के विरुद्ध जाना पड़ा था[4]। संभवतः इसी अवसर पर मालदेव ने उससे लिखा पढ़ी की होगी, परन्तु हुमायूं ने उस समय इस विषय पर कोई ध्यान न दिया, क्योंकि उसे ठट्टा के शासक शाहहुसेन अर्घुन की सहायता से, गुजरात (पंजाब का) विजय करने की आशा थी। इस सम्बन्ध में उसने शाहहुसेन को लिखा भी, पर वह छः मास तक टालटूल करता रहा[5]। उधर से निराश होने पर वह (हुमायूं) सात मास तक शेवान के क़िले को घेरे रहा, परन्तु उसका भी कोई लाभदायक परिणाम न निकला। भक्कर लौटने पर उसने वहां के द्वार भी अपने लिए बन्द पाये, क्योंकि यादगार नासिर मिर्ज़ा भी उसका विरोधी बनकर शाहहुसेन से मिल गया था[6]। तब हुमायूं ने मालदेव की

हुमायूं का मालदेव की तरफ़ से निराश होकर जाना

---

(१) बील; ओरिएण्टल बायोग्राफ़िकल डिक्शनरी; पृ० ३८०।

(२) तबकात-इ-अकबरी (फ़ारसी); पृ० २०१। इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ५, पृ० २११।

(३) अबुल्‌फ़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० ३६२ और ३६६।

(४) क़ानूंगो; शेरशाह; पृ० २६६।

(५) तबक़ात-इ-अकबरी—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ५, पृ० २०७।

(६) क़ानूंगो; शेरशाह; पृ० २६८-६।

सहायता से लाभ उठाने का विचार किया और हि० स० ९४९ ता० २१ मोहर्रम (वि० सं० १५९९ ज्येष्ठ वदि ८ = ई० स० १५४२ ता० ७ मई) को वह उच्च पहुंचा, जहां से ता० १८ रबीउल्अव्वल (ता० २ जुलाई) को उसने मारवाड़ की तरफ़ प्रस्थान किया। दिलावर (भावलपुर, पंजाब) और हासलपुर होता हुआ ता० १७ रबीउल्आख़ीर (ता० ३१ जुलाई) को वह बीकानेर से १२ कोस पर पहुंचा। बादशाह के नौकरों को मालदेव की तरफ़ से खटका था, जिसके विषय में उन्होंने उससे निवेदन किया। इसपर बादशाह ने मीर समन्दर को मालदेव के पास भेजा, जिसने लौटकर निवेदन किया कि मालदेव ऊपर से शुद्ध भाव ज़रूर प्रकट करता है, पर उसका मन साफ़ नहीं है। जब शाही फ़ौज मालदेव के राज्य की सीमा के पास पहुंची, उस समय नागोर का सनकाई (सांगा), जो मालदेव का बड़ा विश्वासपात्र था, बादशाह के डेरों के पास अच्छे हीरे ख़रीदने के बहाने से पहुंचा। उसके आचरण से शंकित होकर बादशाह ने कहला दिया कि ऐसे हीरे ख़रीदकर हस्तगत नहीं किये जा सकते, परन्तु तलवार के बल से अथवा बादशाहों की कृपा से प्राप्त होते हैं। इस घटना से बादशाह और भी सतर्क हो गया और उसने मीर समन्दर की सतर्कता की प्रशंसा की। अनन्तर उस (हुमायूं) ने रायमल सोनी को मालदेव के पास भेजा ताकि वह उधर की ठीक-ठीक ख़बर बादशाह को भेजे। उससे कहा गया कि यदि वहां लिखने का अवसर न मिले तो निश्चित इशारों के अनुसार उसपर भेद प्रकट किया जाय। इशारे के सम्बन्ध में यह तय हुआ कि यदि मालदेव के मन में सचाई हो तो सन्देशवाहक आकर उसकी पांचों अंगुलियां एक साथ पकड़ ले और यदि धोखा हो तो केवल कनिष्ठिका पकड़े[1]। फिर फलोधी पहुंचकर उसने वहां से अत्काख़ां को भी मालदेव के पास भेजा। उसने बादशाह के आगमन की सूचना मालदेव को दी,

---

(१) अबुलफ़ज़्ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० ३७१-२। मुंशी देवीप्रसाद; हुमायूंनामा; पृ० ६१-६।

परन्तु मालदेव स्वयं उसके स्वागत को न गया। उसने कुछ आदमियों के हाथ कुछ उपहार आदि उसकी सेवा में भेज दिये[1]। इसके बाद बादशाह जोगी तालाब पर पहुंचा, जहां रहते समय रायमल सोनी के पास से सन्देशवाहक ने आकर उसकी कनिष्ठिका पकड़ी, जिससे उसे मालदेव के कपट का पूरा विश्वास हो गया[2]।

निज़ामुद्दीन लिखता है—'जब हुमायूं भागकर मालदेव के राज्य में आया तब उसने शम्सुद्दीन अत्काखां को जोधपुर भेजा और स्वयं उसके लौटने की राह देखता हुआ मालदेव के राज्य की सीमा पर ठहर गया। जब मालदेव को हुमायूं की कमज़ोरी और शेरशाह से मुक़ाबिला करने योग्य सेना का उसके पास न होना ज्ञात हुआ तो उसे भय हुआ, क्योंकि उसके पास स्वयं शेरशाह से लड़ने योग्य सेना का अभाव था। इसी बीच शेरशाह ने एक दूत भेजकर उसे बड़ी-बड़ी आशाएं दिलाई, जिससे मालदेव ने संभव हो सका तो हुमायूं को पकड़कर उसके पास भेज देने का वादा कर लिया। नागोर और उसके आस-पास के स्थल पर शेरशाह का अधिकार स्थापित हो चुका था, अतएव मालदेव को यह आशंका थी कि कहीं रुष्ट होकर वह हुमायूं के विरुद्ध होने से एक बड़ी सेना उसके राज्य में न भेज दे। बादशाह (हुमायूं) को उसके बदल जाने का पता न लग जाय, इसलिए उसने अत्काखां को रोक रक्खा और उसे लौटने की आज्ञा न दी। लेकिन अत्काखां उसके मन का भेद लेकर बिना उसकी आज्ञा प्राप्त किये ही लौट गया। बादशाह (हुमायूं) के कुतुबखाने के एक अध्यक्ष ने, जो उसकी पराजय के समय से मालदेव के पास आ रहा था, इन्हीं दिनों उसके पास मालदेव के विश्वासघात का हाल लिख भेजा और

(१) जौहर; तज़किरतुल् वाक़ियात—स्टिवर्ट-कृत अनुवाद; पृ० ३९-८। गुलबदन बेगम-कृत "हुमायूंनामे" से पाया जाता है कि मालदेव ने हुमायूं से यह भी कहलाया कि मैं तुम्हें बीकानेर देता हूं (मिसेज़ बेवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० १५४)।

(२) अबुलफ़ज़्ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० ३७३। मुंशी देवीप्रसाद; हुमायूंनामा; पृ० ६६।

शीघ्रातिशीघ्र उसे उस(मालदेव)के राज्य से बाहर चले जाने को लिखा। अत्काखां ने भी इस विषय में ज़ोरदार शब्दों में बादशाह से कहा। इसपर हुमायूं ने तुरन्त अमरकोट की तरफ़ प्रस्थान किया[1]।'

मालदेव का हुमायूं को अपनी सीमा से बाहर करना

मालदेव उस समय शेरशाह को अप्रसन्न करने के लिए तैयार नहीं था, अतएव हुमायूं के अमरकोट की तरफ़ जाने का पता पाते ही उसने अपनी सेना के कुछ आदमी उसके पीछे रवाना कर दिये। निज़ामुद्दीन लिखता है—'मार्ग में दो हिन्दू, जो गुप्तचर थे[2], गिरफ़्तार करके हुमायूं के सामने लाये गये। उनसे सवाल किये गये और यह आज्ञा दी गई कि रहस्य का ठीक-ठीक पता लगाने के लिए उनमें से एक को मृत्युदंड दिया जाय, परन्तु इसी समय उन्होंने अपने आपको बंधन-मुक्त कर लिया और अपने पास खड़े हुए दो व्यक्तियों के ख़ंजर छीनकर वे अपने क़ैद करनेवालों पर टूट पड़े और उनमें से कई को मारकर खुद भी मारे गये। इस लड़ाई में बादशाह (हुमायूं) का घोड़ा भी मारा गया। इसपर तरदीबेग से कुछ घोड़े और ऊंट मांगे गये, परन्तु उसने देने से इनकार कर दिया। तब बादशाह (हुमायूं) एक ऊंट पर सवार होकर चला। नदीम कोका को यह गवारा न हुआ। उसने अपनी मां को, जो घोड़े पर थी, नीचे उतारकर वह घोड़ा बादशाह (हुमायूं) को दे दिया और अपनी मां को उसके ऊंट पर सवार करा दिया।

'रेतीले प्रदेश में चलने और जल के अभाव के कारण रास्ता धीरे-धीरे तय हो रहा था तथा प्रतिक्षण मालदेव (की सेना) के आने की ख़बर मिलती थी। इसपर बादशाह (हुमायूं) ने मुनीमखां को थोड़े सैनिकों

---

(१) तबकात-इ-अकबरी—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ५, पृ० २११-२। गुलबदन बेग़म; हुमायूंनामा—मिसेज़ बेवरिज-कृत अनुवाद; पृ० १५४ (कुतुबख़ाने के अध्यक्ष का नाम मुल्ला सुर्ख़ था)।

(२) गुलबदन बेग़म; हुमायूंनामा—मिसेज़ बेवरिज-कृत अनुवाद; पृ० १५४।

के साथ पीछे चलने के लिए कहा ताकि वह शत्रु-सेना के दिखाई पड़ते ही उससे लड़े। रात होने पर मुनीमखां और उसके साथ के सैनिक मार्ग भूल गये। सुबह होने पर शत्रु-सेना दिखाई पड़ी। उस समय शेख़ अलीबेग, दरवेश कोका आदि कुल मिलाकर बाईस आदमी पीछे रह गये थे। जब एक छोटे पहाड़ी रास्ते से शत्रु-सेना गुज़र रही थी तब उन्होंने उसपर आक्रमण कर दिया। शेख़ के पहले ही तीर से शत्रु-सेना का अध्यक्ष मारा गया तथा और भी कई आदमियों के काम आते ही शत्रु की बड़ी सेना मुसलमानों के थोड़े से सैनिकों के आगे भाग गई[1]।'

जौहर लिखता है कि शत्रु-सेना में ५००-५०० की तीन टुकड़ियां थीं। शेख़ अली सात सवारों के साथ उनका सामना करने के लिए गया। निकट पहुंचने पर उन्होंने तीरों की वर्षा की। ईश्वर की कृपा से तीर लगते ही दो सवार नीचे गिरे, जिसपर सारी सेना भाग गई और बादशाह (हुमायूं) की विजय हुई[2]।

"हुमायूंनामे[3]" और "अकबरनामे[4]" में भी इस घटना का लगभग जौहर के जैसा ही वर्णन दिया है, परन्तु फ़ारसी तवारीख़ों के उपर्युक्त कथन अतिशयोक्ति-पूर्ण होने के कारण विश्वसनीय नहीं माने जा सकते। सात अथवा बाइस मुसलमान सवारों का डेढ़ हज़ार अथवा एक बड़ी कट्टर राठोड़ सेना को हराकर भगा देना एक असंभव सी कल्पना है। वास्तविक बात तो यह प्रतीत होती है कि मालदेव का उद्देश्य हुमायूं को गिरफ़्तार

---

(१) तबकात-इ-अकबरी—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ५, पृ० २१२-३। गुलबदन बेगम; हुमायूंनामा—मिसेज़ बेवरिज-कृत अनुवाद; पृ० १५४-६।

मान्स्टुअर्ट एल्फिन्स्टन ने हुमायूं का पीछा करनेवाली सेना के अध्यक्ष को मालदेव का पुत्र लिखा है (हिस्ट्री ऑव् इंडिया; पृ० ४४२), परन्तु उसकी धारणा निर्मूल है क्योंकि अन्य फ़ारसी तवारीख़ों में कहीं ऐसा लिखा नहीं मिलता।

(२) तज़किरातुल वाक़ेयात; पृ० ४०-१। वही; स्टिवर्ट-कृत अनुवाद; पृ० ३१।

(३) मुंशी देवीप्रसाद-लिखित; पृ० ७०-७२।

(४) अबुलफ़ज़्ल-लिखित—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० ३७३-४।

करके शेरशाह के हवाले करने का कभी न था। वह तो शेरशाह के कोप से बचने के लिए हुमायूं को केवल अपने राज्य की सीमा से बाहर निकाल देना चाहता था। संभव है शेरशाह को दिखाने के लिए ही उसने अपने कुछ सैनिक हुमायूं के अमरकोट की ओर प्रस्थान करने पर उसके पीछे भेजे हों। मालदेव अपने समय का बड़ा प्रबल, बुद्धिमान और नीतिकुशल शासक था। वह यदि चाहता तो हुमायूं का अपने राज्य से निकलना बहुत कठिन कर सकता था। वह तो हुमायूं को सहायता प्रदान कर कुछ लाभ उठाना चाहता था, पर हुमायूं के समय पर न पहुंचने तथा उसकी मन्शा का शेरशाह को आभास मिल जाने के कारण उसका सारा मन्सूबा खाक में मिल गया। "अकबरनामे" में एक स्थल पर लिखा है—'कुछ लोग ऐसा भी कहते थे कि पहले मालदेव की भावना हुमायूं के प्रति शुद्ध थी और वह उसकी सेवा भी करना चाहता था। बाद में या तो हुमायूं की सेना की बुरी दशा और अल्प संख्या देखकर अथवा शेरशाह के झूठे वादों एवं बढ़ती हुई शक्ति के कारण मालदेव बदल गया। या संभवतः इसका कारण शेरशाह का भय हो। जो भी हो वह हुमायूं का विरोधी हो गया था। लोगों का बहुमत फिर भी इसी ओर था कि प्रारम्भ से अन्त तक मालदेव का सहायता का वचन देना और इस सम्बन्ध में बादशाह (हुमायूं) को लिखना कपटपूर्ण था[1]।' यह कथन भी ठीक नहीं प्रतीत होता। हुमायूं के पास सेना के न होने और शेरशाह की बढ़ती हुई शक्ति के कारण ही बुद्धिमान मालदेव ने समयानुसार अपनी नीति में परिवर्तन अवश्य किया था, परन्तु यह कहना कि उसने आरम्भ से लेकर अन्त तक कपट से काम लिया, कभी ठीक नहीं माना जा सकता। इसमें अधिक दोष हुमायूं का ही था। जिस समय मालदेव ने उसे बुलाया वह उसके बहुत पीछे पहुंचा। उस समय तक शेरशाह बंगाल से लौट चुका था और उसकी सारी शक्तियां केन्द्रित हो गई थीं। फिर मालदेव के पास अकेले शेरशाह का सामना करने के लिए पर्याप्त सेना न थी। उसे हुमायूं के साथ भी काफ़ी

(१) अबुलफ़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० ३७२।

फ़ौज होने की आशा थी, जो ठीक न निकली। ऐसी परिस्थिति में वह शेरशाह का विरोधी बनकर हानि ही अधिक उठाता। वह हुमायूं का क़ैद होना भी नहीं चाहता था, अतएव उसने ऐसी युक्ति से उसे अपने राज्य से बाहर कर दिया, जिससे शेरशाह को ज़रा भी सन्देह न हुआ।

शेरशाह की मालदेव पर चढ़ाई

इस प्रकार मालदेव पर शेरशाह की चढ़ाई कुछ समय के लिए रुक गई, परन्तु शेरशाह के दिल में उसकी तरफ़ से खटका बना ही रहा। इधर मालदेव की महत्वाकांक्षा में भी कमी न आई थी। शेरशाह को यह भी भय बना रहता था कि कहीं सब राजपूत एकत्र होकर कोई बखेड़ा न करें। राजपूताने में उस समय मालदेव भी बड़ा बलवान था। अतएव इन दो प्रबल शक्तियों में कभी न कभी युद्ध अवश्यंभावी था। ऐसे में बीकानेर का मन्त्री नगराज शेरशाह की सेवा में उपस्थित हुआ और उसने उससे मालदेव के विरुद्ध अपने स्वामी की सहायता के लिए चलने की प्रार्थना की। ऐसे ही मेड़ते के स्वामी बीरम ने भी उसके पास पहुंचकर उससे सहायता की याचना की। फलतः एक विशाल फ़ौज[1] के साथ हि० स० ९५० (ई० स० १५४४ = वि० सं० १६००) में शेरशाह ने आगरे[2] से मालदेव के विरुद्ध प्रस्थान

(१) फ़रिश्ता (ब्रिग्ज़-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १२२) उसकी सेना की संख्या ८०००० लिखता है। अब्बासख़ां लिखता है कि इस चढ़ाई में शेरशाह के पास इतनी बड़ी सेना थी कि अच्छे से अच्छे हिसाबी के लिए भी उसका गिनना असंभव था और उसकी लम्बाई-चौड़ाई एक साथ नहीं देखी जाती थी (तारीख़-इ-शेरशाही—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ४, पृ० ४०४)।

(२) कालिकारंजन क़ानूनगो, एम० ए० उसका दिल्ली से प्रस्थान करना मानता है (शेरशाह; पृ० ३२२)। अधिकांश ख्यातों में भी ऐसा ही लिखा मिलता है (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६९। दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १९। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०९ आदि), परन्तु क़ानूनगो स्वयं लिखता है कि निश्चित प्रमाण के अभाव में यह कहना कठिन है कि शेरशाह किस मार्ग से मारवाड़ में आया। फ़ारसी तवारीख़ें इस विषय में एक मत हैं और प्रायः सब में शेरशाह का आगरे से प्रस्थान करना लिखा है (देखो; ब्रिग्ज़; फ़रिश्ता; जि० २, पृ० १२१। अब्बासख़ां;

किया[1]। सिरसा से चलकर बीकानेर का राव कल्याणमल भी मार्ग में उसकी सेना के साथ हो लिया[2]।

शेरशाह की सेना मार्ग में जहां भी ठहरती, वहां चारों ओर रक्षा के लिए खाइयां खोद दी जाती थीं[3]। अब्बासखां लिखता है—'एक दिन उसकी सेना का पड़ाव रेतीले मैदान में हुआ, जहां प्रयत्न करने पर भी, रेत की अधिकता के कारण खाई न खोदी जा सकी। शेरशाह इस सम्बन्ध में बड़ा चिन्तित हुआ। उस समय उसके पोते महमूदखां ने सम्मति दी कि सेना की रक्षा के लिए रेत से भरवाकर बोरियों की आड़ कर दी जाय तो अच्छा होगा। शेरशाह को यह सलाह पसंद आई और इसके लिए उसने महमूदखां की प्रशंसा की। फिर उसने आज्ञा दी कि रेत से भरकर बोरियां सेना के चारों ओर जमा दो[4]।'

फ़रिश्ता लिखता है—'इस प्रकार मार्ग में अपनी सेना की रक्षा का पूरा प्रबन्ध करता हुआ वह नागोर और अजमेर के राजा (मालदेव) के

तारीख़-इ-शेरशाही—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ४, पृ० ४०४ आदि)। लगभग उसी समय की लिखी हुई होने के कारण इनके कथन की अवहेलना नहीं की जा सकती। मुंशी देवीप्रसाद भी उसका आगरे से प्रस्थान करना लिखता है (राव मालदेवजी का जीवनचरित्र; पृ० ३)।

(१) ब्रिग्ज़; फ़रिश्ता; जि० २, पृ० १२१। अब्बासख़ां; तारीख़-इ-शेरशाही—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ४, पृ० ४०४।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १६। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० ६२।

(३) ब्रिग्ज़; फ़रिश्ता; जि० २, पृ० १२१। अब्बासख़ां; तारीख़-इ-शेरशाही—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ४, पृ० ४०५। तबक़ात-इ-अकबरी (फ़ारसी); पृ० २२१।

(४) तारीख़-इ-शेरशाही—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ४, पृ० ४०५।

राज्य में पहुंचा[1]। इधर से मालदेव भी एक बड़ी सेना[2] लेकर शेरशाह के मुक़ाबले को गया। एक मास तक दोनों सेनाएं एक दूसरे के सामने पड़ी रहीं, परन्तु युद्ध न हुआ[3]। शेरशाह वहां से लौट जाना ही अच्छा समझता था, परन्तु सुरक्षित स्थान के परित्याग करने का साहस करना विपत्ति-जनक था। उधर शत्रु-सेना की स्थिति इतनी अच्छी थी, कि उसपर आक्रमण करना भी ख़तरनाक था। इस कठिन समय में शेरशाह को एक उपाय सूझा। मालदेव के साथ के सरदारों में से अनेक को मालदेव ने तलवार के बल से आधीन बनाया था, अतएव शेरशाह ने हिन्दुओं की (मारवाड़ी) भाषा में उन सरदारों की तरफ़ से अपने नाम इस आशय के जाली पत्र लिखवाये—"राजा के अधीनस्थ बन जाने के कारण हम उसके साथ आ तो गये हैं, परन्तु गुप्तरूप से हमारा उससे वैर-भाव ही बना है। यदि आप हमारा अधिकार पुनः हमें दिलादें तो हम आपकी सेवा करने और आपकी अधीनता स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत हैं[4]।" इन पत्रों के

(१) "तबक़ात-इ-अकबरी" (फ़ारसी; पृ० २३२) में शेरशाह का इसी प्रकार अजमेर के पास पहुंचना लिखा है। जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि मालदेव जब अपनी सेना सहित अजमेर पहुंचा, उस समय शेरशाह अजमेर के पास पहुंच गया था (जि० १, पृ० ७०)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात में उसके साथ ८०००० सेना होना लिखा है (जि० १, पृ० ७०)। अल्बदायूनी ने इस सेना की संख्या ५०००० दी है (मुंतख़बुत्तवारीख़; जि० १, पृ० ४७७)। "फ़रिश्ता" (ब्रिग्ज़-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १२१) में भी यही संख्या दी है।

(३) "तबकात-इ-अकबरी" (फ़ारसी; पृ० २३२) में भी ऐसा ही लिखा है।

(४) अब्बासख़ां के अनुसार पत्रों का आशय इस प्रकार था—'बादशाह को चिन्तित होने और सन्देह करने की आवश्यकता नहीं। युद्ध के समय हम मालदेव को आपके सपुर्द कर देंगे (तारीख़-इ-शेरशाही—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इण्डिया; जि० ४, पृ० ४०५)।' बदायूनी लिखता है कि पत्रों में लिखा गया कि बादशाह को युद्ध के समय स्वयं सैन्य परिचालन करने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि हम इस शर्त पर कि हमें अमुक-अमुक जागीरें दी जावें, मालदेव को स्वयं पकड़कर आपके सुपुर्द

एक सिरे पर शेरशाह ने फ़ारसी भाषा में लिखवाया—"भय न करो, प्रयत्न करते रहो और विश्वास रक्खो कि तुम्हारी आशाएं पूरी की जायेंगी।" फिर इनमें से कुछ पत्र उसने जान-बूझकर ऐसे स्थान में डलवा दिये जहां मालदेव की नज़र उनपर पड़ गई। मालदेव ने उसी दिन शत्रु पर आक्रमण करने का निश्चय किया था, परन्तु इन पत्रों के पाते ही उसे अपने सरदारों की तरफ़ से आशंका हो गई और वह लड़ाई करने में आना-कानी करने लगा[1]। उधर उसके सरदार उससे युद्ध के लिए आग्रह करने लगे। इससे

कर देने को तैयार हैं (मुंतख़बुत्तवारीख़—रैंकिंग-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० ४७८)। उपर्युक्त दोनों लेखकों के अनुसार ऐसे पत्र लिखवाकर गुप्तरूप से मालदेव की छावनी में डलवाये गये, जिन्हें पाकर मालदेव अपने सरदारों की ओर से शंकित हो उठा। ऐसे एकतरफ़ा पत्र देखकर मालदेव जैसा बुद्धिमान व्यक्ति धोखे में आ जाय इसपर विश्वास नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में फ़रिश्ता का ही कथन अधिक विश्वास-योग्य है। ऐसे पत्र और उनपर लिखे हुए शेरशाह के आश्वासन को पढ़कर ही मालदेव ने उनकी सत्यता पर पूर्ण विश्वास कर लिया होगा।

(१) भिन्न-भिन्न ख्यातों में इस घटना का भिन्न-भिन्न प्रकार से उल्लेख किया गया है। मुंहणोत नैणसी लिखता है—'वीरम जाकर सूर बादशाह को मालदेव पर चढ़ा लाया। राव भी अस्सी हज़ार सवार लेकर मुक़ाबले को आया। वहां वीरम ने एक तरकीब की—कूंपा के डेरे पर वीस हज़ार रुपये भिजवाये और कहलाया, हमें कम्बल मंगवा देना और वीस ही हज़ार जैता के पास भेजकर कहा, सिरोही की तलवारें भेज देना। फिर उसने राव मालदेव को सूचना दी कि जैता और कूंपा बादशाह से मिल गये हैं, वे तुमको पकड़कर हजूर में भेज देंगे। इसका प्रमाण यह है कि उनके डेरों पर रुपयों की थैलियां भरी देखना तो जान लेना कि उन्होंने मतलब बनाया है। राव मालदेव के मन में वीरम के वाक्यों से शंका उत्पन्न हो गई। उसने ख़बर कराई कि बात सच है या नहीं। जब अपने उमरावों के डेरों पर थैलियां पाईं तो उसके मन में भय उत्पन्न हो गया (जि० २, पृ० १५७-८)।'

जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन है—'बादशाह ने मालदेव से कहलाया कि एक आदमी आप भेजें और एक मैं, इस प्रकार द्वन्द्व-युद्ध हो। मालदेव ने बीदा भारमलोत का नाम लिखवाकर भेज दिया। वीरमदेव ने बादशाह से कहा कि उससे युद्ध करने योग्य आपके पास कोई योद्धा नहीं है, मैं ही जाऊं; पर वीरमदेव को उसने जाने न दिया। तब वीरमदेव ने फ़रेब कर ढालों के भीतर रुक्के रखवाकर राठोड़ों में भिजवाये

उसका सन्देह और भी दृढ़ हो गया। इस घटना के चौथे दिन उसने अपनी सेना को पीछे हटने की आज्ञा दी[1]। कुंभा[2] (कूंपा) को शेरशाह

और इस प्रकार जैता, कूंपा आदि राजपूतों के प्रति राव के मन में अविश्वास उत्पन्न कराया (जि० १, पृ० ७०-१)।'

दयालदास का वर्णन मुंहणोत नैणसी जैसा ही है (जि० २, पत्र १६)।

मुंशी देवीप्रसाद ने "राव मालदेवजी का चरित्र" नामक पुस्तक में जो लिखा है उसका सारांश यह है—'शेरशाह मालदेव का ज़ोर देखकर बहुत घबराया और पीछा जाने लगा, मगर मेड़ते के राव वीरम ने कहा कि आप ज़रा ठहरें मैं रावजी (मालदेव) को बातों से भगा दूंगा। फिर बादशाह के मुंशी से १०० हुक्मनामे रावजी के सरदारों के नाम लिखाकर ढालों की गद्दियों में सिलवा दिये और एक-एक ढाल एक-एक ब्योपारी के हाथ उस सरदार के पास, जिसके नाम का हुक्म उसमें बन्द था, भेजकर कहा कि जिस मोल में वे लें देकर आना। इसके साथ ही १००००० मोहरें बादशाह के सिक्के की रावजी के बाज़ार में भेजकर जिस भाव पर बिक सकीं बिकवादीं। फिर रात के समय राव के पास जाकर कहा कि आपके सरदार आपसे बदलकर बादशाह से मिल गये हैं। इसका प्रमाण उनकी ढालों की गद्दियां चीरने पर आपको मिलेगा। दूसरे दिन सरदारों के पास नई ढालें देखीं तो मालदेव को भी शक हुआ। गद्दियां उधड़वाईं तो उनमें एक-एक हुक्मनामा फ़ारसी में लिखा हुआ इस मज़मून का निकला कि एक हज़ार मुहरें तुम्हारे पास भेजी जाती हैं अब तुम अपने इक़रार के अनुसार राव को पकड़ कर हाज़िर करो। यह पता लगते ही राव के कान खड़े हो गये। फिर बादशाह के नाम की बहुतसी मोहरों का सर्राफ़ों के पास होना भी पता लगा। इसपर उसका सन्देह और भी दृढ़ हो गया और वह रात के समय मारवाड़ की तरफ़ चल दिया (पृ० ३-४)।'

"वीरविनोद" में केवल ढालों के बिकवाये जाने का उल्लेख है (भाग २, पृ० ८१०)।

ख्यातों आदि में दिये हुए उपर्युक्त सभी वर्णन कल्पित हैं। इस सम्बन्ध में फ़रिश्ता का कथन ही विश्वासयोग्य माना जा सकता है। अपने बाहुबल एवं चातुर्य्य से भारत के सिंहासन पर अधिकार करनेवाला शेरशाह अपने आश्रित की राय पर चले यह कल्पना से दूर की बात है।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि सन्देह उत्पन्न करनेवाले पत्रों के मिलने के पूर्व ही मालदेव क्रमशः पीछे हटने लगा था (जि० १, पृ० ७०), परन्तु यह बात विश्वासयोग्य नहीं प्रतीत होती, क्योंकि ऐसा करने का कारण क्या था, इसका उक्त ख्यात से पता नहीं चलता।

(२) वर्णमाला की अपूर्णता के कारण फ़ारसी तवारीख़ों में पुरुषों और

की चाल का पता लगने पर उसने मालदेव को उसकी ग़लती सुझाने की चेष्टा की, परन्तु जब उसका सन्देह किसी प्रकार मिटता न देखा तो उसने कहा—"सच्चे राजपूतों में ऐसा विश्वासघात पहले कभी नहीं सुना गया। मैं राजपूतों की प्रतिष्ठा पर लगाये गये इस कलंक को अपने रक्त से धोऊंगा, अथवा शेरशाह को अपने थोड़े से सैनिकों की सहायता से ही पराजित करूंगा[1]।" मालदेव के हृदय में तो सन्देह ने पूरा-पूरा घर कर लिया था। उसने कूंपा की बात पर कोई ध्यान न दिया और पीछे हटने लगा। इसपर वीर कूंपा कुछ सरदारों और दस-बारह हज़ार सैनिकों के साथ शेरशाह पर आक्रमण करने के लिए चला, परन्तु रात्रि के समय वे मार्ग भूल गये, जिससे सवेरा होने पर उनकी शत्रु-सेना से मुठभेड़ हुई[2]।

स्थानों के नाम ठीक-ठीक न तो लिखे ही जाते हैं और न पढ़े ही, जिससे अनेक अनुवाद-कर्त्ताओं ने ग़लती से जैता के स्थान में जया और कूंपा के स्थान में कूंभा, कन्हैया, अथवा गोपा नाम दे दिया है। अल्बदायूनी ने भी फ़रिश्ता की भांति केवल कूंपा का नाम दिया है (मुंतख़बुत्तवारीख़—रैंकिंग-कृत अनुवाद; जिल्द १, पृ० ४७८), परन्तु जैता और कूंपा दोनों ही राठोड़ सेना के साथ थे और इसी लड़ाई में मारे गये थे।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० १, पृ० ७०) तथा अन्य ख्यातों आदि में लिखा है कि गिरीं पहुंचने पर जैता तथा कूंपा ने कहा कि यहां तक की भूमि तो राव की अपनी जीती हुई है, आगे राव रिड़मल (रणमल) और जोधा की ली हुई भूमि है सो हमारे बाप-दादों की है। यहां से हम पीछे नहीं हटेंगे और लड़कर मर मिटेंगे। ख्यातों में यह घटना संदेहात्मक पत्रों के डलवाये जाने से पहले दी है, जो उस समय ठीक नहीं जंचती। वास्तव में कूंपा ने, मालदेव को उसकी ग़लती सुझाने के प्रयत्न में निष्फल होकर ही, लड़कर मर मिटने की बात कही होगी। इस सम्बन्ध में फ़रिश्ता में दिया हुआ कूंपा का कथन अमाननीय नहीं कहा जा सकता।

(२) कानूंगो के अनुसार यह लड़ाई मेड़ते में हुई (शेरशाह; पृ० २२३), परन्तु उसका यह कथन सर्वथा निर्मूल है। फ़ारसी तवारीख़ों में यह लड़ाई कहां हुई यह नहीं लिखा है। "तबक़ात-इ-अकबरी" (फ़ारसी; पृ० २२२) में शेरशाह की सेना का अजमेर के पास पहुंचना और वहां मालदेव की सेना के सामने एक मास तक पड़े रहना लिखा है। फ़रिश्ता के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह लड़ाई अजमेर से कुछ दूर पर ही हुई होगी। ख्यातों में जैता, कूंपा आदि का गिरीं से सैन्य

शेरशाह ने अपनी अस्सी हज़ार सेना के साथ उनपर हमला किया, पर राठोड़ वीरों ने मुसलमानों पर इतना प्रबल आक्रमण किया कि कई बार उन्हें पीछे हटना पड़ा और उनमें घबराहट फैल गई[1]। इसी समय जलालखां जलवानी सहायक सेना के साथ पहुंच गया। राठोड़ों की सैनिक शक्ति कम तो पहले से ही थी ऐसी दशा में वे छिन्न-भिन्न हो गये[2]। शेरशाह को इस लड़ाई में विजय की आशा बिल्कुल जाती रही थी,

---

सहित चलना और रात्रि में मार्ग भूल जाने के कारण सवेरे समेल की नदी के पास शेरशाह की सेना से युद्ध होना लिखा है (मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १५८-६। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७१। मुंशी देवीप्रसाद; राव मालदेवजी का जीवनचरित्र; पृ० ६। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ७६१)। गिर्री अजमेर से सोलह कोस दक्षिण-पश्चिम में जोधपुर के जैतारण परगने में है और उससे केवल कुछ ही कोस की दूरी पर उसी परगने में समेल है, जहां यह लड़ाई हुई होगी। इस विषय में सभी ख्यातों के एक मत होने के कारण उनके कथन की अवहेलना नहीं की जा सकती। एक प्राचीन दोहे से गिर्री में जैता, कूंपा आदि का रुकना और मर मिटने का दृढ़ निश्चय करना पाया जाता है—

गिर्री तोरे गार में लंबी वधी खजूर।
जैते कूंपे आखिया खग नेड़ो घर दूर॥

(१) अब्बासख़ां लिखता है—'शेरशाह की सेना का एक हिस्सा भाग चला था और एक अफ़ग़ान ने उसके पास जाकर उसे भला-बुरा कहते हुए उसके देश की भाषा में कहा कि भागो क्योंकि शत्रु तुम्हारी सेना को छिन्न-भिन्न कर रहे हैं (तारीख़-इ-शेरशाही—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ४, पृ० ४०५)।' इससे निश्चित है कि थोड़ी सी ही राठोड़-सेना ने कुछ देर के लिए मुसलमानी सेना के छक्के छुड़ा दिये थे। फ़रिश्ता के कथनानुसार जलालख़ां जलवानी के आ जाने से ही मुसलमान डटकर राठोड़ों को मार सके।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात में इस घटना का समय वि० सं० १६०० पौष सुदि ११ (ई० स० १५४४ ता० ५ जनवरी) दिया है (जि० १, पृ० ७१)। "वीरविनोद" में भी यही समय दिया है (भाग २, पृ० ८१०)। कानूंगो वि० सं० १६०० के फाल्गुन (ई० स० १५४४ मार्च) मास में यह लड़ाई होना लिखता है (शेरशाह; पृ० ३२६)। बांकीदास ने वि० संवत् १६०० पौष वदि ५ (ई० स० १५४३ ता० १६ दिसंबर) दिया है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८२७)।

जिससे उसकी समाप्ति होने पर उसने कहा--एक मुट्ठी ज्वार (? बाजरा) के दानों के लिए मैं हिन्दुस्तान की बादशाहत खो देता[1]।'

अल्बदायूनी लिखता है—'प्रातःकाल होने पर शेरशाह की सेना के दृष्टिगोचर होते ही राठोड़ सैनिक अपने घोड़ों पर से उतर पड़े और बरछें तथा तलवारें हाथ में लेकर पठानों की सेना पर टूट पड़े। ऐसी दशा में उसने हाथियों की सेना को आगे बढ़ाकर शत्रुओं को रौंद डालने की आज्ञा दी। हाथियों के पीछे से गोलंदाज़ों और तीरंदाज़ों ने गोलों और तीरों की वर्षा की, जिससे सबके सब राठोड़ खेत रहे, पर एक भी मुसलमान इस लड़ाई में काम न आया[2]।'

यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण होने से विश्वासयोग्य नहीं है। इतनी बड़ी लड़ाई में एक भी मुसलमान काम न आया हो यह असंभव है। इस सम्बन्ध में फ़रिश्ता का ऊपर आया हुआ कथन ही अधिक माननीय है। अब्बासख़ां का मत ऊपर (पृ०३०६ टि० १ में) दिया जा चुका है। "तारीख़-इ-दाऊदी" से भी पाया जाता है कि इस लड़ाई में

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार इस लड़ाई में निम्न लिखित प्रमुख सरदार काम आये—

जैता पंचायणोत (बगड़ी); कूंपा मेहराजोत (आसोपवालों का पूर्वज); उदयसिंह जेतावत; खींवा ऊदावत (रायपुरवालों का पूर्वज); पंचायण करमसीहोत (खींवसरवालों का पूर्वज); जैतसी ऊदावत; जोगा अखैराजोत; सुरताण गांगावत; पत्ता कान्हावत; वैरसी राणावत; वीदा भारमलोत; रायमल अखैराजोत; भादा पंचायणोत; भोजराज पंचायणोत; हरदास खंगारोत; सोनगरा भोजराज अखैराजोत; सोनगरा अखैराज रणधीरोत; भाटी मेरा अचलावत; भाटी केल्हण आपमल हमीरोत; भाटी सूरा पातावत; सोढा नाथा देदावत; ऊहड़ वीरा लखावत; सांखला डूंगरसी धामावत; देवड़ा अखैराज बनावत; मांगलिया हेमा नींबावत आदि।

(जि० १, पृ० ७१-२)।

"वीरविनोद" में भी लगभग ये ही नाम दिये हैं (भाग २, पृ० ८११)।

(१) ब्रिग्ज़; फ़रिश्ता; जि० २, पृ० १२१-३।

(२) मुंतख़बुत्तवारीख़—रैंकिंग-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० ४७८-९।

बहुत से पठान मारे गये थे[1]। निज़ामुद्दीन भी ऐसा ही कहता है।

वहां से शेरशाह ने अपनी सेना के दो भागकर दिये। एक भाग तो उसने खवासखां और ईसाख़ां नियाज़ी आदि की अध्यक्षता में जोधपुर की ओर रवाना किया और दूसरे भाग के साथ वह स्वयं अजमेर गया, जहां उसका आसानी से अधिकार हो गया[2]। फिर वह भी जोधपुर की तरफ़ अग्रसर हुआ। मालदेव उसका आगमन सुनते ही वहां से भागकर सिवाना के पहाड़ी क़िले में चला गया[3]। थोड़ी लड़ाई[4] के बाद जोधपुर

शेरशाह का जोधपुर पर अधिकार करना

(१) (फ़ारसी); पृ० २३८।

(२) मुंहणोत नैणसी ने एक स्थल पर लिखा है कि शंकर (भैरवदास जैसावत का पौत्र) मालदेव की तरफ़ से अजमेर का क़िलेदार था। सूर बादशाह आया तब वह लड़ाई कर मारा गया (जि० २, पृ० ४५२ और ४१९)। बांकीदास (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८२६) ने भी इसका उल्लेख किया है। कानूंगो लिखता है कि अजमेर के बाद शेरशाह आबू गया (शेरशाह; पृ० ३३०), पर उसका यह कथन ठीक नहीं है। जोधपुर के स्थान में शेरशाह का इतनी दूर आबू पर जाना युक्तिसंगत नहीं माना जा सकता। वह अजमेर से सीधा जोधपुर गया होगा।

(३) कानूंगो; शेरशाह; पृ० ३३१। किसी ख्यात में उसका पीपलोद की पहाड़ी में और किसी में घूंघरोट की पहाड़ी में भाग जाना लिखा है।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार इस अवसर पर मालदेव के साथ निम्नलिखित सरदार गये थे—

राठोड़ जैसा भैरूदासोत चांपावत; राठोड़ महेश घड़सीयोत; राठोड़ जैतसी वाघावत; फलोधी का स्वामी राव राम तथा पोकरण का स्वामी जैतमाल।

(जि० १, पृ० ७२)।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार जोधपुर की लड़ाई में कई सरदार मारे गये, जिनमें से प्रमुख के नाम नीचे लिखे अनुसार हैं—

राठोड़ तिलोकसी वरजांगोत; राठोड़ अचला शिवराजोत; भाटी भोजा जोधावत; भाटी नाथू मालावत; राठोड़ सिंघण खेतसिंहोत; राठोड़ राणा वीरमोत आदि।

(जि० १, पृ० ७२-३)।

पर भी शेरशाह का अधिकार हो गया। एक वर्ष से अधिक जोधपुर शेरशाह के अधीन रहा[1]। इस बीच क़िले के भीतर एक मसजिद बनी और गोल का रास्ता आदि भी बना[2]। शेरशाह ने वीरम को मेड़ता और कल्याणमल को बीकानेर का राज्य सौंपा[3]।

शेरशाह का देहांत

इसके कुछ दिनों बाद शेरशाह की कालिंजर पर चढ़ाई हुई, जिसमें एक आकस्मिक घटना के हो जाने से उसका देहांत हो गया। उसने युद्ध के समय कुछ हुक़्क़े (तोप के गोले) मंगवाये और उनमें पलीता लगाकर क़िले के भीतर फेंकने की आज्ञा दी। दुर्भाग्य से एक हुक़्क़े में जब पलीता लगाकर फेंका गया तब वह दीवार से टकराकर अन्य हुक़्क़ों के बीच गिर पड़ा, जिससे सबके सब एक साथ जल पड़े। वहां पर उपस्थित अन्य मनुष्य तो बच गये, पर शेरशाह बुरी तरह घायल हुआ, जिससे हि० स० ९५२ ता० १० रबीउल्-अव्वल (वि० सं० १६०२ ज्येष्ठ सुदि ११ = ई० स० १५४५ ता० २२ मई) को उसका देहांत हो गया[4]।

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में शेरशाह का जोधपुर में एक वर्ष तक रहना लिखा है (जि० १, पृ० ७३); दयालदास की ख्यात में उसका वहां ४ मास रहना लिखा है (जि० २, पत्र १९); बांकीदास उसका वहां जोधपुर राज्य की ख्यात के समान एक वर्ष ही रहना लिखता है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८२७)। ऐसे ही अन्य ख्यातों में इस विषय में विभिन्न मत हैं। फ़ारसी तवारीख़ों में इस सम्बन्ध में कुछ भी लिखा नहीं मिलता। बादशाह का जोधपुर पर एक वर्ष से अधिक समय तक अधिकार रहा था, संभवतः इसी के आधार पर ख्यातकारों ने उसका वहां एक वर्ष अथवा ४ महीना रहना लिख दिया है।

(२) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८२७-८। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७३।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७२। दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १९-२०।

(४) क़ानूनगो; शेरशाह; पृ० २३८-४१। "तारीख़-इ-शेरशाही" में भी यही तारीख़ दी है (इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ४, पृ० ४०९), पर इसके विपरीत

मालदेव का जोधपुर पर पीछा अधिकार करना

राव मालदेव भी शांत न बैठा था। अपने गये हुए राज्य को पीछा हस्तगत करने के लिए वह अवसर की ताक में था। शेरशाह की मृत्यु का समाचार मिलते ही वह मुसलमानों के थानों पर हमला करने लगा। जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—'शेरशाह जोधपुर से जाते समय भांगेसर के थाने पर अपने सवार रख गया था। उस (शेरशाह) के मरने पर मालदेव ने (पहाड़ों से) बाहर आकर उनको मार डाला। अनन्तर उसने वि० सं० १६०२ (ई० स० १५४५) में जोधपुर पर भी क़ब्ज़ा कर लिया[1]।

मालदेव का अपने पुत्र राम को राज्य से निर्वासित करना

राव मालदेव का प्रेम अपनी झाली राणी स्वरूपदे पर विशेष था। इस कारण उसका ज्येष्ठ पुत्र राम स्वरूपदे के पुत्रों—उदयसिंह तथा चन्द्रसेन—से ईर्षा रखता था। जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन है—'वि० सं० १६०४ (ई० स० १५४७) में राव मालदेव रोग-ग्रस्त हुआ और जब उसका खाट से नीचे उतरना भी कठिन हो गया तो ऐसी परिस्थिति से लाभ उठाकर राम ने राव को क़ैद करने और स्वयं गद्दी पर बैठने का विचार किया। एतदर्थ उसने पृथ्वीराज (जैतावत) को अपने शामिल रहने के लिए कहलाया, परन्तु उसने इस अधर्म के कार्य में साथ देने से इनकार कर दिया।

फ़रिश्ता (ब्रिग्ज़-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १२४), बील (ओरिएन्टल बायोग्राफ़िकल डिक्शनरी; पृ० ३८१) तथा कविराजा श्यामलदास (वीरविनोद; भाग २, पृ० १३८) ने शेरशाह की मृत्यु ता० १२ रबीउलअव्वल को मानी है।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७३-४। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८२८ और १५५०। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८११-२। मुंहणोत नैणसी की ख्यात में भी राव मालदेव का भांगेसर के थाने पर सैन्य भेजना लिखा है। उस समय उक्त ख्यात के अनुसार (जैसावत) जोधा का पुत्र रामा और (जैसावत) वणवीर के पुत्र तेजसी और वीसा भी उस सेना के साथ थे (जि० २, पृ० ४०० और ४२९-३०)।

इसके कुछ दिनों बाद ही राम ने मंडोवर में गोठ की, जिसकी सूचना पृथ्वीराज ने राव के प्रधान जैसा (भैरूंदासोत) को दे दी और उस(राम)-की गुप्त अभिसन्धि का सारा हाल भी उससे कह दिया । जैसा ने सारा हाल राव से निवेदन किया, जिसने पृथ्वीराज से बहुत प्रसन्न होकर उसे आज्ञा दी कि गढ़ के द्वार पर चौकसी करो और राम को गढ़ में प्रवेश न करने दो। अनन्तर उसने अपनी राणी लाछलदे कछवाही को उसी समय तलहटी में भिजवा दिया। राम जब गढ़ के पास पहुंचा तो वह फाटक पर ही रोक दिया गया। पिता से पुछवाने पर मालदेव ने उससे कहलाया कि तुम अपने साथियों को लेकर गूंदोच चले जाओ। राव की भटियाणी राणी ऊमादे अपने स्वामी से रुष्ट रहती थी और उसने राम को गोद लिया था; जिससे राम के साथ वह भी गूंदोच चली गई। कुछ दिनों गूंदोच में रहने के बाद राम अपने श्वसुर महाराणा उदयसिंह के पास चला गया, जिसने उसे कई गांवों के साथ केलवा जागीर में दे दिया, जहां वह रहने लगा। इधर स्वरूपदे ने राव से कहकर अपने पुत्र चन्द्रसेन को गद्दी का हक़दार नियत कराया[1]।'

ख्यात का उपर्युक्त कथन अधिक विश्वास के योग्य नहीं है। मालदेव का अपनी झाली राणी स्वरूपदे पर विशेष प्रेम था, यह ऊपर के कथन से स्पष्ट है। अपनी उसी राणी के आग्रह करने से उसने उसके पुत्र चन्द्रसेन को, ज्येष्ठ पुत्र राम के रहते हुए भी राज्य देने का निश्चय किया और उसे ही उत्तराधिकारी बनाया। अधिक संभव तो यह है कि इस असंगत बात को ठीक क़रार देने के लिए ही ख्यातकार ने उपर्युक्त कथा रच डाली हो।

पोकरण और फलोधी पर सेना भेजना

वि० सं० १६०७ (ई० स० १५५०) में राव ने पोकरण पर अधिकार करने के लिए राज्य की सेना भेजी। उन दिनों वहां राव जैतमाल गोयंद के पुत्र नरा के पौत्र कान्हा का अमल था। उसे निकालकर राजकीय सेना ने पोकरण पर राव का अधिकार स्थापित

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ११३-४।

किया[1]। उन्हीं दिनों राव ने फलोधी पर भी सेना भेजी[2]।

अनन्तर मालदेव की आज्ञानुसार जैसा (भैरवदासोत) ने बाड़मेर और कोटड़ा पर आक्रमण किया, जहां का स्वामी रावत भीम भागकर जैसलमेर चला गया। वहां से वह कुंवर हरराज को ससैन्य साथ ले पुनः बाड़मेर में आया, जहां बड़ी लड़ाई हुई[3]। इस लड़ाई का परिणाम क्या हुआ इस विषय में ख्यात मौन है।

बाड़मेर और कोटड़ा पर अधिकार करना

वि० सं० १६०६ श्रावण सुदि १५ (ई० स० १५५२ ता० ४ अगस्त) को राव ने फ़ौज के साथ पंचोली नेतसी, पृथ्वीराज (जेतावत) और कूंपा उदयसिंहोत आदि को जैसलमेर पर भेजा। कार्तिक वदि ६ (ता० १२ अक्टोबर) को यह सेना जयसमुद्र के निकट पहुंची, जहां से चढ़कर इसने जैसलमेर का बहुत कुछ नुक़सान किया। जैसलमेर का रावल[4] इस सेना का सामना करने में

जैसलमेर पर सेना भेजना

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७५।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात में (जि० २, पृ० ४१२ और ४१४) लिखा है कि राव मालदेव की फलोधी के भाटियों से लड़ाई हुई वहां पंचायण (जोधावत) का पुत्र केशोदास मारा गया। जोधपुर राज्य की ख्यात में पोकरण से रावत जैसा के फलोधी पर जाने के समय कई मारे जानेवाले लोगों के नाम दिये हैं (जि० १, पृ० ७५)। टॉड भी मालदेव का फलोधी पर अधिकार रहना लिखता है (राजस्थान; जि० २, पृ० ६५५)। इससे सिद्ध है कि फलोधी के भाटियों के साथ राव मालदेव की सेना की लड़ाई अवश्य हुई थी।

(३) जयपुर से आई हुई राठोड़ों की एक ख्यात; पृ० १३७-८। मुंहणोत नैणसी की ख्यात में एक स्थल पर लिखा है कि जब जैसलमेर की सेना आई उस समय मालदेव की तरफ़ से (नींबावत) मूला लड़कर मारा गया (जि० २, पृ० ३६५ और ३६७)। संभव है नैणसी का यह कथन ऊपर लिखी हुई घटना से ही सम्बन्ध रखता हो।

(४) राव मालदेव के समकालीन रावल लूणकर्ण और मालदेव थे। वि० सं० १६०६ (ई० सं० १५५२) में रावल मालदेव विद्यमान था, परन्तु उसके समय में जैसलमेर पर चढ़ाई होने का कोई उल्लेख वहां की ख्यातों में नहीं है। जोधपुर राज्य

समर्थ न होने के कारण गढ़ का द्वार बन्द कर भीतर बैठ रहा। तब उससे पेशकशी के रुपये वसूल कर जोधपुर के सरदार लौट गये[1]।

जालोर के पठानों और राठोड़ों की लड़ाइयां

यह ऊपर लिखा जा चुका है कि बिहारी पठान सिकंदरखां से जालोर का राज्य बलोचों ने छीन लिया था। वि० सं० १६०६ (ई० स० १५५२) के लगभग पठानों ने एकत्र होकर मलिकखां की अध्यक्षता में बलोचों से जालोर का राज्य पीछा लेने के लिए उनपर चढ़ाई कर दी। लासड़ा के मैदान में बलोचों और पठानों का मुक़ाबला हुआ, जिसमें बहुत से बलोच मारे गये। केवल उनका कामदार गंगादास जीता बचा, जिसने जाकर जालोर के क़िले में शरण ली। सांचोर पर अधिकार कर मलिकखां जालोर पहुंचा और उसने गंगादास को क़िले की चाबियां सौंपने के लिए कहलाया। गंगादास ने इस कार्य के लिए एक सप्ताह का समय मांगा और इसी बीच कुछ विश्वासपात्र सींधलों के द्वारा राव मालदेव से कहलाया कि यदि आप मुझे सही-सलामत पट्टन (गुजरात) पहुंचा दें तो मैं जालोर के क़िले की चाबियां आपको दे दूंगा। राव मालदेव तो यह चाहता ही था। उसने तत्काल यह शर्त स्वीकार कर ली और राघो (पत्रावत), लूणा (गंगावत) और तिलोकसी आदि को सेना सहित गंगादास की सहायता के लिए भेज दिया। जालोर से छः कोस दूर हमराली नामक स्थान में उनके पहुंचने पर गंगादास उनसे जा मिला, जिसे उन्होंने हिफ़ाज़त के साथ पट्टन पहुंचा दिया। फिर सींधलों के बताये हुए मार्ग से जालोर के क़िले में प्रवेशकर उन्होंने उसे अपने अधिकार में कर लिया।

की ख्यात के अतिरिक्त अन्य ख्यातों में भी इस घटना का उल्लेख नहीं मिलता। केवल जयपुर से आई हुई राठोड़ों की ख्यात में इसका उल्लेख है; ऐसी दशा में यह कहना कठिन है कि इस कथन में सत्य का अंश कितना है।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७४। अन्य ख्यातों में इसका उल्लेख नहीं मिलता।

इस घटना को हुए अभी देर न हुई थी कि मलिकखां ने उनपर प्रबल आक्रमण कर दिया। राठोड़ों ने भी वीरता के साथ उसका मुक़ाबला किया, पर अन्त में उन्हें क़िला ख़ाली कर देना पड़ा और वि० सं० १६१० (ई० स० १५५३) में वहां मलिकखां का क़ब्ज़ा हो गया। मालदेव को इस पराजय से बड़ा दुःख हुआ, अतएव कुछ समय बाद ही वह स्वयं राठोड़ों की बड़ी सेना के साथ जालोर पर जा पहुंचा। मलिकखां का इरादा तो उसका सामना करने का था, पर दूसरे लोगों (अफ़सरों आदि) ने उसे ऐसा करने की राय न दी। जिससे जालोर का परित्याग कर वह सांचोर चला गया। फलतः मालदेव का जालोर पर अधिकार हो गया। मलिकखां भी चुप न बैठा और अपनी ससुराल शामली में रहकर जालोर पर पुनः अधिकार करने के लिए फ़ौज एकत्र करने लगा। लगभग दो वर्ष बाद उसने जालोर पर चढ़ाई कर दी और जालोर के निकट डेरा किया। सात रोज़ तक राठोड़ों ने उसका सामना किया, पर आठवें रोज़ भवनकोट नामक द्वार तोड़कर मलिकखां शहर में घुस गया। राठोड़ों ने क़िले में रहकर कई दिन तक तो उसका सामना किया, पर अन्त में जब बारूद, रसद आदि की कमी हो गई तो उन्होंने क़िला ख़ाली कर दिया, जहां मलिकखां का फिर अधिकार हो गया[1]।

इसी बीच मेड़ते के स्वामी वीरमदेव का देहांत हो गया, जिसका उत्तराधिकारी जयमल हुआ। उससे मालदेव ने कहलाया कि मेरे रहते हुए

(१) सैयद गुलाब मियां; तारीख़ पालनपुर (उर्दू), पृ० १२४-७। नवाब सर ताले मुहम्मदख़ां; पालणपुर राज्यनो इतिहास (गुजराती); भाग १, पृ० ३२-८।

उक्त पुस्तकों में आगे चलकर लिखा है—'जालोर के क़िले पर सरलता से अधिकार होने का एक कारण यह भी बतलाया जाता है कि क़िले में रहनेवाले देशी सिपाहियों एवं राठोड़ों में लड़ाई हो गई और कुछ लोगों ने राठोड़ों से नाराज़ होकर चांपा और माना नाम के राजपूत क़िलेदारों से षड्यन्त्र कर मलिकख़ां को कहलाया कि अब आप बेधड़क आइये, हम आपकी सहायता करेंगे। इसपर मलिकख़ां ने आक्रमण कर राठोड़ों को मारा और जब उन्होंने प्राण-रक्षा की प्रार्थना की तो उनका माल-असबाब ज़ब्त करके उन्हें छोड़ दिया।'

जयमल के साथ की लड़ाई में मालदेव की पराजय

तू सब भूमि दूसरों को न दे, कुछ खालसे के लिए भी रख। जयमल ने अर्जुन (रायमलोत) को ईडवे की जागीर दी थी, अतएव उस(जयमल)ने यह सब हाल उससे भी कहला दिया। राव मालदेव के तो मेड़ता लेने की दिल में लग रही थी, अतएव दशहरा पूजकर उसने ससैन्य मेड़ते पर चढ़ाई कर दी और गांव गांगरड़ा में डेरे हुए। उसकी सेना चारों ओर घूम-घूमकर निरीह प्रजा को लूटने और मारने लगी[1]। ऐसी दशा में जयमल ने बीकानेर आदमी भेजकर राव कल्याणसिंह से मदद करने के लिए कहलाया, जिस-पर उसने महाजन के स्वामी ठाकुर अर्जुनसिंह, शृंगसर के स्वामी शृंग, चाचावाद के स्वामी वणीर, जैतपुर के स्वामी किशनसिंह, पूगल के भाटी हरा के पुत्र बैरसी और बछावत सांगा को सेना सहित उस(जयमल)की सहायतार्थ भेजा[2]। बीकानेर से इन सरदारों के आ जाने से जयमल की शक्ति बहुत बढ़ गई और उसने अपनी तथा बीकानेर की सम्मिलत सेना के साथ मालदेव की सेना का सामना करने के लिए प्रस्थान किया[3]। जैतमाल जयमल का प्रधान था। अखैराज भादा और चांदराज (जोधावत) जयमल के प्रतिष्ठित सरदार और मोकल के वंशज थे। जयमल के कहने से वे राव मालदेव के प्रधान से मिले और उसके साथ मालदेव के पास जाकर उन्होंने कहा कि आप हमें मेड़ता दे दें तो हम आपकी चाकरी करें, परन्तु मालदेव ने इसे स्वीकार न किया। इसपर अखैराज बोल उठा— "मेड़ता दे कौन और ले कौन, जिसने आपको जोधपुर दिया उसी ने हम-

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १६१-२।

(२) मुंहणोत नैणसी तथा जोधपुर राज्य की ख्यात में मेड़तेवालों की सहायता के लिए बीकानेर से सरदारों का आना नहीं लिखा है, पर दयालदास स्पष्टरूप से राव कल्याणमल के पास से उसे सहायता मिलना लिखता है। अधिक संभव तो यही है कि बीकानेर से जयमल को सहायता प्राप्त हुई हो, क्योंकि बिना किसी प्रकार की सहायता के अकेले मालदेव की शक्ति का सामना करना जयमल के लिए संभव नहीं था।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २०।

को 'मेड़ता' दिया है।" इतना कहकर वे वापस लौट गये और जयमल से जाकर उन्होंने सारी हक़ीक़त कही[1]। दूसरे दिन विपक्षी दलों की मुठभेड़ हुई[2]। मेड़ता की सम्मिलित सेना के प्रबल आक्रमण को मालदेव की सेना संभाल न सकी और पीछे हटने लगी। अखैराज और सुरताण पृथ्वीराज तक पहुंच गये और कुछ ही देर में वह (पृथ्वीराज) अखैराज के हाथ से मारा गया। फिर तो मालदेव की सेना के पैर उखड़ गये। जयमल के सरदारों ने कहा कि मालदेव को दबाने का यह अच्छा अवसर है, पर जयमल ने ऐसा करना उचित न समझा। फिर भी बीकानेर के सरदारों ने मालदेव का पीछा किया। इस अवसर पर नगा भारमलोत, शृंग के हाथ से मारा गया और मालदेव अपनी सेना सहित भाग गया। लगभग एक कोस आगे बढ़ने पर बीकानेर के सरदारों ने उसे फिर जा घेरा। मालदेव के सरदार चांदा ने रुककर कुछ साथियों-सहित उनका सामना किया, परन्तु वह घणीर के हाथ से मारा गया[3]। इतनी देर में मालदेव अन्य साथियों सहित बहुत दूर निकल गया था, अतः बीकानेर के सरदार लौट आये और मालदेव के भाग जाने पर जयमल को बधाई दी। जयमल ने कहा—"मालदेव के भागने की क्या बधाई देते हो? मेड़ता रहने की बधाई दो। पहले भी मेड़ता आपकी मदद से रहा था और इस बार भी आपकी सहायता से बचा।" इस लड़ाई में मालदेव का नगारा बीकानेरवालों के हाथ लग गया था, जिसको जयमल ने एक भांभी के हाथ वापस भिजवाया। गांव लांबिया

---

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १६२-३। दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २०-२१।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात में इस घटना का समय (श्रावणादि) वि० सं० १६१० (चैत्रादि १६११) वैशाख सुदि २ (ई० स० १५५४ ता० ४ अप्रेल) दिया है (जि० १, पृ० ७४)।

(३) मुंहणोत नैणसी की ख्यात के अनुसार चांदा मारा नहीं गया, वरन् उसने ही मालदेव तथा अन्य घायल सरदारों को सुरक्षित रूप से जोधपुर पहुंचाया था (जि० २, पृ० १६५-६)।

में पहुंचते-पहुंचते उस(भांभी)के मन में नगारे को बजाने की उत्कट इच्छा हुई, जिससे उसने उसे बजा ही दिया। मालदेव ने जब नगारे की आवाज सुनी तो समझा कि मेड़ते की फ़ौज आ रही है और शीघ्रता से जोधपुर भाग गया। भांभी ने जब वहां जाकर नगारा लौटाया तब उसपर सारा भेद खुला[1]। कुछ दिनों बाद जब बीकानेर के सरदार मेड़ता से लौटने लगे तो जयमल ने उनसे कहा—"राव (कल्याणसिंह) से मेरा मुजरा कहना। मैं उन्हीं की रक्षा के भरोसे मेड़ते में बैठा हूं[2]।"

शेरशाह सूर का ग़ुलाम हाजीख़ां एक प्रबल सेनापति था। अकबर के गद्दी बैठने के समय उसका मेवात (अलवर) पर अधिकार था। वहां

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात में भी मेड़तेवालों के हाथ मालदेव का नगारा लगने और उसके भांभी(बलाई)-द्वारा लौटाये जाने का उल्लेख है। उक्त ख्यात में यह भी लिखा है कि बलाई जब गांव लांबिया के पास पहुंचा तो उसने सोचा कि नगारा तो बजा लेवें, यह तो मालदेव का है सो कल मेरे हाथ से जाता रहेगा। ऐसा सोचकर उसने नगारा बजा दिया, जिसकी आवाज़ सुनकर मालदेव ने चांदा से कहा कि भाई मुझे जोधपुर पहुंचादे। तब चांदा ने उसे सकुशल जोधपुर पहुंचा दिया (जि० २, पृ० १६५-६)।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २०-२। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणसिंहजी का जीवनचरित्र; पृ० ८६-६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० २१।

जोधपुर राज्य की ख्यात में केवल इतना लिखा है—'वीरमदेव के मरने पर जयमल मेड़ता का स्वामी हुआ। उसे राव मालदेव चाकरी में बुलाता पर वह आता नहीं। इसपर राव ने सेना सहित जयमल पर चढ़ाई कर दी। (श्रावणादि) वि० सं० १६१० (चैत्रादि १६११) वैशाख सुदि २ (ई० स० १५५४ ता० ४ अप्रेल) को मेड़ते में युद्ध हुआ, जिसमें राव मालदेव के बहुतसे सरदार काम आये और वह हारकर जोधपुर लौट गया (जि० १, पृ० ७४-५)।' इस विषय की उक्त ख्यात में निम्नलिखित कविता भी दी है—

जैमलजी जपियो जपमालो।
भागो राव मंडोवर वालो॥

मालदेव की हाजीखां पर चढ़ाई

से उसे निकालने के लिए बादशाह अकबर ने पीर-मुहम्मद सरवानी (नासिरुल्मुल्क) को भेजा। उसके पहुंचने से पहले ही वह भागकर अजमेर चला गया[1]। राव मालदेव ने उसे लूटने के लिए पृथ्वीराज (जैतावत) को भेजा[2]। अकेले हाजीख़ां की उसका सामना करने की सामर्थ्य न थी, अतएव उसने राणा उदयसिंह के पास अपने दूत भेजकर कहलाया कि मालदेव हमसे लड़ना चाहता है, आप हमारी सहायता करें। ऐसे ही उसने बीकानेर के राव कल्याणमल से भी सहायता मांगी। इसपर महाराणा ५००० फ़ौज लेकर अजमेर गया। इतनी ही सेना बीकानेर से राव कल्याणमल ने महाजन के स्वामी ठाकुर अर्जुनसिंह, जैतपुर के स्वामी रावत किशनदास और सेवारा के स्वामी नारण की अध्यक्षता में हाजीख़ां की सहायतार्थ भेजी। इस बड़े सम्मिलित कटक को देखकर जोधपुर के अन्य सरदारों ने पृथ्वीराज से कहा कि राव मालदेव के अच्छे-अच्छे सरदार पहले ही (शेरशाह आदि के साथ की लड़ाइयों में) मारे जा चुके हैं, यदि हम भी काम आये तो राव बहुत निर्बल हो जायगा। इतनी बड़ी सेना का सामना करना कठिन है, इसलिए लौट जाना ही अच्छा है। इसपर मालदेव की सेना बिना लड़े ही लौट गई और राणा तथा कल्याणमल के सरदार आदि भी अपने-अपने स्थानों को चले गये[3]।

---

(१) अकबरनामा—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ६, पृ० २१-२।

(२) यह घटना वि० सं० १६१३ या उससे कुछ पहले की होगी, क्योंकि हाजीख़ां की राणा उदयसिंह के साथ की लड़ाई, जिसमें मालदेव हाजीख़ां की मदद पर था, वि० सं० १६१३ फाल्गुन वदि १२ (ई० स० १५५७ ता० २७ जनवरी) को हुई थी (बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १२३८)।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २३। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० ६८-६।

मेरे "राजपूताने के इतिहास" (जि० २, पृ० ७२०) में मुंहणोत नैणसी, बांकीदास और कविराजा श्यामलदास के आधार पर कल्याणमल का हाजीख़ां की दूसरी

इस सहायता के बदले में महाराणा ने हाजीख़ां से रंगराय पातर (वेश्या) को, जो उसकी प्रेयसी थी, मांगा। हाजीख़ां ने यह कहकर कि यह तो मेरी औरत है, इसे मैं कैसे दूं, उसे देने से इनकार कर दिया। सरदारों ने भी महाराणा को ऐसी कुत्सित मांग न करने के लिए समझाया, परन्तु उसने उनकी एक न सुनी और हाजीख़ां के इनकार करने पर भी उसपर चढ़ाई कर दी[1]। ऐसी दशा में हाजीख़ां ने राव मालदेव से सहायता मांगी। मालदेव का पहले ही महाराणा से विरोध हो चुका था, इसलिए उसने राठोड़ देवीदास (जैतावत), जैतमल (जैसावत) आदि के साथ अपनी सेना उस (हाज़ीख़ां) की सहायतार्थ भेज दी। वि० सं० १६१३ फाल्गुन वदि ६ (१५५७ ता० २४ जनवरी) को हरमाड़ा (अजमेर ज़िला) नामक स्थान में राणा उदयसिंह और हाजीख़ां तथा मालदेव की सम्मिलित सेना में युद्ध हुआ[2]। राव तेजसिंह और वालीसा (वालेचा) सूजा ने कहा कि लड़ाई न की जाय, क्योंकि पांच हज़ार पठानों और डेढ़ हजार राजपूतों को मारना कठिन है, परन्तु राणा ने उनकी वात न सुनी। हाजीख़ां ने एक सेना तो आगे भेज दी और स्वयं एक हज़ार सवारों को लेकर एक पहाड़ी के पीछे जा

मालदेव का हाजीख़ां की सहायतार्थ जाना

लड़ाई में राणा उदयसिंह के पक्ष में लड़ना लिखा गया है, परन्तु बाद के शोध से यह निश्चित रूप से पता लग गया है कि मालदेव के हाजीख़ां पर चढ़ाई करने के समय उस (कल्याणमल) ने हाजीख़ां की सहायतार्थ सेना भेजी थी। उस समय उदयसिंह भी उसकी सहायता को गया था। कल्याणमल का मालदेव से वैर था और शेरशाह ने उसको राज्य दिलाया था, जिससे वह (कल्याणमल) उसका अनुगृहीत था। ऐसी दशा में उसका मालदेव के विरुद्ध हाजीख़ां की सहायतार्थ सेना भेजना ही ठीक जान पड़ता है। इसलिए इस विषय का दयालदास का ही कथन अधिक विश्वसनीय है।

(१) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ७१६-२०।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७५-६। बांकीदास ने युद्ध का समय वि० सं० १६१३ फाल्गुन (ई० स० १५५७) दिया है (ऐतिहासिक बातें; संख्या १२३८)।

छिपा। जब राणा की सेना शत्रु-सैन्य के बीच पहुंची तब पीछे से हाजीख़ां ने भी उसपर हमला कर दिया। उसका एक तीर राणा को लगा और उसकी फ़ौज ने पीठ दिखाई। इस लड़ाई में राव तेजसिंह (डूंगरसिंहोत), वालीसा सूजा आदि महाराणा की तरफ़ के प्रतिष्ठित वीर काम आये[1]।

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि उपर्युक्त लड़ाई के समय मेड़ते का स्वामी जयमल भी राणा की मदद पर था। उसके भागते ही, वह भी मेड़ते की तरफ़ भागा। उसके पीछे-पीछे ही मालदेव की सेना गई, जिससे जयमल को फाल्गुन वदि १२ (ई० स० १५५७ ता० २७ जनवरी) को मेड़ते का परित्याग कर भागना पड़ा[2]। इसके कुछ दिनों बाद वि० सं० १६१४ (ई० स० १५५७) में वहां राज्य की तरफ़ से मालकोट बनाया गया[3], जिसके दो वर्ष बाद बनकर सम्पूर्ण होने पर वहां की किलेदारी पीछे से देवीदास जैतावत को सौंपी गई[4]।

जयमल का मेड़ता छोड़ना

(१) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ७२० (उस स्थल पर राव कल्याणमल का उदयसिंह की सहायतार्थ जाना लिख दिया है, जो ठीक नहीं है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, वह मालदेव की चढ़ाई के समय हाजीख़ां की सहायतार्थ गया था)। जोधपुर राज्य की ख्यात में भी कल्याणमल का राणा की सहायतार्थ आना और उसके परास्त होने पर भागना लिखा है (जि० १, पृ० ७६) जो ठीक नहीं है (देखो दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २३)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७६। दयालदास की ख्यात में लिखा है कि हाजीख़ां और राव दोनों ने मिलकर मेड़ता छुड़ाया (जि० २, पत्र २३)। बांकीदास की पुस्तक (ऐतिहासिक बातें; संख्या १३००) से पाया जाता है कि यह पता लगने पर कि मेड़ते में जयमल का कोई आदमी नहीं है वि० सं० १६१३ श्रावण सुदि १२ (ई० स० १५५६ ता० २० जुलाई) को मालदेव वहां गया, पर यह समय ठीक नहीं है।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७६।

(४) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १३०३।

हिजरी सन् ६६३ (वि० सं० १६१२ = ई० स० १५५६) में हुमायूं का देहांत होने के बाद उसका पुत्र अकबर देहली की बादशाहत का अधिकारी हो गया था। हाजीख़ां के अजमेर पर अधिकार करने और उसकी बढ़ती हुई शक्ति का पता पाकर उसने उसका दमन करने के लिए शाही सेना भेजी।

बादशाही सेना का जैतारण पर अधिकार करना

तीसरे राज्य वर्ष के आरम्भ में हि० स० ६६५ (वि० सं० १६१५ = ई० स० १५५८) में जिन दिनों बादशाह लाहोर से लौटता हुआ सतलज पारकर लुधियाना के पास ठहरा हुआ था, उसके पास यह ख़बर पहुंची कि हाजीख़ां बराबर शाही सेना का सामना कर रहा है। उसी समय यह निश्चय किया गया कि हिसार तक सेना भेजकर इसका ठीक पता लगाया जाय और यदि आवश्यकता हो तो सेना उस(हाजीख़ां)पर और भी भेजी जाय। इसके अनुसार नासिरुलमुल्क की अध्यक्षता में फ़ौज उधर रवाना की गई। फिर बादशाह सरहिन्द गया, जहां से उसने भी हिसार की तरफ़ प्रस्थान किया। ये सब ख़बरें पाकर हाजीख़ां गुजरात की तरफ़ भाग गया और निशापुर के मुहम्मद कासिमख़ां ने जाकर अजमेर पर कब्ज़ा कर लिया। उन्हीं दिनों शाह कुलीख़ां महरम तथा अन्य कई अफ़सर शाही फ़ौज के साथ जैतारण भेजे गये। थोड़ी लड़ाई के बाद वहां भी बादशाह का अधिकार हो गया[1]।

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि जो शाही सेना जैतारण पर आई उसमें राजा भारमल, जगमाल, पृथ्वीराज, राठोड़ जयमल, ईश्वर वीरमदेवोत आदि भी साथ थे[2]। जैतारण के हाकिम ने मालदेव को सहायता भेजने के लिए लिखा था, पर उसने अपने आदमी उधर न भेजे, जिससे राठोड़ रत्नसिंह (खींवावत), राठोड़ किशनसिंह (जैतसिंहोत) आदि वहां

(१) अबुलफ़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १०२-३। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० ६।

(२) फ़ारसी तवारीख़ों में इनके नाम नहीं मिलते।

के सरदार मारे गये और बादशाह की फ़ौज का वहां अधिकार हो गया[1]।

छठे राज्य वर्ष के अंतिम दिनों में शहरयूर तारीख़ ४ वहमन (वि० सं० १६१८ माघ सुदि द्वितीय ६ = ई० स० १५६२ ता० १४ जनवरी) को

शाही सेना का मेड़ता पर अधिकार करना

बादशाह अकबर ने अजमेर की ओर प्रस्थान किया। सांभर[2] पहुंचने पर शरफ़ुद्दीन हुसेन मिर्ज़ा उसकी सेवा में उपस्थित हुआ, जिसे पीछे से बादशाह ने मेड़ता विजय करने की आज्ञा दी। फिर आगरा लौटने से पूर्व उसने तरसूं मुहम्मदख़ां, शाह बुदाग़ और उसके बेटे अब्दुल मतलब आदि कई निकट के जागीरदार मिर्ज़ा की सहायता के लिए नियत कर दिये[3]।

उन दिनों मेड़ता मालदेव के अधीन था, जो भारत के शक्तिशाली राजाओं में से एक था। उसने वह किला जगमल (जगमाल[4]) के सिपुर्द करके उसकी सहायतार्थ राठोड़ देवदास (देवीदास[5]) को ५०० सैनिकों

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७६-७। उक्त ख्यात में इस घटना का समय वि० सं० १६१६ चैत्र वदि ६ (ई० स० १५६० ता० २० मार्च) दिया है, जो विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि फ़ारसी तवारीख़ों के अनुसार यह घटना वि० सं० १६१४ (ई० स० १५५७) की है।

(२) कविराजा श्यामलदास-कृत वीरविनोद (भाग २, पृ० ८१२) से पाया जाता है कि बादशाह के सांभर रहते समय ही मेड़ते का जयमल उसकी सेवा में उपस्थित हुआ था, जिसको मेड़ता दिलाने के लिए बादशाह ने शरफ़ुद्दीन हुसैन मिर्ज़ा को साथ कर दिया। आगे चलकर 'अकबरनामे' से भी जयमल का शाही सेना के साथ होना पाया जाता है। संभवतः यह मेड़ते का ही जयमल रहा होगा। बांकीदास ने भी जयमल का शाही सेवा में जाना और बादशाह का मेड़ता दिलाने के लिए शरफ़ुद्दीन मिर्ज़ा का उसके साथ करना लिखा है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८३४ और १३०४)।

(३) अबुल्फ़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० २४०-३।

(४) मालदेव की तरफ़ से मेड़ते का क़िलेदार रहा होगा। निज़ामुद्दीन (तबक़ात-इ अकबरी) में इसे जयमल लिख दिया है, जो ठीक नहीं है। उसे तो मालदेव ने मेड़ते से निकाल दिया था।

(५) जगमाल का अधीनस्थ अफ़सर रहा होगा।

के साथ वहां रख दिया था। बादशाह के राजधानी (आगरा) की तरफ़ प्रस्थान करने के बाद शरफ़ुद्दीन हुसेन मिर्ज़ा अन्य अफ़सरों तथा शाही सेना के साथ मेड़ता विजय करने के लिए रवाना हुआ। मुग़ल सेना के क़िले तक पहुंचने पर राठोड़ों ने क़िले में शरण ली[1]। शाही सेना में से चार सवारों ने आगे बढ़कर क़िले के फाटक पर तीरों की वर्षा की। इसपर राठोड़ क़िले पर के सुरक्षित स्थानों के पीछे से उनपर ईंट, पत्थर, तीर, गोलियां आदि फेंकने लगे, जिससे सवारों में से दो तो खेत रहे और शेष दो घायल दशा में शाही फ़ौज में लौटे। तब शाही सेना ने अपनी गति धीमी कर पहले मेड़ता नगर में कई स्थानों पर अपने थाने स्थापित किये। फिर क़िले को चारों ओर से घेरकर उसके कई तरफ़ सुरंगें खुदवाई गईं। क़िले के भीतर से राठोड़ भी मुसलमानों के हमले का जवाब देते रहे। कई दिन तक इसी प्रकार भीषण युद्ध होता रहा। मुसलमान सैनिक जब अवसर पाते आगे बढ़कर आक्रमण करते और फिर पीछे हट आते। इसी बीच एक सुरंग भीतर ही भीतर क़िले की बुर्ज़ के नीचे तक खोदी जा चुकी थी। मुसलमानों ने उसमें बारूद भरकर आग लगा दी, जिससे बुर्ज़ छिन्न-भिन्न होकर गिर पड़ी और मुसलमान उधर से भीतर घुस गये। राजपूतों ने जीवन का मोह त्यागकर उनसे युद्ध किया। दिन भर भीषण युद्ध हुआ, जिसमें दोनों ओर के लोगों ने बड़ी बहादुरी दिखलाई। रात्रि होने पर जब मुसलमानी सेना सुरक्षित स्थानों में लौट गई तो क़िले के भीतर के लोगों ने शीघ्रता पूर्वक एक रात के अल्प समय में ही फिर से बुर्ज बना ली। गढ़ के भीतर रहकर राठोड़ों का लड़ना भी जब कठिन हो गया तो उनमें से कुछ ने आकर सन्धि की बात

---

(१) बांकीदास लिखता है कि मुग़ल सेना की मेड़ते पर चढ़ाई होने पर मालदेव ने कुंवर चंद्रसेन को देवीदास के पास यह कहकर मेड़ते भेजा कि यदि युद्ध करने का मौक़ा देखो तो लड़ना नहीं तो लौट आना। बादशाही सेना की प्रबलता देखकर चन्द्रसेन तो लौट गया, पर देवीदास (लड़ने के लिए) क़िले में जा बैठा (ऐतिहासिक बातें; संख्या १२०५-६)।

की। शरफ़ुद्दीन पहले इसके लिए राज़ी न था, पर पीछे से अपने साथ के अफ़सरों से सलाहकर उसने यह तय किया कि गढ़ के भीतर के लोग तमाम असबाब छोड़कर बाहर चले जावें। दूसरे दिन जगमाल तो उक्त शर्त के अनुसार बाहर चला गया, परन्तु देवीदास ने मृत्यु का आवाहन करना पसन्द किया और अपना सारा सामान जलाकर अपने चार पांच सौ साथियों सहित शत्रु के सामने आया। जयमल आदि ने, जिनका क़िले-वालों से पुराना वैर था, इस घटना की शरफ़ुद्दीन को खबर दी। इसपर शरफ़ुद्दीन की आज्ञानुसार मुग़ल सेना ने उस (देवीदास) का पीछा किया। उस समय जयमल तथा अन्य राजपूत आदि मुसलमानी सेना की दाहिनी तरफ़ थे। देवीदास ने रुककर उनका सामना किया। दोनो दलों में बड़ी लड़ाई हुई पर देवीदास बच न सका। उसके घोड़े से गिरते ही शाही सैनिकों के एक गिरोह ने उसका ख़ात्मा कर दिया[1]। इस पराजय के बाद दूसरे राजपूत सरदार गढ़ छोड़कर चले गये और मेड़ते पर शाही सेना का अधिकार हो गया[2]। इसके बाद राव मालदेव ने मेड़ते पर कोई सेना

(१) बांकीदास के ऐतिहासिक बातों के संग्रह से पाया जाता है कि देवीदास को जाते देखकर जयमल ने शरफ़ुद्दीन से कहा कि यदि यह जीवित जोधपुर पहुंच गया तो मालदेव को चढ़ा लायेगा; अतएव इसको मार देना ही ठीक है। यह सलाह ठीक समझकर मिर्ज़ा आदि ने उसका पीछा किया। गांव सांतलियावास पहुंचने पर लड़ाई हुई, जिसमें देवीदास अपने बहुत से साथियों सहित काम आया (संख्या-१३०६)। उक्त पुस्तक में इस घटना का समय वि० सं० १६१८ चैत्र सुदि १५ (ई० स० १५६१ ता० ३१ मार्च) दिया है। "वीरविनोद" में वि० सं० १६१६ ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष में मिर्जा का जयमल मेडतिये के साथ मेड़ते पर भेजा जाना लिखा है (भाग २, पृ० ८१२)। वि० सं० १६१६ चैत्र सुदि ६ (ई० स० १५६२ ता० ११ मार्च) को बादशाह का सातवां राज्य वर्ष आरम्भ हुआ था। उसके आसपास ही किसी समय यह लड़ाई हुई होगी।

(२) अबुल्फ़ज़्ल; अकबर नामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० २४८-५०। वीरविनोद, भाग २, पृ० ८१२-३।

वीरविनोद से पाया जाता है कि मेड़ता विजयकर मिर्ज़ा (शरफ़ुद्दीन) ने जयमल

न भेजी[1]।

मालदेव को दूसरे देश जीतकर अपना राज्य विस्तार करने की जैसी इच्छा रहती थी, वैसे ही वह विजित प्रदेशों को सुदृढ़ करने में भी प्रयत्नशील रहता था। उसने पुराने दुर्गों आदि की मरम्मत और विस्तार कराने के साथ ही कितने एक नये दुर्ग भी बनवाये। जोधपुर के गढ़ के कोट के साथ उसने राणीसर का कोट और शहरपनाह बनवाया तथा नागोर में गढ़ का जीर्णोद्धार कराया। सातलमेर का कोट नष्टकर वहां के सामान से उसने वि० सं० १६०८ (ई० स० १५५१) में पोकरण में पहले की धरी हुई नींव पर नया कोट बनवाया। मेड़ते के मालकोट का उल्लेख ऊपर आ चुका है। इसके अतिरिक्त सोजत, रायपुर, गूंदोच, भाद्राजूण, रीयां, सिवाणा, पीपाड़, नाडोल, कुण्डल (सिवाणा के पास), फलोधी और दुनाड़ा के कोट भी मालदेव के बनवाये हुए माने जाते हैं। अजमेर के गढ़ (तारागढ़) के पास के नूरचश्मे की तरफ़ के बुर्ज और कोट तथा पानी ऊपर चढ़ाने के रहट (पावटे अर्थात् पैर से चलाये जानेवाले) भी उसी के समय के हैं[2]।

मालदेव के बनवाये हुए स्थान

वि० सं० १६१६ कार्तिक सुदि १२ (ई० स० १५६२ ता० ७ नवम्बर) को जोधपुर में राव मालदेव का स्वर्गवास हो गया[3]।

मालदेव की मृत्यु

को दे दिया। वि० सं० १६१६ (ई० स० १५६२) आश्विन शुक्ल पक्ष में मिर्ज़ा बाग़ी हो गया, जिसपर बादशाह ने मेड़ता जयमल से छीनकर जगमाल को दे दिया। जयमल इसपर चित्तोड़ चला गया, जहां महाराणा उदयसिंह ने उसे बदनोर की जागीर दी, जो अब तक उसके वंशजों के अधिकार में है (भाग २, पृ० ८१३)।

(१) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १५०८-६।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृष्ठ ७८-६।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६८। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८१३। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १५०८ में कार्तिक सुदि १५ दिया है; परन्तु संख्या २३५ में कार्तिक सुदि १२ ही दिया है।

जोधपुर राज्य की ख्यात में राव मालदेव की २५ राणियों[1] के नाम मिलते हैं, जिनसे उसके १२ पुत्र[2]—राम[3], रायपाल, चन्द्रसेन, उदयसिंह, रायमल[4],

(१) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली में केवल २२ राणियों के नाम दिये हैं। इनमें से एक मारवाड़ में रूठीराणी के नाम से अब तक प्रसिद्ध है। वह जैसलमेर के रावल लूणकर्ण की पुत्री उमादे थी, जिससे मालदेव का विवाह वि० सं० १५६३ (चैत्रादि १५६४) वैशाख वदि ४ (ई० स० १५३६ ता० ३० मार्च) को हुआ था। किसी कारण वश स्वामी से मनमुटाव हो जाने पर वह उससे प्रारम्भ से ही विरक्त रही और जब मालदेव ने अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को निर्वासित किया तो वह भी उसके साथ केलवे चली गई तथा फिर कभी न लौटी। मालदेव की मृत्यु का समाचार पाकर वह वि० सं० १६१६ कार्तिक सुदि १५ (ई० स० १५६२ ता० १० नवंबर) को केलवे में सती हुई।

मालदेव की एक अन्य राणी झाली सरूपदे (सूजा राजावत की पुत्री) का बनवाया हुआ सरूपसागर तालाब मंडोवर के मार्ग के निकट अब तक विद्यमान है। अब उसे बहूजी का तालाब कहते हैं।

(२) बांकीदास ने केवल ११ पुत्रों के नाम दिये हैं (ऐतिहासिक बातें; संख्या १५४)।

(३) कछवाही लाछलदे का पुत्र। इसका कुछ वृत्तान्त ऊपर आ चुका है। इसका जन्म वि० सं० १५८८ (ई० स० १५३१) में हुआ था और इसके ७ पुत्र करण, कल्ला, केशवदास (इसकी ओलाद आमझरा [मालवा] में रही), नारायण, भोंपत, कालू और पूरनमल हुए (मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली)।

(४) झाली राणी हीरादे—माना झाला की पुत्री—का पुत्र। इसके वंशज रायमलोत जोधा कहलाते हैं। इसके पांच पुत्र—कल्याण, प्रताप, बलभद्र, कान्हा और सावंतसिंह—हुए (बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १६७६। मुंशी देवीप्रसाद द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली)।

राणियां तथा सन्तति

भांण, रतनसी,[1] भोजराज,[2] विक्रमादित, पृथ्वीराज, आसकरण[3] और गोपाल[4] हुए[5]।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार राव मालदेव के कई पुत्रियां[6] भी हुई थीं, जिनमें से कुछ के नाम नीचे लिखे अनुसार हैं[7]—

१—राजकंवरबाई—इसका विवाह बूंदी के हाड़ा सुरताण से हुआ।

२—पोहपावती (पुष्पावती) बाई—इसका विवाह डूंगरपुर के रावल आसकरण के साथ हुआ।

---

(१) आहाड़ी लाछां (रतनादे) का पुत्र। इसको भाद्राजूण की जागीर मिली थी। इसके सात पुत्र सुरताण, जैतसी, सुंदरदास, दलपत, शादूल, नाथा और पंचायण हुए। पंचायण के वंशज भाद्राजूण में है और रतनोत जोधा कहलाते हैं (मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १६७८)।

(२) रतनसी का सगा भाई। इसके चार पुत्र शिवदास, ईश्वरदास, कर्मसिंह और कान्ह हुए (मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली)।

(३) जादव राजबाई का पुत्र। वि० सं० १६०८ कार्तिक वदि १ को इसका जन्म हुआ था पर पांच वर्ष की अवस्था में ही इसका देहांत हो गया। (मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली।

(४) राणी सोनगरी का पुत्र। यह राव (मालदेव) से रूठकर ईडर चला गया, जहां इसे चावड़ों ने मार डाला (मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली)।

(५) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृष्ठ ८०-३। टॉड ने भी मालदेव के बारह पुत्र होना लिखा है (राजस्थान; जि० २, पृ० ९५९-६०)।

बांकीदास (ऐतिहासिक बातें; संख्या १६८५) के अनुसार मालदेव के एक पुत्र का नाम महेशदास था, जिसके वंशज क्रमशः गोइंददास, सबलसिंह, दुर्जनसिंह, सूरजमल, जालमसिंह, जवानसिंह और भारतसिंह हुए। उनके अधिकार में पाटोदी है।

(६) जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया है कि राव मालदेव की टीपू नाम की एक पातर से उत्पन्न रुक्मावतीबाई का विवाह बादशाह अकबर के साथ हुआ था (जि० १, पृ० ८३)। बांकीदास ने भी इसका उल्लेख किया है। उसके अनुसार अकबर के पास इसका डोला गया था। (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८४८ तथा ८५६)।

(७) जि० १, पृ० ८०-३।

३—हांसबाई—अमरसर के कछवाहा लूणकरण के साथ ब्याही गई।

४—सजनांबाई[1]—इसका विवाह जैसलमेर के रावल हरराज के साथ हुआ।

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार रावल भीम का जन्म इसी से हुआ था। "तवारीख़ जैसलमेर" में इसका नाम हरखमदे दिया है और इससे भाखरसिंह का जन्म होना लिखा है (पृ० ५३)। व्यास गोविन्द मधुवन-रचित "भट्टिवंश-प्रशस्ति" नामक काव्य में राठोड़ मालदेव की पुत्री हर्षमदेवी का विवाह रावल मालदेव के पुत्र रावल हरराज (हरिराज) से होना और उससे एक पुत्र का होना लिखा है, जिसका नाम नहीं दिया है। इसका कारण यही है कि उसमें क्रमशः राजाओं का ही वर्णन है।

यं योधवप्राधिपमल्लभूपतिः
विश्वो········धारकः।
लक्ष्म्यंशपुत्र्या वरमात्मसंमतं
वाञ्छन् स दृष्ट्वा हरिराजमालभत् ॥६३॥

सा मल्लपुत्री नृपमल्लनंदनं
संप्राप्य भर्तारमनिंद्यविक्रमं
पूर्णाभिकामा भवदार्यसंमता
विष्णुं रमेवाथ शिवं नगात्मजा ॥६५॥

लेभे सुतं सा हरिराजभूपते
हर्षम्मदेवी दिवसाधिपद्युतिं।
गौरी गिरिशादिव देवसैन्यं
शक्राज्जयंतं च शचीव शोभनं ॥६७॥

उक्त प्रशस्ति के श्लोक ११० से पाया जाता है कि उसकी रचना रावल कल्याणमल्ल और उसके कुंवर मनोहरसिंह के समय में हुई थी। कल्याणमल्ल के समय के शिलालेख वि० सं० १६७२ से १६८३ (ई० स० १६१५ से १६२६) तक के और उसके पुत्र मनोहरसिंह का पहला शिलालेख वि० सं० १६८५ (ई० स० १६२८) का मिला है; अतएव उक्त प्रशस्ति की रचना वि० सं० १६८५ से कुछ वर्ष पहले ही हुई होगी।

५—मानमतीबाई— बांधोगढ़ (रीवां) के बघेल वीरभद्र के साथ ब्याही गई।
६—इन्द्रावतीबाई— इसका विवाह कछवाहा राजा आसकरण के साथ हुआ।
७—दुर्गावतीबाई—इसका विवाह आमेर के कछवाहा राजा भगवानदास के साथ हुआ।
८—मीरांबाई—इसका विवाह वागड़ में हुआ।
९—बाल्हबाई—इसका विवाह उमरकोट के सोढ़ा रायसल के साथ हुआ।

राव मालदेव का व्यक्तित्व

राव मालदेव अपने समय का प्रतापी और शक्तिशाली शासक था। अबुल्फ़ज़ल उसके विषय में लिखता है—"वह भारत के शक्तिशाली राजाओं में से एक था"। उसके पूर्व मारवाड़-राज्य की स्थिति सामान्य थी, जिसको उसने अपने बाहु-बल से अत्यधिक बढ़ाया। वह वीर होने के साथ ही एक महत्वाकांक्षी पुरुष था। वह आस-पास के स्थानों को दबाकर एक विशाल राज्य की स्थापना करना चाहता था। अतएव केवल मारवाड़ के सरदारों को ही अधीन बनाकर उसे सन्तोष न हुआ, अपितु उसने कुछ दिनों के लिए बीकानेर का बड़ा राज्य भी हस्तगत कर लिया। वह अपनी धुन का पक्का और मिज़ाज का जिद्दी था। यही कारण है कि सिंहासनारूढ़ होने पर उसने मेड़ते के स्वामी को निकालकर अपने पुराने वैर का बदला लिया। जहां ऐसे उसके राज्य का विस्तार बहुत बढ़ा, वहां इससे हानि भी कम न हुई। बीकानेर और मेड़ते के स्वामियों ने उसकी बढ़ती हुई शक्ति का नाश करने तथा अपने गये हुए राज्य को वापस लेने के लिए शेरशाह सूर की शरण ली, जो उस समय हुमायूं को भगाकर दिल्ली का बादशाह बन गया था। इधर हुमायूं के पतन से लाभ उठाने के लिए, उसे सहायता का वचन देकर मालदेव ने अपने राज्य के भीतर बुलाया, परन्तु चतुर शेरशाह की सावधानी और समयानुकूल कूट चाल के कारण उसका सारा मन्सूबा खाक में मिल गया। इसके कुछ ही दिनों बाद शेरशाह की जोधपुर पर चढ़ाई हुई। बीकानेर और मेड़ते के स्वामियों को साथ लेकर

वह सेना सहित अजमेर के दक्षिण तक आया तो सही, पर मालदेव की शक्ति से भलीभांति परिचित होने के कारण उसकी एकाएक उसपर हमला करने की हिम्मत न हुई। फ़रिश्ता लिखता है कि—"उस समय शेरशाह को लड़ाई से मुंह मोड़ना ही ठीक जान पड़ता था।" पीछे से भी उसने शत्रु पर आक्रमण करने की हानियां समझकर कूटनीति से काम लिया। उसने जाली पत्रों के द्वारा मालदेव के मन में सरदारों के प्रति सन्देह उत्पन्न करा दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि शक्की मालदेव सरदारों के बहुत कुछ विश्वास दिलाने पर भी युद्ध करने को रज़ामन्द न हुआ और बिना लड़े ही भाग गया। फल वही हुआ जो ऐसी दशा में होना चाहिये था। मालदेव को राज्य से हाथ धोकर पहाड़ों की शरण लेनी पड़ी। यह घटना, एक प्रकार से उसकी मानसिक दुर्बलता प्रकट करती है। इसी दुर्बलता के कारण उसे एक बार और भी मेड़ते के जयमल से हारकर भागना पड़ा था। इतना होने पर भी वह हताश होना न जानता था। शेरशाह की जीवितावस्था में अपने गये हुए राज्य पर पीछा अधिकार करना निष्फल ही होता, अतएव वह धैर्य के साथ पहाड़ों में रहकर अवसर की बाट देखता रहा। शेरशाह की जीवितावस्था में अपने राज्य पर पुनः अधिकार करने की उसकी हिम्मत न पड़ी, परन्तु उस (शेरशाह) की मृत्यु होते ही तज्जनित अव्यवस्था से लाभ उठाकर उसने अपने राज्य पर फिर अधिकार कर लिया। फिर तो उसने मुसलमानों से छेड़-छाड़ करना ही छोड़ दिया। अकबर के राज्य-समय मालदेव के जीवन-काल में ही दो बार उसकी सेनायें क्रमशः जैतारण और मेड़ते पर आईं, परन्तु एक बार भी मालदेव ने उनका अवरोध न किया। शेरशाह की चढ़ाई के बाद से ही उसे मुसलमानों के उत्कर्ष का आभास हो गया था। अकेले उनका सामना करना उसके सामर्थ्य के बाहर की बात थी। अन्य पड़ोसी राजाओं से, जिनसे उसे ऐसे अवसरों पर सहायता मिल सकती थी, वह पहले ही बिगाड़ कर बैठा था।

राव मालदेव क़िलों को राज्य-रक्षा का साधन मानता था अतः जहां-जहां वह विजय करता वहां वह मजबूत क़िले बनवाता और अपने चुने

हुए राजपूत वीरों को वहां रखता था। अजमेर के तारागढ़ दुर्ग पर पानी के अभाव के कारण युद्ध के समय शत्रुसेना का शीघ्रता से अधिकार हो जाता था। अतएव उक्त दुर्ग को उसने सुदृढ़ कर, इस अभाव को मिटाने के लिए पहाड़ के नीचे बहनेवाले नूर चश्मे से हौज़ों और रहटों के द्वारा जल ऊपर पहुंचाने का बन्दोबस्त किया। उसका यह कार्य क़िले की रक्षा और आवश्यकता की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण था।

राव मालदेव में जहां इतने गुण थे, वहां दुर्गुणों का भी अभाव न था। उसमें विवेचनात्मक बुद्धि और संघटन-शक्ति की पूर्णतया कमी थी। वह आगा-पीछा सोचे बिना ही कार्य कर बैठता था, जिसका दुःखद परिणाम उसको अनेकों बार भोगना पड़ा। लोकप्रिय न होने के साथही उसमें राजनीति की योग्यता भी यथेष्ट न थी। शेरशाह को परास्त करने का अवसर गिरीं में उपस्थित हुआ था, परन्तु अपनी शंकाशीलता के कारण वह उससे लाभ न उठा सका और शेरशाह के जाल में फंस गया। यदि उसमें उपयुक्त दुर्बलतायें न होतीं तो वह भारत में हिन्दू-राज्य की स्थापना कर सकता था। वह मारवाड़ का पहला ही प्रतापी राजा था। उसने अपने बाहुबल से बड़ा राज्य क़ायम किया, परन्तु उसके नाश का बीजारोपण भी वह अपने हाथ से ही कर गया। अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को राज्य से निर्वासित कर उसने छोटी राणी के बहकाने में आकर उसके पुत्र चन्द्रसेन को अपना उत्तराधिकारी नियत किया, जो उस(मालदेव)का तीसरा पुत्र था। इस अन्यायोचित कार्य का फल यह हुआ कि मालदेव का देहान्त होने के कुछ दिनों बाद ही बादशाह अकबर ने जोधपुर भी छीन लिया, जिससे विवश होकर उस(मालदेव)के पुत्रों को बादशाह के आश्रय में रहना पड़ा।

इसके साथ ही अपने पिता को मारकर उसने एक ऐसा कलंक अपने चरित्र में लगाया, जो इतिहास-जगत् में सदा अमिट रहेगा।

चन्द्रसेन

राव चन्द्रसेन का जन्म वि० सं० १५९८ श्रावण सुदि ८ (ई० स० १५४१ ता० ३० जुलाई) को हुआ था[1]। ऊपर लिखा जा चुका है कि ज्येष्ठ पुत्र राम था, पर उससे अप्रसन्न होकर मालदेव ने उसे राज्य से निर्वासित कर दिया, जिसपर वह केलवा (मेवाड़) में जाकर रहने लगा[2]। उससे छोटा उदयसिंह था, जिसे मालदेव ने फलोधी की जागीर दी और उससे भी छोटे चन्द्रसेन को उसने अपना उत्तराधिकारी नियत किया था[3]। अतएव पिता का देहांत होने पर

जन्म तथा गद्दीनशीनी

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ८५। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ३६४। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८२३। चंडू के यहां के जन्मपत्रियों के संग्रह में श्रावण वदि ८ दिया है, परंतु साथ ही उसी लेखक ने शुद्ध कर सुदि ८ लिख दिया है। उसमें दी हुई कुंडली के अनुसार चन्द्रसेन का जन्म अनुराधा नक्षत्र में होने के कारण चन्द्रमा वृश्चिक का है और सूर्य कर्क का है, जो श्रावण वदि ८ को नहीं, किन्तु श्रावण सुदि ८ को आते हैं।

(२) देखो ऊपर पृ० ३१०-११।

(३) इस सम्बन्ध में जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—"(भटियाणी उमादे के चले जाने पर) जोधपुर में झाली स्वरूपदे का प्रभुत्व बढ़ गया। उसका बड़ा पुत्र उदयसिंह था पर वह स्वभाव का बड़ा उग्र था। वह अपनी माता से मिलता-जुलता न था, जिससे वह उससे अप्रसन्न रहती थी। गढ़ पर इन दोनों के लिए नये महलों का निर्माण हो रहा था। उदयसिंह का महल पहले तैयार हो जाने के कारण, उसकी माता ने वह महल उससे मांगा। इसपर उसने उत्तर दिया कि आप तो जोधपुर के स्वामी की पटराणी हैं, आपका ही हुक्म चलता है; आप मुझसे महल क्या मांगती हैं। इसपर स्वरूपदे उससे नाराज़ हो गई और उसने राव से कहकर अपने दूसरे पुत्र चन्द्रसेन को युवराज नियत कराया। राव मालदेव ने उदयसिंह को फलोधी की जागीर देकर उधर भेज दिया (जि० १, पृ० ११४-५)।" "वीरविनोद" में केवल इतना लिखा है कि किसी नाराज़गी के कारण झाली राणी (स्वरूपदे) ने उदयसिंह को निकलवाकर चन्द्रसेन को युवराज बनाया (भाग २, पृ० ८१३)।

वि० सं० १६१६ पौष सुदि ६ (ई० स० १५६२ ता० ३१ दिसंबर) गुरुवार को वह (चन्द्रसेन) सिंहासन पर बैठा[1]।

राव चन्द्रसेन अपने एक चाकर से अप्रसन्न रहता था, जिससे वह (चाकर) राठोड़ जैतमाल (जैसावत) के डेरे पर चला गया। चन्द्रसेन ने उसे वहां से पकड़वाकर मंगवा लिया। जैतमाल ने अपने प्रधान को भेजकर उससे कहलाया कि चाकर का अपराध क्षमाकर उसे प्राण-दान दिया जाय। राव ने प्रधान से तो कह दिया कि मैं जैतमाल की इच्छानुसार ही करूंगा, परन्तु उसके प्रस्थान करते ही उसने चाकर को मरवा डाला। उसका ऐसा अन्यायपूर्ण कार्य देखकर राठोड़ पृथ्वीराज तथा अन्य सरदार, जो जोधपुर में थे, उससे चिढ़ गये और उन्होंने राम, उदयसिंह तथा रायमल्ल को लिखा कि तुम वहां बैठे क्या कर रहे हो[2]।

सरदारों की चन्द्रसेन से अप्रसन्नता

इसपर राम केलवे से जाकर सोजत में बिगाड़ करने लगा; रायमल दुनाड़े में लड़ा और उदयसिंह ने गांगाणी के पास लांगड़ गांव में लूट-मार मचाई। इसकी खबर लगने पर चन्द्रसेन ने उनके विरुद्ध सेना भेजी। राम और रायमल तो भाग गये पर उदयसिंह से गांव लोहावट में चन्द्रसेन की

राम आदि का राज्य में बिगाड़ करना

इससे यह स्पष्ट है कि राव मालदेव अपनी झाली राणी के कथन पर चलता था और उसीके अनुरोध पर उसने बड़े लड़कों के रहते हुए भी अपने तीसरे पुत्र चन्द्रसेन को युवराज नियत किया था।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ८९। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ३६४।

आगे चलकर जोधपुर राज्य की ख्यात से यह पाया जाता है कि अपने पिता की मृत्यु के समय चन्द्रसेन सिवाणे में था, जहां से आकर वह जोधपुर की गद्दी पर बैठा। उस समय उसकी माता झाली स्वरूपदे सती होना चाहती थी, परन्तु चन्द्रसेन ने यह कहकर उसे सती होने से रोक दिया कि पहले भाइयों को तो समझा दो। इसपर वह भाइयों को समझा बुझाकर टीका चन्द्रसेन को दिलाने के बाद सती हुई (जि० १, पृ० ११५)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ८९।

लड़ाई हुई। वहां उदयसिंह के हाथ की बरछी चन्द्रसेन के और रावल मेघराज (रावल मल्लीनाथ का वंशज) की बरछी उदयसिंह के लगी, जिससे वह घोड़े पर से नीचे आ गिरा। तब साहाणी ईंदा खीची ने अपने घोड़े पर चढ़ाकर उसे वहां से निकाल दिया। इस लड़ाई में उदयसिंह की तरफ़ के राठोड़ जोगा सादावत मांडणोत, राठोड़ ईसरदास अमरावत मंडला, राठोड़ हींगोला नेतावत पाता, राठोड़ कल्याणदास मेहशोत करमसीहोत, भाटी वैरसल सांकरोत, भाटी जयमल तिलोकसी परबतोत, मोकल गंगादासोत गागरिया राठोड़, खींवराज आपमलोत गागरिया राठोड़ आदि प्रमुख सरदार मारे गये। राव चन्द्रसेन की तरफ़ का राठोड़ लक्ष्मण भीमोत, जो अरडकमल चूंडावत का पौत्र था, इसी लड़ाई में काम आया[1]।

उदयसिंह ने फलोधी के गढ़ में जाकर युद्ध की तैयारियां कीं। इसपर राव चन्द्रसेन सेना लेकर वहां गया। इस लड़ाई में दोनों तरफ़ की हानि ही होती, अतएव राठोड़ जसूंत डूंगरसीहोत, राठोड़ रावल मेघराज प्रभृति प्रतिष्ठित सरदारों ने समझा बुझाकर चन्द्रसेन को पीछा लौटा दिया[2]।

चन्द्रसेन की उदयसिंह पर चढ़ाई

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—

'सरदारों के कहने से राम, बादशाह अकबर के पास गया और वहां से शाही सेना अपनी सहायतार्थ ले आया, जिसने (श्रावणादि) वि० सं० १६२० (चैत्रादि १६२१) ज्येष्ठ सुदि १२ (ई० स० १५६४ ता० २२ मई) को जोधपुर पर घेरा डाला। सत्रह दिन तक घेरा रहने पर सरदारों ने बातचीत कर राम को सोजत का परगना दिला दिया, जिसपर शाही सेना

शाही सेना का जोधपुर पर कब्ज़ा करना

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ८५-८६। बांकीदास ने इस घटना का वर्णन तो इसी प्रकार किया है पर इसका संवत् १६१८ दिया है (ऐतिहासिक बातें; संख्या १२१.) जो ठीक नहीं है। यह घटना चन्द्रसेन की गद्दीनशीनी के बाद की है, अतएव वि० सं० १६१९ के पौष मास के बाद हुई होगी।

(२) वही; जि० १, पृ० ८६। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ४२६।

वापस चली गई। उसी वर्ष फाल्गुन वदि १ (ई० स० १५६५ ता० १७ जनवरी) को फिर शाही सेना जोधपुर आई, परन्तु चार लाख फ़ीरोज़े (फ़ीरोज़े) देने की शर्त कर राव चन्द्रसेन ने शाही सेनाध्यक्ष से संधि कर ली[1]। (श्रावणादि) वि० सं० १६२१ (चैत्रादि १६२२=ई० स० १५६५) में हसनकुली खां की अध्यक्षता में तीसरी बार शाही सेना जोधपुर आई। चैत्र सुदि १२ (ता० १३ मार्च) को क़िला घिरजाने पर राव चन्द्रसेन, सोनगरा जसवन्त (मानसिंहोत), राठोड़ पृथ्वीराज (कूंपावत) आदि कितने ही सरदारों तथा सेना सहित मुग़ल सेना के मुक़ाबले के लिए गया, परन्तु शत्रु की प्रबलता देखकर वह फिर किले के भीतर चला गया। प्रायः डेढ़ मास के घेरे के बाद ज्येष्ठ सुदि ३ (ता० २ मई) को मुसलमानों ने राणीसर के कोट पर हमलाकर वहां अधिकार कर लिया। उधर गढ़ में अन्न-जल का कष्ट दिन-दिन बढ़ रहा था, इससे वि० सं० १६२२ मार्गशीर्ष सुदि १० (ई० स० १५६५ ता० २ दिसंबर) को राव चन्द्रसेन गढ़ का परित्याग कर भाद्राजूण चला गया। ऐसी दशा में हसनकुलीखां का आक्रमण होने पर गढ़ में रक्खे हुए राठोड़ वैरसल (पातलोत), राठोड़ राणा (वीरमोत), राठोड़ सूरा (गांगावत), भाटी जोगा (आसावत), भाटी गांगा (नींबावत), भाटी जैमल (आसावत), भाटी आसा (जोधावत), ईंदा राखा (जोगावत) आदि सरदार मारे गये और वहां मुग़ल सेना का अधिकार हो गया[2]।'

इसके विपरीत 'अकबर नामे' में बादशाह अकबर के आठवें राज्य वर्ष (हि० सन् ९७०=वि० सं० १६२०=ई० स० १५६३) के हाल में लिखा है—"मिर्ज़ा शरफ़ुद्दीन हुसेन[3] की तरफ़ से छुट्टी पाकर बादशाह ने जोधपुर

(१) बांकीदास-कृत 'ऐतिहासिक बातें" नामक ग्रन्थ से पाया जाता है कि इस अवसर पर राम ने हसनकुलीख़ां की सहायता से पाली पर आक्रमण किया, जहां का सोनगरा मानसिंह (अखैराजोत) भागकर उदयपुर चला गया (संख्या ४२७)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ८६-७।

(३) यह तुर्किस्तान के एक बड़े फ़क़ीर ख्वाजा नासिरुद्दीन अब्दुल्ला के

विजय करने की तरफ़ ध्यान दिया, जो उन दिनों वहां का सब से मजबूत क़िला था। यह क़िला मालदेव की, जो भारत के बड़े राजाओं में से एक था, राजधानी था। उस(मालदेव)के मरने पर उसका छोटा पुत्र चन्द्रसेन वहां का स्वामी हुआ। अफ़सरों के उसपर चढ़ाई करने पर मालदेव का ज्येष्ठ पुत्र राम उनसे जा मिला, जो पीछे से शाही सेवा में प्रविष्ट हो गया। बादशाह ने मुइज़ुद्दीन अहमदखां फ़रंखूदी और मुज़फ़्फ़र मोग़ल आदि को हुसेन कुलीख़ां[1] की सहायतार्थ भेज दिया। फल स्वरूप थोड़े समय में ही क़िला फतह हो गया[2]।"

उपर्युक्त दोनों कथनों में फ़ारसी तवारीख़ का ही कथन अधिक विश्वसनीय प्रतीत होता है, क्योंकि यदि हम ख्यात के कथन को महत्व दें तो यह मानना पड़ेगा कि तीन बार शाही सेना जोधपुर पर गई और तीसरी बार भी लगभग दस मास तक घेरा रहने पर चन्द्रसेन ने क़िले का परित्याग किया। उस समय की परिस्थिति को देखते हुए दस मास तक घेरा रहना असंभव प्रतीत होता है। साथ ही तीन बार शाही सेना का जोधपुर पर जाना भी कपोल कल्पना ही है, क्योंकि फ़ारसी तवारीखों से इसकी पुष्टि नहीं होती। इससे यही मानना पड़ेगा कि एक बार ही

वंश के ख़्वाजा मोईन का पुत्र और हुमायूं का दामाद था। यह अजमेर का हाकिम नियत किया गया था, पर हि० स० ९६९ (वि० सं० १६१८-१९ = ई० स० १५६१-६२) में इसने नागोर में विद्रोह किया और अकबर की सेना को परास्त कर दिल्ली की ओर अग्रसर हुआ, पर अन्त में यह शाही सेना-द्वारा भगा दिया गया।

(१) यह अकबर का पांच हज़ारी मनसबदार था। मुनीमख़ां की मृत्यु के बाद यह वि० सं० १६३३ (ई० स० १५७६) के लगभग बंगाल का शासक नियुक्त हुआ। इसके दो वर्ष बाद इसकी टांडा में मृत्यु हुई। बादशाह ने इसकी सेवाओं से प्रसन्न होकर इसे 'खानेजहां' का ख़िताब दिया था।

(२) अबुलफ़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ३०१। उक्त ग्रन्थ से पाया जाता है कि इसके पूर्व ही हुसेनकुलीख़ां ने मिर्ज़ा शर्फ़ुद्दीन हुसेन को भगा दिया था, और उसके नियत किये हुए मेड़ता के हाकिम जयमल को हटाकर वहां का अधिकार जगमाल को दे दिया था (जि० २, पृ० ३०९)।

शाही सेना की जोधपुर पर चढ़ाई हुई थी और वहां अकबर के आठवें राज्य-वर्ष में किसी समय बादशाह का अधिकार हुआ होगा।

जोधपुर छूटने पर राव चन्द्रसेन की आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी और वह अपने रत्न आदि बेचकर अपना तथा अपने साथ के राजपूतों का ख़र्च चलाने लगा। उन्हीं दिनों उसने राव मालदेव का संग्रह किया हुआ एक लाल, जिसका मूल्य साठ हज़ार रुपये कूंता गया था, मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह को बेचा था[1]।

चन्द्रसेन का अकबर की सेवा में जाना

अपने राज्य के पन्द्रवें वर्ष में हि० स० ९७८ ता० ८ रबीउस्सानी (वि० सं० १६२७ द्वितीय भाद्रपद सुदि १० = ई० स० १५७० ता० ६ सितंबर) को अकबर ने ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की ज़ियारत के लिए अजमेर की तरफ़ प्रस्थान किया। बारह दिन फ़तहपुर में रहकर वह अजमेर पहुंचा। शुक्रवार ता० ४ जमादिउस्सानी (ता० ३ नवंबर) को वहां से चलकर वह ता० १६ जमादिउस्सानी को नागोर पहुंचा, जहां उसने एक तालाब अपने

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० २३८ टि० १। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० २००। राजर्स और बेवरिज; तुज़ुक-इ-जहांगीरी (अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० १, पृ० २८५-८६।

यह लाल पीछे से मुग़लों के साथ सन्धि स्थापित होने के समय महाराणा अमरसिंह ने शाहज़ादे खुर्रम को नज़र किया। शाहज़ादे ने उसे बादशाह को नज़र किया तब उसपर "बसुल्तान खुर्रम दर हीने मुलाज़मत राना अमरसिंह पेशकश नमूद" (राणा अमरसिंह ने अधीनता स्वीकार करते समय यह लाल सुल्तान खुर्रम को नज़र किया) लेख खुदवाया गया। यही लाल फिर वि० सं० १९३८ (ई० स० १८८१) में किसी सौदागर के द्वारा हिन्दुस्तान में बिकने आया, जिसका वृत्तान्त उस समय के अख़बारों में भी प्रकाशित हुआ था।

वि० सं० १६२० के आस-पास चन्द्रसेन से जोधपुर छूटा था और वि० सं० १६२८ (ई० स० १५७२) में महाराणा उदयसिंह का देहांत हुआ, अतएव यह लाल उक्त दोनों संवतों के बीच किसी समय बिका होगा।

सैनिकों से खुदवाकर उसका नाम "शुक्र तालाव" रक्खा[1]। बादशाह के वहां रहते समय चन्द्रसेन ने उसके पास उपस्थित होकर उसकी सेवा और अधीनता स्वीकार की[2]। इस अवसर पर फलोधी से चन्द्रसेन का बड़ा भाई उदयसिंह भी बादशाह की सेवा में चला गया था[3]।

बादशाह की आज्ञानुसार उदयसिंह का समावली पर अधिकार करना

उसी वर्ष बादशाह ने उदयसिंह को समावली पर अधिकार करने के लिए भेजा, जहां पहुंचकर उस (उदयसिंह) ने वहां के गूजरों को निकालकर वहां अपना अधिकार स्थापित किया[4]।

चन्द्रसेन का भाद्राजूण छोड़ना

इसके कुछ समय बाद मुसलमानी सेना भाद्राजूण पर गई। वि० सं० १६२७ फाल्गुन वदि अमावास्या (ई० स० १५७१ ता० २४ फ़रवरी) को चन्द्रसेन ने कछवाओं से वातकर भाद्राजूण का परित्याग कर दिया और नौ लाख फ़ीरोज़े देना ठहराकर मुसलमानी सेना को वापस लौटा दिया[5]।

---

(१) अबुल्फ़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ५१८। अल्बदायूनी; मुन्तख़बुत्तवारीख़—लॉकमैन-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १३७।

(२) मुंशी मुहम्मद सैय्यद अहमद; उमराए हनूद; पृ० ४८। अबुल्फ़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ५१८। बदायूनी; मुंतख़बुत्तवारीख़; लॉकमैन-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १३७। मआसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ४५२।

(३) चन्द्रसेन अपना गया हुआ राज्य पीछा प्राप्त करने के लिए बादशाह के पास उपस्थित हुआ था और इस अवसर पर उसका पुत्र रायसिंह भी उसके साथ था। वहां से भी जब उसने राज्य मिलने की कोई आशा न देखी तो रायसिंह को बादशाह के पास छोड़कर वह भाद्राजूण लौट गया। जोधपुर राज्य की ख्यात में भी उसका अपने पुत्र रायसिंह को शाही सेवा में छोड़कर भाद्राजूण जाना लिखा है (जि० १, पृ० ८८)।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ८८। फ़ारसी तवारीख़ों में इसका उल्लेख नहीं है।

(५) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ८६। फ़ारसी तवारीख़ों में इसका उल्लेख नहीं है।

अकबर के सत्रहवें राज्यवर्ष (वि० सं० १६२९ = ई० स० १५७२) में गुजरात में बड़ी अव्यवस्था फैल गई। उधर मेवाड़ के महाराणा कीका (प्रताप) का आतंक भी बढ़ रहा था। विद्रोह की अग्नि का प्रारम्भ में ही शान्त करना अत्यन्त आवश्यक था, अतएव बीकानेर के रायसिंह को जोधपुर का शासक बनाकर बादशाह ने गुजरात की तरफ़ भेजा ताकि राणा गुजरात के मार्ग को रोककर हानि न पहुंचा सके[1]।

बीकानेर के रायसिंह की जोधपुर में नियुक्ति

(१) तबक़ात-इ-अकबरी—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इण्डिया; जि० ५, पृ० ३४१। अबुल्फ़ज़्ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ८। अल्बदायूनी; मुंतख़-बुत्तवारीख़; जि० २, पृ० १४४। ब्रजरत्नदास; मआसिरुल उमरा (हिन्दी); पृ० ३५५। जोधपुर राज्य की ख्यात में एक स्थल पर वि० सं० १६२६ में (जि० १, पृ० ८८) तथा आगे चलकर दूसरे स्थल पर वि० सं० १६३१ में बीकानेर के रायसिंह को जोधपुर मिलना लिखा है (जि० १, पृ० ११८)। इस सम्बन्ध में फ़ारसी तवारीख़ों में दिया हुआ समय ही अधिक विश्वसनीय है।

जोधपुर पर रायसिंह का अधिकार कब तक रहा, यह फ़ारसी तवारीख़ों से स्पष्ट नहीं होता। दयालदास की ख्यात में लिखा है कि वहां उसका तीन वर्ष तक अधिकार रहा और वहां रहते समय उसने ब्राह्मणों, चारणों, भाटों आदि को बहुत से गांव दान में दिये (जि० २, पत्र ३०)। ख्यातों में दिये हुए संवत् ठीक न होने से समय के संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी कहा नहीं जा सकता।

उक्त (दयालदास की) ख्यात में यह भी लिखा है—'उदयसिंह (राव मालदेव का कुंवर) ने महाराजा रायसिंह से मिलकर कहा—"जोधपुर सदा आपके पास नहीं रहेगा। आप भाई हैं और बड़े हैं तथा बादशाह आपका कहना मानता है। अपने पूर्वजों का बांधा हुआ राज्य अभी तो अपना ही है, पर संभव है पीछे से बादशाह के ख़ालसे में रह जाय और अपने हाथ से चला जाय।" महाराजा ने जाना कि बात ठीक है, अतएव उसने बादशाह के पास अर्ज़ी भेजकर वि० सं० १६३९ (ई० स० १५८२) में जोधपुर का मनसब उदयसिंह के नाम करा उसको "राजा" का ख़िताब दिला दिया,' (जि० २, पत्र ३०), परन्तु जोधपुर राज्य की ख्यात में इस बात का कहीं उल्लेख नहीं है। महाराजा रायसिंह के वि० सं० १६४४ माघ वदि ५ (ई० स० १५८८ ता० ८ जनवरी) के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि उसने चारण माला सादू को सरकार नागोर

बादशाह अकबर ने गुजरात के अन्तिम सुलतान मुज़फ़्फ़रशाह (तीसरा) से गुजरात को फ़तहकर उसे मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया था। इसी बीच मिर्ज़ा बन्धुओं ने, जो बादशाह के रिश्तेदार लगते थे[1], बाग़ी होकर दिल्ली पर चढ़ाई की, लेकिन वहां हराये जाने पर वे वहां से मालवे गये और वहां के स्वामी बन बैठे। अनन्तर उन्होंने गुजरात में उपद्रव करना आरम्भ किया। मालवे से जाकर इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा[2] ने बड़ोदा, मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा[3] ने सूरत तथा शाह मिर्ज़ा[4] ने चांपानेर पर अधिकार कर लिया। बादशाह ने उन तीनों पर अलग-अलग सेनाएं भेजीं। जब बादशाह को यह ज्ञात हुआ कि इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा ने भड़ोंच के क़िले में रुस्तम-ख़ां रूमी[5] को मार डाला है और वह विद्रोह करने पर कटिबद्ध है, तब उसने आगे गई हुई फ़ौज़ को वापस बुला लिया और आप सरनाल (तत्कालीन अहमदाबाद की सरकार के अन्तर्गत) की ओर अग्रसर हुआ, जहां उसे इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा के होने का पता लगा था। शाही सेना के आक्रमण से इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा की फ़ौज के पैर उखड़ गये और वह भाग गई। वहां से भागकर वह ईडर में अपने भाइयों के पास पहुंचा, पर

मिर्ज़ा बन्धुओं के उपद्रव के दमन में राम का साथ रहना

की पट्टी का गांव भदहरा सासण में दिया था (मूल ताम्रपत्र के फ़ोटो से)। इससे स्पष्ट है कि रायसिंह का अधिकार नागोर और उसके आस-पास तो बहुत वर्षों तक रहा था।

(१) ये भी तैमूर के वंश में थे। इनकी जागीर में संभल और आज़मपुर थे।

(२) इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा तैमूर के वंशज मुहम्मद सुलतान मिर्ज़ा का पुत्र और कामरां का दामाद था। अपने भाइयों के साथ जब वह विद्रोही हो गया तो हि० स० ९७५ (वि० सं० १६२४ = ई० स० १५६७) में बादशाह अकबर के हुक्म से सम्भल के क़िले में क़ैद कर दिया गया, पर कुछ ही दिनों बाद वह वहां से निकल गया। हि० स० ९८१ (वि० सं० १६३० = ई० स० १५७३) में वह फिर शाही सेना-द्वारा बन्दी बना लिया गया और मक़सूदख़ां द्वारा मारा गया।

(३) इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा का बड़ा भाई।

(४) इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा का पांचवां भाई।

(५) शाही अफ़सर, गुजरात में भड़ोंच के क़िले का हाकिम।

उनसे कहा-सुनी हो जाने के कारण, वह अपने भाई मसऊद[1] को साथ लेकर जालोर होता हुआ नागोर पहुंचा। ख़ानेकलां[2] का पुत्र फर्रुख़खां उन दिनों वहां का शासक था। इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा ने उसे घेर लिया और निकट था कि नागोर पर उसका क़ब्ज़ा हो जाता, परन्तु ठीक समय पर रायसिंह को जोधपुर में इसकी ख़बर मिल गई, जिससे उसने फ़ौज के साथ उधर प्रस्थान किया। इस अवसर पर मीरक कोलाबी, मुहम्मद-हुसेन शेख़, राय राम (मालदेव का पुत्र, जिसकी जागीर सोजत में थी) आदि भी उसके साथ थे। जब इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा को उनके आने की ख़बर लगी तो वह वहां से घेरा उठाकर भाग गया। ता० ३ रमज़ान हि० स० ९८१ (वि० सं० १६३० पौष सुदि ४ = ई० स० १५७३ ता० २८ दिसम्बर) सोमवार को रायसिंह नागोर पहुंचा, जहां फर्रुख़खां भी उससे आकर मिल गया। अन्य सरदारों का इरादा तो इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा का पीछा करने का न था, परन्तु रायसिंह के ज़ोर देने पर उसका पीछा किया गया और कठौली नामक स्थान में वह शाही सेना-द्वारा घेर लिया गया। वहां की लड़ाई में मुग़लसेना की स्थिति डांवाडोल हो रही थी कि रायसिंह, जो पीछे था, पहुंच गया, जिससे मिर्ज़ा भागकर पंजाब की तरफ़ चला गया। इस लड़ाई में राय राम दाहिनी अनी में था और उसने बड़ी वीरता दिखलाई[3]।

भिणाय (अजमेर) वालों का मानना है कि चन्द्रसेन ने अजमेर पहुंचकर, भिणाय के आस-पास की भूमि का बिगाड़ करनेवाले भीलों के

(१) मसऊद बाद में ग्वालियर के क़िले में क़ैद कर दिया गया था, जहां कुछ दिनों बाद उसकी मृत्यु हो गई।

(२) इसका पूरा नाम मीरमुहम्मद था। इसने कामरां और हुमायूं दोनों की सेवा बजाई थी और अकबर के समय में उच्च पद पर पहुंच गया था। हि० स० ९८३ (वि० सं० १६३२ = ई० स० १५७५) में इसकी मृत्यु हुई।

(३) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १५-२१। तबक़ात-इ-अकबरी—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ५, पृ० ३५४। बदायूनी; मुंतख़बुत्तवारीख़—लो-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १९३-४। व्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा (हिंदी); पृ० ३५५। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० ५२।

राव चन्द्रसेन और मादलिया भील

सरदार मादलिया को अपने पास बुलाया और नशे में ग़ाफ़िल कर मार डाला तथा उसके साथियों को तितर-बितर कर दिया। इस सेवा के एवज़ में बादशाह अकबर ने भिणाय तथा सात और परगने चन्द्रसेन को जागीर में दिये। इस जागीर में चौरासी गांव शामिल थे, जो चन्द्रसेन की चौथी पीढ़ी में उसके वंश के उदयभाण एवं अखैराज में विभाजित हुए, जिन्होंने क्रमशः भिणाय तथा देवलिया के ठिकाने स्थापित किये[1]।

उपर्युक्त सारा कथन निराधार है। प्रथम तो चन्द्रसेन की शक्ति उस समय बड़ी क्षीण हो रही थी, जिससे उसका अजमेर की तरफ़ जाना असंभव सा प्रतीत होता है। दूसरे, अकबर की उसकी तरफ़ सदैव नाराज़गी ही रही, जिससे उसका चन्द्रसेन को भिणाय तथा सात परगने जागीर में देना कदापि मानने में नहीं आ सकता।

चन्द्रसेन पर शाही सेना की चढ़ाई

१६ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १६३१ = ई० स० १५७४) के आरंभ में जब बादशाह अजमेर में था, उसे चन्द्रसेन के उपद्रव करने का समाचार मिला। चन्द्रसेन ने उन दिनों अपने केंद्र सिवाणा को और भी दृढ़ कर लिया था। बादशाह ने तत्काल रायसिंह (बीकानेरवाला) को शाहकुलीख़ां महरम[2], शिमालख़ां[3], केशोदास (मेड़ते के जयमल का पुत्र), जगतराम

(१) दि रूलिंग प्रिंसिज़, चीफ़्स एण्ड लीडिंग पर्सनेजिज़ इन राजपूताना एण्ड अजमेर; पृ० १६५-६ (ई० स० १६३१ का संस्करण)।

सैयद गुलाबमियां-कृत "तारीख़ पालनपुर" (उर्दू) में मादलिया भील को चन्द्रसेन का हिमायती लिखा है। उक्त पुस्तक के अनुसार राव चन्द्रसेन के पौत्र कर्मसेन ने मादलिया को मारकर भिणाय पर क़ब्ज़ा किया था (पृ० १२८ का टिप्पण)।

(२) अकबर का एक प्रसिद्ध पांचहज़ारी मनसबदार। वि० सं० १६५७ (ई० स० १६००) में आगरे में इसका देहांत हुआ।

(३) यह अकबर का गुलाम और शस्त्रवाहक था। बाद में एक हज़ारी मनसबदार बनाया गया।

(धर्मचन्द्र का पुत्र) आदि सरदारों के साथ चन्द्रसेन को दंड देने के लिए भेजा। बादशाह का आदेश था कि यदि राव चन्द्रसेन समझ जाय और अपने किये पर शरमिन्दा हो तो उसे शाही मेहरबानियों का विश्वास दिलाया जाय। उस समय सोजत पर कल्ला का अधिकार था, जो शाही सेना के पहुंचते ही सिरियारी को भाग गया। शाही सैनिकों ने उसका पीछा करके जब वह गढ़ भी जला दिया, तब वह वहां से भागकर गोरम के पहाड़ों में चला गया। शाही सेना के वहां भी उसका पीछा करने पर जब उस (कल्ला) ने देखा कि अब बचना कठिन है तो उससे मिलकर उसने अपने भाई केशवदास, महेशदास एवं पृथ्वीराज राठोड़ को उसके साथ कर दिया। इस प्रकार जब चन्द्रसेन की शक्ति घट गई तो शाही सेना ने सिवाणा की तरफ़ प्रस्थान किया, जो उस समय चन्द्रसेन के अनुगामी रावल सुख(?मेघ)राज के अधिकार में था। चन्द्रसेन ने सूजा तथा देवीदास आदि को उसकी सहायता के लिए भेजा. परन्तु रायसिंह के राजपूतों ने गोपालदास की अध्यक्षता में आक्रमण कर उन्हें मार लिया। पराजित रावल अपने पुत्र को विजेताओं के पास भेज वहां से भाग गया। तब शाही सेना सिवाणे के गढ़ पर पहुंची। चन्द्रसेन ने इस अवसर पर गढ़ के भीतर रहना उचित न समझा और राठोड़ पत्ता के अधिकार में गढ़ छोड़कर वह वहां से हट गया। शाही सेना ने गढ़ पर घेरा डाला; परन्तु कई मास तक घेरा रहने पर भी जब वह विजय न हो सका तो रायसिंह ने अजमेर में बादशाह के पास उपस्थित होकर अधिक सैन्य भेजने के लिए निवेदन किया। इसपर बादशाह ने तय्यबख़ां[1], सैयदबेग तोक़बाई, सुभानकुली, तुर्क खुर्रम, अज़मतख़ां, शिवदास आदि अफ़सरों को चन्द्रसेन पर भेजा, जिससे वह (चन्द्रसेन) रामपुर से भी भागकर पहाड़ों में चला गया। तब शाही सेना पहाड़ों की तरफ़ बढ़ी, जहां उसे कुछ सफलता भी हुई। फलतः चन्द्रसेन को इधर-उधर पहाड़ों में भागना पड़ा। उसके भाग जाने को ही अपने कार्य की इति समझ बिना बुलाये ही

(१) मुहम्मदख़ां मीर फ़राग़त का पुत्र।

शाही अफ़सर वापस लौट गये, जिससे बादशाह उनसे बड़ा नाराज़ हुआ[1]।

इसके बाद जलालखां[2] को सैयद अहमद[3], सैयद क़ासिम[4], सैयद हाशिम[5] एवं शिमालखां[6] आदि अफ़सरों के साथ सिवाणा-स्थित शाही सेना की सहायतार्थ भेजा। उसके मेड़ते पहुंचने पर रायसिंह के भाइयों— सुलतानसिंह तथा रामसिंह—एवं शाहकुलीखां महरम[7] के संबंधी अली-कुली ने कहलाया कि हम बादशाह की आज्ञानुसार चन्द्रसेन का दमन करने का प्रयत्न कर रहे हैं, पर पहाड़ों की अधिकता, सड़कों के कष्ट एवं बुरे मनुष्यों की अपने साथ अधिकता होने के कारण वह हमारा पूरा-पूरा अवरोध कर रहा है, जिससे सहायता के लिए आने का यही उपयुक्त अवसर है। तब जलालखां शीघ्रता से उधर बढ़ा। चन्द्रसेन इस अवसर पर धोखे से वार करने का उपाय करने लगा, पर उसकी यह इच्छा शाही अफ़सरों ने जान ली और उन्होंने तुरन्त उसपर आक्रमण कर दिया। चन्द्रसेन ने काणूजा की पहाड़ियों में शरण लेकर शाही सेना पर आक्रमण किया, पर इसमें उसके बहुतसे आदमी मारे गये और उसे पहाड़ों में

(१) अबुलफ़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ११३-४, और १५५।

(२) इसका पूरा नाम जलालखां कुर्ची था और यह अकबर का प्रीतिपात्र था।

(३) यह बारहा के सैयद महमूद का छोटा भाई था। तबक़ात-इ-अकबरी के अनुसार यह अकबर का तीन हज़ारी मनसबदार था और हि० स० ९८५ (वि० सं० १६३४ = ई० स० १५७७) में इसकी मृत्यु हुई।

(४) सैयद महमूद का पुत्र। इसकी मृत्यु हि० स० १००७ (वि० सं० १६५५-५६ = ई० स० १५९८-९९) में हुई।

(५) सैयद महमूद का दूसरा पुत्र। यह अहमदाबाद के निकट सरखेच की लड़ाई में मारा गया।

(६) इसका पूरा नाम शिमालखां चेला था। तबक़ात-इ-अकबरी के अनुसार यह अकबर का शस्त्रवाहक और एकहज़ारी मनसबदार था।

(७) अकबर के दरबार का अमीर और पांचहज़ारी मनसबदार। इसकी मृत्यु आगरे में हि० स० १००९ (वि० सं० १६५७ = ई० स० १६००) में हुई।

वापस जाना पड़ा[1]। तब शाही अफ़सर रामगढ़ में गये। इसी अवसर पर एक व्यक्ति शाही अफ़सरों के पास आया, जिसने अपने आपको देवीदास प्रकट किया। शाही अफ़सरों का ऐसा विश्वास था कि देवीदास मेड़ते की लड़ाई में मारा गया था, पर उसके यह कहने पर कि मैं केवल ज़ख़्मी हो गया था तथा एक साधु ने मेरी जीवन-रक्षा की, कुछ लोगों ने उसका विश्वास कर लिया। उसने शाही अफ़सरों से कहा कि चन्द्रसेन इस समय राम (राय) के पुत्र कल्ला की जागीर में है। यह सुनते ही शाही सेना उधर गई, पर कल्ला ने इससे इनकार कर दिया। फलतः शिमालख़ां ने देवीदास को अपने पास बुलाकर क़ैद करने का प्रयत्न किया, पर वह वहां से निकल गया और कल्ला के शामिल हो गया। लेकिन इसके कुछ ही दिनों बाद, जब शाही सेना की टुकड़ियां इधर-उधर गई हुई थीं, शाही सेना से बदला लेने के प्रयत्न में उसने शिमालख़ां के धोखे में जलालख़ां को मार डाला। अनन्तर जब वह शिमालख़ां के डेरे की तरफ़ बढ़ा तो ठीक समय पर जयमल ने पहुंचकर इस उपद्रव को शान्त किया[2]।

जलालख़ां के मारे जाने के बाद विद्रोहियों का उपद्रव और बढ़ गया। उनमें देवकुर (?) के गढ़ में एकत्रित कल्ला तथा अन्य सरदार प्रमुख थे। बादशाह-द्वारा भेजे गये सैयद बारहा आदि ने उनका दमन करने की कोशिश की, पर कोई परिणाम न निकला। इस प्रकार सिवाणे का मामला तूल

(१) सिंढायच दयालदास-कृत बीकानेर की ख्यात में लिखा है कि पीछे से जालोर की तरफ़ से होता हुआ जोधपुर का राव चंद्रसेन अपने राजपूतों के साथ मारवाड़ में आया। पिपलाण के पास उसका महाराजा रायसिंह के भाई रामसिंह से युद्ध हुआ, जिसमें वह (चंद्रसेन) भाग गया तथा उसका नक़ारा रामसिंह के हाथ लगा (जि० २, पत्र ३०)। इस युद्ध का जोधपुर राज्य की ख्यात में कुछ भी उल्लेख नहीं है, परन्तु यह नक़ारा जोड़ी बीकानेर राज्य में अब तक सुरक्षित है। नक़ारे की जोड़ी तांबे की कुंडी पर चमड़े से मढ़ी हुई है और उसपर निम्नलिखित लेख है—

एक पर—"राव चन्द्रसेन राठोड़ाऊ नर।"

दूसरे पर—"राव चन्द्रसेन राठोड़ाऊ......"

(२) अबुल्फ़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० २२४-५।

पकड़ता जा रहा था, अतएव बादशाह ने शहबाज़खां[1] को उधर का प्रबंध करने के लिए भेजा। जब वह वहां पहुंचा तो उसने देखा कि शाही सेना किंकर्तव्यविमूढ़ दशा में क़िले को घेरे पड़ी है और कई प्रकार की कठिनाइयों के कारण सफलता नहीं हो रही है। उसने अविलम्ब गढ़ विजय करने की ओर ध्यान दिया और प्रबल आक्रमण कर शत्रु को मारा तथा देवकुर के गढ़ पर अधिकार कर लिया। अनन्तर बारहा के सैयदों को वहां छोड़कर वह सिवाणा की ओर अग्रसर हुआ। उक्त गढ़ से सात कोस इधर दुनाड़ा नाम का पहाड़ी क़िला था। जब शाही सेना उसके निकट लूणी नदी को पार कर रही थी तो राठोड़ों ने एकत्र होकर उत्पात मचाना चाहा, जिसपर शाही सेना ने उन्हें आत्मसमर्पण करने को कहा। उनके न मानने पर शाही सेना ने उनपर आक्रमण कर उन्हें मार डाला। इसके बाद शाही सेना सिवाणा पहुंची, जहां से शहबाज़खां ने पहले के अफ़सरों को वापस कर दिया। उसके समुचित प्रबन्ध और प्रबल हमलों के कारण अन्त में गढ़वालों ने आत्मसमर्पण कर गढ़ शाही अफ़सरों के हवाले कर दिया[2]।

ख्यातों से भी पाया जाता है कि कई दिन तक तो पत्ता ने शहबाज़खां का मुक़ाबला किया, परन्तु विजय की कोई आशा न देख वह गढ़ उसके सुपुर्दकर चन्द्रसेन के पास चला गया[3]।

(१) इसका छठा पूर्वज हाजी जमाल मुलतान के शेख़ बहाउद्दीन ज़करिया का शिष्य था। शहबाज़खां का प्रारम्भिक जीवन बड़ी सादगी में बीता था, परन्तु बाद में अकबर इसकी सेवाओं से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने इसे अपना अमीर बना लिया। हि० स० ६६२ (वि० सं० १६४१ = ई० स० १५८४) में बादशाह ने इसे बंगाल का शासक नियुक्त किया था। ७० वर्ष की अवस्था में हि० स० १००८ (वि० सं० १६५६ = ई० स० १५६६) में इसकी मृत्यु हुई।

(२) अबुल्फ़ज़्ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० २३७ और २३८।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ११८। उसी ख्यात में एक स्थल पर (पृ० ६० में) लिखा है कि चन्द्रसेन ने स्वयं सिवाणे का गढ़ बादशाह के उमराव

उन दिनों राव चन्द्रसेन का परिवार पोकरण में था। वि० सं० १६३२ के कार्तिक (ई० स० १५७५ के अक्टोबर) में जैसलमेर के रावल हरराज ने ७००० सेना के साथ जाकर पोकरण को घेर लिया। उस समय वहां राव की तरफ़ से पंचोली आनंद था। चार मास तक घेरा रहने के उपरान्त हरराज ने चन्द्रसेन से कहलाया कि लाख फदिये लेकर मुझे पोकरण दे दो; जोधपुर का अधिकार जब आपके हाथ में आवे तो लाख फदिये लौटाकर पोकरण मुझसे ले लेना। चन्द्रसेन उन दिनों बड़ी संकटापन्न दशा में था और उसे धन की बड़ी आवश्यकता रहती थी। उसने सोचा, भूमि तो अपने हाथ से जा ही रही है, अतएव धन ले लेना बुरा नहीं है, यदि जोधपुर पर मेरा कभी अधिकार हुआ तो भाटियों के पास पोकरण न रह सकेगा। ऐसा विचारकर उसने मांगल्या भोज को पोकरण भेजकर कहलाया कि कोट हरराज को सौंप दो। इसके अनुसार उपर्युक्त रक़म लेकर फाल्गुन वदि १४ (ई० स० १५७६ ता० २६ जनवरी) को पोकरण भाटियों को दे दिया गया[1]।

पोकरण पर भाटियों का अधिकार

सिवाणे का गढ़ हाथ से चला जाने पर राव चन्द्रसेन का अन्तिम सुदृढ़ आश्रय-स्थान भी जाता रहा। वहां से वह पहले पीपलोद के पहाड़ों

शहबाज़ख़ां को सौंपा। बांकीदास-कृत "ऐतिहासिक बातें" (संख्या ३७३) में चन्द्रसेन के राजपूतों का शहबाज़ख़ां को वि० सं० १६३२ (ई० स० १५७५) में सिवाणे का गढ़ सौंपना लिखा है।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ८६-६०।

"जैसलमेर के इतिहास" से पाया जाता है कि जैसलमेर के रावल हरराज के छोटे पुत्र सुरतानसिंह के बादशाह अकबर की सेवा में उपस्थित होने पर उसने पोकरण और फलोधी के प्रदेश, जो चन्द्रसेन ने ले लिये थे, पुनः भाटी-राज्य के अधिकार में करा दिये (हरिदत्त गोविन्द व्यास-कृत; पृ० ६०)। लक्ष्मीचन्द-लिखित "तवारीख़ जैसलमेर" में लिखा है कि बादशाह ने फलोधी का परगना कुंवर सुरतानसिंह को दिया। चन्द्रसेन ने पोकरण का ठिकाना १०००० सोनइया लेकर गिरवी रक्खा था, जिसपर उसकी फ़ौज आई, परन्तु हारकर लौट गई (पृ० ५४)।

चन्द्रसेन का डूंगरपुर, बांसवाड़ा तथा कोटड़ा में जाकर रहना

में गया, जहां कुछ समय तक लूट-मार मचाने के अनन्तर वह काणुजा की पहाड़ियों में चला गया।

उन दिनों राठोड़ रत्नसिंह खींवा ऊदावत का पुत्र मुसलमानों से मिलकर आसरलाई में रहता था। उससे चन्द्रसेन ने कहलाया कि गांव छोड़ दो और परिवार को पहाड़ी में रखकर मेरे पास आ जाओ। जब उसने इसपर कोई ध्यान न दिया तो उस (चन्द्रसेन) ने आसरलाई में भी लूट-मार की, जिससे ऊदावत उसके विरोधी हो गये। उन्हीं दिनों धन की तंगी के कारण चन्द्रसेन ने जोधपुर के महाजनों को पकड़कर उनसे ज़बर्दस्ती धन प्राप्त करने का उद्योग किया। इससे वे लोग उससे अप्रसन्न हो गये और सब मिलकर मुग़लसेना को उसपर चढ़ा लाये। ऐसी अवस्था में चंद्रसेन वहां से भागकर मंडाड़ और फिर वहां से सिरोही चला गया, जहां वह डेढ़ साल तक रहा। फिर अपना परिवार वहीं छोड़कर वह डूंगरपुर[1] चला गया और वहां कुछ महीने तक रहा। इतने में बादशाही फ़ौज डूंगरपुर राज्य के निकटवर्ती मेवाड़ के पहाड़ी प्रदेश में पहुंच गई, जिससे वह डूंगरपुर का परित्याग कर बांसवाड़ा चला गया। वहां के रावल प्रतापसिंह ने उसे सम्मानपूर्वक अपने पास रक्खा और निर्वाह के लिए तीन-चार गांव उसे दिये। इसके बाद वह कोटड़ा (मेवाड़) में गया, जहां वह एक या डेढ़ वर्ष पर्यन्त रहा। वहां रहते समय महाराणा प्रताप से भी उसका मिलना हुआ[2]।

इस बीच नाडोल में राव कल्ला दग़ा से मार डाला गया[3] और

(१) बांकीदास (ऐतिहासिक बातें; संख्या १५४६) लिखता है कि डूंगरपुर के रावल आसकरण को मालदेव की पुत्री ब्याही थी, जिससे संकटापन्न दशा में चन्द्रसेन उसके पास जाकर रहा।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ११८-२०।

(३) इसके सम्बन्ध में जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि राव कल्ला बादशाह की सेवा में था। उस (कल्ला) से बादशाह का कुछ अपराध हो गया। इसपर बादशाह ने उसको बुलवाया, परन्तु वह आया नहीं। तब शाही सेना उसपर भेजी गई।

बादशाह ने सोजत ख़ालसे कर वहां सैयदों को नियुक्त कर दिया। ऐसी अवस्था देख राठोड़ सादूल (महेसोत, कूंपावत), आसकरण (देवीदासोत, जैतावत) आदि अनेक सरदारों ने मिलकर विचार किया कि अब चन्द्रसेन को बुलाने से ही भूमि बच सकती है। तदनुसार उन्होंने चन्द्रसेन को लिखा, जिसपर उसने सवराड़ के थाने पर रक्खे हुए मुसलमान सैनिकों को मारकर वहां अपना अधिकार स्थापित किया। वि० सं० १६३६ श्रावण बदि ११ (ई० स० १५७९ ता० १९ जुलाई) को उसने सोजत भी ले लिया[1]।

सरदारों का चंद्रसेन को बुलाना

अकबर के २५ वें राज्यवर्ष (हि० स० ९८८=वि० सं० १६३७=ई० स० १५८०) के प्रारम्भ में बादशाह के पास ख़बर पहुंची कि चन्द्रसेन पहाड़ों से निकलकर अजमेर के आसपास उपद्रव कर रहा है। इसपर पाइन्दा मुहम्मदख़ां मुग़ल[2], सैयद हाशिम, सैयद क़ासिम आदि उधर के शाही जागीरदारों को सावधान रहने और चन्द्रसेन को दंड देने की आज्ञा भेजी गई। चन्द्रसेन ने उनकी सेना का सामना किया, पर इसमें बहुतसे आदमी काम आये और उसकी पराजय हुई[3]।

चन्द्रसेन का अजमेर के आसपास उपद्रव करना

इसके बाद राव चन्द्रसेन बीजापुर से अपना परिवार ले आया और सारण के पहाड़ों में रहने लगा। कुछ दिनों बाद वह सिचियाई के पहाड़ों में

कल्ला तो गिरफ्तार न हो सका पर वि० सं० १६३२ माघ सुदि ८ (ई० स० १५७६ ता० ९ जनवरी) को महेश मारा गया। पीछे वि० सं० १६३४ के फाल्गुन (ई० स० १५७८ के फ़रवरी) मास में नाडोल के थाने के शेख़ बुरहान ने विश्वास दिलाकर कल्ला को नाडोल बुलवाया और धोखे से मरवा दिया (जि० १, पृ० ११६)।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ९० तथा १२०।

(२) यह हाजी मुहम्मदख़ां के भाई का पुत्र था। अकबर के बत्तीसवें राज्यवर्ष में इसे घोड़ाघाट की जागीर मिली।

(३) अबुलफ़ज़्ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ०, ४६१।

चन्द्रसेन की मृत्यु

जा रहा, जहां वि० सं० १६३७ माघ सुदि ७ (ई० स० १५८१ ता० ११ जनवरी) को उसका देहांत हो गया[1]।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार राव चन्द्रसेन के ग्यारह राणियां थीं। उसके तीन पुत्र—रायसिंह[2] उग्रसेन[3] तथा आसकर्ण[4]—हुए[5]।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १२१। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ३६४।

जोधपुर राज्य की ख्यात में यह भी लिखा है—'राव चन्द्रसेन के सिचियाई के पहाड़ों में रहते समय दूधोड़ का राठोड़ वैरसल (कूंपावत) उसकी सेवा में उपस्थित नहीं हुआ। इसपर राव उसपर चढ़कर गया। पीछे से वैरसल ने कहलाया कि रावजी मेरे यहां भोजन करें तो मुझको उनका विश्वास हो। इसके अनुसार चन्द्रसेन उसके यहां दावत खाने गया और वहां से लौटते ही मर गया, जिससे लोग कहते हैं कि भोजन में विष मिला दिया गया था (जि० १, पृ० १२१)।'

(२) कछवाही सुहागदे से। ख्यात के अनुसार इसका जन्म वि० सं० १६१४ (ई० स० १५५७) में हुआ।

(३) चौहान कल्याणदे से। ख्यात के अनुसार इसका जन्म वि० सं० १६१६ भाद्रपद वदि १४ (ई० स० १५५६ ता० २ अगस्त) को हुआ।

चन्द्रसेन के पुत्रों में से केवल उग्रसेन का वंश रहा। उसके तीन पुत्र—कर्मसेन, कल्याणदास तथा कान्ह—हुए। कर्मसेन के पट्टे में सोजत था। जब दक्षिण में पठानों के साथ लड़ाई हुई, तब उसी में वह काम आया। उसके बारह पुत्र हुए, जिनमें से श्यामसिंह के दो पुत्र उदयभाण और अखैराज थे। उदयभाण के तीन पुत्र केसरीसिंह, सूरजमल और नरसिंहदास हुए, जिनके वंश में अजमेर ज़िले के इस्तमरारदारों के क्रमशः भिणाय, बांधनवाडा और टांटोटी के ठिकाने हैं। दूसरे पुत्र अखैराज के पांच पुत्र हुए—ईसरदास, देवीदास, नाहरसिंह, गजसिंह और हरिसिंह। ईसरदास के वंश में देवलिया कलां, देवीदास के वंश में बडली, नाहरसिंह के वंश में देवगांव बघेरा, गजसिंह के वंश में कैरोट और हरिसिंह के वंश में जैतपुरा, जडाना और काचरिया के इस्तमरारदार हैं [जे० डी० लाटूश, बी० सी० एस०; रिपोर्ट ऑव् दि सेटलमेंट ऑव् दि अजमेर एण्ड मेरवारा डिस्ट्रिक्टस (ई० स० १८७५); पृ० ५१ के पास का वंशवृत्त। महाराजकिशन; तवारीख़ अजमेर (उर्दू); पृ० २४० के पास का वंशवृक्ष तथा बड़वे की ख्यात]।

(४) सीसोदणी चंदाबाई से। ख्यात के अनुसार इसका जन्म वि० सं० १६२७ श्रावण वदि १ (ई० स० १५७० ता० १६ जून) को हुआ। "वीरविनोद" में भी यही समय दिया है (भाग २, पृ० ८१४)।

(५) "वीरविनोद" में भी पुत्रों के ये ही नाम दिये हैं (भाग २, पृ० ८१४)।

राणियां तथा संतति

इनके अतिरिक्त उसके छः पुत्रियां भी थीं, जिनमें से करमेतीबाई का विवाह महाराणा उदयसिंह के साथ, आसकुंवरी का राजा मानसिंह के साथ, कमलावतीबाई का कछवाहे आसकरण के साथ, रायकुंवरबाई का राजा मानसिंह के पुत्र सबलसिंह के साथ तथा जामवती (जाम्बुवन्ती) का देवड़ा बीजा (सिरोही का सरदार) के साथ हुआ था[1]।

राव चन्द्रसेन की मृत्यु के समय उसका ज्येष्ठ पुत्र रायसिंह तो अकबर के पास और उससे छोटा उग्रसेन बूंदी में था, अतएव आसकरण,

राव चंद्रसेन के पुत्रों का हाल

भोपत (देवीदासोत), राम (रत्नसीहोत) आदि सरदारों ने तीसरे पुत्र आसकरण को उस-(चन्द्रसेन)का उत्तराधिकारी माना। इसी बीच अपने पिता की मृत्यु का समाचार पाकर उग्रसेन जाकर मेड़ते के मुसलमानों से मिला। इसकी खबर मिलने पर सरदारों ने सोचा कि उग्रसेन का पक्ष बलवान है, उसके कारण मुसलमान आवेंगे, जिससे भूमि का नुक़सान होगा; अतएव उन्होंने आधी भूमि उग्रसेन को देने का वचन देकर उसे सारण में बुलाया। (श्रावणादि) वि० सं० १६३८ (चैत्रादि १६३९) चैत्र सुदि २ (ई० स० १५८२ ता० २५ मार्च) को अवसर पाकर उग्रसेन ने आसकरण को कटार से मार दिया। यह देखकर वहां खड़े हुए आसकरण के एक राजपूत ने वही कटारी उसके हाथ से छीनकर उसका भी वहीं काम तमाम कर दिया[2]। ऐसी अवस्था में सरदारों ने रायसिंह के पास पत्र भेजकर कहलाया कि अब तुम आकर अपनी धरती संभालो। रायसिंह उस समय

(१) जि० १, पृ० ९०-९२।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात में आगे चलकर (जि० १, पृ० ११६-७ में) लिखा है कि उग्रसेन और आसकरण के मरने पर राणा उदयसिंह ने राठोड़ सरदारों को कहलाया कि राम के पुत्र केशव को टीका दो। पर सरदारों ने इसपर ध्यान न दिया और टीका रायसिंह को देकर केशवदास को निकाल दिया जो बादशाह के पास चला गया। बादशाह ने उसे मालवा में चोली-माहेश्वर की जागीर दी। आमझरा के रईस उसी के वंशज थे। गदर के बाद यह इलाक़ा ज़ब्त हो गया।

अकबर की तरफ़ से काबुल की चढ़ाई में जा रहा था। सरदारों का पत्र पाकर उसने बादशाह से स्वदेश जाने की आज्ञा मांगी। बादशाह ने उसे सोजत का परगना देकर विदा किया। वि० सं० १६३८ (ई० स० १५८१) में बादशाह के काबुल विजयकर लौटने[1] पर रायसिंह फिर उसकी सेवा में उपस्थित हो गया[2]।

इसके कुछ समय बाद ही सीसोदिया जगमाल[3], जिसे बादशाह ने सिरोही का आधा राज्य प्रदान किया था, सिरोही के महाराव सुरताण से अनबन हो जाने के कारण पुनः सहायता के लिए बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। इस अवसर पर बादशाह ने उसकी मदद के लिए रायसिंह और दांतीवाड़ा के स्वामी कोलीसिंह की अध्यक्षता में अपनी फ़ौज भेजी। इसकी खबर पाकर सुरताण सिरोही का परित्याग कर आबू चला गया। तब जगमाल ने सिरोही पर अपना अधिकार जमा लिया और वह राज-महलों में रहने लगा। फिर उसने शाही फ़ौज के साथ आबू पर अधिकार करने के लिए प्रस्थान किया। सुरताण भी उसका सामना करने के लिए आया और उसकी फ़ौज से दो कोस पर ठहरा। जगमाल ने एकदम उस-पर आक्रमण करने में हानि देख, पहले उसके सरदारों के ठिकानों पर

(१) फ़ारसी तवारीख़ों से भी पाया जाता है कि वि० सं० १६३८ (ई० स० १५८१) में *बादशाह काबुल विजयकर लौटा था* (देखो *अबुल्फ़ज़्ल; अकबरनामा*—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ५४७)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६२-३।

(३) महाराणा उदयसिंह का छोटा पुत्र जिसे बड़े पुत्र प्रतापसिंह के रहते उसने अपना उत्तराधिकारी नियत किया। महाराणा के मरने पर वह गद्दी पर बैठना चाहता था, पर सलूंबर के राव ने ज्येष्ठ पुत्र प्रतापसिंह को सिंहासन पर बैठाया। इस-पर जगमाल अप्रसन्न हो अकबर की सेवा में जा रहा। बीकानेर के स्वामी रायसिंह ने सोरठ जाते समय सुरताण से आधी सिरोही बादशाह के नाम करा ली थी। बादशाह ने यह खबर पाकर वह आधा भाग जगमाल के नाम कर दिया और उसे वहां भेजा। सुरताण ने आधा राज्य उसे दे तो दिया, पर धीरे-धीरे उनमें वैमनस्य बढ़ता गया, जिससे जगमाल पुनः बादशाह के पास गया। इस बार बादशाह ने उसके साथ चन्द्र-सेन के पुत्र रायसिंह आदि को कर दिया।

आक्रमण करने के लिए उधर सेनाएं इस अभिप्राय से भेजीं कि सरदारों का ध्यान उधर आकर्षित हो जाय और सुरताण की शक्ति कम हो जाय तो वह उसपर आक्रमण करे। ऐसी दशा में देर करना उचित न जान सुरताण ने अपने सरदारों सहित वि० सं० १६४० कार्तिक सुदि ११ (ई० स० १५८३ ता० १७ अक्टोबर) को गांव दत्ताणी में, जहां जगमाल ठहरा हुआ था, उसपर आक्रमण कर दिया। भीषण लड़ाई हुई, जिसमें राठोड़ों और सीसोदियों की पराजय हुई। जगमाल, रायसिंह तथा कोलीसिंह–शाही सेना के तीनों अध्यक्ष–एवं रायसिंह की तरफ़ के राठोड़ गोपालदास किशनदासोत गांगावत, राठोड़ सादूल महेशोत कूंपावत, राठोड़ पूरणमल मांडणोत कूंपावत, राठोड़ लूणकरण सुरताणोत गांगावत आदि कितने ही राजपूत मारे गये। इस लड़ाई में रायसिंह का नक़ारा, शस्त्र, घोड़े तथा सामान आदि भी सुरताण के हाथ लगा। प्रसिद्ध चारण कवि आढ़ा दुरसा भी रायसिंह के साथ था, जो इसी लड़ाई में घायल हुआ। पीछे से सुरताण उसे अपने साथ ले गया और बहुत सी जागीर आदि देकर उसने उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई[1]।

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ९३-४। मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० १, पृ० १३७-४१। मेरा; सिरोही राज्य का इतिहास; पृ० २२९-३२।

आठवां अध्याय

राजा उदयसिंह से महाराजा गजसिंह तक

राजा उदयसिंह

उदयसिंह का जन्म तथा गद्दीनशीनी

उदयसिंह का जन्म वि० सं० १५९४ माघ सुदि १३ (ई० स० १५३८ ता० १३ जनवरी) रविवार को हुआ था[1]। चन्द्रसेन की मृत्यु के बाद तीन वर्ष तक जोधपुर का राज्य खालसे में रखने के अनंतर बादशाह ने वहां का अधिकार उस (चन्द्रसेन) के बड़े भाई उदयसिंह को, जो उस (बादशाह) की सेवा में रहता था, राजा के ख़िताब-सहित दे दिया। तदनुसार वि० सं० १६४० भाद्रपद वदि १२ (ई० स० १५८३ ता० ४ अगस्त) को वह जोधपुर आकर सिंहासनारूढ़ हुआ[2]। इसके बाद ही समावली से सारा राज-परिवार भी जोधपुर आ गया[3]।

उदयसिंह का, सिंहासनारूढ़ होने से पूर्व का, कुछ वृत्तान्त ऊपर चन्द्रसेन के साथ आ गया है और जो शेष रह गया है वह नीचे दिया जाता है—

उदयसिंह का पहले का वृत्तान्त

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि एक बार सिंध की तरफ़ से व्यापारियों की एक कतार (क़ाफ़ला) आ रही थी, जिसपर उदयसिंह ने कुछ

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ९५-६ । बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ४२९ । चंडू के यहां का जन्म-पत्रियों का संग्रह ।

"वीरविनोद" (भाग २, पृ० ८१५) में माघ सुदि १२ दी है ।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ९७ ।

(३) वहीं; जि० १, पृ० ९७ ।

मनुष्यों के साथ जाकर हमला किया । दूसरी तरफ़ से भाटी भानीदास दुर्जनसालोत १००० व्यक्तियों के साथ आकर उदयसिंह से लड़ा, पर उस-(भानीदास) के मरते ही भाटी भाग गये । तब भाटी डूंगरसी दुर्जनसालोत ने सेना एकत्रकर उदयसिंह पर चढ़ाई की । कुंडल के पास दोनों दलों में लड़ाई होने पर उदयसिंह की तरफ़ के चांपावत वेरा जैसावत, राठोड़ हिंगोला वैरसलोत, रूपावत जोगीदास भांणोत, भाटी हम्मीर आसावत, भाटी रतन पीथावत आदि राजपूत मारे गये[1] ।

"अकबरनामे" से ज्ञात होता है कि अकबर के बाईसवें राज्य-वर्ष (हि० स० ६८५=वि० सं० १६३४=ई० स० १५७७) में राजा मधुकर बुंदेले के ख़िलाफ़ शाही सेना भेजी गई, क्योंकि वह उपद्रव करने लग गया था । इस सेना के साथ सादिक़ख़ां, उलग़ख़ां हब्शी[2], राजा आसकरण[3] आदि के अतिरिक्त मोटाराजा[4] (उदयसिंह) भी था[5] ।

इसके कुछ ही दिनों बाद गुजरात के बाग़ी मुज़फ़्फ़रख़ां[6] के साथ

(१) जि० १, पृ० ६६-७ ।

(२) पहले यह गुजरात के सुलतान महमूद की सेवा में था, जिसके समय में इसकी प्रतिष्ठा में पर्याप्त वृद्धि हुई । फिर इसने अकबर की सेवा में प्रविष्ट होकर उसकी कई चढ़ाइयों में सहयोग दिया ।

(३) कछवाहा, नरवर का स्वामी ।

(४) इसका "मोटाराजा" नाम प्रसिद्धि में आने के विषय में दो बातें मशहूर हैं । कोई कहते हैं कि यह शरीर का मोटा था, जिससे इसका नाम मोटाराजा पड़ गया । कुछ ऐसा मानते हैं कि इसने चारणों, ब्राह्मणों आदि की भूमि छीन ली थी, जो एक बुरा कृत्य था । लोग ऐसे व्यक्ति का नाम लेना उचित नहीं समझते थे, जिससे उसे "मोटाराजा" कहने लगे और उसका यही नाम बादशाह के यहां भी प्रसिद्ध हुआ ।

(५) बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० २६४-५ । मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० ६१ । व्रजरत्नदास-कृत "मआसिरुल् उमरा" में अकबर के २३ वें राज्यवर्ष हि० स० ९८६ (वि० सं० १६३५ ई० स० १५७८) में इस घटना का होना लिखा है (पृ० ४५३) ।

(६) मुज़फ़्फ़रशाह (तृतीय), गुजरात का अंतिम सुलतान । इसका राज्य वि० सं० १६२९ (ई० स० १५७२) में अकबर ने छीनकर इसे क़ैद कर लिया था ।

उधर के सिपाही शामिल हो गये और उसने काफ़ी संपत्ति भी एकत्र कर ली, अतएव पट्टन के अफ़सरों ने उस स्थान का परित्याग कर जालोर जाने का निश्चय किया।

उदयसिंह का शाही सेना के साथ मुज़फ्फ़र पर जाना

इसी बीच मिर्ज़ाखां (खानखाना[1]) एक बड़ी सेना के साथ आ पहुंचा, जिससे फिर सुव्यवस्था हुई। उक्त सेना पट्टन में वि० सं० १६४० माघ वदि १४ (ई० स० १५८४ ता० १ जनवरी) को पहुंची थी। शाही अफ़सरों ने आपस में परामर्श कर अंत में मुज़फ़्फ़रखां पर आक्रमण करना निश्चित किया। तदनुसार इतमादखां को पट्टन में छोड़कर शाही सेना युद्ध के लिए अग्रसर हुई। इस अवसर पर मिर्ज़ाखां, सुरताण राठोड़ आदि शाही सेना के मध्य भाग में थे; मुहम्मद हुसेन, फ़ीरुज़ा, मीर हाशिम आदि दाहिनी तरफ़ और मोटाराजा (उदयसिंह), राय दुर्गा (सीसोदिया) आदि बांई अनी में थे। पीछे के भाग में पायंदाखां मुग़ल, सय्यद क़ासिम आदि थे। इनके अतिरिक्त और भी कितने ही ख्याति-प्राप्त अफ़सर तथा तेज़ हाथी शाही सेना के साथ थे। इस सेना के आने का समाचार पाकर मुज़फ़्फ़रखां एक बड़ी सेना के साथ अहमदाबाद पहुंचा और युद्ध के लिए सन्नद्ध हुआ। उसने शेरखां फ़ौलादी आदि अपने अफ़सरों के साथ उस्मानपुर में सेना सुसज्जित की। इसी बीच बादशाह का इस आशय का फ़रमान आने पर कि मैं भी उधर आ रहा हूं अतएव मेरे पहुंचने तक युद्ध न करना, शाही अफ़सर वहां से सरखेच की तरफ़ चले गये। उनका इरादा युद्ध करने का न था, परन्तु जब मुज़फ़्फ़रखां ने अपनी सेना के साथ

लगभग ६ वर्ष की क़ैद के बाद यह निकल भागा और फिर गुजरात का स्वामी बना, पर इसके दो वर्ष बाद ही शाही सेना ने इसपर आक्रमण किया। पराजित होने पर ज़ब इसका पीछा किया गया, तब इसने आत्महत्या कर ली। उसी समय से गुजरात शाही सल्तनत का एक प्रदेश बन गया।

(१) इसका पूरा नाम अब्दुलरहीमख़ां था। यह बैरामख़ां का पुत्र था। वि० सं० १६४६ (ई० स० १५८६) में टोडरमल की मृत्यु होने पर बादशाह ने इसे अपना वज़ीरे आज़म बनाया। वि० सं० १६८४ (ई० स० १६२७) में जहांगीर के राज्य-समय में इसका देहांत हुआ।

आक्रमण कर दिया तो उन्हें भी उसका सामना करना पड़ा। मुज़फ्फ़र की फ़ौज शाही सेना के आक्रमण को न रोक सकी और उसके पैर उखड़ गये, जिससे वह मामूराबाद(?) होता हुआ माहीन्द्री की तरफ़ भाग गया। इस विजय का समाचार बादशाह के पास ता० २५ बहमन (वि० सं० १६४०, फाल्गुन सुदि ३ = ई० स० १५८४ ता० ४ फ़रवरी) को पहुंचा[1]।

मीना हरराजिया को मारना

अगले वर्ष ज्येष्ठ मास में उदयसिंह ने जोधपुर के गढ़ पर चढ़ आनेवाले भाद्राजूण के मीणा (मीना) हरराजिया को उसके सोलह साथियों-सहित मारा[2]।

सैयद दौलत का दमन करने में मोटाराजा का शाही सेना के साथ रहना

अकबर के २६ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १६४१ = ई० स० १५८४) में गुजरात में उपद्रव होने पर सैयद दौलत ने खंभात पर अधिकार कर लिया। इसपर बादशाह ने मोटाराजा, मेदनीराय (चौहान), राजा मुकुटमन, रामशाह (बुन्देला), उदयसिंह, रामचन्द्र बाघा राठोड़, तुलसीदास, अबुल्फ़तह मुग़ल, दौलतखां लोदी[3] आदि को उसे दंड देने के लिए भेजा।

---

(१) अबुल्फ़ज़्ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ६३१-३६। जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि यह लड़ाई राजपीपला नामक स्थान में वि० सं० १६४० पौष वदि (ई० स० १५८३ दिसम्बर) में हुई और इसमें मुज़फ़्फ़र की पराजय होकर वह भाग गया (जि० १, पृ० ९७-८)। उक्त ख्यात में यह भी लिखा है कि इस चढ़ाई पर जाते समय उदयसिंह सोजत से चन्द्रसेन के परिवार को लाने के लिए गया और वहां ख़ानख़ाना की आज्ञानुसार उसने अपना अधिकार स्थापित किया (जि० १, पृ० ९८)। बांकीदास लिखता है कि इस लड़ाई के समय उदयसिंह के कई चाकर बारूद से जल मरे (ऐतिहासिक बातें; संख्या ३५८ और ८६३)। "वीरविनोद" में वि० सं० १६३९ (ई० स० १५८२) में उदयसिंह का शाही सेना के साथ मुज़फ़्फ़र पर जाना लिखा है (भाग २, पृ० ८१५)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ९८। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८६४।

(३) शाहूखेल जाति का यह एक लोदी अफ़ग़ान था। पहले यह अज़ीज़ कोका की सेवा में था और पीछे से बादशाह अकबर की सेवा में प्रविष्ट हुआ। अकबर

उनके पहुंचने से पूर्व ही सैयद दौलत ने पेटलाद को लूटा, जिससे ख़्वाजम वर्दी आदि ने उससे लड़ाई कर उसे भगा दिया। इसी समय राजपीपला की पहाड़ियों से निकलकर मीरक यूसुफ़, मीरक अफ़ज़ल आदि ने भी उपद्रव करना शुरू किया, जिसपर खानखाना ने कुछ आदमी उनका दमन करने के लिए भेजे। उनके धोलका पहुंचते-पहुंचते विद्रोही भाग गये[1]।

वि० सं० १६४३ (ई० स० १५८६) में उदयसिंह के चार पुत्र—भगवानदास, भोपत, दलपत और जैतसिंह—सिंधलों पर चढ़कर गये। उन्होंने

उदयसिंह के पुत्रों का सिंधलों पर जाना तथा चारणों आदि का आत्महत्या करना

वहां पहुंचकर उनके गांवों को लूटा[2]। उसी वर्ष चारणों और ब्राह्मणों के गांव उदयसिंह-द्वारा ज़ब्त किये जाने के कारण उनमें से बहुतों ने आत्महत्या कर ली[3]।

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—

उदयसिंह की पुत्री का शाहज़ादे सलीम के साथ विवाह होना

'वि० सं० १६४४ (ई० स० १५८७) में उदयसिंह की पुत्री मानीबाई का विवाह शाहज़ादे सलीम के साथ हुआ[4]।'

के ४५वें राज्यवर्ष (हि० स० १००९ = वि० सं० १६५७ = ई० स० १६००) में इसकी अहमदनगर में मृत्यु हुई।

(१) अबुल्फ़ज़्ल; अकबरनामा—बेवरिज कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ६५५-६। "तबक़ात-इ-अकबरी" में भी सैयद दौलत के विद्रोही होकर खंभात पर अधिकार करने और उसका दमन करने के लिए शाही अफ़सरों के भेजे जाने का उल्लेख है (इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ५, पृ० ४३५-६)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ९८।

(३) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८६६-७।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ९९। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८००-१।

"उमराए हनूद" से पाया जाता है कि मानमती "जगतगुसाइन" के नाम से प्रसिद्ध थी। उसका विवाह हि० स० ९९४ ता० १६ रजब (वि० सं० १६४३ श्रावण वदि ६ = ई० स० १५८६ ता० २७ जून) को राजा के मकान पर हुआ। उक्त पुस्तक

ऊपर लिखा जा चुका है कि जगमाल का आधी सिरोही पर अधिकार करा देने के लिए बादशाह ने चन्द्रसेन के पुत्र रायसिंह को उसके साथ कर दिया था (पृ० ३५२-३), परन्तु वे दोनों सुरताण के साथ की लड़ाई में मारे गये। इसपर बीजा (हरराजोत) बादशाह अकबर की सेवा में गया, जहां उसने बादशाह की कृपा प्राप्तकर सिरोही अपने नाम लिखा ली। बादशाह सुरताण पर अप्रसन्न तो पहले से ही था, इस बार उसने उदयसिंह और जामबेग को सिरोही के राव पर भेजा। बीजा भी उनके साथ गया। शाही सेना ने वहां पहुंचकर वि० सं० १६४४ फाल्गुन सुदि ५ (ई० स० १५८८ ता० २१ फ़रवरी) को नीतोरा गांव लूटा। सुरताण इसपर सिरोही का परित्याग कर आबू पर चला गया। एक मास तक शाही सेना नीतोरा में रही, पर आबू पर चढ़कर राव से लड़ने में हानि देखकर आपस में सुलह करने के बहाने बगड़ी के ठाकुर राठोड़ वैरसल पृथ्वीराजोत की मारफ़त देवड़ा सांवतसी सूरावत, देवड़ा पत्ता सूरावत, राडवरा हंमीर कुंभावत, राडवरा बीदा सिकरावत, चीवा जेता तथा देवड़ा तोगा सूरावत को अपने पास बुलाकर राम रत्नसिंहोत के हाथ से मरवा डाला। राठोड़ वैरसल अपना वचन भंग होने के कारण बहुत बिगड़ा और उसने मोटे-राजा के डेरे पर जाकर राम को मार डाला। फिर वह भी अपने हाथ से कटार खाकर मर गया। उसका स्मारक (चबूतरा) नीतोरा गांव में बना है। इस प्रकार यह उद्योग निष्फल होने पर देवड़ा बीजा वास्थानजी की तरफ़ से आबू पर चढ़ने के इरादे से जामबेग आदि को सेना सहित ले चला, जिसकी ख़बर मिलते ही राव सुरताण भी वास्थानजी के निकट जा पहुंचा। वहां लड़ाई होने पर बीजा मारा गया, जामबेग का भाई घायल हुआ और शाही सेना भाग निकली। आबू विजय न होने के कारण शाही

उदयसिंह का सिरोही पर भेजा जाना

के अनुसार इस विवाह के बाद बादशाह ने उदयसिंह को एक हज़ार का मनसब तथा जोधपुर का राज्य दिया (पृ० ४१)। उदयसिंह की यह पुत्री जोधपुर की होने से "जोधबाई" के नाम से भी प्रसिद्ध है।

सेना लौट गई। तदनन्तर देवड़ा कल्ला को सिरोही की गद्दी पर बिठलाकर उदयसिंह शाही फ़ौज के साथ लौट गया, परन्तु उस(उदयसिंह)के लौटते ही सुरताण ने फिर सिरोही जाकर वहां अपना अधिकार कर लिया[1]।

राव मालदेव के एक पुत्र रायमल को बादशाह ने सिवाणा दिया था। उसके मरने पर वहां का अधिकार उस(रायमल)के पुत्र कल्याणदास (कल्ला) को मिला। उसने एक बार आपस की लड़ाई में बादशाह के एक छोटे मनसबदार को मार डाला[2]। इसकी ख़बर होने पर बादशाह ने उदयसिंह को कहा कि उस(कल्ला)को मारकर सिवाणा ख़ाली करा लिया जाय। तदनुसार उदयसिंह ने कुंवर भोपत और कुंवर जैतसिंह को लिखा, जिसपर वे राठोड़ आसकरण देवीदासोत, राठोड़ किशोरदास रामोत, राठोड़ नरहरदास मानसिंहोत, राठोड़ वैरसल पृथ्वीराजोत, देवड़ा भोजराज जीवावत आदि कितने ही अन्य राजपूतों के साथ इस कार्य के लिए रवाना हुए। उन्होंने जाकर गढ़ को घेर लिया। कल्याणदास ने दिन को आक्रमण करने में लाभ न समझकर रात्रि के समय शत्रु की सेना पर आक्रमण किया, जिसका फल यह हुआ कि जोधपुर के राठोड़ राणा मालावत पातावत, रूपावत केला वरसलोत, चांपावत कला जैसावत आदि बहुत से आदमी मारे गये और उन्हें भागना पड़ा। इसका समाचार प्राप्त होते ही बादशाह ने उदयसिंह को रवाना किया। वह जोधपुर होता हुआ सिवाणे गया और एक नाई से मिलकर वि० सं० १६४५ माघ वदि १० (ई० स० १५८६ ता० २ जनवरी) को उसने गढ़ में प्रवेश किया। कल्ला ने कुछ देर तक तो उसका सामना किया,

कल्ला का मारा जाना

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०० । मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० १, पृ० १३४ । बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८७१ । मेरा; सिरोही राज्य का इतिहास; पृ० २२४-५ ।

(२) "वीरविनोद" में लिखा है कि उदयसिंह ने सलीम को अपनी पुत्री व्याही थी, इसलिए कल्ला उस(उदयसिंह)से नाराज़ था और उसने फ़साद करना चाहा (भाग २, पृ० ८१६)।

पर अंत में वह मारा गया और उदयसिंह की विजय हुई[1]।

हि० स० १००० ता० २४ शव्वाल (वि० सं० १६४६ श्रावण वदि ११= ई० स० १५६२ ता० २४ जुलाई) को काश्मीर जाते समय बादशाह ने चिनाब नदी के किनारे शिकार खेलने के लिए प्रस्थान किया। रावी नदी पारकर तीन कोस आगे बढ़ने पर बादशाह ने कलीजखां के साथ मोटेराजा को लाहोर का प्रबंध करने के लिए नियत किया[2]।

लाहोर के प्रबन्ध के लिए नियुक्ति

हि० स० १००१ ता० १२ तीर (वि० सं० १६५० आषाढ सुदि ६ = ई० स० १५६३ ता० २४ जून) को बादशाह ने मोटेराजा (उदयसिंह) को फिर राव सुरताण पर भेजा, ताकि वह जाकर उसे अधीन बनावे अथवा दंड दे[3]। इस चढ़ाई का क्या परिणाम हुआ यह फ़ारसी तवारीख़ों से स्पष्ट नहीं होता।

उदयसिंह का फिर सिरोही पर भेजा जाना

अकबर के ३६ वें राज्य वर्ष में हि० स० १००३ ता० ८ दे (वि० सं० १६५१ माघ वदि २ = ई० स० १५६४ ता० १६ दिसम्बर) को मोटाराजा जोधपुर से चलकर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ[4]। फिर वह लाहोर गया, जहां रहते समय वह बीमार पड़ा और (श्रावणादि) वि० सं० १६५१ (चैत्रादि १६५२) आषाढ सुदि १५ (ई० स० १५६५ ता० ११ जुलाई) को उसका देहावसान हो गया[5]।

उदयसिंह का स्वर्गवास

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६६-१०० । वीरविनोद; भाग २, पृ० ८१५ । बांकीदास उदयसिंह और उसके कुंवरों का साथ ही जाना लिखता है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८६६-७०) ।

कल्ला के वंशजों के ठिकाने लाडणूं आदि में हैं ।

(२) तबकात-इ-अकबरी—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ५, पृ० ४६१ ।

(३) अबुल्फ़ज़्ल; अकबरनामा—बेवरिज़-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ६८५ । मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २१८ ।

(४) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १०१५ ।

(५) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०१ । "वीरविनोद" में भी यही तिथि दी है (भाग २, पृ० ८१५) । अबुल्फ़ज़्ल के अकबरनामे में हि० स० १००३

राणियां तथा सन्तति

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार उदयसिंह के १७ राणियां थीं, जिनसे उसके १६ पुत्र—नरहरदास (जन्म—वि० सं० १६१३ माघ वदि १ = ई० स० १५५६ ता० १७ दिसंबर), भगवानदास[1] (जन्म—वि० सं० १६१४ आश्विन वदि १४ = ई० स० १५५७ ता० २१ सितंबर), भोपतसिंह[2] (जन्म—वि० सं० १६१५ कार्तिक सुदि ६ = ई० स० १५५८ ता० १७ अक्टोबर), अखैराज[3], जैतसिंह[4]

ता० ३० तीर (वि० सं० १६५२ श्रावण वदि १ = ई० स० १५६५ ता० १२ जुलाई) को मोटाराजा का हृदय की गति बंद हो जाने से मरना लिखा है (जि० ३, पृ० १०२७)। मुंशी देवीप्रसाद के अकबरनामे में अकबर के ४२ वें राज्यवर्ष में मोटाराजा का देहांत होना लिखा है (पृ० २३७) ४२ वां के स्थान में ४० वां राज्यवर्ष होना चाहिये। बांकीदास-कृत "ऐतिहासिक बातें" (संख्या ८८५) में वि० सं० १६५१ (ई० स० १५६४) दिया है, जो ठीक नहीं है। इस सम्बन्ध में अबुल्फ़ज़्ल-द्वारा दिया हुआ मोटाराजा की मृत्यु का समय ही ठीक प्रतीत होता है।

(१) वि० सं० १६५१ कार्तिक वदि १२ (ई० स० १५६४ ता० १ अक्टोबर) को इसका देहांत हो गया। इसका बेटा गोयन्ददास हुआ, जिसके वंश के गोयन्ददासोत जोधा कहलाते हैं। इनकी जागीर खैरवे में है (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०५)।

(२) इसको बादशाह ने जैतारण दिया था। पीछे पंवार शार्दूल से लड़ाई होने पर वि० सं० १६६३ मार्गशीर्ष सुदि १५ (ई० स० १६०६ ता० ४ दिसम्बर) को यह मारा गया (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०६)।

(३) समावली में रहते समय मारा गया (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०५)।

(४) इसका पुत्र हरिसिंह और उसका रत्नसिंह हुआ, जिसके वंशज रत्नोत जोधा कहलाये। इनका ठिकाना दूगोली है (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०७)। बांकीदास ने इसकी नीचे लिखे अनुसार पीढ़ियां दी हैं—

(१) उदयसिंह, (२) जैतसिंह, (३) हरिसिंह, (४) रत्नसिंह, (५) किशनसिंह, (६) सावंतसिंह, (७) सरदारसिंह, (८) राघवदास, (९) ज्ञानसिंह, (१०) शिवनाथसिंह, (११) बख़्तावरसिंह।

(ऐतिहासिक बातें; संख्या १८२७)।

माधोसिंह[1], मोहनदास[2], कीरतसिंह, दलपत[3] (जन्म—वि० सं० १६२५ श्रावण वदि ६ = ई० स० १५६८ ता० १८ जुलाई), शक्तसिंह[4] (जन्म—वि० सं० १६२४ पौष सुदि १४ = ई० स० १५६७ ता० १५ दिसंबर), जसवन्तसिंह, सूरसिंह, पूरणमल, किशनसिंह[5], केशोदास और रामसिंह हुए[6]। इनके अतिरिक्त उसके १६ पुत्रियां भी हुईं[7]।

(१) इसके पुत्र और पौत्र क्रमशः केसरीसिंह और सुजानसिंह हुए, जिनके वंशज जूनियां और पीसांगण में हैं (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०८)।

अजमेर प्रदेश में जूनियां, कलोंज, देवलिया खुर्द, बोगला कालेड़ा, मंडा, मेहरूं, तसवारिया, निमोध, सांकरिया, कादेड़ा, पीसांगण, प्रान्हेड़ा, खवास-सरसड़ी, पारा, सदारा, कोड़ा, मेवदा खुर्द आदि इस्तमरारदारों के ठिकाने माधोसिंह के वंश में हैं (दी रूलिंग प्रिन्सिज़, चीफ़्स एण्ड लीडिंग पर्सोनेजीज़ इन राजपूताना एण्ड अजमेर; पृ० २०५)।

(२) इसके वंशज मेड़ता के गांव रामपुरिया में हैं (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०८)।

(३) इसका पुत्र महेशदास पहले शाहज़ादे खुर्रम का सेवक रहा। वि० सं० १६८४ में यह महाबतख़ां का सेवक हुआ, जिसके मरने पर यह बादशाह की सेवा में रहा। इसे पहले जहाज़पुर और बाद में जालोर का पट्टा मिला था। वि० सं० १७४३ (ई० स० १६८६) में लाहोर में इसका देहांत हुआ। इसके पुत्रों में से रत्नसिंह को जालोर मिला। इसका बसाया हुआ मालवे में रतलाम शहर है (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०६-७)।

(४) इसको उदयसिंह ने अलग कर हूंण गांव दिया था। पीछे से यह बादशाह की सेवा में प्रविष्ट हुआ, जहां इसे ५०० का मनसब प्राप्त हुआ, जो पीछे से बढ़ाकर तीन हज़ारी कर दिया गया। इसकी मृत्यु विष-प्रयोग से हुई। इसके वंशज खरवा (अजमेर प्रांत) में हैं (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०६)।

(५) इसने किशनगढ़ का राज्य क़ायम किया। इसका जन्म (श्रावणादि) वि० सं० १६३९ (चैत्रादि १६४०) ज्येष्ठ वदि २ (ई० स० १५८३ ता० २८ अप्रेल) को हुआ था (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०७)।

(६) वही; जि० १, पृ० १००-४। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८१६।

(७) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १००-४। बांकीदास के अनुसार

महाराजा सूरसिंह[1]

सूरसिंह (सूरजसिंह) का जन्म (श्रावणादि) वि० सं० १६२७ (चैत्रादि १६२८) वैशाख वदि अमावास्या (ई० स० १५७१ ता० २४ अप्रेल) को हुआ था[2]। वैसे तो उसके कई बड़े भाई विद्यमान थे, परन्तु बादशाह ने उसे ही उदयसिंह का उत्तराधिकारी नियत किया[3] और वि० सं० १६५२ श्रावण वदि १२ (ई० स० १५९५ ता० २३ जुलाई) को लाहोर में उसे टीका दिया[4]। इस अवसर पर उसे दो हज़ार ज़ात और सवा हज़ार सवार का मनसब प्राप्त हुआ[5]।

जन्म तथा गद्दीनशीनी

इसके कुछ दिनों बाद जब मुराद और खानखाना दक्षिण की तरफ़ चले गये तो गुजरात का सूबा खाली रह गया। यह देखकर बादशाह ने

भी इसके कई पुत्रियां हुईं, जिनमें से कमलावतीबाई का विवाह महू के खींची राव गोपालदास के साथ, प्राणवतीबाई का डूंगरपुर के रावल सहसमल के साथ तथा रुक्मावतीबाई का कछवाहा राजा महासिंह के साथ हुआ (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८७७, ८८३ तथा ८८४)।

(१) फ़ारसी तवारीख़ों में इसे राजा ही लिखा है, परन्तु एक जैन मूर्ति पर के एक लेख में इसे महाराज़ा लिखा है (पूरणचन्द नाहर; जैन लेख संग्रह; प्रथम खण्ड, पृ० १८७)। इससे स्पष्ट है कि मारवाड़वाले इसे महाराजा ही लिखते थे।

(२) चंडू के यहां का जन्मपत्रियों का संग्रह। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८५९ तथा ८८६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८१६।

जोधपुर राज्य की ख्यात में तिथि तो यही दी है, पर संवत् १६२७ के स्थान में १६२६ दिया है (जि० १, पृ० १२२), जो ठीक नहीं है। जोधपुर राज्य के संवत् श्रावणादि हैं। इसको दृष्टि में रखते हुए चंडू के यहां की जन्मपत्री में दिया हुआ समय ही ठीक है, क्योंकि उसमें दी हुई जन्मकुंडली के अनुसार ही वि० सं० १६२८ वैशाख वदि अमावास्या को सूर्य मेष तथा चन्द्रमा वृष राशि पर थे।

(३) "वीरविनोद" में लिखा है कि उदयसिंह ने सूरसिंह की माता पर विशेष प्रेम होने के कारण बादशाह से उसे ही उसके बाद राजा बनाने के लिए कह दिया था (भाग २, पृ० ८१७)।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १२२।

(५) वही; जि० १, पृ० १२१।

अहमदाबाद में नियुक्ति

राजा सूरजसिंह को गुजरात के प्रबंध के लिए भेजा[1]। जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि इस अवसर पर क़ाज़ी हसन आदि कई मुसलमान अफ़सर भी उसके साथ अहमदाबाद गये[2]।

अकबर के ४२ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १६५४=ई० स० १५६७) में राजपीपला के स्वामी (तिवारी) के यहां शरण पाये हुए मुज़फ्फर गुजराती के

विद्रोही बहादुर को भगाना

पुत्र बहादुर ने जब देखा कि बादशाह के प्रमुख अफ़सर दक्षिण की तरफ़ व्यस्त हैं तो उसने उत्पात करना प्रारम्भ किया और धन्धुका नगर को लूट लिया। सूरसिंह को इसका पता लगने पर उसने विद्रोही मिर्ज़ा पर आक्रमण किया, जिससे वह भाग गया[3]।

वि० सं० १६५४ कार्तिक वदि १४ (ई० स० १५६७ ता० २६ अक्टोबर) को बीकानेर के कुछ लोगों ने गांव गाधांणी में पहुंचकर जोधपुर के

बीकानेर वालों-द्वारा राजकीय ऊंट लिये जाने पर लड़ाई होना

राजकीय ऊंट पकड़ लिये। इसपर मांगलिया सूरा तथा राठोड़ हरदास महेशदासोत ने उनसे लड़कर ऊंट पीछे लिये[4]।

---

(१) अबुल्फ़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १०४२। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २३८। "वीरविनोद" में शाहज़ादे मुराद के साथ सूरसिंह की गुजरात में नियुक्ति होना लिखा है (भाग २, पृ० ८१७)। ब्रजरत्नदास-कृत "मआसिरुल् उमरा" (पृ० ४५४) तथा "उमराए हनूद" (उर्दू; पृ० २५४) में भी ऐसा ही लिखा है और वही ठीक है।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १२३।

(३) अबुल्फ़ज़ल; अकबरनामा; बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १०८३। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १२३-४। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २४८। ब्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा; पृ० ४५४।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १४३।

इस घटना का उल्लेख बीकानेर राज्य की ख्यात में नहीं है।

इस घटना के कुछ ही समय बाद पौष वदि अमावास्या (ई० स० १५६७ ता० २८ दिसंबर) को जैसलमेर के रावल भीम के डेढ़ हज़ार सैनिक गांव कोढणा से आधा कोस दूरी पर आ पहुंचे। ऊहड़ गोपालदास ने उनका सामना किया। इस लड़ाई में पैंतीस राजपूतों के साथ गोपालदास काम आया, पर जैसलमेर की फ़ौज को भी पीछे जाना पड़ा[1]।

जैसलमेर की सेना का मारवाड़ में आना

अकबर के ४४ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १६५६ = ई० स० १५६६) में अहमदनगर को फ़तह करने के लिए जाते हुए मार्ग में मिरगी की बीमारी से शाहज़ादे मुराद का देहांत हो गया। इसकी खबर बादशाह को होने पर उसने शाहज़ादे दानियाल की नियुक्ति उसके स्थान पर की[2]। "वीरविनोद" से पाया जाता है कि इस अवसर पर राजा सूरसिंह भी उसके साथ भेजा गया[3]। जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—'दक्षिण जाते समय राजा सूरसिंह मार्ग में सोजत में रुक गया और आगे बढ़ने में ढिलाई करने लगा। यह खबर बादशाह को लगने पर वह उससे बड़ा नाराज़ हुआ और उसने सोजत का पट्टा उसके भाई शक्तसिंह के नाम कर दिया। इसपर भंडारी मान, जो सोजत में था, वहां का अधिकार शक्तसिंह को सौंप जोधपुर चला गया। एक वर्ष तक सोजत पर शक्तसिंह का अधिकार रहा। इसी बीच बादशाह के बुरहानपुर में रहते समय भाटी गोयंददास (मानावत) तथा राठोड़ राम (रतनसिंहोत)

बादशाह की नाराज़गी

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १४३।

जैसलमेर का रावल भीम राजा सूरसिंह का समकालीन अवश्य था, पर उसके समय में जैसलमेर के सैनिकों का जोधपुर में आने का कोई उल्लेख जैसलमेर की तवारीख़ में नहीं है।

(२) अबुल्फ़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० ३, पृ० ११२६।

(३) भाग २, पृ० ८१७। व्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा; पृ० ४५४। उमराए हनूद; पृ० २५४।

ने उसके पास उपस्थित हो सोजत का पट्टा पुनः राजा के नाम लिखवा लिया, ज़िससे शक्तसिंह को वहां का अधिकार छोड़ना पड़ा। इसके पूर्व ही राजा सूरसिंह की सेना ने सोजत पर घेरा डाल दिया था। शक्तसिंह की तरफ़ के विशनदास (कल्याणदासोत) ने उसका मुक़ाबला किया, पर उसकी पराजय हुई[1]।'

नासिक फ़तह करना

बादशाह अकबर के ४५ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १६५७ = ई० स० १६००) में राजू[2] ने उपद्रव करना आरम्भ किया। वह सआदतख़ां का चाकर था और सआदतख़ां के शाही अधीनता स्वीकार कर लेने पर, उसने उसके हाथी आदि लूटे और उसके साथियों को अपनी तरफ़ मिलाकर वह नासिक के आस-पास के प्रदेश का स्वामी बन बैठा था। इसकी ख़बर मिलने पर शाहज़ादे ने दौलतख़ां को ५००० फ़ौज के साथ उसे दंड देने के लिए भेजा। इस अवसर पर राजा सूरसिंह, सआदत बारहा, शहबाज़ख़ां, बुरहानुलमुल्क आदि कितने ही अफ़सर भी उसके साथ गये। उन्होंने बड़ी वीरता से विद्रोही का सामना कर ता० ३ तीर (आषाढ सुदि १३ = ता० १४ जून) को नासिक पर अधिकार कर लिया[3]।

ख़ुदावन्दख़ां हब्शी का दमन करना

बादशाह के ४७ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १६५६ = ई० स० १६०२) में ख़ुदावन्दख़ां हब्शी ने पातरी और पाटन (?बासीम) की सरकार में विद्रोह की अग्नि भड़काई। इसपर ख़ानख़ाना ने सूरसिंह और जालोर के ग़ज़नीख़ां की अध्यक्षता में एक सेना उसे दंड देने के लिए भेजी। उन्होंने वहां

(१) जि० १, पृ० १२४-५।

इस घटना का उल्लेख फ़ारसी तवारीख़ों में नहीं है।

(२) यह मियां राजू दक्खिणी के नाम से प्रसिद्ध था। मलिक अम्बर के साथ-साथ यह भी निज़ामशाही राज्य के एक बड़े भाग का स्वतन्त्र स्वामी बन गया था।

(३) अबुलफ़ज़्ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ११५४। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २७०। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८१७। मआसिरुल् उमरा; पृ० ४५४। उमराए हनूद; पृ० २५४।

पहुंचकर शत्रु का दमन किया और शांति की स्थापना की[1]।

इसके कुछ समय बाद ही यह समाचार आया कि अम्बर[2] (चंपू) तिलंगाना पहुंच गया है। मीर मुरतज़ा, शेर ख़्वाजा के साथ नान्देर छोड़कर जहरी (सरकार पाठरी) में चला तो गया है पर शत्रुओं का उस ओर प्रभाव अधिक बढ़ने के साथ-साथ उपर्युक्त दोनों शाही अफ़सर संकट में हैं तो

अमर चंपू पर शाही सेना के साथ जाना

खानखाना ने अपने पुत्र ईरिज को उधर के बखेड़े का अन्त करने के लिए भेजा। ईरिज ने मीर मुरतज़ा और शेर ख़्वाजा के साथ मिलकर शत्रु पर आक्रमण करने का निश्चय किया। इसका पता लगते ही अम्बर दमतूर (?) होता हुआ कन्दहार की ओर चला। इसी बीच हब्शी फ़रहाद दो-तीन हज़ार सवारों के साथ अम्बर से जा मिला। शाही सेना बिना कहीं रुके हुए उनपर जा पहुंची। शत्रु सेना के सामना करने के लिए ठहरने पर शाही सेना भी युद्ध के लिए उद्यत हुई। ईरिज अपने पिता के सैनिकों और मनसबदारों के साथ बीच में रहा। हरावल में सूरसिंह, बहादुरूल्मुल्क, पर्वतसेन खत्री, मुकुन्दराय, रायसल दरबारी का पुत्र गिरधरदास आदि थे। दाहिनी तरफ़ मीर मुरतज़ा बहादुर सैनिकों के साथ विद्यमान था और बाईं तरफ़ अली मरदान बहादुर आदि थे। शाही सेना ने वीरता-पूर्वक शत्रु पर आक्रमण किया, परन्तु दाहिनी तथा बाईं ओर के सैनिकों की असावधानता के कारण अम्बर और फ़रहाद भाग गये। फिर भी बीस

---

(१) अबुल्फ़ज़्ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १२११। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २६१। व्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा; पृ० ४५४।

(२) इसका पूरा नाम मलिक अम्बर था। यह जाति का हब्शी और अहमदनगर का प्रधान मन्त्री था। अहमदनगर का राज्य अकबर के अधिकार में जाने पर यह उधर के बहुतसे भाग का स्वतन्त्र शासक बन बैठा और उपद्रव करने लगा। जहांगीर के राज्य समय में इसपर कई बार सेनाएं भेजी गईं, पर कोई परिणाम न निकला। पीछे से इसने मुग़लों से लिए हुए प्रदेश शाहज़ादे शाहजहां के सुपुर्द कर दिये। वि० सं० १६८३ (ई० स० १६२६) में अस्सी वर्ष की अवस्था में इसकी मृत्यु हुई।

हाथी और अन्य सामान आदि शाही सेना के हाथ लगे। बादशाह ने इस विजय का समाचार पाकर विजयी अफ़सरों के मनसब में वृद्धि कर उन्हें घोड़े और सिरोपाव आदि पुरस्कार में दिये[1]।

४८ वें राज्यवर्ष के प्रारम्भ (वि० सं० १६६० = ई० स० १६०३) में बादशाह ने; दक्षिण की लड़ाइयों में अच्छी कारगुज़ारी दिखाने के लिए सूरसिंह को एक नगारा दिया[2]। उसी वर्ष बादशाह ने शाहज़ादे दानियाल को लिखा कि सूरसिंह बहुत दिनों से दक्षिण में रहने के कारण अब दरबार में हाज़िर होने और अपने देश के कार्यों की देख-रेख के लिए जाने को उत्सुक है, अतएव गोविन्ददास भाटी और उसके साथ की सेना को अपने पास रखकर वह (दानियाल) उस-(सूरसिंह)को दरबार में आने और स्वदेश जाने के लिए छुट्टी दे दे[3]। इसके

सूरसिंह का जोधपुर जाना

(१) अबुल्फ़ज़्ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १२१२-३। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २९१-२। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८१७। कविया करणीदान; सूरजप्रकाश; पृ० ८५-७ (हमारे संग्रह की हस्तलिखित प्रति)।

जोधपुर राज्य की ख्यात में भी इस घटना का उल्लेख है। उसमें इस लड़ाई का वि० सं० १६५८ (चैत्रादि १६५९) ज्येष्ठ वदि अमावास्या (ई० स० १६०२ ता० ११ मई) को होना लिखा है (जि० १, पृ० १२४)। "अकबरनामे" के अनुसार यह घटना बादशाह के ४७ वें राज्यवर्ष की है, जो वि० सं० १६५८ चैत्र वदि १३ (ई० स० १६०२ ता० ११ मार्च) को प्रारम्भ हुआ था। ख्यात के अनुसार इस अवसर पर सूरसिंह को आधा मेड़ता तथा "सवाई राजा" का ख़िताब मिला, पर न तो फ़ारसी तवारीख़ों में इसका उल्लेख है और न उसके समय के मिले हुए वि० सं० १६६५ और १६६६ (पूरणचंद नाहर; जैन लेखसंग्रह; प्रथम खण्ड; संख्या ८७४ तथा ७७३) के लेखों में।

(२) अबुल्फ़ज़्ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १२२६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८१७। मुंशी देवीप्रसाद-कृत "अकबरनामा" (पृ० ३०१) में झंडा लिखा है।

(३) अबुल्फ़ज़्ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १२३०। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० ३०२।

कुछ ही समय बाद सूरसिंह मीर सद्र (? हैदर) मुअम्माई को, जो अपनी मूर्खता के कारण उपद्रव कर रहा था, गिरफ़्तार कर पाटन ले गया, जहां के हाकिम मर्तज़ा कुली ने उसे बाहर निकाल दिया[१]।

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि बादशाह की आज्ञा प्राप्तकर (श्रावणादि) वि० सं० १६६१ (चैत्रादि १६६२) आषाढ वदि ८ (ई० स० १६०५ ता० ३० मई) को सूरसिंह जोधपुर पहुंचा। उसके प्रस्थान करते समय बादशाह ने उसे जैतारण और मेड़ते का दूसरा अर्धांश दिया[२]।

वि० सं० १६६२ कार्तिक सुदि १४ (ई० स० १६०५ ता० १५ अक्टोबर) को बादशाह अकबर का देहान्त हो गया[३]। तब हि० स० १०१४ ता० २० जमादिउस्सानी (वि० सं० १६६२ मार्गशीर्ष वदि ७ = ई० स० १६०५ ता० २४ अक्टोबर) को उसका ज्येष्ठ पुत्र सलीम जहांगीर नाम धारणकर दिल्ली के तख़्त पर बैठा[४]।

अकबर की मृत्यु और जहांगीर की गद्दीनशीनी

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि जहांगीर के सिंहासनारूढ़ होने के समय गुजरात में फिर फ़साद उठ खड़ा हुआ। तब बादशाह ने सूरसिंह को गुज़रात में भेजा। उसने वहां पहुंचकर विद्रोही लालमियां का दमन कर मांडव को अधीन किया। लालमियां के साथ की लड़ाई में सूरसिंह की सेना के राठोड़ सूरजमल जैतमालोत चांपावत, राठोड़ गोपालदास मांडणोत चांपावत, राठोड़ हरीदास चांदावत, राठोड़ गोपालदास ईडरिया आदि कई सरदार मारे गये। इसके बाद वि० सं० १६६३ फ़ाल्गुन सुदि ७ (ई० स० १६०७ ता० २३ फ़रवरी) को महाराजा वापस जोधपुर चला

सूरसिंह की गुजरात में नियुक्ति

(१) अबुल्फ़ज़्ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १२४६।

(२) जिल्द १, पृष्ठ १२५।

(३) अबुल्फ़ज़्ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १२६०।

(४) तुज़ुक-इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० १।

गया[1]।

सूरसिंह का बादशाह के पास जाना

जहांगीर के तीसरे राज्यवर्ष के प्रारम्भ में ता० २५ ज़िलहिज्ज (वि० सं० १६६५ वैशाख वदि ११ = ई० स० १६०८ ता० १ अप्रेल) को सूरसिंह उसकी सेवा में उपस्थित हुआ। उस समय उसके साथ अमरा का भाई श्याम और एक कवि था, जिसकी एक कविता से प्रसन्न होकर बादशाह ने उसे एक हाथी पुरस्कार में दिया[2]।

सूरसिंह के मनसब में वृद्धि और दक्षिण में नियुक्ति

ता० १४ शाबान (मार्गशीर्ष वदि २=ता० १३ नवंबर) रविवार को बादशाह ने ख़ानख़ाना को एक रत्नजटित तलवार और सिरोपाव आदि देकर उसे दक्षिण के कार्य पर जाने की इजाज़त दी। राजा सूरसिंह भी ख़ानख़ाना के साथ ही दक्षिण में तैनात किया गया। इस अवसर पर उसका मनसब बढ़ाकर ३००० ज़ात और २००० सवार कर दिया गया[3]।

---

(१) जिल्द १, पृ० १२५–६। फ़ारसी तवारीख़ों में इस घटना का उल्लेख नहीं है।

(२) तुज़ुक इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० १४०-१। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० १०२-३। "वीरविनोद" में वि० सं० १६६५ चैत्र सुदि १३ (हि० स० १०१६ ता० १२ ज़िलहिज्ज=ई० स० १६०८ ता० ६ मार्च) को सूरसिंह का जहांगीर की सेवा में जाना लिखा है (भाग २, पृ० ८१७), जो ठीक नहीं है। ता० १२ के स्थान में ता० २५ ज़िलहिज्ज होनी चाहिये, जैसा कि ऊपर लिखा गया है। टॉड सूरसिंह का अपने पुत्र गजसिंह के साथ बादशाह की सेवा में जाना लिखता है (राजस्थान; जि० २, पृ० ६७०)।

(३) तुज़ुक इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० १४३। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० ११३-१४। "वीरविनोद" (भाग २, पृ० ८१७) तथा व्रजरत्नदास-कृत "मआसिरुल उमरा" (पृ० ४५४) में चार हज़ार ज़ात और दो हज़ार सवार का मनसब मिलना लिखा है। "उमराए हनूद" (पृ० २५५) से भी "वीरविनोद" के कथन की पुष्टि होती है। इनमें से प्रथम पुस्तक में मनसब वृद्धि का समय जहांगीर का चौथा राज्यवर्ष दिया है।

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है— 'वि० सं० १६६६ (ई० स० १६०६) में राणा अमरसिंह का दमन करने के लिए बादशाह ने महाबतखां[1] को नियतकर उसे मोही भेजा। उसने वहां जाकर पता लगाया तो मालूम हुआ कि राणा का परिवार सूरसिंह के इलाक़े के सोजत नामक स्थान में है।

महाबतखां का सोजत लेना तथा उसका पीछा मिलना

इससे अप्रसन्न होकर उसने सोजत का परगना कर्मसेन[2] (उग्रसेनोत) को देकर उससे राणा के परिवार का पता लगाने के लिए कहा। (श्रावणादि) वि० सं० १६६६ (चैत्रादि १६६७) वैशाख वदि २ (ई० स० १६१० ता० ३१ मार्च) को कर्मसेन ने जाकर सोजत पर अधिकार किया। दक्षिण जाते समय मार्ग में इसकी खबर पाकर सूरसिंह ने गोयन्द्दास भाटी को भेजा, जिसने महाबतखां से इस सम्बन्ध में बहुत-कुछ कहा सुना, पर कोई परिणाम न निकला। तब वह मेड़ते में कुंवर गजसिंह के पास चला गया। कुछ दिनों पश्चात् महाबतखां के स्थान में अब्दुल्लाखां की नियुक्ति हुई, जिसने कुंवर गजसिंह और गोविन्ददास को बुलाकर नाडोल और सोजत वापस दे दिये। तब गजसिंह ने कर्मसेन को निकालकर सोजत और ग़ज़नीखां को निकालकर नाडोल पर अधिकार कर लिया[3]।'

वि० सं० १६६८ (ई० स० १६११) में सीसोदिया भीम इसाली (?) लूटकर भागा। उस समय राठोड़ लक्ष्मण (नारायणोत) और राठोड़ अमरा

(१) काबुल के ग़यूरबेग का पुत्र ज़मानाबेग। पीछे से इसे महाबतखां का ख़िताब मिला।

(२) भिणायवालों का पूर्वज।

(३) जिल्द १, पृ० १२६–७। "तुज़ुक-इ-जहांगीरी" में इस घटना का उल्लेख नहीं है, परन्तु उससे इतना पता चलता है कि जहांगीर के चौथे राज्यवर्ष के आरम्भ में महाबतखां हटाया जाकर उसके स्थान में अब्दुल्लाखां राणा पर नियुक्त किया गया था (रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० १५५)। उक्त तवारीख़ के अनुसार यह घटना हि० स० १०१७ (वि० सं० १६६५=ई० स० १६०८) की है। यदि ख्यात की घटना ठीक भी मान ली जाय तो यही मानना पड़ेगा कि उसका समय उसमें ग़लत दिया है।

गोविन्ददास की कुंवर कर्णसिंह से लड़ाई

(सांवलदासोत) आकर उससे लड़े, पर मारे गये[1]। इसी वर्ष अहमदाबाद से ऊंटों पर शाही खज़ाने के आगरे जाने की खबर पाकर कुंवर कर्णसिंह (मेवाड़वाला) ने कितने ही राजपूतों को साथ लेकर मारवाड़ के दूनाड़े गांव तक उसका पीछा किया, परन्तु खज़ाना पहले ही अजमेर की तरफ़ निकल गया था, जिससे उसे लौटना पड़ा। लौटते समय मालगढ़ और भाद्राजूण के पास भाटी गोविन्ददास नाडोल से अपनी सेना सहित उस (कर्णसिंह) पर चढ़ गया। उससे कुछ लड़ाई हुई, जिसमें दोनों तरफ़ के बहुतसे आदमी मारे गये। फिर कुंवर पहाड़ों में लौट गया[2]।

सूरसिंह का शाहज़ादे खुर्रम को हाथी देना

वि० सं० १६६८ (ई० स० १६११) में जब बादशाही फ़ौज दक्षिण की तरफ़ जा रही थी उसमें बहुत से राजा तथा नवाब आदि थे। एक दिन राजा मानसिंह कछवाहे के उमरावों के साथ के हाथी ने सूरसिंह के उमराव भाटी जोगणीदास गोयंददासोत (बीजवाड़िया) को अचानक सूंड़ से पकड़कर घोड़े से गिरा दिया और अपने बाहरी दांत उसके शरीर के आर-पार कर दिये। जोगणीदास ने इस दशा में रहते हुए भी कटार निकालकर हाथी के कुंभस्थल पर तीन बार मारा, पर वह जीता न बचा। इसपर मानसिंह ने वह हाथी सूरसिंह को दे दिया। सूरसिंह ने पीछे से वही हाथी उदयपुर में शाहज़ादे खुर्रम को नज़र किया[3]।

सिरोही के सूरसिंह से लिखा-पढ़ी

सिरोही के महाराव सुरताण का स्वर्गवास होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र राव राजसिंह वि० सं० १६६७ (ई० स १६१०) में उसका उत्तराधिकारी हुआ। वह सरल प्रकृति का भोला राजा था, जिससे अवसर पाकर उसका छोटा भाई सूरसिंह राज्य छीनने का प्रपंच करने लगा। उसने इस समय

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १२८।

(२) वही; जि० १, पृ० १२८-६। वीरविनोद; भाग २, पृ० २२६।

(३) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १००७, १००८ तथा १२४३।

जोधपुर के स्वामी सूरसिंह से सहायता प्राप्त करने के हेतु उसे अपनी तरफ़ मिलाना चाहा। महाराव सुरताण ने दातांणी की लड़ाई में रायसिंह को मारा था, उस वैर को मिटाने के लिए उसने यह स्थिर किया कि कुंवर गजसिंह का विवाह उसकी पुत्री से कर दिया जाय और २६ राजपूतों के विवाह, जिनके सम्बन्धी दातांणी की लड़ाई में मारे गये थे, सूरसिंह (सिरोही) के पक्ष के राजपूतों की लड़कियों से हो। देवड़ा बीजा का जड़ाऊ कटार कुंवर गजसिंह को दिया जाय और रायसिंह के डेरे, उसका सब सामान और नगारा जो सुरताण ने छीन लिया था पीछा दे दिया जाय। इसके बदले में सूरसिंह देवड़ा सूरसिंह को सिरोही की गद्दी पर बिठलावे और बादशाह के पास ले जाकर उसे शाही सेवा में प्रविष्ट करावे और ऐसा प्रबन्ध कर दे कि उस (देवड़ा सूरसिंह) का पुत्र कभी राज्य से निकाला न जाय। ये सब बातें आपस में तय होकर, इसकी तहरीर वि० सं० १६६८ फाल्गुन वदि ६ (ई० स० १६१२ ता० १२ फ़रवरी) को लिखी गई[1]। इस खटपट से राजसिंह और उसके भाई सूरसिंह के बीच द्वेषभाव बढ़ता गया और अन्त में दोनों में लड़ाई हुई, जिसमें महाराव की विजय हुई और सिरोही की गद्दी पर बैठने की सूरसिंह की आशा दिल ही में रह गई। इतना ही नहीं उसे सिरोही राज्य छोड़कर भागना पड़ा[2], क्योंकि उपर्युक्त लिखा-पढ़ी का कुछ भी परिणाम न हुआ।

भाटी सुरताण के वैर में गोपालदास का मारा जाना

नागोर के गांव भांवड़ा का भाटी सुरताण (मानावत) राणा सगर का चाकर था। राठोड़ गोपालदास (भगवानदासोत) आदि कई राजपूतों ने चढ़ाईकर (श्रावणादि) वि० सं० १६६६ (चैत्रादि १६७०) ज्येष्ठ सुदि ७ (ई० स० १६१३ ता० १६ मई) को उसे मार डाला। इसकी खबर

(१) मुंशी देवीप्रसाद ने स्वलिखित "तवारीख़ रियासत सिरोही" (उर्दू) में तहरीर की पूरी नक़ल दी है (पृ० ६३)।

(२) मेरा; सिरोही राज्य का इतिहास; पृ० २४५-६। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १२९-६ तथा १२८।

मिलने पर भाटी गोविन्ददास ने सूरसिंह से, जो जोधपुर में ही था, इस विषय में निवेदन किया और गोपालदास पर सेना भेजने को कहा। इसपर कुंवर गजसिंह ने चढ़ाई कर गांव नीलियां के पास गोपालदास को मार डाला[1]।

सूरसिंह का खुर्रम के साथ महाराणा पर जाना

शाहज़ादा परवेज़, महावतखां और अब्दुल्लाखां की चढ़ाइयां निष्फल[2] होने के कारण बादशाह ने यह विचार किया कि जब तक मैं स्वयं न जाऊंगा तब तक राणा आधीन न होगा। इसी विचार से ज्योतिषियों के बताये हुए मुहूर्त के अनुसार हि० स० १०२२ ता० २ शाबान (वि० सं० १६७० आश्विन सुदि ३=ई० स० १६१३ ता० ७ सितम्बर) को वह आगरे से प्रस्थान कर ता० ५ शव्वाल (मार्गशीर्ष सुदि ७=ता० ८ नवम्बर) को अजमेर पहुंचा। इस सम्बन्ध में बादशाह स्वयं लिखता है—'मेरी इस चढ़ाई के दो अभिप्राय थे — एक तो ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की ज़ियारत करना और दूसरे बाग़ी राणा को, जो हिन्दुस्तान के मुख्य राजाओं में से है और जिसकी तथा जिसके पूर्वजों की श्रेष्ठता और अध्यक्षता यहां के सब राजा और रईस स्वीकार करते हैं, अधीन करना।' बादशाह ने अजमेर पहुंचकर स्वयं वहां ठहरना निश्चय किया और मेवाड़ में रक्खी हुई पहले की सेना के अतिरिक्त १२००० सवार साथ देकर शाहज़ादे खुर्रम को खूब इनाम-

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १३५ और १४०। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ७५६ (तिथि ८ दी है)।

(२) बादशाह जहांगीर ने मेवाड़ पर भेजे हुए अपने भिन्न-भिन्न अफ़सरों की हार का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया, परंतु मौलवी अब्दुलहमीद लाहोरी अपने "बादशाहनामे" में लिखता है—'राणा पर की चढ़ाइयों में जाकर शाहज़ादा परवेज़, महाबतख़ां और अब्दुल्लाख़ां ने सिवाय परेशानी व सरगर्दानगी के कोई फ़ायदा न उठाया (बादशाहनामा [मूल]; जि० १, पृ० १६५)।' आगे चलकर उसी पुस्तक में लिखा है कि शाहज़ादा और महाबतख़ां मांडल से आगे नहीं बढ़े थे (वही; जि० १, पृ० १६७। वीरविनोद; भाग २, पृ० २३०)। इससे अनुमान होता है कि यदि वे आगे बढ़े होंगे तो नुक़सान उठाकर ही वापस लौटे होंगे।

इकराम से उत्साहित कर मेवाड़ पर भेजा[1]। इस अवसर पर अन्य सरदारों के अतिरिक्त जोधपुर का सूरसिंह भी शाहज़ादे के साथ भेजा गया[2]।

जोधपुर राज्य की ख्यात में भी इस सम्बन्ध में लिखा है—'अजमेर पहुंचकर बादशाह ने शाहज़ादे खुर्रम को उदयपुर भेजा और सूरसिंह को दक्षिण से बुलाया। गुजरात से होता हुआ (श्रावणादि) वि० सं० १६६६ (चैत्रादि १६७०) ज्येष्ठ सुदि १२ (ई० स० १६१३ ता० २१ मई) को वह (सूरसिंह) जोधपुर पहुंचा। पीछे वि० सं० १६७० के मार्गशीर्ष (ई० स० १६१३ नवंबर) में वह अजमेर में बादशाह के पास पहुंच गया, जहां से वह शाहज़ादे के पास उदयपुर भेजा गया[3]।'

फलोधी का परगना बादशाह ने बीकानेर के स्वामी सूरसिंह के नाम कर दिया था। वि० सं० १६७० (ई० स० १६१३) में वहां का अधिकार बादशाह ने पुनः जोधपुर के सूरसिंह को दे दिया[4]।

सूरसिंह को फलोधी मिलना

शाहज़ादे खुर्रम ने मेवाड़ में पहुंचकर महाराणा को घेरने के लिए पहाड़ी प्रदेश में जगह-जगह शाही थाने स्थापित कर वहां अपने काफ़ी सैनिक रख दिये[5]। फिर शाही सेना दिन-दिन लूट-मार करती हुई आगे बढ़ने लगी। इससे क्रमशः

महाराणा के साथ सन्धि होना

(१) तुज़ुक-इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अंनुवाद; जि० १, पृ० २५६-५६। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० १७३-७४ और १७७-८।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० २२६। ब्रजरत्नदास-रचित "मआसिरुल् उमरा" में जहांगीर के ८ वें राज्यवर्ष में सूरसिंह का खुर्रम के साथ महाराणा अमरसिंह पर जाना लिखा है (पृ० ४५५)।

(३) जि० १, पृ० १२७-८। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ११२१ (सूरसिंह का महाराणा अमरसिंह की चढ़ाई में शामिल रहना लिखा है)।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १४३।

(५) सादड़ी के थाने पर जोधपुर का राजा सूरसिंह नियत किया गया था। सर्वत्र पूरा प्रबंध किये जाने पर भी कभी कभी राजपूत शाही सेना पर हमला कर ही

महाराणा का कार्यक्षेत्र संकुचित होने लगा। शाही सेना जहां-जहां पहुंचती वहां गांवों को लूटती और जो बाल-बच्चे, स्त्रियां आदि उसके हाथ लगते उनको पकड़ लेती थी। ऐसी स्थिति में महाराणा के सरदारों ने उससे मुसलमानों से संधि करने के लिए निवेदन करने का विचार किया, परंतु वे यह भली भांति जानते थे कि महाराणा उनकी बात न मानेगा; अतएव उन्होंने यह विचार कर कि कुंवर कर्णसिंह के शाही दरबार में जाने की शर्त पर यदि बादशाह राज़ी हो जाय तो बात रह सकती है, अपना मन्तव्य कुंवर से प्रकट किया[1]। उसे भी उनकी सलाह पसंद आई और महाराणा को इसकी सूचना दिये बिना ही उन्होंने गुप्त रूप से राय सुन्दरदास को शाहज़ादे की इच्छा जानने के लिए उसके पास भेजा। शाहज़ादा तो इसके लिए पहले ही से इच्छुक था, अतएव उसने यह शर्त स्वीकार कर इसकी सूचना बादशाह को भेज दी। इसपर बादशाह ने खुर्रम को महाराणा का मामला तय करने की इजाज़त दे दी और इस विषय का फ़रमान उसके पास भेज दिया[2]। फ़रमान पहुंचने पर कर्णसिंह ने सुलह-सम्बन्धी सारा वृत्तान्त महाराणा से कहा। अब हो ही क्या सकता था? महाराणा की इच्छा न होते हुए भी इसे

देते थे। देलवाड़े के झाला मानसिंह के तीन पुत्र—शत्रुशाल, कल्याण और आसकरण—थे, जिनमें से शत्रुसाल महाराणा प्रतापसिंह का भानजा लगता था और उससे कुछ खटपट हो जाने के कारण वह जोधपुर के स्वामी सूरसिंह के पास चला गया, जिसने उसे भाद्राजूण का पट्टा जागीर में दिया। महाराणा अमरसिंह को संकट में जान और कुंवर गजसिंह के ताना मारने के कारण वह मेवाड़ की ओर चला। मार्ग में उसका भाई कल्याण भी उससे मिल गया, जिससे सलाह कर दोनों ने आवड़-सावड़ के पहाड़ों के बीच की नाल में शाही सेना पर आक्रमण किया। शत्रुशाल इस लड़ाई में घायल होकर पहाड़ों में चला गया और कल्याण क़ैद हो गया। पीछे से स्वस्थ होने पर शत्रुसाल ने फिर शाही सेना पर हमला किया और रावल्यां गांव में लड़ता हुआ मारा गया (वीरविनोद; भाग २, पृ० २३२। विस्तृत विवरण के लिए देखो मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ८०३-४)।

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० २३६।

(२) तुज़ुक-इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद, जि० १, पृ० २७४।

स्वीकार करना पड़ा। तदनुसार सन् जलूस ६ ता० २६ वहमन (वि० सं० १६७१ फाल्गुन वदि २ = ई० स० १६१५ ता० ५ फ़रवरी) को शाहज़ादे के पास महाराणा और उसके पुत्रों का उपस्थित होना निश्चित हुआ[1]। उपर्युक्त तारीख़ को महाराणा अमरसिंह अपने दो भाइयों—सहसमल्ल तथा कल्याण—एवं तीन कुंवरों—भीमसिंह, सूरजमल और वाघसिंह—तथा कई सरदारों एवं बड़े दरजे के अधिकारियों सहित गोगून्दे के थाने पर शाहज़ादे से मुलाक़ात करने को चला। महाराणा के शाही सैन्य के निकट पहुंचने पर सूरसिंह आदि कई राजा तथा अन्य अफ़सर उसकी पेशवाई के लिए भेजे गये, जो उसे बड़े सम्मान के साथ शाहज़ादे के पास ले गये[2]। दस्तूर के मुवाफ़िक़ सलाम-कलाम होने के पश्चात् शाहज़ादे ने कृपापूर्वक उसको अपनी छाती से लगाकर बाईं तरफ़ बिठलाया[3]। महाराणा ने शाहज़ादे को एक उत्तम लाल[4], कुछ जड़ाऊ चीज़ें, ७ हाथी और ६ घोड़े नज़र किये। शाहज़ादे ने भी उसे तथा उसके साथ के लोगों को ख़िलअत आदि दीं और उसे शुक्रुल्लह और सुंदरदास के साथ विदा किया[5]। इसके बाद इलाही सन् ४६ तारीख़ ११ अस्फन्दारमज़ (वि० सं० १६७१ फाल्गुन सुदि २ = ई० स० १६१५ ता० १६ फ़रवरी) रविवार को शाहज़ादा कर्णसिंह को साथ लेकर बादशाह की सेवा में अजमेर में उपस्थित हो गया। बादशाह ने कर्णसिंह को दाहिनी पंक्ति में सर्वप्रथम खड़ा कर

(१) तुज़ुक-इ-जहांगीरी (अंग्रेज़ी); जि० १, पृ० २७४।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात में सूरसिंह का महाराणा की पेशवाई के लिए जाना तो नहीं लिखा है, पर उससे भी यह पाया जाता है कि वह महाराणा और शाहज़ादे की मुलाक़ात के समय वहां उपस्थित था (जि० १, पृ० १२८)।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार यह घटना वि० सं० १६७२ फाल्गुन सुदि २ (ई० स० १६१६ ता० ८ फ़रवरी) को हुई (जि० १, पृ० १२८), जो ठीक नहीं है।

(४) इस लाल के विशेष वृत्तान्त के लिए देखो ऊपर पृ० ३३७ का टिप्पण।

(५) वीरविनोद; भाग २, पृ० २३७-३८। तुज़ुक-इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० २७५-६।

उसे ख़िलअत और एक जड़ाऊ तलवार दी[1]।

जहांगीर के दसवें राज्य-वर्ष में ता० ९ फ़रवरदीन (वि० सं० १६७१ चैत्र वदि ३०=ई० स० १६१५ ता० १६ मार्च) को सूरसिंह की तरफ़ से आये हुए उपहार बादशाह के समक्ष पेश किये गये, जिनमें से उसने ४३ हज़ार रुपये के मूल्य की वस्तुएं रक्खीं। अनन्तर ता० १३ फ़रवरदीन (वि० सं० १६७२ चैत्र सुदि ४ = ई० स० १६१५ ता० २३ मार्च) को सूरसिंह ने स्वयं उपस्थित होकर सौ मोहरें बादशाह को नज़र कीं। ता० ६ उर्दीबिहिश्त (वैशाख सुदि २=ता० १६ अप्रेल) को उसने "रण-रावत" नाम का एक बड़ा हाथी भेंट किया, जिसे बादशाह ने निजी फ़ीलख़ाने में भिजवा दिया। इसके तीन दिन बाद ही उसने सात हाथी और भेंट किये, जो सब बादशाह के निजी फ़ीलख़ाने में रक्खे गये। ता० १७ (वैशाख सुदि ६=ता० २७ अप्रेल) को बादशाह ने सूरसिंह का मनसब बढ़ाकर ५००० ज़ात तथा ३००० सवार कर दिया। इसके कुछ ही दिनों बाद सूरसिंह ने एक दूसरा मूल्यवान हाथी, जिसका नाम "फ़ौज-शृंगार" था, बादशाह को भेंट किया, जिसके बदले में बादशाह ने उसे एक ख़ास्सा हाथी दिया[2]।

सूरसिंह के मनसब में वृद्धि

बादशाह लिखता है—'ता० १५ खुरदाद (वि० सं० १६७२ ज्येष्ठ सुदि ६= ई० स० १६१५ ता० २६ मई) को एक अजीब बात हुई। मैं उस रात दैव संयोग से पोहकर (पुष्कर) में ही था। राजा सूरसिंह का भाई किशनसिंह (किशनगढ़ का संस्थापक), सूरसिंह के वकील गोविन्ददास पर, जिसने कुछ समय पूर्व उस(किशनसिंह)के भतीजे गोपालदास को मारा था[3], अप्रसन्न था। किशनसिंह

सूरसिंह के भाई किशनसिंह का मारा जाना

(१) तुज़ुक-इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० २७६-७।

(२) वही; जि० १, पृ० २८२, २८३, २८८, २८९ तथा २९०।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात में इसके मारे जाने का वृत्तान्त नीचे लिखे अनुसार दिया है—

'वि० सं० १६६९ (चैत्रादि १६७०) ज्येष्ठ सुदि ७ (ई० स० १६१२ ता० १६ मई)

को आशा थी कि सूरसिंह इस अपराध के लिए गोविन्ददास को मरवा देगा, परन्तु उसने गोविन्ददास की योग्यता का विचारकर ऐसा न किया। किशनसिंह ने ऐसी दशा में स्वयं अपने भतीजे का बदला लेने का निश्चय किया। बहुत दिनों तक चुप रहने के अनन्तर ऊपर लिखी हुई तारीख़ को उसने अपने समस्त अनुगामियों को बुलाकर कहा कि चाहे कुछ भी हो मैं आज रात को गोविन्ददास को ज़रूर मार डालूंगा। राजा को इस गुप्त अभिसंधि की बिल्कुल खबर न थी। सवेरा होने के कुछ पूर्व किशनसिंह अपने साथियों सहित राजा के डेरे के दरवाज़े पर पहुंचा, जहां से उसने कुछ आदमियों को पहले गोविन्ददास के डेरे पर भेजा, जो निकट ही था। उन्होंने भीतर प्रवेश कर गोविन्ददास के कई अनुचरों के मारने के अनन्तर उसे भी मार डाला। जब तक ये समाचार किशनसिंह के पास पहुंचे वह उंतावला होकर अश्वारूढ़ ही, साथियों के मना करने पर ज़रा भी ध्यान न देकर, भीतर घुस गया। इस कोलाहल में सूरसिंह की नींद खुल गई और वह नंगी तलवार लिये हुए बाहर निकल आया। उसके अनुचर भी जगकर चारों तरफ़ से दौड़ पड़े। किशनसिंह और उसके साथियों के अन्दर पहुंचते ही वे उसपर टूट पड़े। फलस्वरूप किशनसिंह और उसका भतीजा करण मारे गये तथा दोनों तरफ़ के ६६[1] आदमी (सूरसिंह के ३० और किशनसिंह के ३६) काम आये। दिन निकलने पर इस बात का पता लगा

को भाटी गोविन्ददास के भाई सुरताण पर राठोड़ सुन्दरदास, सूरसिंह (रामसिंहोत), राठोड़ नरसिंहदास (कल्याणदासोत) तथा गोपालदास (भगवानदासोत) ने आक्रमण किया। सुरताण मारा गया और गोपालदास घायल होकर निकल गया। इसपर कुंवर गजसिंह तथा गोविन्ददास ने उसका पीछा किया और मेड़ते के गांव खाखड़की में उसे मार डाला (जि० १, पृ० १४०)।

टॉड ने गजसिंह के राज्य-समय में किशनसिंह का मारा जाना लिखा है (राजस्थान; जि० २, पृ० ८७४), जो ठीक नहीं है, क्योंकि उस समय तक तो गजसिंह ने राज्य भी नहीं पाया था।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में संख्या ८१ दी है (जि० १, पृ० १४२)।

और राजा ने अपने भाई, भतीजे एवं कई प्रिय अनुचरों को मरा पाया[1]।'

जोधपुर राज्य की ख्यात में इस घटना का वर्णन भिन्न-प्रकार से दिया है। उसमें लिखा है कि किशनसिंह, कर्मसेन (उग्रसेनोत) और कर्णसिंह आदि ने मिलकर बादशाह के अजमेर में रहते समय उससे अर्ज़ की कि गोविन्ददास ने गोपालदास को मार डाला है। तब बादशाह ने कहा कि तुम गोविन्ददास को मार डालो। इसपर अर्ज़ करनेवालों ने कहा कि गोविन्ददास तो सूरसिंह का चाकर है। बादशाह ने उत्तर दिया कि उसके डेरे पर जाकर मारो। तदनुसार (श्रावणादि) वि० सं० १६७१ (चैत्रादि १६७२) ज्येष्ठ सुदि ८ (ई० स० १६१५ ता० २५ मई) को किशनसिंह ने अपने साथियों के साथ गोविन्ददास के डेरे पर जाकर दिन निकलने के पूर्व उसे मार डाला[2]। उस समय सूरसिंह सोया हुआ था, वह हल्ला सुनकर उठा। फिर गोविन्ददास के मारे जाने का समाचार सुनकर उसने अपने राजपूतों को गजसिंह को मारनेवालों के पीछे भेजा, जिन्होंने किशनगढ़ जाकर किशनसिंह से झगड़ा किया और उसे मार डाला[3]।

ख्यात का उपर्युक्त कथन कल्पित है। बादशाह आगे चलकर स्वयं लिखता है—'यह खबर (किशनसिंह आदि के मारे जाने की) मेरे पास पुष्कर में पहुंची तो मैंने हुक्म दिया कि मृतकों का उनकी रीति के अनुसार अंतिम संस्कार करा दिया जाय और इस घटना की पूरी तहक़ीक़ात करके मुझे सूचित किया जाय। बाद में पता चला कि बात वही थी, जो ऊपर लिखी गई[4]।' इससे स्पष्ट है कि बादशाह को पहले से इस घटना का पता न था। फिर किशनसिंह आदि का उसके पास जाकर गोपालदास के

(१) तुज़ुक-इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० २६१-२। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० २०३-४। उमराए हनूद; पृ० २५६।

(२) बांकीदास (ऐतिहासिक बातें; संख्या १८२८) ने भी इसी तिथि को गोविन्ददास का मारा जाना लिखा है, जो ठीक नहीं है।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृष्ठ १४०-१।

(४) तुज़ुक-इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जिल्द १, पृ० २६२।

मारे जाने का हाल कहना और उसका गोविन्ददास को मारने की इजाज़त देना आदि कैसे माना जा सकता है। इस सम्बन्ध में बादशाह का लिखना ही माननीय है।

सूरसिंह का दक्षिण भेजा जाना

इसके कुछ दिनों बाद बादशाह ने सूरसिंह को दक्षिण के कार्य पर रवाना किया। इस अवसर पर बादशाह ने उसे मोतियों की एक जोड़ी और काश्मीरी दुशाला दिया[1]।

सूरसिंह का छुट्टी लेकर स्वदेश जाना

ता० २५ खुरदाद (आषाढ वदि ४ = ता० ५ जून) को दो मास की छुट्टी प्राप्तकर सूरसिंह जोधपुर गया, जिसकी समाप्ति होने के बाद अपने पुत्र गजसिंह सहित ता० १६ मिहिर (कार्तिक वदि ६ = ता० २ अक्टोबर) को बादशाह की सेवा में उपस्थित होकर उसने सौ मोहरें और एक हज़ार रुपये भेंट किये[2]।

सूरसिंह के मनसब में वृद्धि और उसका दक्षिण जाना

ता० १६ आवान (मार्गशीर्ष वदि ३ = ता० २६ अक्टोबर) को सूरसिंह ने बादशाह से दक्षिण जाने की आज्ञा प्राप्त की। इस अवसर पर उसका मनसब बढ़ाकर ५००० ज़ात और तीन हज़ार तीन सौ सवार का कर दिया गया तथा एक घोड़ा एवं खिलअत उसे रवाना होने के पूर्व दी[3]।

मनोहरदास को पीसांगण देना

उसी वर्ष उदयकरण के पौत्र मनोहरदास को सूरसिंह ने पीसांगण की जागीर दी, परंतु थोड़े दिनों बाद ही बीकानेर के सूरसिंह ने मनोहरदास को मरवा दिया[4]।

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—'वि० सं० १६७३ (ई० स०

(१) तुज़ुक-इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० २६३। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० २०५।

(२) तुज़ुक-इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० २६४, ३००। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० २०५, २१०।

(३) तुज़ुक-इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० ३०१। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० २१०-११।

(४) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ६४५-६।

१६१६) में बादशाह ने अजमेर में रहते समय कुंवर गजसिंह के नाम जालोर का परगना लिख दिया और उसे आज्ञा दी कि वह वहां से बिहारियों को निकाल दे। इसके अनुसार गजसिंह ने जाकर जालोर से बिहारियों को निकाल दिया, जो भागकर पाल्हणपुर चले गये[1]।'

कुंवर गजसिंह को जालोर मिलना

"तारीख़ पालनपुर" में इस घटना का विस्तृत वर्णन दिया है, जो नीचे लिखे अनुसार है—

'जालोर के शासक ग़ज़नीखां का देहांत होने पर, वहां की गद्दी के लिए झगड़ा खड़ा हुआ। राजमाता-द्वारा अर्ज़ी पेश होने पर बादशाह जहांगीर ने पहाड़खां को जालोर का हक़दार नियत कर उसे एक ख़ासा हाथी दिया। तदनुसार हि० स० १०२६ (वि० सं० १६७४=ई० स० १६१७) में वह जालोर पहुंचकर वहां की गद्दी पर बैठा। इसके कुछ दिनों बाद वह बादशाह की तरफ़ से दक्षिण की लड़ाई में गया, जहां से लौटने पर वह बुरहानपुर की थानेदारी पर भेजा गया। कम उम्र होने के कारण वह धीरे-धीरे ऐशोआराम में फंस गया और राज-कार्य की तरफ़ से उदासीन रहने लगा। राजमाता ने उसे समझाने की चेष्टा की तो दुष्ट लोगों के बहकाने में आकर उसने उसे मरवा डाला। इसकी खबर बादशाह को होने पर पहाड़खां क़ैद कर हि० स० १०२८ (वि० सं० १६७६=ई० स० १६१६) में हाथी के पैरों में बंधवाकर मरवा डाला गया। उसका पुत्र निज़ामखां विद्यमान था, पर बादशाह ने जालोर की जागीर शाहज़ादे खुर्रम के नाम कर दी और वहां का प्रबन्ध करने के लिए फ़तहउल्ला बेग भेजा गया। पहाड़खां के हिमायतियों ने उसके खिलाफ़ सिरकीवाव नामक स्थान में सेना एकत्र की। फ़तहउल्ला बेग ने एक बार उन्हें समझाने का प्रयत्न किया, पर जालोरियों ने उसपर ध्यान न देकर आक्रमण कर दिया और थोड़ी लड़ाई के बाद शाही सेना को भगा

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १४२। "तुज़ुक-इ-जहांगीरी" में इसका उल्लेख नहीं है, पर उससे पाया जाता है कि वि० सं० १६७३ (ई० स० १६१६) में बादशाह अजमेर में ही था (जि० १, पृ० २६७)।

दिया। इस पराजय का समाचार मिलने पर वादशाह ने सूरसिंह को जालोर का हाकिम नियत किया। सूरसिंह की आज्ञानुसार गजसिंह ने भंडारी लूणा तथा एक वड़ी सेना के साथ जालोर के गढ़ पर आक्रमण कर दिया। जालोर की दशा ठीक न थी। सरदार मनमानी और लूट-मार करने में लगे थे। ऐसी दशा में नारायणदास कावा ने, जो गढ़ में था, गुप्त प्रवेश-मार्ग की सूचना गजसिंह को दे दी, जिससे राठोड़ सेना ने खांडा बुर्ज की तरफ़ से गढ़ में प्रवेश कर थोड़ी लड़ाई के वाद वहां अधिकार कर लिया। दूसरे दिन नगर के फाटक पर जालोरी पठानों से राठोड़ों का युद्ध हुआ। जोधपुर का वारहट जादोदान लिखता है कि शहरपनाह पर चढ़ी हुई तोपों की गोलावारी और जालोरी पठानों की हिम्मत भरी वीरता के कारण निकट था कि राठोड़ों के पैर उखड़ जाते, पर डोडियाळी के ठाकुर पूंजा, कीरतसिंह तथा देवड़े आदि राजपूतों के गजसिंह से मिल जाने के कारण अन्त में जालोरियों की पराजय हुई और राठोड़ों का जालोर पर क़ब्ज़ा हो गया। भीनमाल उस समय तक जालोर के कामदार मोकलसी के अधिकार में ही था। जालोर पर राठोड़ों का क़ब्ज़ा होते ही पठानों का दीवान राजसी बचे हुए जालोरियों के साथ वहां चला गया, पर अभी वे लोग वहां जमने भी न पाये थे कि राठोड़ों ने उनपर चढ़ाई कर दी। राजसी, मोकलसी आदि वहुत से व्यक्ति इस लड़ाई में काम आये और शेष भागकर हि० स० १०२६ (वि० सं० १६७७ = ई० स० १६२०) में पालनपुर के कुरभा नामक स्थान में वस गये तथा निकटस्थ अर्वली पहाड़ की घाटियों का आश्रय लेकर पालनपुर के इलाक़े में लूट-मार करने लगे। परिणाम यह हुआ कि कितने ही वर्षों तक वह इलाक़ा वीरान पड़ा रहा। हि० स० १०४५ (वि० सं० १६६२ = ई० स० १६३५) में पहाड़खां का चाचा फ़ीरोज़खां, जो चालापुर का थानेदार था, उन लोगों से जाकर मिला और फिर कुरभा से पालनपुर जाकर वहीं उसने अपना निवासस्थान वनाया[1]।

(१) सैयद गुलाव मियां-कृत; पृ० १५०-१६०। नवाव सर तालेमुहम्मदख़ां; पालणपुर राज्य नो इतिहास (गुजराती); भाग १, पृ० ५४-६२।

दक्षिण में पुनः उपद्रव खड़ा होने पर वि० सं० १६७५ (ई० स० १६१८) में बादशाह ने अजमेर से सूरसिंह को उधर भेजा। पीसांगण में डेरा होने पर सूरसिंह ने कुंवर गजसिंह, आसोप के स्वामी राठोड़ राजसिंह (खींवावत), व्यास नाथू तथा भंडारी लूणा आदि को जोधपुर के प्रबन्ध के लिए रवाना कर दिया और स्वयं बुरहानपुर गया। महकर में रहते समय सूरसिंह, नवाब ख़ानख़ाना आदि को दक्षिणियों ने चारों तरफ़ से घेर लिया। कुछ ही दिनों में रसद आदि की कमी होने पर लोगों को बड़ा कष्ट होने लगा। ठाकुरों आदि ने कुंभकर्ण (पृथ्वीराजोत जैतावत) को भेजकर इसकी सूचना महाराजा से कराई, जिसपर उसने सोने का एक थाल और दो रकाबियां उसे दे दीं। इनके व्यय हो जाने पर फिर पहले की सी दशा हो गई। सरदारों ने पुनः कुंभकर्ण को महाराजा के पास भेजा। महाराजा ने ख़ानख़ाना से सारी बात कही, पर उसने उत्तर दिया कि बादशाह की आज्ञा है, अतएव न तो मैं युद्ध करूंगा और न महकर का परित्याग ही। इसपर महाराजा ने वापस जाकर कुंभकर्ण से कह दिया कि तुम्हें युद्ध करना हो तो जाकर लड़ो। कुंभकर्ण ने पांच सवारों के साथ जाकर बीजापुरवालों पर आक्रमण किया

दक्षिणियों के साथ लड़ाई

टॉड लिखता है कि उस समय जालोर गुजरात के स्वामी के अधीन था। उसको विजय कर जब गजसिंह अपने पिता के साथ बादशाह जहांगीर की सेवा में उपस्थित हुआ तो उस(बादशाह)ने उसे एक तलवार दी। कवि के शब्दों में बिहारी पठानों के विरुद्ध जाकर गजसिंह ने तीन मास में ही वह कार्य कर दिखाया, जिसे करने में अलाउद्दीन को कई वर्ष लगे थे तथा सात हज़ार पठानों को तलवार के घाट उतारकर जीत का बहुतसा सामान बादशाह के पास भिजवाया (राजस्थान; जि० २, पृ० ९७०,)। टॉड का यह कथन कि उस समय गुजरात के शासक के अधीन जालोर था ठीक नहीं है, क्योंकि इसके बहुत पूर्व ही गुजरात की सलतनत का अन्त होकर वहां मुग़लों का अधिकार होगया था, जिनकी तरफ़ से वहां हाकिम रहते थे। आगे चलकर टॉड लिखता है कि इस घटना के बाद गजसिंह महाराणा अमरसिंह के विरुद्ध गया, पर यह कथन भी ठीक नहीं है, क्योंकि जैसा "तारीख़ पालनपुर" में दिये हुए वर्णन से स्पष्ट है, जालोर की घटना महाराणा अमरसिंह पर चढ़ाई होने के बाद की है।

और उनके पचास आदमियों को मारकर उनका झंडा छीन लिया, जो कंमा सादावत ने लाकर महाराजा को दिया। तब तो महाराजा और खानखाना ने भी दक्षिणियों पर चढ़ाई की और उन्हें भगा दिया। अनन्तर एक पालकी भेजी गई, जिसमें बैठकर कुंभकर्ण डेरे पर आया, जहां उसके घावों की मरहम-पट्टी की गई। महाराजा ने जैतावत आसकरण देवीदासोत से बगड़ी ज़ब्तकर कुंभकर्ण को दे दी और उसे देश जाने की इजाज़त दी। इस घटना के कुछ दिनों बाद कुंभकर्ण पागल हो गया[1]।

सूरसिंह की मृत्यु

दक्षिण में महकर के थाने पर रहते समय वि० सं० १६७६ भाद्रपद सुदि ६ (ई० स० १६१६ ता० ७ सितंबर) को सूरसिंह का देहावसान हो गया[2]। "तुज़ुक-इ-जहांगीरी" से पाया जाता है कि सूरसिंह की मृत्यु का समाचार सन् जुलूस १४ ता० ५ मिहिर (वि० सं० १६७६ आश्विन वदि ५ = ई० स० १६१६ ता० १८ सितंबर) शनिवार को बादशाह के पास पहुंचा[3]।

राणियां तथा संतति

जोधपुर राज्य की ख्यात में सूरसिंह की १७ राणियों के नाम मिलते हैं, जिनसे उसके ७ पुत्र हुए, जिनमें से पांच छोटी अवस्था में ही कालकवलित होगये। शेष दो में से एक का नाम गजसिंह था और दूसरे का सबलसिंह[4]। इनके अतिरिक्त उसके

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १४४-५। ख्यात से यह भी पता चलता है कि नासिक-त्रंबक का गढ़ पिंडारा विजय करने पर खानखाना को वहां से एक चतुर्भुज की मूर्ति मिली, जो उसने पीछे से सूरसिंह को दे दी (जि० १, पृ० १४५)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १४६। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ४३२ और ८८६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८१८। "उमराए हनूद" में हि० स० १०२८ (वि० सं० १६७६ = ई० स० १६१६) में सूरसिंह की मृत्यु होना लिखा है (पृ० २५६)। टॉड भी वि० सं० १६७६ में ही उसका दक्षिण में मरना लिखता है (राजस्थान; जि० २, पृ० ९७१)।

(३) जि० २, पृ० ९९।

(४) इसका जन्म वि० सं० १६६४ (ई० स० १६०७) में हुआ था और

कई पुत्रियां भी हुईं, जिनमें से एक मनभावतीबाई, जो दुर्जनसाल कछवाहे की पुत्री सोभागदे से उत्पन्न हुई थी, जहांगीर के पुत्र शाहज़ादे परवेज़ को ब्याही थी[1]।

सूरसिंह की दानशीलता तथा उसके बनवाये हुए महल आदि

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि सूरसिंह की दान-पुण्य की ओर विशेष रुचि थी और वह ब्राह्मणों, चारणों आदि का बड़ा सम्मान करता था। कई अवसरों पर ब्राह्मणों आदि को उसने कई गांव दान में दिये। चार बार चारणों एवं भाटों को लाख पसाव[2] देने के अतिरिक्त उसने दो बार चांदी का तुलादान किया—एक बार सूरसागर पर वि० सं० १६७० (ई० स० १६१३) में तथा दूसरी बार महकर में अपनी मृत्यु से कुछ पूर्व वि० सं० १६७६ (ई० स० १६१९) में। जोधपुर का सूरसागर तालाब तथा उसपर का कोट महल एवं उद्यान उसके ही बनवाये हुए हैं[3]।

सूरसिंह का व्यक्तित्व

जोधपुर के नरेशों में सूरसिंह का नाम बड़ा महत्व रखता है। वह वीर, दानशील और योग्य शासक था। राव मालदेव के बाद राव चन्द्रसेन से जोधपुर का राज्य बादशाह ने खालसा कर लिया। उसके उत्तराधिकारी उदयसिंह के समय जोधपुर राज्य की दशा में कुछ परिवर्तन हुआ, पर उसके पुत्र सूरसिंह के

इसे सूरसिंह ने फलोधी की जागीर दी थी। वहां एक गुलाम ने ज़हर दे दिया, जिससे वि० सं० १७०३ फाल्गुन वदि ३ (ई० स० १६४७ ता० ११ फ़रवरी) को इसका देहांत हो गया।

बांकीदास लिखता है कि यह ३९ वर्ष तक जीवित रहा तथा इसे बादशाह की तरफ़ से एक हज़ारी मनसब मिला था (ऐतिहासिक बातें; संख्या ३२७ तथा ११००)।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १४६-९। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८८८ तथा १०९८।

(२) ख्यात से पाया जाता है कि लाख पसाव के नाम से पचीस हज़ार रुपये दिये जाते थे।

(३) जि० १, पृ० १४३।

समय उसकी विशेष उन्नति हुई। अकबर एवं जहांगीर दोनों के समय में उसका सम्मान ऊंचे दरजे का रहा। यद्यपि अकबर के राज्य-समय में उसका मनसब एक हज़ार से अधिक न बढ़ा, परन्तु जहांगीर के समय में उसका मनसब बढ़ते-बढ़ते पांच हज़ारी हो गया था, जो उस समय का काफ़ी बड़ा मनसब गिना जाता था। उपर्युक्त दोनों बादशाहों के समय की बहुतसी बड़ी चढ़ाइयों में शामिल रहकर सूरसिंह ने वीरता का परिचय दिया। वह अपने राज्य की तरफ़ से भी उदासीन नहीं रहता था। उसके सुप्रबंध के कारण राज्य के अन्तर्गत प्रजा में शांति और समृद्धि रही।

महाराजा गजसिंह

जन्म तथा गद्दीनशीनी

गजसिंह का जन्म वि० सं० १६५२ कार्तिक सुदि ८ (ई० सं० १५६५ ता० ३० अक्टोबर) बृहस्पतिवार को हुआ था[1]। वह अपने पिता की जीवितावस्था में ही जहांगीर के १० वें राज्य वर्ष (वि० सं० १६७२ = ई० स० १६१५) में पिता के साथ उसकी सेवा में उपस्थित हो गया था। बादशाह ने सूरसिंह की मृत्यु का समाचार पाकर आगरे से गजसिंह के लिए सिरोपाव आदि भेजे। तब खानखाना के पुत्र दाराबखां ने उसे वि० सं० १६७६ आश्विन सुदि ८ (ई० सं० १६१६ ता० ५ अक्टोबर) को बुरहानपुर[2] में टीका दिया[3]।

इस सम्बन्ध में "तुज़ुक-इ-जहांगीरी" में लिखा है—'ता० ५ मिहिर (आश्विन वदि ५ = ता० १८ सितंबर) को दक्षिण से राजा सूरसिंह की

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १५०। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८८७ तथा ४३५ (लाहोर में जन्म होना लिखा है)। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८१६।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि सूरसिंह की मृत्यु होने पर इसके पास शाही फ़रमान आया, जिसके अनुसार यह दक्षिण को गया (जि० १, पृ० १५०)।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १५०। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १६३३। टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० ६७२।

मृत्यु होने की खबर पहुंची। सूरसिंह ने जीतेजी ही अपने पुत्र गजसिंह को सारा राज्य-कार्य सौंप दिया था। मैंने भी उसको शिक्षा और कृपा के योग्य जानकर तीन हज़ारी ज़ात और दो हज़ार सवार का मनसब[1], झंडा, राजा की उपाधि और देश (मारवाड़) जागीर में दिया। इस अवसर पर मैंने उसके छोटे भाई (सबलसिंह) को भी पांचसौ ज़ात और ढाईसौ सवार का मनसब और मारवाड़ में जागीर अता की[2]।'

बादशाह की तरफ़ से मिले हुए परगने

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि बादशाह की तरफ़ से गजसिंह को जोधपुर, जेतारण, सोजत, सिवाणा, तेखाड़ा, सातलमेर, पोकरण और मेरवाड़ा के परगने मिले थे। इनमें से सातलमेर और पोकरण पर उसका अधिकार न हो सका, क्योंकि चन्द्रसेन ने उन्हें भाटियों के पास गिरवी रक्खा था और वहां उनका ही अधिकार था[3]।

बुरहानपुर में टीका होने के बाद गजसिंह वहां से दाराबख़ां के साथ महकर के थाने पर गया। इसके कुछ दिनों बाद ही निज़ाम के राज्य से

[...]णियों के साथ लड़ाइयां

आकर अमरचंपू (अंबरचपू) ने महकर में बादशाही सेना को घेर लिया[4]। तीन मास तक लड़ाई होती रही।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में भी सर्वप्रथम गजसिंह को यही मनसब मिलना लिखा है (जि० १, पृ० १२०)। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८१६। उमराए हनूद; पृ० ३०६।

(२) तुज़ुक-इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १००।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १२०-१।

टॉड के अनुसार इस समय गजसिंह के अधिकार में नौकोट मारवाड़ के अतिरिक्त गुजरात के सात विभाग, ढूंढाड़ का झलाय परगना तथा अजमेर का मसूदे का ठिकाना भी था। उसे दक्षिण की सूबेदारी भी प्राप्त थी तथा उसके घोड़े शाही दाग़ से मुक्त थे (राजस्थान; जि० २, पृ० ६७२)। टॉड का उपर्युक्त कथन अतिशयोक्तिपूर्ण होने से विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि फ़ारसी तवारीख़ों में इसका उल्लेख नहीं है। शाही दाग़ तमाम मनसबदारों के, जो बादशाही सेवा करते थे, घोड़ों पर लगते थे।

(४) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८९२। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १२२।

गजसिंह ने शाही सेना के हरोल में रहकर पांच-सात लड़ाइयां लड़ीं। अंत में दक्षिणियों की फ़ौज को हारकर भागना पड़ा और गजसिंह की विजय हुई। दो वर्ष तक दक्षिण में रहकर वह दक्षिणियों की सेना से लड़ता रहा, जिससे उसकी सेवाओं और वीरता से प्रसन्न होकर बादशाह ने उसे "दल-थंभण" का ख़िताब[1] दिया और उसके मनसब में एक हज़ार ज़ात और एक हज़ार सवार की वृद्धि कर दी[2]।

वि० सं० १६७६ (ई० स० १६२२) में बादशाह ने शाहज़ादे खुर्रम को दक्षिण में भेजा। उसने वहां पहुंचते ही अमरचंपू से सन्धि कर ली[3]।

गजसिंह का जोधपुर जाना

इसपर गजसिंह उससे विदा लेकर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ और उससे आज्ञा प्राप्तकर उसी वर्ष भाद्रपद के अंतिम दिनों में जोधपुर पहुंचा[4]।

---

(१) बांकीदास (ऐतिहासिक बातें; संख्या ५२२) ने भी गजसिंह का ख़िताब "दलथंभण" होना लिखा है। टॉड लिखता है कि किरमीगढ़, गोलकुंडा, केलेणा, परनाला, गजनगढ़, आसेर और सतारा की लड़ाइयों में राठोड़ों ने बड़ी वीरता दिखलाई, जिससे उनके स्वामी गजसिंह को "दलथंभण" का ख़िताब मिला (राजस्थान; जि० २, पृ० ६७२)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १५५-६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८१६। "तुज़ुक इ-जहांगीरी" में भी जहांगीर के १६ वें राज्यवर्ष में ता० १ मिहिर (वि० सं० १६७८ आश्विन सुदि १० = ई० स० १६२१ ता० १५ सितम्बर) को गजसिंह का मनसब ४००० ज़ात और ३००० सवार का किया जाना लिखा है (रॉजर्स और बेवरिज कृत अनुवाद; जि० २, पृ० २१५)। मुंशी देवीप्रसाद-कृत "जहांगीरनामा" (पृ० ४७६) तथा "वीरविनोद" (भाग २, पृ० ३०५) में भी इसका उल्लेख है।

(३) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८६३ में भी इसका उल्लेख है, पर उसमें इस घटना का समय वि० सं० १६७८ (ई० स० १६२१) दिया है।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १५५-६।

"तुज़ुक इ-जहांगीरी" से पाया जाता है कि १७ वें राज्य-वर्ष में ता० १ खुरदाद (वि० सं० १६७६ ज्येष्ठ सुदि १३ = ई० स० १६२२ ता० १२ मई) के दिन गजसिंह को एक नक़ारा दिया गया (रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० २३३)। "वीरविनोद" (भाग २, पृ० ३०५) में भी इसका उल्लेख है।

सन् जलूस १८ ता० २१ उर्दीबिहिश्त (वि० सं० १६८० वैशाख सुदि १२ = ई० स० १६२३ ता० १ मई) को गजसिंह अपने देश से लौटकर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ[1]। इसके चार दिन बाद ता० २५ उर्दीबिहिश्त (ज्येष्ठ वदि १ = ता० ५ मई) को बादशाह ने शाहज़ादे परवेज़[2] को एक विशाल सेना के साथ विद्रोही खुर्रम[3] पर भेजा। इस अवसर पर अन्य अफ़सरों आदि के साथ महाराजा गजसिंह को उसका मनसब ५००० ज़ात और ४००० सवार का कर बादशाह ने उक्त सेना के साथ

गजसिंह का बागी खुर्रम पर भेजा जाना

(१) तुज़ुक-इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० २९६। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० ५१४।

(२) बादशाह जहांगीर का दूसरा पुत्र। इसका जन्म हि० स० ९९८ (वि० सं० १६४७=ई० स० १५९०) में तथा मृत्यु हि० स० १०३६ (वि० सं० १६८३ = ई० स० १६२६) में हुई।

(३) शाहज़ादा खुर्रम जहांगीर का बड़ा ही प्रिय पुत्र था, जिसकी उसने बहुत प्रतिष्ठा बढ़ाई थी। उसको वह अपना उत्ताधिकारी भी बनाना चाहता था, परन्तु बादशाह अपने राज्य के पिछले दिनों में अपनी प्यारी बेगम नूरजहां के हाथ की कठपुतलीसा हो गया था, जिससे वह जो चाहती वही उससे करा लेती थी। नूरजहां ने अपने प्रथम पति शेर अफ़ग़ान से उत्पन्न पुत्री का विवाह शाहज़ादे शहरयार से किया था। उसको ही वह जहांगीर के पीछे बादशाह बनाना चाहती थी। इस प्रयत्न में सफलता प्राप्त करने के लिए वह खुर्रम के विरुद्ध बादशाह के कान भरने लगी और उसने उसको हिन्दुस्तान से दूर भिजवाना चाहा। उन्हीं दिनों ईरान के शाह अब्बास ने कन्धार का क़िला अपने अधीन कर लिया था, जिसको पीछा विजय करने के लिए नूरजहां ने खुर्रम को भेजने की सम्मति बादशाह को दी। तदनुसार बादशाह ने उसको बुरहानपुर से कन्धार जाने की आज्ञा दी। शाहज़ादा नूरजहां के इस प्रपंच को जान गया था, जिससे उसने वहां जाना न चाहा। वह समझ गया था कि यदि हिन्दुस्तान से बाहर जाना पड़ा और हिन्दुस्तान का कोई भी प्रदेश मेरे हाथ में न रहा तो मेरा प्रभाव इस देश में कुछ भी न रहेगा, जिससे वह बादशाह की अवज्ञाकर वि० सं० १६७९ (ई० स० १६२२) में उसका विद्रोही बन गया और दक्षिण से मांडू जाकर सैन्य-सहित आगरे की ओर बढ़ा।

भेजा[1]।

इस सम्बन्ध में जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—'शाहज़ादा खुर्रम दक्षिण में था। वह बादशाह से विद्रोही हो गया और सेना एकत्र कर वहां से आगरे की तरफ़ अग्रसर हुआ। उदयपुर पहुंचने पर महाराणा अमरसिंह (? कर्णसिंह होना चाहिये) ने कुंवर भीम को सेना देकर उसके साथ कर दिया। जहांगीर उन दिनों अजमेर में था। उसने शाहज़ादे परवेज़ को खुर्रम पर भेजने का निश्चय कर आगरे की तरफ़ प्रस्थान किया और गजसिंह को भी बुलवाया जो चाड़सू (चाटसू) नामक स्थान में जाकर उससे मिल गया। महावतख़ां[2] को परवेज़ का मुसाहिब नियत कर तथा गजसिंह के मनसब में १००० ज़ात और १००० सवार की वृद्धि कर बादशाह ने दोनों को परवेज़ के साथ रवाना किया[3]। इस अवसर पर फलोधी और मेड़ता के परगने भी गजसिंह के नाम कर दिये गये। वि० सं० १६८१ कार्तिक सुदि १५ (ई० स० १६२४ ता० १६ अक्टोबर) को हाजीपुर

(१) तुज़ुक-इ जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० २६० तथा २६१। उमराए हनूद; पृ० ३१०। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० ५१४-६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८१६। बांकीदास ने भी खुर्रम के साथ की लड़ाई में गजसिंह का शाही सेना के साथ रहना लिखा है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८६४)। डा० बेनी-प्रसाद-कृत "हिस्ट्री ऑव् जहांगीर" (पृ० ३६२) में भी इसका उल्लेख है।

(२) इसका वास्तविक नाम ज़मानाबेग था और यह काबुल के निवासी ग़ोर-बेग का पुत्र था। अकबर के समय में इसका मनसब केवल पांचसौ था, पर जहांगीर के समय इसको उच्चतम सम्मान प्राप्त था, जो शाहजहां के समय में भी बहाल रहा। हि० स० १०४४ (वि० सं० १६९१=ई० स० १६३४) में इसकी मृत्यु हुई।

(३) टॉड लिखता है कि खुर्रम ने गजसिंह के पास सहायता के लिए लिखवाया, परन्तु बादशाह का कोपभाजन बनना उसे पसन्द न था और साथ ही परवेज़ का भी वह पक्षपाती था जिससे उसने खुर्रम की प्रार्थना पर कोई ध्यान न दिया (राजस्थान; जि० २, पृ० ६७४)।

डॉ० बेनीप्रसाद-कृत "हिस्ट्री ऑव् जहांगीर" में इस लड़ाई का टॉस नदी के किनारे कंपत नामक स्थान में होना लिखा है (पृ० ३८२)।

पटना में गंगाजी के किनारे खुर्रम और परवेज़ की सेनाओं की मुठभेड़ हुई। खुर्रम की फ़ौज में सीसोदिया भीम २५ हज़ार सेना के साथ हरोल में था, गौड़ गोपालदास आदि भी खुर्रम की सेना के साथ थे। परवेज़ की सेना में आंबेर का राजा जयसिंह (मिर्ज़ा राजा), महावतखां आदि हरोल में थे और महाराजा गजसिंह बाईं तरफ़ नदी के किनारे कुछ दूर पर खड़ा था[1]। युद्ध आरम्भ होने पर भीम के घोड़ों की वागें उठीं, जिससे परवेज़ की सेना के पैर उखड़ गये। तब भीम ने खुर्रम से कहा कि हमारी विजय तो हुई, लेकिन गजसिंह, जो सैन्य सहित दूर खड़ा है, यदि आज्ञा हो तो उसे लड़ाई के लिए ललकारें। उस समय गजसिंह नदी के किनारे पाजामे का नाड़ा खोल रहा था। उसके साथी कूंपावत गोरधन ने आगे बढ़ कड़क कर कहा कि परवेज़ की सेना तो भागी जा रही है और आपको नाड़ा खोलने का यही समय मिला है। गजसिंह ने कहा कि मैं भी यही देखता था कि कोई राजपूत मुझे कहनेवाला है या नहीं। इतना कहकर वह घोड़े पर सवार हुआ और उसने दुश्मनों पर तलवार चलाई। भीम ने उसका मुक़ाबिला किया और वह वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया। उसके युद्धक्षेत्र में गिरते ही खुर्रम ठहर न सका और भाग खड़ा हुआ। शाही सेना की विजय हुई[2]।'

(१) टॉड लिखता है कि बादशाह ने गजसिंह की तरफ़ से सन्देह होने के कारण मिर्ज़ा राजा जयसिंह को हरोल में रक्खा था। इससे गजसिंह रुष्ट होकर अलग खड़ा हुआ था (राजस्थान; जि० १, पृ० ४३०)। गजसिंह के अलग रहने का कारण कोई ऐसा भी बतलाते हैं कि खुर्रम जोधपुरवालों का भानजा था, जिससे वह अन्तःकरण से उससे लड़ना नहीं चाहता था [नागरीप्रचारिणी पत्रिका (काशी); भाग १, पृ० १८८]।

(२) जि० १, पृ० १५६-७। ख्यात से पाया जाता है कि इस विजय के उपलक्ष्य में जहांगीर ने गजसिंह के मनसब में एक हज़ार सवार की वृद्धि कर दी, जिससे उसका मनसब पांच हज़ार ज़ात तथा पांच हज़ार सवार का हो गया। फ़ारसी तवारीख़ों से इसकी पुष्टि नहीं होती, किन्तु "उमराए हनूद" से पाया जाता है कि बढ़ते-बढ़ते जहांगीर के राज्य-समय में गजसिंह का मनसब पांच हज़ार ज़ात और पांच हज़ार सवार तक हो गया था (पृ० २०८)।

उपर्युक्त वर्णन एकांगी तथा पक्षपातपूर्ण होने के कारण, उसमें भीम की वीरता का विस्तृत वर्णन नहीं दिया है, जिससे इस लड़ाई का वास्तविक रूप ज्ञात नहीं होता। "मुन्तखबुल्लुबाब" का कर्ता मुहम्मद हाशिम खाफ़ीखां लिखता है—'राजा भीम और शेरखां ने वीरतापूर्वक शाहज़ादे परवेज़ के सामने जाकर तोपखाने पर इस तेज़ी और उत्साह के साथ आक्रमण किया कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। राजा भीम अपने विश्वासपात्र साथियों सहित शत्रु-सेना की पंक्ति को चीरता हुआ सुलतान परवेज़ के खास गिरोह तक पहुंच गया। उस समय जो कोई उसके सामने आया वह तलवार और भालों से मारा गया। परवेज़ की सेना में पहुंचने तक उसके कई वीर मारे गये, तो भी उसका आक्रमण इतना तीव्र था कि चालीस हज़ार शत्रु-सेना के पांव उखड़ने को ही थे। इतने में महावतखां ने भीम के सामने एक मस्त हाथी (जटाजूट नाम का) भेजने की सलाह दी। राजा भीम और शेरखां ने उस हाथी को भी तलवार और बर्छों के प्रहार से गिरा दिया। प्रत्येक वार जब वह आक्रमण करता तब दोनों पक्षवाले उसकी प्रशंसा किया करते थे। अंत में कई वीर साथियों सहित महावतखां भीम के सामने आया। राजा भीम बहुत से घाव लगने के बाद घोड़े से गिर गया। उस समय एक शत्रु उसका सिर काटने के लिए आया तो उसने जोश में आकर उसको मार डाला। जब तक उसके प्राण बने रहे तब तक उसने अपने हाथ से तलवार न छोड़ी और शेरखां भी लड़कर मारा गया[1]।' भीम के इस प्रकार वीरता के साथ काम आने के पश्चात् खुर्रम हारकर पटना होता हुआ दक्षिण को लौट गया[2]।

वि० सं० १६८२ (ई० स० १६२५) के कार्तिक (अक्टोबर) मास

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० २८८।

भीम के विशेष वृत्तान्त के लिए देखो नागरीप्रचारिणी पत्रिका (काशी); भाग १, पृ० १८३-९०।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात में खुर्रम का हारकर सर्वप्रथम राजपीपला के पहाड़ों में जाना लिखा है (जि० १, पृ० १४८), जो ठीक नहीं है।

में बादशाह ने महाबतखां को बुरहानपुर से बुलाकर फ़िदाईखां[1] को उसके स्थान में भेजा और शाहज़ादे परवेज़ तथा अन्य उमरावों को कहलाया कि वे वहां पर ही रहें।

गजसिंह का दक्षिण में रहना

महाबतखां ने इसपर कोई ध्यान न दिया और परवेज़ आदि को साथ लेकर चला, परन्तु गजसिंह ने उसके साथ जाने से इन्कार कर दिया। फ़िदाईखां ने उससे परवेज़ आदि को समझाकर वापस बुलाने के लिए कहा। पहले तो गजसिंह ने, यह कहकर ऐसा करने से इन्कार किया कि मैं साथ नहीं गया इससे महाबतखां मुझ से नाराज़ है और यदि अब जैसा आप कहते हैं वैसा करूंगा तो वह और नाराज़ हो जायगा तथा मुमकिन है दरबार में मेरी बुराई करे, परंतु बाद में फ़िदाईखां के आश्वासन दिलाने पर उसने शाहज़ादे और अन्य उमरावों को समझा-बुझाकर वापस बुला लिया। इसके कुछ दिनों बाद फ़िदाईखां राठोड़ राजसिंह को साथ लेकर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। उस समय उसने गजसिंह की सेवाओं की प्रशंसा कर ज़ब्त किया हुआ मेड़ते का परगना फिर उसके नाम करा दिया[2]। हि० स० १०३६ ता० ७ सफ़र (वि० सं० १६८३ कार्तिक सुदि ८ = ई० स० १६२६ ता० १८ अक्टोबर) बुधवार को शाहज़ादे परवेज़ की मृत्यु हो गई और उन्हीं दिनों बादशाह ने राज्य विरोधी आचरण करने के कारण महाबतखां को भी राज्य से निकाल दिया[3], जो पीछे से जाकर खुर्रम के शामिल हो गया।

उसी वर्ष कुंवर अमरसिंह के नाम मनसब और नागोर की जागीर वकील भगवानसाह जसकरण ने बादशाह को कहकर लिखवाली। इसपर वह (अमरसिंह) राजसिंह कूंपावत और पन्द्रह सौ सवारों के साथ बादशाह की सेवा में चला गया[4]।

गजसिंह के कुंवर अमरसिंह को मनसब और जागीर मिलना

(१) संभवतः यह जहांगीर के दरबार का मनसबदार हिदायतुल्ला था, जिसे बादशाह ने फ़िदाईख़ां का ख़िताब दिया था।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १५९-६०।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० ५८५, ५८६ तथा ५८९।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १६०।

हि० स० १०३७ ता० २८ सफ़र (वि० सं० १६८४ कार्तिक वदि ३० (अमावास्या) = ई० स० १६२७ ता० २८ अक्टोबर[1]) को काश्मीर से लाहोर लौटते समय राजोर[2] नामक स्थान में बादशाह जहांगीर का देहावसान हो गया[3]। इसकी खबर पाकर नूरजहां ने शहरयार[4] को गद्दी पर बैठाने के लिए लाहोर से बुलाया, परन्तु नूरजहां का भाई आसफ़खां अपने दामाद खुर्रम को बादशाह बनाना चाहता था, अतएव उसने कुछ समय के लिए खुसरो के पुत्र बुलाकी[5] को, जिसका दूसरा नाम दावरबख़्श था, तख़्त पर बैठा दिया और नूरजहां को नज़रबन्द कर कई अमीरों और राजा बासू के बेटे राजा जगतसिंह के साथ स्वयं लाहोर की ओर प्रस्थान किया। इस समय उसने बनारसी नामक एक हिन्दू व्यक्ति को दक्षिण की तरफ़ भेजकर खुर्रम से कहलाया कि वह शीघ्र आगरे पहुंचे। आसफ़खां के लाहोर पहुंचने पर शहरयार उससे आकर लड़ा, पर उसे हारकर क़िले की तरफ़ भागना पड़ा। तब आसफ़खां ने शहर पर क़ब्ज़ा कर लिया और उसे अन्धा करके क़ैद कर दिया। उधर बनारसी ने जुन्नेर में पहुंचकर खुर्रम को आसफ़खां की अगूंठी दी और सारा हाल कहा। इसपर उस(खुर्रम)ने दक्षिण के सूबेदार खानजहां लोदी से लिखा पढ़ी की, पर उसने इस ओर

जहांगीर की मृत्यु और शाहजहां की गद्दीनशीनी

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में वि० सं० १६८३ कार्तिक वदि १३ (ई० स० १६२६ ता० ८ अक्टोबर) दी है (जि० १, पृ० १६०), जो ठीक नहीं है।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात में राजोर के स्थान पर भंभोर दिया है (जि० १, पृ० १६०)।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० ५६६।

(४) बादशाह जहांगीर का सब से छोटा पुत्र।

(५) जोधपुर राज्य की ख्यात में भी जहांगीर के बाद बुलाकी का गद्दी पर बैठाया जाना और एक वर्ष पर्यन्त राज्य करना लिखा है (जि० १, पृ० १६१), जो ठीक नहीं है। जहांगीर की मृत्यु वि० सं० १६८३ (ई० स० १६२६) में लिख देने के कारण ही ऐसी ग़लती हो गई हो ऐसा प्रतीत होता है।

कुछ भी ध्यान न दिया और निज़ामुल्मुल्क से मिलकर बालाघाट का सारा प्रदेश उसको दे दिया। साथ ही उधर के, अहमदनगर के क़िलेदार सिपहदारखां के अतिरिक्त अन्य सब बादशाही अमीर और जागीरदार भी उसके लिखने से बुरहानपुर आ गये। इस समय राजा जयसिंह और गजसिंह किसी कारणवश खानजहां के साथ थे, जिनकी सहायता से उसने मांडू के सूबेदार मुज़फ्फ़रखां को निकालकर वहां क़ब्ज़ा कर लिया[1]।

शहरयार की पराजय का समाचार पाकर खुर्रम सिन्ध और गुजरात का प्रबन्ध करने के अनन्तर गोगूंदा होता हुआ अजमेर पहुंचा। इसकी खबर पाकर जयसिंह और गजसिंह खानजहां का साथ छोड़कर चल दिये[2]। गजसिंह तो अपने देश चला गया, पर जयसिंह अजमेर में खुर्रम की सेवा में उपस्थित हो गया। फिर खुर्रम के हाथ का लिखा आदेशपत्र पहुंचने पर आसफ़खां ने बुलाकी, उसके भाई तथा दानियाल[3] के पुत्रों आदि को माघ वदि ११ (ई० स० १६२८ ता० २२ जनवरी) को मरवा डाला[4]। माघ वदि १२ (ता० २३ जनवरी) को खुर्रम आगरे पहुंचा और माघ सुदि १० (ता० ४ फ़रवरी) को "अबुल् मुज़फ्फ़र शहाबुद्दीन मुहम्मद किरां सानी शाहजहां बादशाह ग़ाज़ी" नाम धारण कर तख़्त पर बैठा[5]।

उसी वर्ष फाल्गुन वदि ४ (ता० १३ फ़रवरी) को गजसिंह जोधपुर से चलकर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ[6]। इस अवसर पर बादशाह

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; पृ० १-३।

(२) डा० बनारसीप्रसाद सक्सेना; हिस्ट्री ऑव् शाहजहां; पृ० ६६।

(३) बादशाह जहांगीर का तीसरा पुत्र।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; पृ० ३-५।

(५) वही; पृ० ५। जोधपुर राज्य की ख्यात में (श्रावणादि) वि० सं० १६८४ (चैत्रादि १६८५) आषाढ वदि ४ (ई० स० १६२८ ता० १० जून) को खुर्रम का सिंहासनारूढ होना लिखा है (जि० १, पृ० १६१), जो ठीक नहीं है। ख्यातों आदि में इसी प्रकार बहुधा संवत् आदि ग़लत दिये हैं।

(६) जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि गजसिंह राज्यभक्त राजा था, अतएव जहांगीर के जीवनकाल में वह उसकी आज्ञा से खुर्रम से लड़ा था। इसका

गजसिंह का शाहजहां की सेवा में उपस्थित होना

ने उसे ख़ासा ख़िलअ़त, जड़ाऊ ख़ंजर, फूल कटार सहित जड़ाऊ तलवार, सुनहरी ज़ीन सहित ख़ासा घोड़ा, ख़ासा हाथी और नक़्क़ारा, निशान आदि दिये और उसका मनसब ५००० ज़ात और ५००० सवार का, जो जहांगीर के समय में था, बहाल रक्खा[1]। अपने प्रथम राज्यवर्ष में ही शाहजहां ने कुंवर अमरसिंह को एक हाथी दिया[2]।

आगरे के पास के लुटेरे भोमियों पर सेना भेजना

कुछ समय बाद आगरे के आस-पास के भोमियों की लूट-मार बढ़ने पर बादशाह ने उनके विरुद्ध फ़ौज भेजी, जिसमें गजसिंह के सैनिक भी शामिल थे। लुटेरों की गढ़ी फ़तहपुर के निकट के सीसरोधी गांव में थी। शाही सेना के अध्यक्ष सरदारख़ां ने उस(गढ़ी)के पास पहुंचकर गजसिंह के आदमियों से उसपर आक्रमण करने के लिए कहा। राठोड़ों की एक अनी में ,बगड़ी का राठोड़ भगवानदास (बाघोत, जैतावत) आदि थे और दूसरी में पंचोली बलू आदि। बलू आदि उस समय आक्रमण करने के ख़िलाफ़ थे, पर सरदारख़ां ने कहा कि नहीं आज ही झगड़ा होगा। तब राठोड़ों ने घोड़े उठाकर गढ़ी पर आक्रमण किया। इस लड़ाई में भगवानदास,

उसके मन में बड़ा ख़याल रहता था। इस भावना को दूर करने के लिए बादशाह ने राव सगतसिंह (उदयसिंहोत, खरवेवालों का पूर्वज) की पुत्री लीलावती (जो रिश्ते में गजसिंह के काका की बेटी बहिन होती थी) को महाराजा के पास भेजा, जिसने जोधपुर पहुंचकर चौगान में डेरा किया और महाराजा से मिलकर बादशाह की तरफ़ से सिरोपाव और अंगूठी उसे दी। फिर उसने सब बातों का स्पष्टीकरण करके आपस का ग्लानिभाव दूर किया। महाराजा ने आठ दिन तक उसे अपने यहां रखकर विदा किया और फिर अपने सरदारों आदि के सहित वह बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ (जि० १, पृ० १६१-२)।

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; पृ० १० । उमराए हनूद; पृ० ३०६-१० । वीरविनोद; भाग २, पृ० ८१६ ।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; पृ० १७ ।

राठोड़ कन्हीदास (माधोदासोत) आदि मारे गये, लेकिन गढ़ के भीतर के आदमी भाग गये और वहां शाही सेना का अधिकार हो गया। इस विजय का समाचार पाकर बादशाह ने राठोड़ों की वीरता की बड़ी प्रशंसा की[1]।

सामोद के रामसिंह की सहायता करना

वि० सं० १६८२ (ई० स० १६२५) में आंबेर के कछवाहे राजा जयसिंह के पुष्कर में रहते समय, वहां जब वैर का बदला लेने के लिए कुछ लोगों ने राठोड़ों की प्रशंसा की तो जयसिंह को वह बात बुरी लगी और उसने कहा कि मैंने कब अपने किसी बदला लेनेवाले सरदार का आदर नहीं किया। गौड़ों ने कछवाहे बीजल को मारा था, जिसका बदला लेना बाक़ी था। शाहजहां के सिंहासनारूढ़ होने पर गौड़ों का बल बढ़ा। एक दिन गौड़ किशनसिंह ५० सवारों के साथ आगरे जाता हुआ सामोद से दो कोस दूरी पर ठहरा। इसकी सूचना सामोद के रावल रामसिंह को मिलने पर वह अपने सैनिकों सहित उसके समक्ष आया और उसने लड़ाई कर उसे मार डाला। राजा जयसिंह ने जब यह समाचार सुना तो उसने बादशाह के कोप से बचने के लिए रामसिंह को राज्य से निकाल दिया और इसकी सूचना बादशाह को दे दी। गौड़ विट्ठलदास ने किशनसिंह के मारे जाने की ख़बर पाकर राजा जयसिंह पर चढ़ाई की तो बादशाह ने यह कहकर कि मैं अपराधी को दंड दूंगा, उसे लौटा दिया। रामसिंह पहले तो मेवाड़ के राणा जगतसिंह के पास जाकर रहा, पर वहां कहा सुनी हो जाने से वह अपने राजपूतों के साथ आगरे गया और गजसिंह के डेरों के निकट ठहरा। उसके वहां रहने का पता जब विट्ठलदास को लगा तो उसने इसकी सूचना बादशाह को दे दी, जिसने उसे पकड़कर ले आने का हुक्म जारी किया। रामसिंह यह देखकर लड़ मरने के लिए सन्नद्ध हुआ। उसका मित्र आउवा का ठाकुर उदयभाण (चांपावत) भी उसका साथ देने को प्रस्तुत हो गया।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १६३-५। बांकीदास (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८६५) ने इस घटना का समय वि० सं० १६८४ आषाढ वदि ८ (ई० स० १६२७ ता० २८ मई) दिया है।

यह देख महाराजा गजसिंह ने भी रणभेरी बजवा दी। बादशाह ने जब देखा कि अवस्था बहुत भीषण हो रही है तो उसने अपनी तरफ़ से युद्ध का आयोजन बंद करवा दिया और महाराजा से रामसिंह को दरबार में लाने के लिए कहलवाया। बाद में सारी सत्य वार्ता प्रकट होने पर बादशाह ने सामोद की जागीर पीछी रामसिंह को दे दी और गौड़ों तथा कछवाहों में आपस में मेल करा दिया[1]।

गजसिंह का खानजहां पर भेजा जाना

शाहजहां ने सिंहासनारूढ़ होने पर महावतखां की नियुक्ति दक्षिण में कर[2] खानजहां लोदी को अपने पास बुला लिया था, पर वह वि० सं० १६८६ कार्तिक वदि १२ (ई० स० १६२६ ता० ३ अक्टोबर) को आगरे से भाग गया[3]। इसपर बादशाह ने ख़्वाजा अबुलहसन[4] को राजा जयसिंह, राव सूर भुरटिया आदि के साथ उसके पीछे रवाना किया, जिन्होंने धौलपुर में उसे जा घेरा, पर वह वहां से निकल भागा। उसके बुंदेलखंड, गोंडवाना और बालाघाट होते हुए निज़ामुल्मुल्क के पास पहुंचने का समाचार पाकर पौष सुदि १० (ता० १५ दिसंबर) सोमवार को बादशाह स्वयं दक्षिण की तरफ़ रवाना हुआ। इस अवसर पर राठोड़ अमरसिंह का मनसब बढ़ाकर २००० ज़ात और १३०० सवार का कर दिया गया। चैत्र वदि ६ (ई० स० १६३० ता० २२ फ़रवरी) को बादशाह ने आगरे से बड़े-बड़े सरदारों की अध्यक्षता में तीन विशाल फ़ौजें खानजहां के विरुद्ध रवाना कीं। पहली और दूसरी फ़ौजों के अध्यक्ष क्रमशः

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १७२-५। फ़ारसी तवारीख़ों में इस घटना का उल्लेख नहीं है।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; पृ० १५।

(३) वही; पृ० २३। जोधपुर राज्य की ख्यात में कार्तिक वदि १३ (ता० १४ अक्टोबर) दिया है (जि० १, पृ० १६५)।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात में रज़ाहुसेन लिखा है, जो ख़ानजहां से लड़ाई होने पर मारा गया (जि० १, पृ० १६५)।

इरादतखां और शाइस्ताखां थे और तीसरी का संचालन गजसिंह[1] के हाथ में था। एक दिन राव दूदा, शत्रुसाल, कछवाहा करमसी, बलभद्र शेखावत और राजा गिरधर आदि राजपूत सरदार, जो सेना की चंदावल में थे, दो कोस दूर जा पड़े। वहां खानजहां, दरियाखां, बहलोल और मुकर्रबखां बारह हज़ार फ़ौज के साथ घात में खड़े थे। वे शाही सेना की उक्त टुकड़ी को ग़ाफ़िल देख उसपर टूट पड़े। मुग़लों और राजपूतों ने बड़ी वीरता से उनका मुक़ाबिला किया, पर उनमें से अधिकांश मारे गये, जिनमें मालदेव का प्रपौत्र करमसी भी था और कुछ भाग गये[2]। इसके कुछ दिन बाद ही बादशाह की आज्ञानुसार गजसिंह उसकी सेवा में उपस्थित हो गया[3]। वि० सं० १६८७ आश्विन सुदि ६ (ई० स० १६३० ता० ५ अक्टोबर) को बादशाह ने गजसिंह को पुरस्कार आदि देकर फ़ौज में भेजा[4]। उसी वर्ष माधोसिंह के हाथ से खानजहां मारा गया[5]।

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—'उन्हीं दिनों में विलायत (?) का बादशाह चार लाख फ़ौज के साथ दिल्ली पर चढ़ आया। इस सेना में

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि गजसिंह को बादशाह ने दौलताबाद की तरफ़ भेजा (जि० १, पृ० १६५)। महकर के पास सीरपुर है। वहां शाही सेना के पहुंचने पर गजसिंह हरावल में और शाइस्ताख़ां आदि चन्दोल में थे। दक्षिणियों की फ़ौज दिखाई पड़ते ही महाराजा ने उसपर आक्रमण किया। इधर ख़ानजहां ने पीछे से शाइस्ताख़ां आदि पर आक्रमण कर दिया, जिसमें शाही सेना के बहुतसे आदमी मारे गये। यह ख़बर मिलने पर गजसिंह पीछे लौटा। उसके पहुंचते ही शत्रु-सेना भाग खड़ी हुई (जि० १, पृ० १६७-८)।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; पहला भाग; पृ० २३-२३।

(३) वही; पहला भाग; पृ० २४।

(४) वही; पहला भाग; पृ० ३८।

(५) वही; पहला भाग; पृ० ४६।

सिक्खों आदि की दिल्ली पर चढ़ाई

बहुत से सिक्ख सैनिक भी थे। उत्पात बढ़ने पर आगरे से शाहजहां भी फ़ौज लेकर आक्रमणकारियों का दमन करने के लिए चला। इस अवसर पर गजसिंह तथा गांव पूजलोतों का मेड़तिया रघुनाथसिंह भी उसके साथ थे। लड़ाई आरम्भ होने के समय गजसिंह बाईं तरफ़ कुछ सेना के साथ खड़ा था। थोड़ी लड़ाई के अनन्तर ही शाही सेना के पैर उखड़े और बादशाह भी अपना हाथी युद्धक्षेत्र से बाहर ले जाने को उद्यत हुआ। ऐसी दशा देख रघुनाथसिंह ने उसके समक्ष जाकर उसे कटु वचन कहकर ठहरने के लिए कहा, जिससे बादशाह रुक गया। तब रघुनाथसिंह ने गजसिंह से जाकर कहा कि सिसोदिया भीम को मारा था, आज फ़िर वैसा ही अवसर आ उपस्थित हुआ है। इसपर गजसिंह अपने सैनिकों सहित बाईं तरफ़ से शत्रु-सेना पर टूट पड़ा। शाही सेना भी जमकर लड़ने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि सिक्खों और विलायत के मीर आदि को रणक्षेत्र छोड़कर भागना पड़ा और शाही सेना की विजय हुई। शाहजहां ने इसके उपलक्ष्य में गजसिंह को महाराजा की उपाधि दी और मनसब भी तीन हज़ार और बढ़ाना चाहा, परन्तु उस(गजसिंह)ने कहा कि इसके सम्बन्ध में मैं आपसे विचार कर अर्ज़ करूंगा। फिर उस-(शाहजहां)ने रघुनाथसिंह को बुलाकर 'उसे सवा तीन हज़ारी मनसब और ११२ गांवों के साथ मारोठ का परगना दे दिया[1]।'

ख्यात के उपर्युक्त कथन की तत्कालीन फ़ारसी तवारीखों से पुष्टि नहीं होती। ख्यात में लिखा हुआ विलायत का बादशाह कौन था और विलायत से किस देश का आशय है, यह भी पता नहीं चलता, अतएव उक्त कथन में सत्य का अंश कितना है यह कहना कठिन है और यह कथन काल्पनिक ही प्रतीत होता है।

वि० सं० १६८८ पौष वदि ६ (ई० स० १६३१ ता० ४ दिसंबर) को बादशाह ने बुरहानपुर से बीजापुर के स्वामी आदिलखां (शाह) को दंड देने के लिए

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १; पृ० १६६-७०।

शाही सेना के साथ बीजापुर पर चढ़ाई

आसफ़खां की अध्यक्षता में एक फ़ौज रवाना की। उसके साथ राजा गजसिंह, मिर्ज़ा राजा जयसिंह, राजा पहाड़सिंह[1] आदि भेजे गये। साथ ही अबदुल्लाखां[2] बहादुर को भी तिलंगाने के लश्कर सहित आसफ़खां के शामिल होने के लिए लिखा गया। आसफ़खां गुलबर्गा होकर बीजापुर पहुंचा और गजसिंह आदि को हिरोल में, राजा भारत, राजा अनूपसिंह आदि को दाहिनी एवं राजा जयसिंह तथा राजा जुझारसिंह बुंदेले को बाईं अनी में रखकर उसने बीजापुर पर घेरा डाल दिया। बीजापुरवालों ने इसके पूर्व ही अपने इलाक़े को वीरान कर दिया था, जिससे शाही सेना को अनाज मिलने में कष्ट होने लगा। ऐसी दशा में वर्षा ऋतु के आरंभ होते ही आसफ़खां घेरा उठाकर शोलापुर के क़िले के नीचे होता हुआ बादशाही इलाक़े में लौट गया। इस अवसर पर बीजापुर के पन्द्रह हज़ार सवारों ने उसका शोलापुर तक पीछा किया[3]।

वि० सं० १६८६ चैत्र वदि ६ (ई० स० १६३३ ता० २२ फ़रवरी) को महाराजा गजसिंह ने बादशाह की सेवा में उपस्थित होकर एक हाथी और कुछ जड़ाऊ चीज़ें भेंट कीं[4]। जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि जब बादशाह पंजाब को गया, उस समय गजसिंह भी उसके साथ था।

छोटे पुत्र जसवंतसिंह को उत्तराधिकारी नियत करना

(१) राजा नरसिंहदेव बुंदेले का पुत्र। शाहजहां के राज्यकाल में इसका मनसब ४००० ज़ात और २००० सवार तक बढ़ गया था। हि० स० १०६४ (वि० सं० १७१०-११ = ई० स० १६५४) में इसका देहांत हुआ।

(२) ख़्वाजा अब्दुल्ला अहरार का वंशधर।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; पहला भाग, पृ० ६५-६। "उमराए हनूद" (पृ० ३१०) में सन् जुलूस ३ (वि० सं० १६८६-८७=ई० स० १६३०) में गजसिंह का बीजापुर की चढ़ाई में जाना लिखा है, जो ठीक नहीं है।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; पहला भाग, पृ० ८७। "उमराए हनूद" (पृ० ३१०) में सन् जुलूस ६ (वि० सं० १६८६-९०=ई० स० १६३३) में गजसिंह का बादशाह की सेवा में उपस्थित होना और उसे ख़िलअत तथा घोड़ा मिलना लिखा है।

अमरसिंह गजसिंह का ज्येष्ठ पुत्र था, परन्तु उसके हठी एवं उद्दंड होने के कारण महाराजा उसके विरुद्ध रहता था[1] और अपने छोटे पुत्र जसवन्तसिंह पर अधिक प्रेम होने से वह उसको ही अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। अतएव अमरसिंह को कोई दूसरी जागीर दिलाने का निश्चय कर उसने उसे लाहोर बुलाया। अपने पिता के आदेशानुसार (श्रावणादि) वि० सं० १६६० (चैत्रादि १६६१) वैशाख वदि ११ (ई० स० १६३४ ता० १३ अप्रेल) को जोधपुर से चलकर बीलाड़ा होता हुआ वैशाख सुदि २ (ता० १९ अप्रेल) को वह मेड़ते पहुंचा, जहां से वि० सं० १६६१ आसोज सुदि १० (ई० स० १६३४ ता० २२ सितंबर) को रवाना होकर डांगोलाई और बड़ी पद्मावती होता हुआ वह लाहोर पहुंचा। पौष वदि ९ (ता० ४ दिसंबर) बृहस्पतिवार को वह अपने पिता के साथ बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ, जिसने उसे २५०० ज़ात और १५०० सवार का मनसब और लगभग ४½ लाख रुपये की जागीर दी[2]। उसी वर्ष गजसिंह वहां से लौट गया।

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि अनारां नाम की किसी नवाब की स्त्री से गजसिंह का गुप्त प्रेम हो गया था। यह ख़बर जब फैलने लगी तो अनारां के कहने से महाराजा उसे उसके महलों से निकाल लाया। बाद में बादशाह पर यह भेद प्रकट होने पर वह उसे जोधपुर ले गया। एक दिन जब महाराजा अनारां के महलों में था, कुंवर जसवन्तसिंह उसके पास आया। उसको देखते ही महाराजा और अनारां जैसे ही खड़े हुए, वैसे ही जसवन्तसिंह ने उनके जूते उठाकर उनके आगे धर दिये। अनारां ने कहा कि ये क्या करते हो, मैं तो महाराजा की दासी हूं, तो कुंवर ने कहा कि आप तो मेरी माता के समान हैं। इससे अनारां उसपर बड़ी प्रसन्न हुई और उसने महाराजा से उसे ही अपना उत्तराधिकारी बनाने का वचन ले लिया। अमरसिंह के स्वेच्छाचारी स्वभाव के कारण अनारां उससे सदा अप्रसन्न रहा करती और उसकी महाराजा से बुराई किया करती थी। इन कई कारणों से महाराजा ने अमरसिंह के स्थान में अपने छोटे पुत्र जसवन्तसिंह को अपना उत्तराधिकारी नियत किया। अनारां की बनवाई हुई "अनारां बेरी" जोधपुर में विद्यमान है। महाराजा के मरते पर सरदारों ने उस (अनारां) को धोखे से मार डाला (जि० १, पृ० १७१-२)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १; पृ० १७७-८।

इसी बीच वि० सं० १६६० (ई० स० १६३४) के फाल्गुन (फ़रवरी) मास में फलोधी पर बलोचों की फ़ौज ने चढ़ाई की। उस समय गजसिंह की सेना वहां थी, जिसने उनका मुक़ाबिला किया। इस लड़ाई में भाटी अचलदास (सुरताणोत), भाटी हरदास (कल्लावत) आदि सरदार मारे गये[1]।

बलोचों की फलोधी पर चढ़ाई

वि० सं० १६६२ फाल्गुन सुदि १४ (ई० स० १६३६ ता० १० मार्च) को बादशाह ने गजसिंह को पुनः इनाम-एकराम दिया[2]। फिर (श्रावणादि) वि० सं० १६६३ (चैत्रादि १६६४) ज्येष्ठ वदि ७ (ई० स० १६३७ ता० ६ मई) को आपस की कुछ शर्तें आदि तय होकर जसवन्तसिंह का विवाह जैसलमेर के रावल मनोहरदास की पुत्री से हुआ[3]।

जसवन्तसिंह का विवाह

वि० सं० १६६४ पौष वदि ५ (ई० स० १६३७ ता० २६ नवंबर) को महाराजा अपने पुत्र जसवन्तसिंह के साथ बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। इसके कुछ समय बाद ही माघ सुदि ११ (ई० स० १६३८ ता० १६ जनवरी) को बादशाह की वर्षगांठ के अवसर पर उसे एक ख़िलअत मिली[4]।

गजसिंह का जसवन्तसिंह के साथ बादशाह के पास जाना

टॉड लिखता है कि वि० सं० १६६० (ई० स० १६३३) में गजसिंह ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अमरा (अमरसिंह) को राज्याधिकार से वंचित कर देश से निकाल दिया। इस अवसर पर बहुतसे सरदार उसके साथ हो लिये और वह उनके साथ शाहजहां के दरबार में उपस्थित हुआ, जिसने उसके राज्य से निकाले जाने की मन्ज़ूरी दे देने पर भी उसे अपनी सेवा में रख लिया। थोड़े दिनों में ही उसकी वीरता से प्रसन्न होकर बादशाह ने उसे राव का ख़िताब, २००० का मनसब और नागोर की जागीर दी (राजस्थान; जि० २, पृ० ९७६)।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १७६-७।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; पहला भाग, पृ० १७४।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १७१-८०। लक्ष्मीचंद-लिखित "तवारीख़ जैसलमेर" में इसका उल्लेख नहीं है।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग; पृ० ६ तथा ७।

ईरान (फ़ारस) के शासक शाह अब्बास (प्रथम) का वि० सं० १६८५ माघ वदि ६ (ई० स० १६२६ ता० ८ जनवरी) गुरुवार को देहान्त होने पर उसका पौत्र शाह सफ़ी वहां का स्वामी हुआ। उसके राज्य-समय में बड़ी अव्यवस्था फैली। शाह सफ़ी ने कन्धार के हाकिम अलीमर्दानख़ां के आचरण से असन्तुष्ट होकर सियायूश क़ोल्लर अक़ासी को वहां का हाकिम नियतकर अलीमर्दानख़ां को दरबार में वापस रवाना करने के लिए भेजा। उसके आगमन से घबराकर अलीमर्दानख़ां ने ग़ज़नी के सेनापति एवज़ख़ां क़ाक़शाल एवं काबुल के हाकिम सईदख़ां के पास आदमी भेजकर सहायता की याचना की। तदनुसार वि० सं० १६९४ फाल्गुन सुदि ११ (ई० स० १६३८ ता० १४ फ़रवरी) को रवाना होकर बारह दिन बाद एवज़ख़ां कन्धार पहुंचा। अलीमर्दानख़ां ने इसके तीसरे दिन क़िला उसके सुपुर्द कर बादशाह के नाम का खुतबा पढ़ा और उसके पास उपहार के साथ अधीनता सूचक एक पत्र भेजा। कंधार के अधीन हो जाने से बादशाह को बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने सईदख़ां को काबुल से अलीमर्दानख़ां की सहायता के लिए जाने की आज्ञा भेजी। अनन्तर उसने कुलीचख़ां का मनसब ५००० ज़ात व ५००० सवार का कर कंधार के क़िले की रक्षा का कार्य उसे सौंपा एवं शाहज़ादे शुजा का मनसब १२००० ज़ात तथा ८००० सवार का करके उसको यह आज्ञा देकर काबुल भेजा कि यदि शाह सफ़ी कन्धार पर आक्रमण करे तो वह उसपर प्रत्याक्रमण करे अन्यथा वह साथ भेजे हुए ख़ानदौरां, जयसिंह, गजसिंह[1], अमरसिंह, माधोसिंह आदि को ही भेजे[2]। मुंशी देवीप्रसाद-कृत "शाहजहांनामा" से पाया जाता है कि सियायूश के

कन्धार की लड़ाई में गजसिंह का अपने पुत्र अमरसिंह के साथ शामिल रहना

(१) मुंशी देवीप्रसाद-कृत "शाहजहांनामा" में केवल अमरसिंह का नाम दिया है, पर आगे चलकर उसने लड़ाई के हाल में गजसिंह का भी शामिल रहना लिखा है (दूसरा भाग; पृ० १२)।

(२) डा० बनारसीप्रसाद सक्सेना; हिस्ट्री ऑव् शाहजहां; पृ० २१४-८। मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग; पृ० ९-१०।

साथ की लड़ाई में सईदख़ां की तरफ़ गजसिंह और अमरसिंह दोनों ही विद्यमान थे, जिन्होंने अच्छी वहादुरी दिखलाई[1]।

गजसिंह की बीमारी और मृत्यु

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि आगरे में रहते समय जब महाराजा वीमार पड़ा, उस समय वादशाह शाहजहां उसकी तबियत का हाल पूछने उसके डेरे पर गया। उसने गजसिंह से कहा कि इस समय जो तुम्हारे मन में हो सो कहो। महाराजा ने कहा कि मेरे वाद मेरे पुत्र जसवन्तसिंह को राज्य देने का आप वचन दें। वादशाह ने उसी समय इस वात को स्वीकार कर लिया। इसके वाद गजसिंह ने अपने तमाम उमरावों एवं मुत्सद्दियों को वुलाकर शपथ दिलाई और कहा कि तुम सब जसू (जसवन्तसिंह) की चाकरी में रहना और उसे ही राज्य दिलाना। उन्होंने भी तत्काल महाराजा की इस वात को मंजूर कर लिया। (श्रावणादि) वि० सं० १६९४ (चैत्रादि १६९५) ज्येष्ठ सुदि ३ (ई० स० १६३८ ता० ६ मई) रविवार को आगरे में ही महाराजा का देहावसान हो गया[2] और उसका अंतिम संस्कार यमुना नदी के किनारे हुआ। इसकी ख़बर जोधपुर पहुंचने पर उसकी कई राणियां सती हुईं[3]।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार महाराजा गजसिंह की दस राणियां थीं, जिनसे उसके ३ पुत्र—अमरसिंह (जन्म वि० सं० १६७० पौष

(१) दूसरा भाग; पृ० १२-३।

(२) मुंशी देवीप्रसाद-कृत "शाहजहांनामा" (दूसरा भाग; पृ० ३९) तथा "वीरविनोद" (भाग २, पृ० ८२०) में भी वि० सं० १६९५ ज्येष्ठ सुदि ३ (ई० स० १६३८ ता० ६ मई) रविवार दिया है। वांकीदास वि० सं० १६९४ ही देता है (ऐतिहासिक वातें; संख्या १९३२)। मारवाड़ में संवत् श्रावण से वदलता है। इस हिसाव से ख्यातों में दिया हुआ समय ही ठीक है। टॉड ई० स० १६९४ में गजसिंह का गुजरात की लड़ाई में मारा जाना लिखता है (राजस्थान; जि० २, पृ० ९७५), परन्तु फ़ारसी तवारीख़ों और ख्यातों को देखते हुए टॉड का कथन भ्रमपूर्ण ही है।

(३) जोधपुर-राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १८६-७।

सुदि १०=ई० स० १६१३ ता० ११ दिसंबर), जसवन्तसिंह (जन्म वि० सं० १६८३ माघ वदि ४ = ई० स० १६२६ ता० २६ दिसंबर) और अचलसिंह—हुए[1]। बांकीदास-कृत "ऐतिहासिक बातें" से पाया जाता है कि उसकी एक पुत्री चन्द्रकुंवरबाई का विवाह बांधोगढ़ के स्वामी राजा अमरसिंह के साथ हुआ था[2]।

राणियां तथा सन्तति

महाराजा को भवन-निर्माण की तरफ़ भी विशेष रुचि थी। उसकी आज्ञा से कूंपावत राजसिंह ने तोरण पोल, सभामंडप, दीवानख़ाना, आनंदघनजी का ठाकुर-द्वारा आदि बनवाये थे। इनके अतिरिक्त उसने तलहटी का नया महल भी बनवाया और अनेकों उद्यान और कुंए इत्यादि भी बनवाये। महाराजा की राणियों में से चंद्रावत कश्मीरदे ने गांगेलाव तालाब और बाघेली कुसुमदे ने कागड़ी तालाब बनवाये[3]।

महाराजा तथा उसकी राणियों के बनवाये हुए स्थान आदि

महाराजा गजसिंह के राज्य-समय के अबतक ग्यारह शिलालेख प्रकाश में आये हैं, जो वि० सं० १६७८ (ई० स० १६२१) से लगाकर वि० सं० १६८९ (ई० स० १६३२) तक के हैं[4]। इनमें से अंतिम दो में, जो वि० सं० १६८९ के हैं, महाराजा के नाम के साथ उसके युवराज कुंवर अमरसिंह का नाम भी दिया है[5] तथा वे जैनमन्दिरों के जीर्णोद्धार के

महाराजा के समय के शिलालेख

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १८७-९०। इनमें से अचलसिंह बाल्यावस्था में ही मर गया।

(२) संख्या २३०।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १८५।

(४) डा० भंडारकर; ए लिस्ट ऑव् दि इन्स्क्रिप्शन्स ऑव् नॉर्दर्न इंडिया; संख्या ९७१, ९७५, ९७७, ९८५, ९८६, ९९१ तथा ९९२। पूरणचंद नाहर; जैनलेख-संग्रह; प्रथम खंड; संख्या ७८३, ८२५, ८२७, ८२९, ८३०, ८३७; ९०४, ९०५ तथा ९८१।

(५) जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल (न्यू सीरीज़); जि० १२, संख्या ३ (ई० स० १९१६), पृ० ९७-८।

संबंध के हैं। शेष लेख भी जैनधर्म से संबंध रखनेवाले हैं और ये पीतल की मूर्तियों पर खुदे हुए हैं।

महाराजा गजसिंह के ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह तथा उसके वंशज

जैसा कि ऊपर लिखा गया है महाराजा गजसिंह का ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह था, परंतु उसपर रुष्ट रहने के कारण महाराजा ने उसको राज्य के हक़ से वंचित कर अपने छोटे पुत्र जसवन्तसिंह को अपना उत्तराधिकारी नियत किया। वि० सं० १६९१ (ई० स० १६३४) में उसको लाहोर बुलाकर महाराजा ने उसे बादशाह शाहजहां से पृथक् मनसब और बड़ोद, झलाय, सांगोद आदि के परगने जागीर में दिला दिये। फिर महाराजा ने अमरसिंह की माता सोनगरी तथा उसके अन्य परिवार को जोधपुर से हटा दिया, जिसपर वे बड़ोद में अमरसिंह के पास जा रहे। बादशाह शाहजहां के राज्यसमय वह उसकी तरफ़ की कई चढ़ाइयों में शाही फ़ौज के शामिल रहा। सन् जुलूस २ (वि० सं० १६८५-८६ = ई० स० १६२९) में वह खानजहां के साथ जुझारसिंह बुंदेले का दमन करने गया; सन् जुलूस ९ (वि० सं० १६९२-९३ = ई० स० १६३५-३६) में दक्षिण की तरफ़ चढ़ाई होने पर वह शाही फ़ौज के साथ उधर गया; सन् जुलूस ११ (वि० सं० १६९४-९५ = ई० स० १६३७-३८) में वह शाहज़ादे शुजा के साथ काबुल गया; सन् जुलूस १४ (वि० सं० १६९७-९८ = ई० स० १६४०-४१) में भी वह शाहज़ादे मुराद के साथ वहीं रहा और वहां से राजा बासू (पंजाब) के पुत्र राजा जगतसिंह का दमन करने के लिए भेजा गया। वि० सं० १७०१ (ई० स० १६४४) में बीकानेर के गांव सीलवा और नागोर के गांव जाखणियां के संबंध में कलह होने पर बीकानेरवालों के साथ अमरसिंह की सेना की लड़ाई हुई, परन्तु उसमें उसकी पराजय हुई। यह लड़ाई "मतीरे की राड़" के नाम से भी प्रसिद्ध है[1]। उसी वर्ष उसने बादशाह के

(१) इस लड़ाई का विस्तृत वृत्तान्त आगे बीकानेर राज्य के इतिहास में दिया जायगा।

एक प्रमुख दरबारी सलावतख़ां को मार डाला[1], पर उसी समय विट्ठलदास गौड़ के पुत्र अर्जुन तथा कई व्यक्तियों ने उसपर आक्रमण कर उसका भी ख़ातमा कर दिया। यह घटना वि० सं० १७०१ श्रावण सुदि २ (ई० स० १६४४ ता० २५ जुलाई) को हुई। इसकी ख़बर मिलने पर अमरसिंह के राजपूतों ने शाही अफ़सरों पर आक्रमण कर दिया और उनमें से बहुतों को मारकर वे मारे गये। अमरसिंह बड़ा वीर, साहसी और सच्चा राजपूत था। शाहजहां के दूसरे राज्यवर्ष में उसे २५०० ज़ात तथा १५०० सवार का मनसब मिला था, जो बढ़ते-बढ़ते ४००० ज़ात और ३००० सवार तक हो गया था। गजसिंह की मृत्यु होने पर बादशाह ने उसे "राव" का ख़िताब और नागोर की जागीर भी दे दी थी। उसके दो पुत्र रायसिंह तथा ईश्वरीसिंह हुए। रायसिंह का जन्म वि० सं० १६९० आश्विन सुदि १० (ई० स० १६३३ ता० २ अक्टोबर) को हुआ था। हि० स० १०५९ ता० १२ ज़ीकाद (वि० सं० १७०६ कार्तिक सुदि १३ = ई० स० १६४९ ता० ७ नवंबर) को जब वह बादशाह के पास उपस्थित हुआ तो उसे उसकी जागीर के अतिरिक्त १००० ज़ात और ७०० सवार का मनसब प्राप्त हुआ। वह कन्धार, चित्तोड़ तथा खजवा आदि की चढ़ाइयों में शाही फ़ौज के साथ शामिल रहा था। पीछे से महाराजा जसवन्तसिंह के खजवा से देश चले जाने पर रायसिंह ४००० ज़ात एवं ४००० सवार का मनसब तथा "राजा" का ख़िताब देकर उस(जसवन्तसिंह)के विरुद्ध भेजा गया, जिसका विस्तृत उल्लेख आगे जसवन्तसिंह के इतिहास में किया जायगा। औरंगज़ेब के राज्यसमय में वह दाराशिकोह तथा शिवाजी पर की चढ़ाइयों में शाही फ़ौज के साथ

(१) ख्यातों में लिखा है कि सलावतख़ां ने उसे "गंवार" कहा था। अमरसिंह जैसे वीर और सत्यप्रिय राठोड़ को यह शब्द अप्रिय लगा, जिससे उसने अवसर पाते ही उसपर कटार का वार कर मार डाला (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २६४)। "उमराए हनूद" से पाया जाता है कि अमरसिंह के इस आचरण का कारण सिवाय इसके और कुछ न ज्ञात हुआ कि वह शराब के नशे में चूर था (पृ० ५९)। ऐसा भी पता चलता है कि नागोर की लड़ाई के कारण सलावतख़ां बीकानेरवालों का पक्षपात करने लगा था, जिससे अमरसिंह उसपर नाराज़ था।

रहा। अनन्तर उसने शाहज़ादे मुहम्मद मुअज़्ज़म एवं खांजहां बहादुर कोकल्ताश की अध्यक्षता में रहकर अच्छा कार्य किया। दक्षिण में रहते समय ही (श्रावणादि) वि० सं० १७३२ (चैत्रादि १७३३) आषाढ वदि १२ (ई० स० १६७६ ता० २६ मई) को उसकी मृत्यु हुई। रायसिंह का पुत्र इन्द्रसिंह हुआ, जिसे जसवन्तसिंह की मृत्यु होने के बाद औरंगज़ेब ने जोधपुर दे दिया था। वह अजीतसिंह तथा दुर्गादास आदि पर की बादशाह की कई चढ़ाइयों में शामिल रहा था, जिनका इतिहास आगे यथास्थान आयेगा। इन्द्रसिंह के सात पुत्र—मोहकमसिंह, महासिंह, श्यामसिंह, मोहनसिंह, अजबसिंह, फ़तहसिंह और भीमसिंह—हुए।

महाराजा गजसिंह का व्यक्तित्व

महाराजा गजसिंह अपने पिता के समान ही वीर, साहसी, नीतिकुशल, गुणग्राही, उदार और दानशील व्यक्ति था। शाही दरबार में उसका सम्मान ऊंचे दरजे का था और जहांगीर तथा शाहजहां दोनों के समय की बड़ी-बड़ी चढ़ाइयों में शाही सेना के साथ रहकर उसने अच्छी बहादुरी दिखलाई थी। उसका मनसब बढ़ते-बढ़ते पांच हज़ार ज़ात तथा पांच हज़ार सवार का हो गया था और समय-समय पर उसे उक्त दोनों बादशाहों की तरफ़ से मूल्यवान वस्तुएं उपहार में मिलती रहीं। उसने भी कई बार बादशाह एवं दूसरे कई अमीरों को अपनी तरफ़ से हाथी नज़र किये। सिंहासनारूढ़ होने के बाद उसने तीन बार चांदी का तुलादान किया—पहला वि० सं० १६८० (ई० स० १६२३), दूसरा १६८१ (ई० स० १६२४) तथा तीसरा (श्रावणादि) १६६० (चैत्रादि १६६१ = ई० स० १६३४) में[1]। वह विद्वानों, चारणों, ब्राह्मणों आदि का अच्छा सम्मान करता था। उसने चारणों, भाटों आदि को सोलह बार लाख पसाव और ६ हाथी दिये थे। ख्यात से पाया जाता है कि एक लाख पसाव के नाम से २५००) दिये जाते थे[2]। इसके अतिरिक्त उसने कई अवसरों पर चारणों आदि को

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १८६।

(२) वही; जि० १, पृ० १८०-१। इस स्थल पर संभवतः २५०००) के स्थान

गांव भी दान में दिये थे[1]। उसकी गुणग्राहकता केवल मारवाड़ राज्य तक ही सीमित न थी, बल्कि बाहर के विद्वानों, कवियों आदि का भी वह पूरा-पूरा सम्मान करता था[2]।

गजसिंह चरित्र का कुछ हीन था, जिससे अपने पिछले दिनों में वह अपनी प्रीतिपात्री अनारा के कहने में चलने लगा था। उसी के कथन से प्रभावित होकर उसने अपने वास्तविक उत्तराधिकारी अमरसिंह को राज्य के हक़ से वंचित कर छोटे पुत्र जसवन्तसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया।

में भूल से २५००) लिखे गये हों। महाराजा सूरसिंह के समय एक लाख पसाव के नाम से २५०००) ही दिये जाते थे (देखो ऊपर पृ० ३८७, टि० २)।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १६१।

(२) बाहर के सम्मान पानेवाले व्यक्तियों में मेवाड़ के दधवाड़िया खींवराज (खेमराज) जैतमालोत तथा सिरोही के आढ़ा दुरसा के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्हें लाख पसाव के अतिरिक्त हाथी तथा क्रमशः राजगियावास (परगना सोजत) वि० सं० १६६४ कार्तिक सुदि ६ (ई० स० १६३७ ता० १७ अक्टोबर) को और पांचेटिया (परगना सोजत) गांव वि० सं० १६७७ (ई० स० १६२०) में मिले थे (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १६२)।

नवां अध्याय

महाराजा जसवन्तसिंह

जन्म तथा जोधपुर का राज्य मिलना

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है जसवन्तसिंह का जन्म वि० सं० १६८३ माघ वदि ४ (ई० स० १६२६ ता० २६ दिसंबर) को बुरहानपुर में हुआ था[1]। पिता की मृत्यु के समय वह बूंदी में विवाह करने के लिए गया हुआ था, जहां यह दुःखद समाचार पहुंचने और बादशाह की आज्ञा प्राप्त होने पर वह तत्काल सीधा शाही दरबार में उपस्थित हो गया[2]। बादशाह ने उसे अपने हाथ से टीका देकर[3] ख़िलअत, जड़ाऊ जमधर, चार हज़ार ज़ात और चार हज़ार सवार का मनसब, राजा का ख़िताब, झंडा, नक़्क़ारा, सुनहरी ज़ीन का घोड़ा और ख़ासा हाथी प्रदान किया[4]। जसवन्तसिंह ने भी इस अवसर पर एक हज़ार मोहरें, बारह हाथी और कुछ जड़ाऊ चीज़ें बादशाह को भेंट कीं[5]। जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि इस अवसर पर बादशाह ने राठोड़ राजसिंह (खींवावत),

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १६४। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८२१।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १६४।

(३) वही; जि० १, पृ० १६४ [इसका समय (श्रावणादि) वि० सं० १६६४ (चैत्रादि १६६५) आषाढ वदि ७ = ई० स० १६३८ ता० २५ मई दिया है]। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १२३।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० ३६-४०। उमराए हनूद; पृ० १५५। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८२२। जोधपुर राज्य की ख्यात में भी सिरोपाव, हाथी, घोड़ा, आभूषण आदि मिलने का उल्लेख है (जि० १, पृ० १६४)।

(५) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० ४०। उमराए हनूद; पृ० १५५।

राठोड़ गोरधन (चांदावत), राठोड़ विट्ठलदास (गोपालदासोत), राठोड़ जगतसिंह (रामदासोत) आदि जसवन्तसिंह के उमरावों को भी सिरोपाव दिये[1]। उसी ख्यात के अनुसार जसवन्तसिंह को टीके में जोधपुर, सोजत, फलोधी, मेड़ता और सिवाणा के परगने मिले[2]।

राज्यप्राप्ति के समय जसवन्तसिंह की अवस्था केवल बारह वर्ष की थी, अतएव ठीक प्रकार से राज्य-कार्य चलाने के लिए बादशाह ने

राजसिंह का मंत्री बनाया जाना

आसोप के ठाकुर राजसिंह (कूंपावत) को एक हज़ार ज़ात और चार सौ सवार का मनसब देकर जोधपुर का मंत्री नियुक्त किया[3]।

वि० सं० १६९५ भाद्रपद वदि ४ (ई० स० १६३८ ता० १८ अगस्त) को बादशाह ने जसवन्तसिंह आदि के साथ आगरे से दिल्ली के लिए प्रस्थान

जसवन्तसिंह का बादशाह के साथ दिल्ली जाना

किया। मार्ग में सामीग्राट में डेरा हुआ[4]। भाद्रपद सुदि ६ (ता० ६ सितंबर) को बादशाह के दिल्ली पहुंचने पर मंत्री राजसिंह ने एक हाथी उसको भेंट किया[5]। आश्विन वदि १ (ता० १४ सितंबर) को बादशाह ने दिल्ली से कूच किया। जसवन्तसिंह आदि कई अमीर, जो दिल्ली में रक्खे गये थे, बादशाह का आदेश पाकर पालम में डेरे होने पर उसकी सेवा में उपस्थित हो गये[6]। आश्विन सुदि ६ (ता० ६ अक्टोबर) को परगने अंदरी के अख़्तियारपुर नामक स्थान में बादशाह ठहरा[7]।

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १६४-५।

(२) वही; जि० १, पृ० १६५।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० ४३। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८२२।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० ४२।

(५) वही; दूसरा भाग, पृ० ४२।

(६) वही; दूसरा भाग, पृ० ४२।

(७) वही; दूसरा भाग, पृ० ४२।

गजसिंह के समय में महेशदास उसका चाकर था। जसवन्तसिंह के राज्याधिकार प्राप्त करने पर वह उसकी सेवा में रहकर कार्य करने लगा। कार्तिक सुदि १० (ता० ६ नवंबर) को व्यास नदी के किनारे रहते समय बादशाह ने उसे ८०० ज़ात और ३०० सवार का मनसब दिया[1]।

महेशदास को मनसब मिलना

उसी वर्ष माघ वदि ४ (ई० स० १६३९ ता० १३ जनवरी) को बादशाह की वर्षगांठ बड़ी धूमधाम के साथ मनाई गई। इस अवसर पर जसवन्तसिंह के मनसब में १००० ज़ात और १००० सवार की वृद्धि की गई[2]। जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि मनसब में वृद्धि होने के साथ इस अवसर पर उसे जैतारण का परगना भी मिला[3]।

जसवन्तसिंह के मनसब में वृद्धि

वि० सं० १६९६ चैत्र सुदि ३ (ई० स० १६३९ ता० २७ मार्च) को बादशाह का मुक़ाम रावलपिंडी में हुआ[4]। जसवन्तसिंह को साथ ले वहां से नोशहरा होता हुआ बादशाह पेशावर पहुंचा, जहां आसफ़खां और जसवन्तसिंह को छोड़कर वह स्वयं जमुर्रद (जमरूद) की ओर अग्रसर हुआ। सारे लश्कर का ख़ैबर के तंग दर्रे से गुज़रना कठिन था, इसीलिए बादशाह ने ऐसा प्रबंध किया था[5]। उसके अली मस्जिद में पहुंचने पर वैशाख सुदि ५ (ता० २८ अप्रेल) को जसवन्तसिंह आदि भी उसके पास पहुंच गये[6]। अनन्तर चिनाव नदी के किनारे से फाल्गुन सुदि ११ (ई० स० १६४० ता० २३

जसवन्तसिंह का बादशाह के साथ जमुर्रद की तरफ जाना

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० ५३।

(२) वही; दूसरा भाग, पृ० ५६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८२१। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १६५।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १६५।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० ५८-९।

(५) वही; दूसरा भाग, पृ० ५९-६०।

(६) वही; दूसरा भाग, पृ० ६१।

फ़रवरी) को जसवन्तसिंह को खिलअत और घोड़ा देकर बादशाह ने देश जाने की आज्ञा दी[1]।

जोधपुर में सिंहासनारूढ होना

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि जोधपुर पहुंचकर (श्रावणादि) वि० सं० १६९६ (चैत्रादि १६९७) ज्येष्ठ वदि ५ (ई० स० १६४० ता० ३० अप्रेल) को जसवन्तसिंह वहां की गद्दी पर बैठा[2]।

वि० सं० १६९८ वैशाख वदि २ (ई० स० १६४१ ता० १८ मार्च) को जसवन्तसिंह बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ[3]। इसके कुछ समय पूर्व

राजसिंह की मृत्यु पर महेशदास का मंत्री बनाया जाना

ही मंत्री राजसिंह का देहान्त हो गया था, जिससे बादशाह ने महेशदास को खिलअत आदि देकर उसके स्थान में मंत्री बनाया[4]।

यह ऊपर लिखा जा चुका है कि जसवन्तसिंह का मनसब बढ़कर ५००० ज़ात और ५००० सवार का हो गया था। वैशाख सुदि १३ (ता० १३ अप्रेल) को उसके मनसब में से एक हज़ार

जसवन्तसिंह के मनसब में पुनः वृद्धि

सवार दो-अस्पा और से-अस्पा मुक़र्रर हुए[5]। उसी वर्ष कार्तिक वदि ४ (ता० १२ अक्टोबर) को अरब से ७१ घोड़े एक लाख रुपयों में ख़रीद कर आये। उनमें से भी एक घोड़ा बादशाह ने जसवन्तसिंह को दिया[6]।

वि० सं० १६९९ (ई० स० १६४२) में ईरान के शाह सफ़ी ने, जो रूम के सुलतान मुरादखां से सन्धि करके कंधार पर चढ़ाई करने का

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० ६८।

(२) जिल्द १, पृ० १९६।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० ७५-६।

(४) वही; दूसरा भाग, पृ० ७७।

(५) वही; दूसरा भाग, पृ० ७७। उमराए हनूद; पृ० १५५।

(६) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० ८५-६।

ईरान के शाह पर बादशाही सेना के साथ जाना

आयोजन कर रहा था, अपने सिपहसालार रुस्तम गुर्जी को कंधार पर रवाना किया। इसपर बादशाह ने स्वयं उसका सामना करने के लिए जाने का विचार किया, लेकिन शाहज़ादे दाराशिकोह के यह अर्ज़ करने पर कि आप लाहोर में ही ठहरें और मुझे चढ़ाई करने की आज्ञा दें, बादशाह ने उसका मनसब बीस हज़ार ज़ात और बीस हज़ार सवार का कर तथा खिलअत आदि दे उसे ही कंधार की तरफ़ रवाना किया। इस अवसर पर उसके साथ राजा जसवन्तसिंह[1], राव अमरसिंह (नागोर), राव शत्रुसाल (बूंदी), राजा जयसिंह (कछवाहा), राजा रायसिंह (टोड़ा) आदि राजपूत राजा भी भेजे गये। उनके गज़नी पहुंचने से पूर्व ही, काशान में वैशाख सुदि १३ (ता० २ मई) को अधिक शराब पीने के कारण शाह सफ़ी का देहांत हो गया। गज़नी पहुंचकर इसकी सूचना दाराशिकोह ने बादशाह के पास भेजी और स्वयं हिरात तथा सीस्तां विजय करने का विचार करने लगा। इस बात का पता चलने पर बादशाह ने उसे लौट आने का हुक्म भेजा[2]।

जसवन्तसिंह को स्वदेश जाने की छुट्टी मिलना

हि० स० १०५३ ता० १२ रबीउस्सानी (वि० सं० १७०० आषाढ सुदि १३ = ई० स० १६४३ ता० १९ जून) को जसवन्तसिंह छुट्टी लेकर जोधपुर गया[3]।

---

(१) इस अवसर पर जसवन्तसिंह को बादशाह ने ख़ासा ख़िलअत, जड़ाऊ जमधर फूलकटार सहित, सुनहरी साज़ का घोड़ा और ख़ासा हाथी दिया (मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० ११४)।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० ११२-७। उमराए हनूद; पृ० १५४। वीरविनोद; भाग २, पृ० ३३८ तथा ८२२।

(३) उमराए हनूद; पृ० १५४। मुंशी देवीप्रसाद-कृत "शाहजहांनामा" (दूसरा भाग, पृ० १२४) में भाद्रपद सुदि १४ (ता० १८ अगस्त) को जसवन्तसिंह को जोधपुर जाने की छुट्टी मिलना लिखा है। "वीरविनोद" के अनुसार आश्विन मास में उसे स्वदेश जाने की छुट्टी मिली (भाग २, पृ० ८२२)। इसी पुस्तक में एक दूसरे

उसी वर्ष जालोर के हाकिम के राड़दड़ा गांव लूटने पर जब महेचा महेशदास भूमि का विगाड़ करने लगा तो उसपर मुंहणोत नैणसी सेना लेकर गया। उसने वहां पहुंचकर राड़दड़ा को लूटा और वहां के कोट को नष्ट कर दिया। तत्पश्चात् उसने वहां का अधिकार रावल जगमाल[1] को दे दिया[2]।

राड़दड़ा पर मुंहणोत नैणसी का भेजा जाना

वि० सं० १७०० मार्गशीर्ष सुदि ६ (ई० स० १६४३ ता० १० नवंबर) को वादशाह ने अजमेर पहुंचकर ख़्वाजा शरीफ़ की ज़ियारत की। उसी दिन जसवन्तसिंह जोधपुर से जाकर उस (बादशाह) की सेवा में उपस्थित हो गया[3]। पौष वदि १ (ता० १६ नवंबर) को अजमेर से आगरे के लिए प्रस्थान करते समय वादशाह ने उसको पुनः देश जाने की आज्ञा प्रदान की[4]।

जसवन्तसिंह का अजमेर में बादशाह के पास जाना

वि० सं० १७०१ माघ वदि १२ (ई० स० १६४५ ता० १४ जनवरी) को वादशाह ने आगरे से लाहोर की तरफ़ प्रस्थान किया। माघ सुदि २

स्थल पर लिखा है कि यह छुट्टी वादशाह ने अजमेर से आगरा लौटते समय मार्ग में दी थी (भाग २, पृ० ३३६)।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में इसे भारमल का पुत्र लिखा है, परन्तु मालानी प्रान्त के नगर ग्राम के रणछोड़जी के मंदिर में खुदे हुए वि० सं० १६८१ (ई० स० १६२४) के रावल जगमाल के लेख से पाया जाता है कि भारमल उसका पिता नहीं बल्कि पुत्र था। उसका पिता तो तेजसी था।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २५०।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० १२७-८। उमराए हनूद (पृ० १५५) में हि० स० १०५३ ता० ८ रमज़ान (वि० सं० १७०० मार्गशीर्ष सुदि ११ = ई० स० १६४३ ता० ११ नवम्बर) दिया है।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, जि० २, पृ० १२८-९।

जसवन्तसिंह को आगरे की सूबेदारी मिलना

(ता० १९ जनवरी) को रूपवास में रहते समय उसने जसवन्तसिंह को, जो फिर उसके पास पहुंच गया था, ख़ासा ख़िलअत प्रदान कर नये सूबेदार शेख़ फ़रीद के पहुंचने तक आगरे के प्रबन्ध के लिए नियुक्त किया[1]।

कुछ दिनों तक लाहोर में रहने के उपरान्त वि० सं० १७०२ चैत्र सुदि ८ (ई० स० १६४५ ता० २५ मार्च) को बादशाह ने काश्मीर के लिए प्रस्थान किया, जहां पहुंचकर आषाढ सुदि ९ (ता० २२ जून) को उसने अपने लाहोर लौटने तक जसवन्तसिंह को भी वहां (लाहोर) आने को लिखा[2]। इसके अनुसार मार्गशीर्ष वदि १ (ता० २५ अक्टोबर) को बादशाह के काश्मीर से लाहोर वापस लौटने पर महाराजा उसके पास उपस्थित हो गया[3]। वि० सं० १७०३ ज्येष्ठ सुदि ९ (ई० स० १६४६ ता० १३ मई) को पेशावर में बादशाह की वर्ष गांठ के उत्सव के समय महाराजा के मनसब के १००० सवार दो-अस्पा तथा से-अस्पा[4] कर दिये गये[5]। इसके बाद बादशाह के आदेशानुसार महाराजा आंबेर के कुंवर रामसिंह के साथ एक मंज़िल आगे चलने लगा[6]। इस प्रकार आषाढ वदि १० (ता० २९ मई) को बादशाह काबुल पहुंचा, जहां पहले पहुंचे हुए जसवन्तसिंह तथा अन्य व्यक्ति उसकी पेशवाई के लिए गये[7]। हि० स० १०५६ ता० ४ ज़िलहिज्ज

जसवन्तसिंह का लाहोर जाना

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० १६०। उमराए हनूद; पृ० १५५।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० १६२, १६६।

(३) वही; दूसरा भाग, पृ० १७८।

(४) मनसब के जिन सवारों की तनख़्वाह दूनी मिलती थी वे "दो-अस्पा" और जिनकी तिगुनी मिलती थी वे "से-अस्पा" कहलाते थे।

(५) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० १८९-९०। उमराए हनूद; पृ० १५५।

(६) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० १९०।

(७) वही; दूसरा भाग, पृ० १९४।

(वि० सं० १७०३ पौष सुदि ५=ई० स० १६४७ ता० १ जनवरी) को उसके मनसब में से ५०० सवार और दो-अस्पा से-अस्पा किये गये[1]। इसके बाद दो बार वृद्धि होकर महाराजा के मनसब के ५००० सवार ही दो-अस्पा से-अस्पा हो गये[2]।

मुंहणोत नैणसी का रावत नारायण पर भेजा जाना

उन दिनों सोजत के पहाड़ों में से चढ़कर रावत नराण (नारायण) आस-पास की भूमि का बहुत नुक़सान करता था, अतएव मुंहणोत नैणसी तथा उसका भाई सुन्दरदास उसपर भेजे गये। उन्होंने उधर जाकर कूकड़ा, कोट, कराणा, मांकड़ आदि गांवों को नष्ट कर दिया[3]।

शाही सेना के साथ कंधार जाना

वि० सं० १७०५ (ई० स० १६४८) में बादशाह के लाहोर में रहते समय कंधार के क़िलेदार के पास से खबर आई कि शाह अब्बास ने ५०००० सेना तथा तोपों आदि के साथ पहुंचकर क़िले को घेर लिया है, अतएव तुरंत सहायता पहुंचाना आवश्यक है। यह समाचार मिलते ही बादशाह ने शाहज़ादे औरंगज़ेब को लिखा कि वह मुलतान से सीधा कंधार की तरफ़ प्रस्थान करे। इस चढ़ाई पर उसके साथ जाने के लिए राजा जसवन्तसिंह, सादुल्लाख़ां, बहादुरख़ां, कुलीचख़ां, राजा विट्ठलदास गौड़ आदि १३२ शाही अफ़सर ५०००० सवारों के साथ भेजे गये। वि० सं० १७०६ चैत्र सुदि २ (ई० स० १६४६ ता० ५ मार्च) को बादशाह ने स्वयं लाहोर से काबुल की तरफ़ प्रस्थान किया। इसी बीच ख़वासख़ां ने कंधार का क़िला ईरान के शाह को समर्पण कर दिया। यद्यपि बादशाह की आज्ञा यह थी कि शाहज़ादा (औरंगज़ेब) शीघ्रातिशीघ्र कंधार पहुंचकर क़िले पर घेरा डाले, पर लश्कर के लिए आवश्यक सामान आदि का प्रबंध करने में उसे मुलतान में देर हो गई। फिर भी बादशाह के आदेशा-

(१) उमराए हनूद; पृ० १५५।
(२) ब्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा; पृ० १७०।
(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २५०।

नुसार वह और सादुल्लाखां मार्ग से बर्फ़ तथा झाड़ियां आदि साफ़ करते हुए प्रथम आषाढ वदि २ (ता० १७ मई) को कंधार के पास जा पहुंचे। सारी बादशाही सेना वहां सात टुकड़ियों में पहुंची थी। बड़ी कठिनता एवं बहुतसी जानें गंवाकर शाही सेना ने क़िले पर घेरा डाला। कई बार क़िले के भीतर प्रवेश करने का प्रयत्न किया गया, पर शत्रु की सावधानी के कारण सफलता न मिली। इसी बीच मुर्तज़ा कुलीखां आदि ३१ अमीरों की अध्यक्षता में ३०००० क़ज़लवाशों के चढ़ आने का समाचार मिला। शाहज़ादे ने श्रावण सुदि १४ (ता० ११ अगस्त) को रुस्तमखां और कुलीचख़ां वग़ैरह को उनपर भेजा, जिन्होंने बड़ी लड़ाई के बाद उन्हें परास्त कर भगा दिया, परन्तु क़िले पर अधिकार करने का शाही सेना का प्रत्येक प्रयत्न विफल होता रहा। कंधार से लगातार असफलता के समाचार पाने पर काबुल से लौटते समय बादशाह ने शाहज़ादे को घेरा उठाकर चले आने को लिख दिया। इसके अनुसार चार महीने घेरा रहने के उपरान्त दो-तीन हज़ार आदमियों और चार-पांच हज़ार जानवरों की जानें व्यर्थ गंवाकर शाहज़ादे ने अवशिष्ट सेना के साथ बादशाह की सेवा में प्रस्थान किया[1]।

जसवन्तसिंह का सेना भेजकर पोकरण पर अधिकार करना

जैसलमेर के रावल मनोहरदास के निःसन्तान मरने पर राजलोक (राणियों) को मिलाकर रामचन्द्र[2] गद्दी पर बैठा और उसने भाटियों को भी अपने पक्ष में कर लिया। यह कार्य सीहड़ रघुनाथ भाणोत की अनुपस्थिति में हुआ था, अतएव उसके मन में इसकी आँट पड़ गई। उन दिनों भाटी

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; तीसरा भाग, पृ० २६-२१। "उमराए हनूद" में भी सन् जुलूस २२ (वि० सं० १७०५-६ = ई० स० १६४८-६) में जसवन्तसिंह का शाहज़ादे औरंगज़ेब के साथ कंधार पर जाना लिखा है (पृ० १५५)।

(२) रावल मालदेव (लूणकर्णोत) के दूसरे पुत्र भवानीदास का पौत्र (मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ३३५-६)। ज्येष्ठ होने के कारण वास्तविक उत्तराधिकारी भी यही था।

सबलसिंह (दयालदासोत[1]) राव रूपसिंह भारमलोत (कछवाहा) के यहां नौ-दस हज़ार साल के पट्टे पर चाकरी करता था और बादशाह शाहजहां की रूपसिंह पर बड़ी कृपा थी। उसने सबलसिंह के वास्ते बादशाह से अर्ज़ की, जिसने उसे जैसलमेर का राज्य दिलाना स्वीकार किया[2]। इसी अवसर पर महाराजा जसवन्तसिंह ने बादशाह से निवेदन कर पोकरण पर अधिकार करने का फ़रमान लिखा लिया[3]। महाराजा (श्रावणादि) वि० सं० १७०६ (चैत्रादि १७०७) वैशाख सुदि ३ (ई० स० १६५० ता० २३ अप्रेल) को जहानाबाद से मारवाड़ में गया और ज्येष्ठ मास[4] में जोधपुर पहुंचते ही उसने राव सादूल गोपालदासोत और पंचोली हरीदास को फ़रमान देकर जैसलमेर भेजा। रावल रामचन्द्र ने पांच भाटी सरदारों की सलाह से यह उत्तर दिया कि पोकरण पांच भाटियों के सिर कटने पर मिलेगा[5]। इसपर जोधपुर में सेना एकत्र होने लगी। बादशाह के पास भी इस घटना की ख़बर पहुंची, जिससे वह रामचन्द्र से अप्रसन्न हो गया और उसने कुछ दिनों बाद ही सबलसिंह के शाही सेवा स्वीकार करने पर जैसलमेर का फ़रमान उसके नाम कर दिया। भाटी रघुनाथ तथा कितने ही अन्य भाटी सरदार भी रामचन्द्र से बदल गये और उन्होंने सबलसिंह को शीघ्र आने को लिखा।

(१) रावल मालदेव के आठवें पुत्र खेतसी का पौत्र (मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ३३५-७)। जोधपुर राज्य की ख्यात में इसे वास्तविक उत्तराधिकारी लिखा है (जि० १, पृ० २०१), जो ठीक नहीं है।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात में सबलसिंह का स्वयं बादशाह के पास जाना लिखा है (जि० १, पृ० २०१)। लक्ष्मीचंद-लिखित "तवारीख़ जैसलमेर" में भी ऐसा ही लिखा है (पृ० ५६)।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि बादशाह ने जैसलमेर पर सबलसिंह का अधिकार कराने के एवज़ में पोकरण उसे दी (जि० १, पृ० २०१)।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात में आषाढ वदि ३ (ता० ६ जून) दिया है (जि० १, पृ० २०१)।

(५) जोधपुर राज्य की ख्यात में इसका उल्लेख नहीं है।

तब सबलसिंह अपने आदमियों सहित फलोधी के निकट भोलासर पर पहुंचा, जिसके निकट जैसलमेरवालों के साथ लड़ाई होने पर उसकी विजय हुई[1]। तत्पश्चात् महाराजा जसवन्तसिंह की सेना शीघ्र ही पोकरण गई[2]। सबलसिंह भी खारेड़ा के ७०० आदमियों सहित महाराजा से जा मिला। वि० सं० १७०७ (ई० स० १६५०) के कार्तिक (अक्टोबर) मास[3] में गढ़ से आध कोस के अंतर पर डूंगरसर तालाब पर उक्त सेना का डेरा हुआ। तीन दिन तक गढ़ पर धावे होने से भाटी भयभीत हो गये। इसी बीच सबलसिंह ने गढ़ के भीतर के भाटियों से बातचीत कर उन्हें बाहर निकलवा दिया[4]। जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि कुछ भाटियों ने गढ़ के बाहर आकर राठोड़ सेना का सामना किया, पर वे मारे गये। इस प्रकार पोकरण के गढ़ पर महाराजा की सेना का अधिकार हो गया[5]।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में इसका उल्लेख नहीं है।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात में रीयां के स्वामी राठोड़ गोपालदास (सुंदरदासोत मेड़तिया), पाली के स्वामी राठोड़ विट्ठलदास (गोपालदासोत चांपावत) तथा आसोप के स्वामी नाहरखां (राजसिंहोत कूंपावत) की अध्यक्षता में जोधपुर से तीन सेनाओं का पोकरण पर जाना और साथ में सबलसिंह का भी होना लिखा है (जि० १, पृ० २०१)।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात में आश्विन सुदि १३ (ता० २७ सितंबर) को जोधपुर की सेना का डूंगरसर पर डेरा होना लिखा है (जि० १, पृ० २०१)।

(४) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ३४७-५०।

(५) जि० १, पृ० २०१-२। लक्ष्मीचंद-लिखित "तवारीख़ जैसलमेर" में लिखा है कि सबलसिंह के दिल्ली से फ़रमान और सेना लेकर जैसलमेर पहुंचने पर सब सरदारों ने उसे ही योग्य जानकर राज्य देने का वचन दिया और इस सम्बन्ध में उसके पास पत्र लिखा, जो भूल से महाराजा जसवन्तसिंह के हाथ में पड़ गया। तब महाराजा ने सबलसिंह से कहलाया कि अब पोकरण हमें दे दो। सबलसिंह के सिंहासनारूढ़ होते ही जोधपुर की फ़ौज पोकरण गई। देश में दुराज होने के कारण मदद न पहुंची, जिससे ८४ गांवों सहित पोकरण पर जोधपुर का अमल हो गया (पृ० ५६)।

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि पोकरण पर अधिकार करने के बाद राठोड़ सेना जैसलमेर गई। उसका आगमन सुनते ही भाटी रामचन्द्र भाग गया। तब सबलसिंह को वहां के सिंहासन पर बैठाकर उक्त सेना जोधपुर लौट गई[1]।

सबलसिंह को जैसलमेर की गद्दी दिलाना

शाहजहां के २६ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १७०६ = ई० स० १६५२) में जसवन्तसिंह का मनसब बढ़कर छः हजार ज़ात और पांच हज़ार सवार (दो-अस्पा और से-अस्पा) हो गया[2]। इसके बाद सन् जुलूस २९ (वि० सं० १७१२ = ई० स० १६५५) में उसका मनसब छः हज़ार ज़ात और छः हजार सवार का हो गया। इस अवसर पर उसे महाराजा का ख़िताब मिला और साथ ही स्वदेश जाने की छुट्टी भी मिली[3]।

जसवन्तसिंह के मनसब में वृद्धि

(श्रावणादि) वि० सं० १७१३ (चैत्रादि १७१४) वैशाख वदि २ (ई० स० १६५७ ता० २१ मार्च) को महाराजा की आज्ञानुसार मुंहणोत सुंदरदास (जैमलोत) ने सेना सहित जाकर गांव पांचेटा तथा कवलां के उपद्रवी सिंधलों से लड़ाई कर उनको हराया[4]।

सिंधलों पर सेना भेजना

वि० सं० १७१४ (ई० स० १६५७) में बादशाह (शाहजहां) रोगग्रस्त हुआ[5]।

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २०३। "तवारीख़ जैसलमेर" में इसका उल्लेख नहीं है।

(२) उमराए हनूद; पृ० १५६। "वीरविनोद" में इसी अवसर पर उसे महाराजा का ख़िताब मिलना लिखा है (भाग २, पृ० ८४२)।

(३) उमराए हनूद; पृ० १५५। मुंशी देवीप्रसाद-कृत "शाहजहांनामे" में इस सन् जुलूस में राजा जसवन्तसिंह को केवल इनाम-एकराम मिलना ही लिखा है (तीसरा भाग, पृ० १०६)।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २४७-८।

(५) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; तीसरा भाग, पृ० १६१। "मुंतखबुल्-

मनूकी[1] लिखता है—'उसकी बीमारी यहां तक बढ़ी कि सारे दिल्ली नगर में खलबली मच गई। ऐसी अवस्था देखकर बादशाह ने क़िले के द्वार बंद करा दिये। मुसलमान अफ़सरों पर विश्वास न होने के कारण उसने एक फाटक पर राजा जसवन्तसिंह को और दूसरे पर राजा रामसिंह रोटला[2] को रक्खा, जो एक हज़ार राजपूतों के साथ क़िले की रक्षा करने लगे। उन्हें आज्ञा दी गई कि दारा के अतिरिक्त और किसी को भीतर न आने दें और उसे भी वहां रात को रहने की मनाही थी। बादशाह की पुत्री उसके भोजन की देख-रेख के लिए भीतर रही। इतना प्रबन्ध करने पर भी बादशाह ने क़िले के भीतर रहनेवाले व्यक्तियों से क़सम खिलाली थी कि वे उसके साथ दग़ा न करेंगे, क्योंकि उसे ज़हर दिये जाने की आशंका बनी रहती थी[3]।'

बादशाह की बीमारी

लुबाब" में हि० स० १०६७ ता० ७ जिलहिज्ज (वि० सं० १७१४ भाद्रपद सुदि ६ = ई० स० १६५७ ता० ६ सितम्बर) को शाहजहां का बीमार पड़ना लिखा है (इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २१३)।

(१) इसका पूरा नाम निकोलाओ मनूकी (Niccolao Manucci) था। संसारभ्रमण की लालसा से यह बहुत छोटी अवस्था में अपनी जन्मभूमि इटली का परित्याग कर भारतवर्ष में आया और बहुत दिनों तक मुग़ल दरबार में रहा, जहां का हाल उसने अपने बृहत् ग्रन्थ "स्टोरिया डो मोगोर" (Storia Do Mogor) में लिखा है।

(२) यह राव मालदेव के पुत्र चन्द्रसेन के पौत्र कर्मसेन का पुत्र था, जो शाहजहां के राज्यकाल में शाही सेवा में प्रविष्ट हुआ और उसकी तरफ़ की कितनी ही चढ़ाइयों में शामिल रहा था। इसका मनसब शुरू में १००० ज़ात और ६०० सवार था, जो क्रमशः बढ़कर २५०० ज़ात और १००० सवार हो गया। समूगढ़ (समूनगर) की लड़ाई में यह दारा की फ़ौज के साथ था और वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मुराद के तीर से मारा गया, जिसका उल्लेख आगे यथास्थान आयेगा। यह वीर होने के साथ ही दानी भी था। ऐसी प्रसिद्धि है कि यह अकाल के समय लोगों में रोटियां बांटा करता था, जिससे इसका नाम "रोटला" प्रख्यात हो गया (वीरविनोद; भाग २, पृ० २५५ का टिप्पण)।

(३) स्टोरिया डो मोगोर; जि० १, पृ० २४०-१।

बादशाह की बीमारी का समाचार उसके अन्य पुत्रों के पास पहुंचने पर वे राज्य-प्राप्ति के लिए अलग-अलग सैन्य एकत्र करने लगे। कुछ लोगों ने तो यहां तक अफ़वाह फैला दी थी कि बादशाह का देहान्त हो गया। शाह शुजा ने यह ख़बर पाकर बंगाल से एक विशाल सेना के साथ तख़्त पर अधिकार करने के लिए प्रस्थान किया। उसने गंगा के मार्ग में नावों का बेड़ा भी डाल दिया, जिसका संचालन पोर्चुगीज़ लोगों के हाथ में था। उसने आगरे होकर चलने का निश्चय किया और यह प्रकट किया कि दारा ने बादशाह को विष देकर मार डाला है, जिसे वह सज़ा देने के लिए जा रहा है। शाह शुजा की बग़ावत का समाचार जब शाहजहां को मिला उस समय वह पहले से स्वस्थ हो चला था। उसने अपने अच्छे होने का समाचार शाह शुजा के पास भेजकर उसे वापस जाने का आदेश किया, पर इसी बीच यह ख़बर पाकर कि बादशाह की बीमारी सांघातिक है, शाह शुजा ने वह चिट्ठी दबा ली और आगे बढ़ने लगा। यह ख़बर पाकर शाहजहां को, यह प्रकाशित करने के लिए कि वह जीवित है, बाध्य होकर आगरे जाना पड़ा[1], पर जब इससे आशानुरूप लाभ न हुआ तो उसने दारा के ज्येष्ठ पुत्र सुलतान सुलेमान शिकोह को शाह शुजा के विरुद्ध भेजा। उसके साथ राजा जयसिंह तथा दिलेरख़ां आदि सरदार भेजे गये[2]। शाह शुजा इस बीच बनारस तक पहुंच गया था, जहां[3] शाही सेना ने पहुंचकर उसे

शाह शुजा की बग़ावत

---

(१) मुंशी देवीप्रसाद-कृत "शाहजहांनामा" में उसका हवा बदलने के लिए आगरे जाना लिखा है (तीसरा भाग, पृ० १६५)।

(२) मनूकी; स्टोरिया डो मोगोर; जि० १, पृ० २४१-२। मुंशी देवीप्रसाद-कृत "शाहजहांनामा" में भी उपर्युक्त व्यक्तियों का शाह शुजा के विरुद्ध भेजा जाना लिखा है (तीसरा भाग, पृ० १७०-१)।

(३) "आलमगीरनामा" के अनुसार यह लड़ाई गंगा के किनारे के बहादुरपुर नामक गांव में हुई (इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २१५, टि० १)।

हराकर भगा दिया[1]। उसका बहुतसा ख़ज़ाना और बहुतसे आदमी शाही सेना के हाथ लगे, जो आगरे लाये गये, जहां दारा ने उनमें से कई को मरवा डाला[2]। बाद में उसके क्षमाप्रार्थी होने पर बादशाह ने उसकी बंगाल की जागीर उसके नाम बहाल कर दी और सुलेमान शिकोह को लौट आने को लिख दिया[3]।

इस बीच बादशाह पूर्ण स्वस्थ हो गया, जिससे उसने दिल्ली लौट जाने की इच्छा प्रकट की, परन्तु दारा ने इसमें ढील डालकर उसका

औरंगज़ेब और मुरादबख़्श की बग़ावत

ध्यान मुरादबख़्श की बग़ावत की तरफ़ आकर्षित किया[4]। इसके साथ ही उसने उस (बादशाह)-को यह भी सुझाया कि औरंगज़ेब क़ुतुबुल्मुल्क से

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; तीसरा भाग, पृ० १७१। मनूकी लिखता है कि बादशाह के आदेशानुसार पहले राजा जयसिंह ने शाह शुजा को पत्र भेजकर समझाने की चेष्टा की, पर इसका कोई परिणाम न हुआ। शाह शुजा ने शाही सेना पर धोखे से वार करने के लिए यह प्रकट किया कि राजा के लौटने पर मैं भी लौट जाऊंगा। जयसिंह उसकी मंशा समझ गया। उसने प्रकट रूप से तो सेना को लौटने का आदेश दिया पर भीतर ही भीतर उसे युद्ध के लिए तैयार रहने को चेतावनी दे दी, जिससे शाह शुजा के पीछे से हमला करते ही उसने उसे परास्त कर दिया (स्टोरिया डो मोगोर; जि० १, पृ० २४३-७)। "मुंतख़बुल्लुबाब" से पाया जाता है कि जयसिंह ने शुजा पर उस समय आक्रमण किया जब वह शराब के नशे में चूर पड़ा था, जिससे भागने के अतिरिक्त उसके पास दूसरा उपाय न रह गया (इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २१५)।

(२) मुंतख़बुल्लुबाब—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २१५। मनूकी-कृत "स्टोरिया डो मोगोर" में भी ऐसा ही उल्लेख है (जि० २, पृ० २४५)।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; तीसरा भाग, पृ० १७१।

(४) "मुंतख़बुल्लुबाब" से पाया जाता है कि उसने अपने नाम का खुत्बा पढ़वाकर अपने सिक्के तक जारी कर दिये थे। इसके साथ ही उसने सूरत के गढ़ पर क़ब्ज़ा करके वहां के व्यौपारियों से रुपये भी वसूल किये थे (इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २१६-७)।

प्राप्त पेशकशी के रुपये लेकर युद्ध की तैयारी में खर्च कर रहा है और स्वास्थ्य का समाचार लेने के बहाने सैन्य-सहित इधर आया चाहता है, अतएव उचित तो यह है कि उसके पास से खज़ाना और सेना वापिस मंगवाली जाय[1]। अनिच्छा होते हुए भी बादशाह को दारा की बात माननी पड़ी। सैन्य वापिस करने का हुक्म औरंगज़ेब के पास उस समय पहुंचा, जब वह बीजापुर विजय करने के लिए प्रस्थान करनेवाला था। औरंगज़ेब ने इस अवसर पर लौटनेवाले कई सरदारों को पकड़कर दौलताबाद के क़िले में क़ैद कर दिया। यह खबर लगने पर बादशाह ने उसे तथा विद्रोही मुराद दोनों को चेतावनी के पत्र लिखे, पर उन्होंने उनपर ध्यान न दिया। इसपर शाह बुलन्द इक़बाल (शाहज़ादे) ने कह-सुनकर महाराजा जसवन्तसिंह को उसका मनसब ७००० ज़ात और ७००० सवार का करा तथा एक लाख रुपये और मालवे की सूबेदारी दिलाकर बड़ी सेना के साथ फाल्गुन वदि ८ (ई० स० १६५८ ता० १५ फ़रवरी) को औरंगज़ेब के विरुद्ध रवाना किया[2]। इसके एक सप्ताह बाद ही एक लाख रुपये और अहमदाबाद की सूबेदारी देकर क़ासिमखां गुजरात की तरफ़ भेजा गया तथा उसे यह आज्ञा दी गई कि वह उज्जैन में जसवन्तसिंह के शामिल हो जाय[3]।

दोनों शाही सेनाओं के उज्जैन पहुंचने पर मुरादबख़्श उनसे लड़ने

(१) मनूकी लिखता है कि औरंगज़ेब को बादशाह की बीमारी का समाचार औरंगाबाद में प्राप्त हुआ, जहां वह गुप्त रूप से अपनी तैयारियां करने लगा। फिर उसने शिवाजी को दक्षिण के कुछ भाग में चौथ लेने का अधिकार देकर उससे अपने विरुद्ध आचरण न करने का वचन ले लिया और अपने पिता का खुल्लमखुल्ला विरोधी बन गया। बादशाह को उसकी बग़ावत का समाचार उस समय मिला, जब वह दिल्ली को लौटनेवाला था, पर इस नई बात के पैदा हो जाने से उसे वहीं ठहर जाना पड़ा (जि० १, पृ० २४६-७)।

(२) डा० बेणीप्रसाद-कृत "हिस्ट्री ऑव् शाहजहां" में भी जसवन्तसिंह के औरंगज़ेब के विरुद्ध भेजे जाने का उल्लेख है (पृ० ३२८)।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; तीसरा भाग, पृ० १७२-५। उमराए हनूद; पृ० १५५। वीरविनोद; भाग २, पृ० ३४४।

के लिए आया, पर अकेले उस बड़ी सेना का सामना करना आसान कार्य न था[1]। इसी बीच उसके पास औरंगज़ेब के चिकने-चुपड़े पत्र पहुंचे, जिनमें उसने अपनी साधुता दिखलाते हुए मुरादबख़्श को पूरी-पूरी सहायता पहुंचाने का पक्का वादा किया था[2]। उनको पाकर उस(मुरादबख़्श)का विश्वास अपने भाई पर जम गया और वह अपनी सेना सहित औरंगज़ेब से जा मिला[3], जो अपनी फ़ौज के साथ बादशाह की मिज़ाजपुर्सी के बहाने से जा रहा था[4]।

जसवन्तसिंह की पराजय

---

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; तीसरा भाग, पृ० १७५।

(२) मुंतख़बुल्लुबाब—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २१७-८। मनूकी; स्टोरिया डो मोगोर; जि० १, पृ० २४७-८।

उपर्युक्त दोनों पुस्तकों में दिये हुए पत्रों में कुछ अन्तर है, पर आशय दोनों का एकसा ही है। "मुतख़बुल्लुबाब" में केवल एक पत्र दिया है पर "स्टोरिया डो मोगोर" से प्रकट होता है कि मुराद के शामिल होने तक औरंगज़ेब ने कई पत्र उसके पास भेजे थे (जि० १, पृ० २५२-३)।

(३) मनूकी के "स्टोरिया डो मोगोर" से पाया जाता है कि शहबाज़ नाम के मुराद के सेवक ने औरंगज़ेब की कुटिलचाल से उसे सावधान रहने और उसके शामिल न होने के लिए बहुत समझाया, पर मुराद राज्य-लोभ में अंधा हो रहा था; अतएव उसने उस(शहबाज़)की बातों पर ज़रा भी ध्यान न दिया और मांडू में औरंगज़ेब की सेना के शामिल हो गया। इसके बाद एक बार तो शहबाज़ औरंगज़ेब को मारने के लिए भी कटिबद्ध हो गया था, पर अपने मालिक की मरज़ी न देख उसे अपने मन्सूबे से विरत होना पड़ा (जि० १, पृ० २५३ तथा २६१)।

"वीरविनोद" से पाया जाता है कि औरंगज़ेब ने धोखा देने के लिए मुरादबख़्श को बहकाया कि मुझे बादशाहत की ज़रूरत नहीं है। दारा जो काफ़िर है वह मज़हब ख़राब कर देगा और शुजा भी राफ़िज़ी (शिया) है, इसलिए तुमको बादशाही के लायक़ जानकर तख़्त पर बिठाने के बाद मैं ख़ुदा की इबादत में रहूंगा। इस फ़रेब से वह कम अक़्ल (मुराद) बिल्कुल अपने को बादशाह समझने लगा। औरंगज़ेब भी उसको हज़रत (बादशाह) कहकर अदब से पुकारने लगा (भाग २, पृ० ३४५)।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; तीसरा भाग, पृ० १७५।

"मुंतखबुल्लुबाब" में लिखा है—'हि० स० १०६८ ता० २५ जमादिउल्-अव्वल (वि० सं० १७१४ फाल्गुन वदि १२ = ई० स० १६५८ ता० १६ फ़रवरी) को औरंगज़ेब बुरहानपुर पहुंचा और वहां एक मास तक प्रबन्ध करने और ठीक-ठीक ख़बरें जानने में लगा रहा। ता० २५ जमादिउस्सानी (चैत्र वदि १३ = ता० २१ मार्च) को वह राजधानी की ओर अग्रसर हुआ। जसवन्तसिंह को दोनों भाइयों की सेना के आगमन का उस समय पता लगा जब वह उज्जैन से सात कोस की दूरी पर आ पहुंची और मांडू के राजा शिवराज ने अकबरपुर के क़िले से उनके गुज़रने की ख़बर महाराजा के पास भेजी। क़ासिमख़ां शाहज़ादे मुराद के अहमदाबाद छोड़ने की ख़बर पाकर उधर गया था, पर जब उसके औरंगज़ेब से मिल जाने का समाचार उसे मिला तो वह निराश होकर लौट आया। इसी बीच धार में रक्खे हुए दाराशिकोह के आदमी भी दोनों शाहज़ादों को रोकने में अपने को असमर्थ पाकर भाग आये और महाराजा की सेना के शामिल हो गये। तदनन्तर क़ासिमख़ां के साथ जसवन्तसिंह ने आगे बढ़कर शाहज़ादे औरंगज़ेब की सेना से डेढ़ कोस की दूरी पर डेरा किया। दोनों विपक्षी सेनाओं के डेरे धर्मात नामक स्थान में हुए थे। औरंगज़ेब ने अपना मनुष्य भेजकर महाराजा से मार्ग छोड़ देने के लिए कहलाया[1], परन्तु जब उसने इसपर कुछ ध्यान न दिया तो ता० २२ रजब (वि० सं० १७१५ वैशाख वदि ६ = ई० स० १६५८ ता० १६ अप्रेल) को दोनों दलों में युद्ध हुआ[2]।'

इस अवसर पर शाहज़ादे औरंगज़ेब की सेना के हरावल में उसका बेटा शुजाअख़ां, सैयद मुज़फ़्फ़रख़ां, लोदीख़ां बारहा, सैयद नसीरुद्दीन

(१) मनूकी-कृत "स्टोरिया डो मोगोर" से पाया जाता है कि बादशाह की आज्ञानुसार प्रस्थान करने के बाद महाराजा ने कई पत्र औरंगज़ेब को लिखे थे, पर उसने एक का भी उत्तर न दिया (जि० १, पृ० २४८)।

(२) इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २१८-९। उमराए हनूद; पृ० १४६। "आलमगीरनामे" में यह युद्ध धर्मातपुर के पास होना लिखा है (इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २१६, टि० १)।

दक्खिणी, मीर अबुल्फ़ज़ल आदि थे और सहायक सेना में ज़ुल्फ़िक़ारखां कुछ तोपखाना तथा मुहम्मद सुलतान था, जिसके साथ निजावतख़ां, बहादुरख़ां आदि थे। प्रधान तोपखाने का अफ़सर मुर्शिदकुलीख़ां था, जिसके अधीन कई फरांसीसी भी काम करते थे। दाहिनी तरफ़ शाहज़ादा मुराद अपनी सेना सहित तैयार था। बाईं तरफ़ की फ़ौज का अफ़सर शाहज़ादा मुहम्मद आज़म था, जिसके साथ कई मुसलमान अफ़सरों के अतिरिक्त राजा इन्द्रमणि धन्धेरा, कर्णसिंह कच्छी, राजा सारंगधर आदि भी थे। स्वयं औरंगज़ेब के पास दाहिनी तरफ़ शेख़ मीर आदि मुसलमान अफ़सरों के अतिरिक्त बीकानेर के राव कर्णसिंह के दो पुत्र केशरीसिंह एवं पद्मसिंह, रघुनाथसिंह राठोड़ आदि तथा बाईं तरफ़ सफ़शिकनख़ां, जादवराय, बाबाजी घोंसला (भोंसला), बीतूजी, जसवन्तराव आदि थे। बीच में स्वयं औरंगज़ेब था, जिसके पास बूंदी के राव शत्रुशाल हाड़ा का पुत्र भगवन्तसिंह तथा शुभकर्ण बुन्देला आदि थे[1]।

महाराजा जसवन्तसिंह के साथ की शाही सेना में हरावल की फ़ौज का अफ़सर क़ासिमख़ां था, जिसके साथ मुकुन्दसिंह हाड़ा, राजा सुजानसिंह बुन्देला, अमरसिंह चन्द्रावत (रामपुरा), राजा रत्नसिंह राठोड़ (रतलाम), अर्जुन गौड़, दयालदास झाला, मोहनसिंह हाड़ा आदि थे। इनके आगे बहादुर बेग फ़ौजबख़्शी और तोपख़ाने के दारोग़ा रक्खे गये, जिनके साथ जानीबेग वग़ैरह थे। गिर्दावरी पर मुख़लिसख़ां आदि और सहायक सेना में महशेदास गौड़, गोवर्द्धन राठोड़ आदि थे। स्वयं महाराजा जसवन्तसिंह चुने हुए दो हज़ार राजपूतों सहित बीच में था, जिनमें भीमसिंह गौड़ (राजा विट्ठलदास का पुत्र) आदि थे। दाहिनी तरफ़ राजा रायसिंह (टोड़ा, जयपुर राज्य) तथा सुजानसिंह सीसोदिया (शाहपुरा) अपने भाइयों एवं अन्य वीर राजपूतों सहित थे; बाईं तरफ़ की सेना में इफ़्तिख़ारख़ां एवं शेरख़ां बारहा आदि थे और डेरों की देख-रेख का कार्य मालूजी, पर्सूजी

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ३४६।

तथा राजा देवीसिंह बुंदेला के सुपुर्द था[1]।

युद्ध प्रारम्भ होने पर औरंगज़ेब ने अपना तोपख़ाना नदी के किनारे रखकर दूसरी फ़ौज को तोपखाने की सहायता से नदी उतरने की आज्ञा दी। ऐसा ही किया गया, परन्तु बादशाही फ़ौज के तोपखाने ने इस फ़ौज का आगे बढ़ना रोक दिया। इस लड़ाई में क़ासिमख़ां की फ़ौज के मुकुन्दसिंह हाड़ा, राजा रत्नसिंह राठोड़, दयालदास झाला, अर्जुन गौड़ आदि वीर राजपूतों ने बढ़कर औरंगज़ेब के तोपखाने पर आक्रमण किया और उसके कितने ही अफ़सरों को ज़ख्मी कर दिया। जसवन्तसिंह की शाही फ़ौज के राजपूत सरदारों ने आगे बढ़कर औरंगज़ेब के हरावल पर हमला किया। पीछे से दूसरे राजपूत भी उसकी सहायता को पहुंच गये। यह लड़ाई बड़ी भयंकर हुई। औरंगज़ेब के पुत्रों आदि ने अपनी-अपनी सेना के साथ दाहिनी और बाईं तरफ़ के राजपूतों पर आक्रमण किया। स्वयं औरंगज़ेब ने भी अपने सैनिकों के साथ प्रबल वेग से हमला किया। इसका फल यह हुआ कि जसवन्तसिंह की फ़ौज के मुकुन्दसिंह हाड़ा, सुजानसिंह सीसोदिया, राजसिंह राठोड़, अर्जुन गौड़, दयालदास झाला, मोहनसिंह हाड़ा आदि अपने हज़ारों राजपूतों सहित औरंगज़ेब की सेना के बहुत से आदमियों को मारकर मारे गये[2]। शत्रुदल की शक्ति बढ़ती हुई देखकर राजा रायसिंह (सीसोदिया, टोड़े का), राजा सुजानसिंह (बुन्देला) और अमरसिंह चन्द्रावत (रामपुरा) अपने साथियों सहित भाग निकले। शाहज़ादा मुराद लड़ता हुआ जसवन्तसिंह के डेरों के पीछे जा पहुंचा[3]।

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ३४६-७।

(२) मुंशी देवीप्रसाद-लिखित "शाहजहांनामा" नामक पुस्तक में भी मुकुंदसिंह हाड़ा और अर्जुन गौड़ का फ़ौज को चीरते हुए शाहज़ादे तक पहुंचना, पर शत्रुसंख्या अधिक होने के कारण वीरतापूर्वक लड़ते हुए मारा जाना लिखा है (तीसरा भाग, पृ० १७६)।

(३) "स्टोरिया डो मोगोर" से पाया जाता है कि मुरादबख़्श ने नदी में फंसकर महाराजा पर आक्रमण किया था (मनकी-कृत; जि० १, पृ० २५१)।

वहां पर नियुक्त मालू व पर्सू आदि रक्षकों ने कुछ समय तक तो उसका सामना किया, पर अंत में उन्हें भी जान बचाकर भागना पड़ा। मुराद के सम्मुख पहुंचने पर जसवन्तसिंह की फ़ौज के इफ़्तेख़ारख़ां आदि लड़कर मारे गये। तदनन्तर औरंगज़ेब और मुराद की सेना ने चारों तरफ़ से घेर-कर शाही सेना पर हमला किया। शाही सेना के बहुतसे प्रमुख सरदार तो पहले ही मारे जा चुके थे, अब अधिकांश भाग निकले, जिससे जसवन्त-सिंह के राजपूतों को ही शत्रु-सेना का मुक़ाबला करना पड़ा[1]।

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि क़ासिमख़ां पहले ही औरंगज़ेब से मिलकर भाग गया था[2]। बचे हुए राजपूतों के साथ जसवन्त-सिंह वीरतापूर्वक लड़ता हुआ औरंगज़ेब के पास तक पहुंच गया, पर इसी

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ३४७-८।

(२) मुंशी देवीप्रसाद के अनुसार महाराजा जसवन्तसिंह तथा क़ासिमख़ां दोनों दो तरफ़ के दबाव से घबराकर भाग निकले (शाहजहांनामा; तीसरा भाग, पृ० १७६)। अन्य फ़ारसी तवारीख़ों में भी प्रायः ऐसा ही लिखा मिलता है। "स्टोरिया डो मोगोर" से पाया जाता है कि क़ासिमख़ां की इच्छा औरंगज़ेब के ख़िलाफ़ जाने की न थी, पर शाहजहां को प्रसन्न करने के लिए उसे ऐसा करना ही पड़ा। फिर औरंगज़ेब की सेना से युद्ध होने पर उसने अपनी सेना का बारूद आदि सामान छिपाकर रख दिया और कुछ गोलियां हवा में छोड़कर वह रणक्षेत्र से चला गया (मनूकी-कृत; जि० १, पृ० २५८ और २५९)। जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० १, पृ० २०६) और वीरविनोद (भाग २, पृ० ८२४) में भी उसका औरंगज़ेब से मिल जाना लिखा है।

बर्नियर, जो एक फ्रांसीसी यात्री था और ई० स० १६५६ के लगभग भारत-वर्ष में आया था, अपनी पुस्तक में लिखता है कि मैं इस लड़ाई के समय स्वयं उप-स्थित न था, पर हरएक दर्शक तथा प्रधानतया औरंगज़ेब के तोपख़ाने के फ्रांसीसी अफ़सरों का यही मत था कि क़ासिमख़ां एवं जसवन्तसिंह आसानी से औरंगज़ेब पर विजय पा सकते थे। जसवन्तसिंह ने इस लड़ाई में अद्भुत वीरता का परिचय दिया, पर क़ासिमख़ां ने, यद्यपि वह अपनी ख्याति के अनुरूप ही वीर था, इस अवसर पर किसी प्रकार के रणकौशल का परिचय न दिया। उसपर विश्वासघात का भी सन्देह किया गया। लोगों का कहना था कि युद्ध के पूर्व की रात्रि को वह अपना लड़ाई का सामान (बारूद आदि) रेत में छिपाकर चला गया [ट्रैवेल्स इन दि मुग़ल एम्पायर—ए० कान्स्टेबल-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद (ई० स० १९१६ की द्वितीय आवृत्ति); पृ० ३८-९]।

बीच वह स्वयं घायल हो गया और उसका घोड़ा भी आहत होकर गिर पड़ा। तब वह दूसरे घोड़े पर सवार होकर लड़ने लगा, पर शाहज़ादों की शक्ति अधिक होने से शाही सेना के पैर उखड़ गये। ऐसी परिस्थिति देखकर जसवन्तसिंह के साथ के राजपूत बलपूर्वक उसके घोड़े की बाग पकड़कर उसे युद्धक्षेत्र से बाहर निकाल ले गये[1]। इस लड़ाई में शाही सेना के हज़ारों वीर राजपूत काम आये[2]। इस विजय की स्मृति में धर्मातपुर का नाम "फ़तहआबाद" (फ़तियाबाद) रक्खा गया। विजयप्राप्ति के बाद औरंगज़ेब और मुराद उज्जैन गये[3], जहां से ता० २७ रजब (वैशाख वदि ३० = ता० २२ अप्रेल) को वे ग्वालियर गये। वहां पहुंचकर उन्होंने युद्ध की तैयारी आरंभ की[4]।

युद्धक्षेत्र का परित्याग कर महाराजा अपने अवशिष्ट साथियों के साथ (श्रावणादि) वि० सं० १७१५ (चैत्रादि १७१६) वैशाख सुदि १

(१) जि० १, पृ० २०७। मनूकी लिखता है—'औरंगज़ेब की सेना के नदी के दूसरी ओर पहुंचते ही महाराजा के साथ के लोगों ने उसे युद्धक्षेत्र छोड़कर हट जाने के लिए कहा, क्योंकि वह जीवित रहकर फिर भी लड़ाई में भाग ले सकता था। इस सलाह के अनुसार अनिच्छा होते हुए भी उसे ५०० सवारों के साथ रणक्षेत्र छोड़ना पड़ा (स्टोरिया डो मोगोर; जि० १, पृ० २५९-६०)।'

जदुनाथ सरकार ने भी शाहज़ादे औरंगज़ेब के साथ की महाराजा जसवन्तसिंह की लड़ाई का सारा वर्णन ऊपर जैसा ही दिया है (शॉर्ट हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब; पृ० ६०-६३)।

(२) बर्नियर आठ हज़ार राजपूतों में से केवल छः सौ का बचना लिखता है (ट्रैवेल्स इन दि मुग़ल एम्पायर; पृ० ३९)। फ़ारसी तवारीख़ों में छः हज़ार राजपूतों का मारा जाना लिखा है। सरकार ने भी यही संख्या दी है (शॉर्ट हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब; पृ० ६३)।

(३) मुंशी देवीप्रसाद के "शाहजहांनामे" में लिखा है कि शाही सेना के भागने पर औरंगज़ेब की सेना ने चार-पांच कोस तक उसका पीछा किया। फिर उज्जैन होते हुए उसने अपनी सेना और मुराद के साथ आगरे की ओर प्रस्थान किया (तीसरा भाग; पृ० १७६)।

(४) वीरविनोद; भाग २, पृ० ३४८-९।

जसवन्तसिंह का जोधपुर जाना

(ई० स० १६५६ ता० १२ अप्रेल) को सोजत पहुंचा। वहां चार-पांच दिन ठहरकर वह जोधपुर गया[1]।

(१) "वीरविनोद" से पाया जाता है कि महाराजा के जोधपुर पहुंचने पर उसकी राणी बून्दी के राव शत्रुसाल की पुत्री ने क़िले के द्वार बन्द करा महाराजा को अन्दर न आने दिया। उसने कहा कि मेरा पति लड़ाई से भागकर कभी नहीं आता। यह कोई और व्यक्ति है; अतएव चिता तैयार कराओ और मेरे सती होने का प्रबन्ध करो। बाद में बहुत समझाने बुझाने पर कि महाराजा नई सेना एकत्र कर फिर औरंगज़ेब से लड़ेगा, राणी ने गढ़ के द्वार खोले (भाग २, पृ० ८२४)। बर्नियर (ट्रैवेल्स इन दि मुग़ल एम्पायर; पृ० ४०-१) और मनूकी (स्टोरिया डो मोगोर; जि० १, पृ० २६०-६१) ने बूंदी की राणी के स्थान में उदैपुरी राणी लिखा है। "उमराए हनूद" (पृ० १५७) में भी यही लिखा मिलता है, जो ठीक नहीं है।

जोधपुर राज्य की ख्यात में न तो इस घटना का उल्लेख है और न उसमें उसकी किसी उदयपुर की राणी का नाम ही मिलता है। जसवन्तसिंह की एक राणी बूंदी की थी। बूंदी की नाहर झोंस की बावड़ी के वि० सं० १७२१ वैशाख वदि १ (ई० स० १६६४ ता० १ अप्रेल) के लेख से पाया जाता है कि बूंदी के दीवान (स्वामी) राव शत्रुसाल की सीसोदणी राणी राजकुंवरी ने, जो देवलिया के रावत सिंहा की पुत्री थी, यह बावड़ी और बाग़ बनवाया। उक्त राणी (राजकुंवरी) की पुत्री करमेतीबाई हुई, जिसका विवाह जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह के साथ हुआ था (मूल लेख की छाप से)।

जोधपुर राज्य की ख्यात में जसवन्तसिंह की बूंदी की राणी का पिता के घर का नाम रामकंवर दिया है, जो ठीक नहीं माना जा सकता।

कविराजा श्यामलदास कृत "वीरविनोद" के अनुसार ऊपर आई हुई घटना बूंदी की राणी से संबंध रखती है। जसवन्तसिंह की एक राणी बूंदी की अवश्य थी, जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, पर उसने महाराजा का ऊपर लिखे अनुसार स्वागत किया हो, इसमें संदेह है। ऐसी कई दन्त-कथाएं पुस्तकों में लिखी मिलती हैं। आगे चलकर स्वयं मनूकी लिखता है—'कई साल बाद बादशाह औरंगज़ेब के बीच में पड़ने से महाराजा जसवन्तसिंह और उसकी राणी में मेल हो गया, पर राणी के मन की भावना में परिवर्तन न हुआ। एक बार जब महाराजा ख़रबूज़ा खाने के लिए बैठा तो दासी ने एक चाक़ू भी साथ में लाकर रख दिया। यह देखकर राणी ने दासी को पीटते हुए कहा— "क्या तुझे पता नहीं कि मेरा पति इतना साहसी है कि लोहा देखते ही बेहोश हो जाता है।" उसका ऐसा आचरण अपने जीवन के अन्त तक बना रहा (स्टोरिया डो मोगोर;

युद्ध के मध्य से चले आने का ध्यान उसके दिल में बहुत समय तक बना रहा[1]।

इस बीच बादशाह ने स्वास्थ्य में विशेष अन्तर पड़ने के कारण दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिया था। मार्ग में महाराजा की पराजय का समाचार उसके पास पहुंचा। दाराशिकोह ने जब इस सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा-सुना तो बादशाह को फिर आगरे लौटना पड़ा[2], जहां से उसने बहुत कुछ इनाम-इकराम देकर शाहज़ादे (दारा) को एक बड़ी सेना[3] के साथ औरंगज़ेब के विरुद्ध भेजा। उसी समय बेगम ने भी एक पत्र औरंगज़ेब के पास भिजवाकर उसे समझाने की चेष्टा की, पर उसने उसपर विशेष ध्यान न दिया और उत्तर भिजवाकर वह लड़ने के वास्ते आगे बढ़ता ही गया[4]। कहते हैं कि बादशाह स्वयं अपने विद्रोही पुत्रों के खिलाफ़ जाना चाहता था, परन्तु दारा और खानजहां शाइस्ताखां[5] के कहने के कारण उसको रुकना पड़ा। हि० स० १०६८ ता० १६ शाबान (वि० सं० १७१५ ज्येष्ठ वदि ४ = ई० स० १६५८

औरंगज़ेब का दारा को हराना

जि० १, पृ० २६१-२)।' "वीरविनोद" में यह कथा दूसरे प्रकार से दी है (भाग २, पृ० ८२५), पर आशय उसका भी यही है।

उक्त इतिहास-लेखकों ने सुनी-सुनाई बातों के आधार पर अपने ग्रन्थों में इन बातों को स्थान दे दिया है, जिनपर विश्वास नहीं किया जा सकता।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २२५।

(२) मुंतख़बुल्लुबाब—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २११।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात में ८०००० सेना के साथ दारा का भेजा जाना लिखा है (जि० १, पृ० २२५), जो विश्वास के योग्य नहीं है।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; तीसरा भाग, पृ० १७६-८०।

(५) "मुंतख़बुल्लुबाब" में लिखा है कि शाइस्ताख़ां औरंगज़ेब का मामा लगता था, और उसका ही पक्षपाती था, इसलिए वह बादशाह को स्वयं उसके ख़िलाफ़ जाने न देना चाहता था। एकबार बादशाह ने इसकी ड्योढ़ी बन्द करवा दी थी, पर पीछे से दयालु-हृदय होने के कारण उसने इसे माफ़ कर दिया (इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २२०)।

ता० १० मई) को दारा ने खलीलुल्लाखां[1] आदि को थोड़ी सेना के साथ धौलपुर भेजा। वह स्वयं अपने ज्येष्ठ पुत्र सुलेमान शिकोह के आगमन की प्रतीक्षा में आगरे में ही ठहर गया, पर जब उसके आने में उसने विलम्ब देखा तो उसे लाचार होकर प्रस्थान करना ही पड़ा। ता० ६ रमज़ान (ज्येष्ठ सुदि ७ = ता० २६ मई) को समूगढ़[2] के निकट आधकोस के अन्तर पर विरोधी सेनाओं के डेरे हुए। पहले भेजी हुई सेना से कुछ भी प्रबन्ध न हो सका था, अतएव समूगढ़ पहुंचने के दूसरे दिन ही दारा ने अपनी सेना को युद्ध के लिए सुसज्जित किया। औरंगज़ेब भी सम्मुख आया, पर स्वयं युद्ध आरंभ करने में लाभ की संभावना न देखकर वह विरोधी दल के आक्रमण की राह देखने लगा। दूसरे दिन युद्ध आरंभ हुआ। दारा की सेना ने इतना भीषण आक्रमण किया कि औरंगज़ेब की सेना में खलबली मच गई, पर ठीक समय पर सहायता पहुंच जाने से स्थिति फिर बदल गई। शाही सेना के राजा रूपसिंह राठोड़, शत्रुसाल हाड़ा, रामसिंह[3] आदि राजपूतों ने बड़ी वीरता बतलाई और युद्ध में प्राण

---

(१) इसका ख़िताब उमदतुलमुल्क था और यह असालतख़ां मीरबख़्शी का भाई था। औरंगज़ेब के प्रथम राज्यवर्ष (वि० सं० १७१५-६ = ई० स० १६५८-६) में यह छः हज़ारी मनसबदार बना दिया गया। हि० स० १०७२ ता० २ रजब वि० सं० १७१८ फाल्गुन सुदि ४ = ई० स० १६६२ ता० १२ फ़रवरी) को इसकी मृत्यु हुई।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात में दारा का धौलपुर जाना और वहां से औरंगज़ेब के सीधे आगरे जाने की खबर पाकर, उसके पीछे जाकर (श्रावणादि) वि० सं० १७१४ (चैत्रादि १७१५) ज्येष्ठ सुदि ८ (ई० स० १६५८ ता० ३० मई) को आगरे के निकट उससे युद्ध करना लिखा है (जि० १, पृ० २२५)।

(३) रामसिंह की वीरता के विषय में बर्नियर लिखता है—'उसने मुरादबख़्श के साथ लड़कर अच्छी वीरता दिखलाई। उसने शाहज़ादे को अपने हमले से घायल कर दिया और निकट पहुंचकर वह हाथी के बंधी हुई रस्सियां काटकर शाहज़ादे को गिरानेवाला ही था कि उसने एक तीर ऐसा मारा, जिससे वहीं रामसिंह की मृत्यु हो गई (ट्रैवेल्स इन दि मुग़ल एम्पायर; पृ० ५१-२)।'

गंवाये। यह सब देखकर दारा विचलित हो उठा। इसी समय उसके हाथी के हौदे पर एक गोला आकर गिरा, जिससे वह फ़ौरन हाथी से नीचे उतर बिना हथियार लिये घोड़े पर सवार हो गया। उसे न देखकर उसके साथी भाग निकले, जिससे बाध्य होकर दारा को भी भागना पड़ा। वहां से वह आगरे गया, जहां एक पहर ठहरकर वह दिल्ली के मार्ग से लाहोर की तरफ़ चला गया[1]।

पिता को नज़र क़ैदकर औरंगज़ेब का गद्दी बैठना

इसके तीसरे दिन औरंगज़ेब आगरे पहुंचा[2] और नूर महल बाग़ में ठहरा। उस समय पद-वृद्धि के लालायित सरदार बादशाह का साथ छोड़कर उसकी सेवा में उपस्थित हो गये। बादशाह ने पहले तो उसके पास चिट्ठियां भेजीं, पर जब उनका कोई परिणाम न निकला और उसे विश्वास हो गया कि औरंगज़ेब की नियत साफ़ नहीं है तो उसने क़िले के फाटक बन्द करवाकर वहां अपने आदमी नियुक्त कर दिये। औरंगज़ेब ने यह देखकर रात को क़िले को घेर लिया और उसपर तोपों का हमला किया। फलस्वरूप एक ही रात के घेरे से क़िले के भीतरवाले घबरा गये और प्रायः सभी औरंगज़ेब से मिल गये। फिर तो औरंगज़ेब ने फ़रेब से पिता से क़िले की कुंजियां हस्तगत कर लीं[3] और उसे नज़र क़ैद कर क़िले के प्रत्येक स्थान में अपने आदमी रख दिये[4]। उसी समय से राज्य में

---

(१) मुंतख़बुल्लुबाब—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २२०-२२। मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; तीसरा भाग, पृ० १८०-८१।

(२) "मुंतख़बुल्लुबाब" में दारा पर विजय प्राप्त करने के बाद ही औरंगज़ेब का शाहजहां के पास एक ख़त भेजना लिखा है, जिसमें ~~उसने~~ युद्ध आदि का ईश्वर की मर्ज़ी से होना लिखा था (इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २२९)।

(३) औरंगज़ेब ने अपने पिता से यह कहलाया कि यदि आप मुझे क़िले की कुंजियां सौंप दें तो मैं आपकी सेवा में उपस्थित होकर अपने गुनाहों की माफ़ी मांग लूं (मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; तीसरा भाग; पृ० १८५-६)।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; तीसरा भाग, पृ० १८१-६। जदुनाथ सरकार; शॉर्ट हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब; पृ० ७३।

औरंगज़ेब की आज्ञा प्रचारित हो गई। फिर बादशाह ने दाराशिकोह के पीछे प्रस्थान किया, जो उन दिनों लाहोर में धन और सेना एकत्र करने में लगा था। मार्ग में हि० स० १०६८ ता० १ ज़िल्काद (वि० सं० १७१५ श्रावण सुदि २=ई० स० १६५८ ता० २२ जुलाई) को तख़्तनशीनी का उत्सव कर उसने साथ के अमीरों को इनाम-इकराम दिये[1]।

इसी वर्ष महाराजा जसवन्तसिंह औरंगज़ेब की सेवा में उपस्थित हुआ[2]। "मुंतख़बुल्लुबाब" में लिखा है कि पहले उसने एक पत्र अपने वकीलों के द्वारा भिजवाकर बादशाह की माफ़ी चाही, जिसके मंजूर होने पर वह दरबार में गया, जहां उसका मनसब बहाल कर उसे बहुतसी वस्तुएं भेंट में दी गईं[3]।

जसवन्तसिंह का औरंगज़ेब की सेवा में जाना



इस सम्बन्ध में जोधपुर राज्य की ख्यात में कुछ भिन्न वर्णन मिलता है, जिसका सारांश नीचे लिखे अनुसार है—

'आगरे पहुंचकर औरंगज़ेब ने महाराजा जसवन्तसिंह के पास उसे अपने सैनिकों सहित आने के लिए फ़रमान भेजा, जिसके साथ उसने सांभर के ख़ज़ाने से उस (जसवन्तसिंह) को पांच लाख रुपये दिलाये। इसके अतिरिक्त उसने पांच हज़ार की हुंडिया भी उसके पास भेजीं। तब अपने आदमियों को एकत्र कर (श्रावणादि) वि० सं० १७१४ (चैत्रादि

(१) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; जि० १, पृ० ३४-५। मुंतख़बुल्लुबाब—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २२६।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; जि० १, पृ० ३५। "उमराए हनूद" से पाया जाता है कि महाराजा जसवन्तसिंह मिर्ज़ा राजा जयसिंह की मारफ़त औरंगज़ेब की सेवा में गया (पृ० १५८)।

(३) मुंतख़बुल्लुबाब—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इण्डिया; जि० ७, पृ० २३१।

"वीरविनोद" से भी पाया जाता है कि दारा का पीछा करना छोड़कर लाहोर से लौटने पर औरंगज़ेब ने जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह को आभूषण इत्यादि तथा दो लाख पचास हज़ार की जागीर दी (भाग २, पृ० ६८५)।

१७१५) ज्येष्ठ वदि ८ (ई० स० १६५८ ता० १४ मई) को उसने जोधपुर से प्रस्थान किया। ज्येष्ठ सुदि ११ (ता० १ जून) को वह पुष्कर पहुंचा, जहां से चलकर तीसरे दिन वह अजमेर पहुंचा। वहां वह चालीस दिन तक ठहरा रहा और वहीं रहते समय उसने फ़रासत के हाथ से राज्य-कार्य लेकर मुंहणोत नैणसी[1] के सिपुर्द किया। फिर वहां से प्रस्थानकर वह

(१) मुंहणोत नैणसी का जन्म वि० सं० १६६७ मार्गशीर्ष सुदि ४ (ई० स० १६१० ता० ६ नवंबर) शुक्रवार को हुआ था। उसका पिता जयमल जसवन्तसिंह के पिता गजसिंह के समय में राज्य का विश्वासपात्र सेवक था। वह राज्य का दीवान और पीछे से क्रमशः जालोर एवं नागोर का शासक रहा था। मुंहणोत नैणसी भी प्रारम्भ से ही राज्य की सेवा में प्रविष्ट हुआ और उसने समय-समय पर राज्य के विद्रोही सरदारों का दमन करने में अच्छी बहादुरी दिखलाई, जिसका उल्लेख ऊपर यथास्थान आ गया है। वह जैसा वीर-प्रकृति का पुरुष था, वैसा ही विद्यानुरागी, इतिहास-प्रेमी और वीर-कथाओं से अनुराग रखनेवाला नीतिनिपुण व्यक्ति था। राज्य-कार्य में भाग लेना आरम्भ करने के साथ ही उसने इतिहास-सामग्री एकत्रित करना शुरू कर दिया था। उसका लिखा हुआ वृहत् ऐतिहासिक ग्रंथ "ख्यात" के नाम से प्रसिद्ध है, जो अब काशी की नागरी प्रचारिणी सभा-द्वारा दो खण्डों में हिन्दी भाषा में प्रकाशित हो गया है। यह ग्रन्थ राजपूताना, गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, बघेलखंड, बुंदेलखंड और मध्यभारत के इतिहास के लिए विशेषरूप से उपयोगी है। राजपूताने के विभिन्न राज्यों की प्राप्त ख्यातों आदि से अधिक प्राचीन होने के कारण मुंहणोत नैणसी का यह ग्रन्थ इतिहास के लिए बड़ा महत्व रखता है। वि० सं० १३०० के बाद से नैणसी के समय तक के राजपूतों के इतिहास के लिए तो मुसलमानों की लिखी हुई फ़ारसी तवारीख़ों से भी नैणसी की ख्यात का मूल्य अधिक है। राजपूताने के इतिहास में कई जगह जहां प्राचीन शोध से प्राप्त सामग्री इतिहास की पूर्ति नहीं कर सकती, वहां नैणसी की ख्यात ही कुछ सहारा देती है। यह इतिहास का अपूर्व संग्रह है। नैणसी का दूसरा ग्रन्थ जोधपुर राज्य का सर्वसंग्रह (गैज़ेटियर) है, जिसमें जोधपुर राज्य के उन परगनों का वृत्तान्त है, जो उस समय उक्त राज्य में थे। नैणसी ने पहले तो एक-एक परगने का इतिहास लिखकर यह दिखलाया है कि उसका वैसा नाम क्यों पड़ा, उसमें कौन-कौन राजा हुए, उन्होंने क्या-क्या काम किये और वह कब और कैसे जोधपुर राज्य के अधीकार में आया। इसके बाद उसने प्रत्येक गांव का थोड़ा-थोड़ा हाल दिया है कि वह कैसा है, फ़सल एक होती है या दो, कौन-कौन से अन्न किस फ़सल में होते हैं, खेती करनेवाले किस-किस जाति के लोग हैं, जागीरदार कौन हैं, गांव कितनी जमा का है, पांच वर्षों में कितना रुपया

गांव रीपड़ पहुंचा, जहां बादशाह औरंगज़ेब के हृदय की बात जानने के बाद भाद्रपद वदि १३ (ता० १६ अगस्त) को वह उसके पास हाज़िर हो गया। बादशाह ने उसे जहानाबाद का सूबा दिया, जहां वह आश्विन सुदि १ (ता० १८ सितंबर) को पहुंचा[1]।'

शाहशुजा के साथ की लड़ाई से जसवन्तसिंह का स्वदेश लौटना

इसके कुछ ही दिनों बाद बादशाह को ख़बर मिली कि शाह शुजा बंगाल से सैन्य-सहित चल पड़ा है। ऐसी दशा में उसे दारा का पीछा छोड़कर इस ओर ध्यान देना पड़ा। हि० स० १०६६ ता० १२ मोहर्रम (वि० सं० १७१५ आश्विन सुदि १४ = ई० स० १६५८ ता० ३० सितम्बर) को वह दिल्ली वापस लौटा, जहां वह ता० ४ रबीउल्अव्वल (मार्गशीर्ष सुदि ६ = ता० २० नवंबर) को पहुंचा। वहां पर उसे सूचना मिली कि शाह शुजा दलबल सहित बनारस तक पहुंच गया है और बनारस, चीतापुर, इलाहाबाद तथा जौनपुर के क़िलेदारों ने वहां के क़िले उसके सुपुर्द कर दिये हैं[2]। तब बादशाह ने शाहज़ादे मुहम्मद सुलतान को आगरे से शाह शुजा पर जाने की आज्ञा दी, लेकिन फिर जब उसने शाह शुजा के और आगे बढ़ने का समाचार सुना तो उसने स्वयं सोरों की शिकारगाह चलने का इरादा किया[3]। दिल्ली से प्रस्थान करते

बढ़ा है, तालाब, नाले और नालियां कितनी हैं, उनके इर्द-गिर्द किस प्रकार के वृक्ष हैं आदि। यह कोई चार-पांच सौ पत्रों का ग्रन्थ है। इसमें जोधपुर के राजाओं का राव सीहा से महाराजा जसवन्तसिंह तक का कुछ-कुछ परिचय भी दिया है। यह ग्रन्थ प्रादेशिक होने पर भी जोधपुर राज्य के लिए कम महत्व का नहीं है। स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद ने तो नैणसी को "राजपूताने का अबुल्फ़ज़्ल" कहा है, जो अयुक्त नहीं है।

नैणसी के दो भाई और थे, जिनमें से सुन्दरदास राजकीय सेवा में था और राज्य की तरफ़ से कई बार विद्रोही सरदारों पर भेजा गया था।

(१) जि० १, पृ० २२८।

(२) मुंतख़बुल्लुबाब—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इण्डिया; जि० ७, पृ० २३२।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; जि० १, पृ० ३६-७।

समय उसने महाराजा जसवन्तसिंह को भी अपने साथ ले लिया[1]। वहां पहुंचकर प्रथम उसने उस(शाह शुजा)के पास नसीहत का एक पत्र भेजा, जिसका कोई परिणाम न निकलने पर शाहज़ादे सुलतान को यह लिखकर कि वह उसके पहुंचने तक इन्तज़ार करे, उसने सोरों की शिकारगाह से चढ़ाई की। ता० १७ रबीउल्‌आख़िर (वि० सं० १७१५ माघ वदि ४ = ई० स० १६५६ ता० २ जनवरी) को बादशाह क़सबे कोड़ा के पास पहुंचा, जहां शाहज़ादा मुहम्मद सुलतान ठहरा हुआ था। शाह शुजा उस समय अपनी फ़ौज के साथ वहां से चार कोस की दूरी पर था। उसी दिन खानदेश से जाकर मोअज़्ज़मख़ां भी बादशाही सेना के शामिल हो गया। शाह शुजा ने युद्ध करने के इरादे से तोपख़ाना आगे लगा रक्खा था। कोड़े में पहुंचने के तीसरे दिन बादशाह ने अपनी सेना और तोपख़ाने को आगे बढ़ाकर शत्रु पर आक्रमण करने की आज्ञा दी[2]। उधर शाह शुजा भी आगे बढ़ा। थोड़े समय में ही दोनों सेनाएं एक दूसरे से आध कोस के अंतर पर एकत्रित हो गईं। उसी रात जब औरंगज़ेब अपने डेरे में था, उसकी सेना में गड़बड़ मच गई। महाराजा जसवन्तसिंह ने रात्रि के प्रारम्भ में शुजा से लिखा-पढ़ी करके यह तय किया था कि प्रातःकाल होने के कुछ पूर्व वह बादशाह की सेना पर आक्रमण कर उसका भरसक नुक़सान कर युद्धक्षेत्र से हट जायगा। ऐसी दशा में यह निश्चत है कि औरंगज़ेब उसका पीछा करेगा। उस समय शुजा को शाही सेना पर पूर्ण वेग से आक्रमण कर देना चाहिये। इसी के अनुसार महाराजा ने सुबह होते-होते अपने साथियों

(१) उमराए हनूद; पृ० १५८। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २२६। उक्त ग्रंथ में वि० सं० १७१५ के पौष (ई० स० १६५८ के दिसंबर) मास में औरंगज़ेब का महाराजा जसवन्तसिंह को साथ लेकर पटने की तरफ़ प्रस्थान करना लिखा है। बादशाह ने महाराजा को अपनी सेना के चन्दावल में रक्खा था। "वीरविनोद" से पाया जाता है कि वह अन्य राजपूतों के साथ बादशाही सेना की दाहिनी तरफ़ था (भाग २, पृ० ८२६)।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; जि० १, पृ० ३७-८।

सहित मार्ग में पड़नेवाले व्यक्तियों को काटते हुए युद्धक्षेत्र से हटना आरम्भ किया। उसके आक्रमण से शाहज़ादे मुहम्मद सुलतान की सेना का बहुत नुक़सान हुआ। उसके साथ के तमाम डेरे, तम्बू और ख़ज़ाना आदि लूट लिये गये। फिर विद्रोहियों ने, जिधर बादशाह था, उधर प्रस्थान किया। वहां के डेरे भी निरापद न रहे। कुछ समय तक तो इस गड़बड़ी के कारण का पता न चला। सारी बादशाही सेना में भय का साम्राज्य आविर्भूत हो गया और अनेकों सैनिक लुटेरों से मिल गये। बादशाह को जब ये ख़बरें मिलीं तो वह ज़रा भी विचलित न हुआ, यद्यपि उसका आधे से अधिक लश्कर बिखर गया था। इसी बीच उसे ख़बर मिली कि महाराजा लूट-मार करता हुआ अपने देश की ओर चला गया[1]।

---

(१) सरकार-कृत "हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब" (जि० २, पृ० १४५), "उमराए हनूद" (पृ० १५८-६) तथा "वीरविनोद" (भाग २, पृ० ८२६) में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है; परन्तु जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि महाराजा कुछ बीमार होने के कारण वि० सं० १७१५ माघ वदि ५ (ई० स० १६५६ ता० ३ जनवरी) को पिछली रात समय के राठोड़ ईश्वरीसिंह (अमरसिंहोत), हाड़ा भावसिंह (शत्रुसालोत), सीसोदिया रामसिंह (भीमोत) तथा अन्य कितने ही सरदारों के साथ अपने देश को रवाना हो गया (यह कथन विश्वास के योग्य नहीं है)। मार्ग में जयपुर के महाराजा जयसिंह से उसकी मुलाक़ात हुई, जिसने उसको समझाने की कोशिश की, पर उसने कोई ध्यान न दिया। ईश्वरीसिंह आदि उसके साथ ज़रूर हो गये, जिनको बादशाह की सेवा में पहुंचाकर उसने माफ़ी दिला दी। महाराजा अपने पूर्व-निश्चय के अनुसार जोधपुर चला गया (जि० १, पृ० २२६)।

मनूकी के वर्णन से पाया जाता है कि बादशाह ने जसवन्तसिंह को शाही सेना के पिछले भाग में नियुक्त किया था। कुछ समय तक तो उसने शाह शुजा की सेना से लड़ाई की, पर बाद में वह लूट का माल लेकर आगरे की तरफ़ चल दिया, जहां शाह शुजा की पराजय का समाचार पाकर वह जोधपुर चला गया (स्टोरिया डो मोगोर; जि० १, पृ० ३२८-३२)। मनूकी यह भी लिखता है कि औरंगज़ेब के हारने का समाचार आगरे में फैलने के कारण, वहां के हाकिम भयातुर हो रहे थे। यदि उस समय साहस कर जसवन्तसिंह आगे बढ़ता तो आगरे के क़िले पर उसका अधिकार हो जाता और वह आसानी से शाहजहां को मुक्त कर सिंहासनारूढ करा सकता था (वही;

फिर तो बादशाह जमकर आक्रमण करने लगा, जिसका परिणाम यह हुआ कि शाहशुजा की फ़ौज भाग निकली। तब शाहज़ादे मुहम्मद सुलतान को शुजा के पीछे भेजकर[1] बादशाह ने वहां से वापस कूच किया[2]।

माघ सुदि १० (ता० २३ जनवरी) को महाराजा जोधपुर पहुंचा। कोड़ां से चलकर उसने मार्ग में खेलू और मालू नाम के दो बादशाही शहर लूटे। फिर वह सिवाणा गया, पर वहां का गढ़ उसके हाथ न आया। जोधपुर पहुंचकर उसने सेना एकत्र की,[3] तथा पट्टेवालों को पट्टे देकर सरदारों की मासिक वृत्तियां नियत कीं। उधर महाराजा के इस प्रकार साथ छोड़ने के कारण बादशाह उससे बड़ा अप्रसन्न हुआ। शाहशुजा का प्रबन्ध कर उसने उसके साथ की लड़ाई में वीरता दिखलानेवाले अमरसिंह के पुत्र रायसिंह को "फ़तहजंग" का ख़िताब और हाथी-घोड़े आदि उपहार में दिये तथा मुहम्मद अमीखां आदि के साथ जोधपुर पर विदा किया। यह ख़बर पाकर महाराजा ने आसोप के स्वामी कूंपावत नाहरखां (राजसिंहोत) और मुंहणोत नैणसी को सेना देकर मेड़ते भेजा। रायसिंह का डेरा बांदरसीन्दरी में हुआ[4]।

जसवन्तसिंह पर शाही सेना की चढ़ाई

जि० १, पृ० ३३२)। बर्नियर का भी यही मत है (ट्रैवेल्स इन दि मुग़ल एम्पायर; पृ० ७८)।

(१) "अम्लेसालीह" में शाहज़ादे मुअज्ज़म का भी साथ भेजा जाना लिखा है (इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इण्डिया; जि० ७, पृ० २३६, टि० १)।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; जि० १, पृ० ३८-९।

(३) बर्नियर भी लिखता है कि जसवन्तसिंह ने अपने देश में पहुंचकर खजवा के युद्धक्षेत्र से लूटे हुए ख़ज़ाने से एक बड़ी और मज़बूत सेना एकत्र की (ट्रैवेल्स इन दि मुग़ल एम्पायर; पृ० ८५)।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २२९-३०।

"मुंतख़बुल्लुबाब" (इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इण्डिया; जि० ७, पृ० २३७) में अमीरख़ां तथा रायसिंह का जोधपुर भेजा जाना लिखा है। उक्त पुस्तक से यह भी पाया जाता है कि रायसिंह को जोधपुर दिये जाने की आशा भी दिलाई गई थी।

उन्हीं दिनों औरंगज़ेब को ज्ञात हुआ कि दारा शिकोह कच्छ होता हुआ अहमदाबाद की सीमा पर जा पहुंचा है, जहां के सूबेदार शाहनवाज़खां[1] ने मुरादबख़्श का ख़ज़ाना और दूसरा बहुतसा सामान उसे दे दिया है। इस घटना के एक महीने के भीतर ही दारा ने बीस हज़ार सवार एकत्र कर लिये और वह दक्षिण जाने तथा महाराजा जसवन्तसिंह से मिलने की तरकीब सोचने लगा, जो उसके पास कई चिट्ठियां भेज चुका था[2]। ये सब ख़बरें पाकर औरंगज़ेब ने अजमेर की ओर प्रस्थान किया। मिर्ज़ा राजा जयसिंह के बीच में पड़ने से उस(औरंगज़ेब)ने महाराजा जसवन्तसिंह के अपराध क्षमा कर उसका ख़िताब और जागीर बहाल कर दिये। इसके साथ ही उसने महाराजा को उधर के समाचार आदि लिखने के लिए कहलाया और मुहम्मद अमीरख़ां को वापस बुला लिया[3]। महाराजा, जो दारा शिकोह

महाराजा का जोधपुर लौटना

---

(१) इसकी एक पुत्री औरंगज़ेब को ब्याही थी।

(२) इसकी पुष्टि दारा शिकोह के एक निशान से भी होती है, जो उसने सिरोही पहुंचने पर वहां से हि० स० १०६८ ता० १ जमादिउल्अव्वल (वि० सं० १७१५ माघ सुदि ३ = ई० स० १६५६ ता० १५ जनवरी) को महाराणा राजसिंह के नाम भेजा था। उसमें उसने अपने सिरोही आने का उल्लेख करते हुए लिखा था— 'हमने अपनी लाज राजपूतों पर छोड़ी है और वस्तुतः हम सब राजपूतों के मेहमान होकर आये हैं। महाराजा जसवन्तसिंह भी उपस्थित होने के लिए तैयार हो गया है।'
[वीरविनोद; भाग २, पृ० ४३२-३३]

जदुनाथ सरकार-लिखित "हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब" से भी पाया जाता है कि जसवन्तसिंह ने दारा के मेड़ता पहुंचते-पहुंचते उसके पास कई पत्र भेजे थे, जिनमें उसे अपनी सहायता का आश्वासन दिलाया था (जि० २, पृ० १६७-८)। बर्नियर भी लिखता है कि जसवन्तसिंह ने दारा को ख़बर कराई कि मैं अपनी सेना के साथ आगरे के मार्ग में तुम्हारे शामिल हो जाऊंगा (ट्रैवेल्स इन दि मुग़ल एम्पायर; पृ० ८५)।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात में इस विषय में लिखा है कि दाराशिकोह के पुत्र सिफ़िरशिकोह के बीलाड़े पहुंचने पर महाराजा जसवंतसिंह उसके साथ रावडियास तक गया, जहां से उसने उसे यह कहकर विदा किया कि आप अजमेर जायं, मैं भी

से मिलने के लिए बीस कोस आगे चला गया था, बादशाह का पत्र पाते ही दारा से बिना मिले, अपने देश लौट गया। दारा ने इसपर कई बार उसके पास लिखा-पढ़ी की, पर कोई परिणाम न निकला। जोधपुर से बीस कोस के अन्तर पर पहुंचकर उसने महाराजा के पास देचन्द[1] नामक एक व्यक्ति को भेजा। महाराजा ने उसको यही उत्तर दिया कि दारा पहले अजमेर जाकर राजपूतों से बातचीत करे; यदि दो-तीन बड़े राजपूत (राजा) उसकी मदद के लिए तैयार हो जायंगे तो मैं भी उससे आ मिलूंगा। अजमेर पहुंचकर दारा शिकोह ने फिर देचन्द को और कुछ दिनों बाद अपने पुत्र सिफ़िर शिकोह को महाराजा के पास भेजा और उसे बहुत-कुछ लालच दिलाया, परन्तु कोई परिणाम न निकला तथा दोनों को निराश होकर लौटना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में जब दारा शिकोह किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहा था उसे

सेना एकत्रकर वहां आता हूं। औरंगज़ेब ने, जो अजमेर की तरफ़ चल चुका था, मार्ग में मिर्ज़ा राजा जयसिंह से कहा कि जसवन्तसिंह मेरे हाथ में आया हुआ राज्य नष्ट करना चाहता है। उसे समझा दो, यदि वह मेरे शामिल नहीं रहना चाहता तो दारा के भी शामिल न हो; अपने ठिकाने को लौट जाय और पीछे जो तख़्त का स्वामी हो उसकी चाकरी करे। जयसिंह ने ये बातें महाराजा से कहलवा दीं। फिर क़ौल-क़रार का फ़रमान पाकर महाराजा ने वि० सं० १७१५ चैत्र वदि ११ (ई० स० १६५६ ता० ६ मार्च) को जोधपुर की तरफ़ प्रस्थान किया। (श्रावणादि) वि० सं० १७१५ (चैत्रादि १७१६) चैत्र सुदि १ (ता० १३ मार्च) को औरंगज़ेब की दारा शिकोह से लड़ाई हुई, जिसमें हारकर दारा शिकोह गुजरात भाग गया (जि० १, पृ० २३०-१)।

मनूकी लिखता है कि जब औरंगज़ेब को यह आशंका हुई कि जसवन्तसिंह दारा की मदद पर तत्पर हो जायगा, तो उसने जयसिंह को कहकर उससे जसवन्तसिंह को इस कार्य से वर्जित करने के लिए पत्र लिखवाये। यही नहीं उसने शाह शुजा के साथ की लड़ाई में लूटा हुआ सामान भी जसवन्तसिंह को अपने पास रखने के लिए कहलाया तथा उसे गुजरात का सूबा देने का भी वादा किया (स्टोरिया डो मोगोर; जि० १, पृ० ३३६)।

बर्नियर का भी ऐसा ही कथन है (ट्रैवेल्स इन दि मुग़ल एम्पायर पृ० ८६)।

(१) जदुनाथ सरकार ने इसका नाम दुख़िनचंद दिया है (हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब; जि० २, पृ० १६६)।

औरंगज़ेब के बहुत निकट पहुंच जाने का समाचार मिला। खुल्लमखुल्ला लड़ाई करने में अपने को असमर्थ पाकर उसने देवराई (दौराई) के निकट की पहाड़ियों का आश्रय लिया, जहां से कई दिनों तक उसने बड़ी दृढ़ता के साथ औरंगज़ेब की सेना का मुक़ाबिला किया, परन्तु जम्मू के राजा राजरूप, शेखमीर और दिलेरखां अफ़ग़ान के प्रबल आक्रमण के सामने उस(दारा)की सेना ठहर न सकी और उसे सिफ़िर शिकोह, फ़ीरोज़ मेवाती तथा हरम के कुछ अन्य व्यक्तियों सहित प्राण बचाकर भागना पड़ा। राजा जयसिंह और बहादुर सेना के साथ उसके पीछे रवाना किये गये[1]।

टैवर्नियर[2] लिखता है कि औरंगज़ेब से मिल जाने के कारण जसवन्तसिंह नियत तिथि के बहुत पीछे अजमेर पहुंचा और युद्ध आरम्भ होने पर औरंगज़ेब के शामिल हो गया। उसका उद्देश्य दारा शिकोह को ऐन मौक़े पर धोखा देना था। दारा के सैनिकों ने जब यह हालत देखी तो वे भाग खड़े हुए[3]।

टैवर्नियर का उपरोक्त कथन ठीक नहीं है। जसवन्तसिंह इस लड़ाई के समय युद्धक्षेत्र में उपस्थित ही नहीं था, फिर उसका दारा से विश्वासघात कर औरंगज़ेब की फ़ौज के साथ मिल जाना कैसे माना जा सकता

(१) मुंतख़बुल्लुबाब—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २३८-४१। मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; जि० १, पृ० ४१-३। जदुनाथ सरकार; हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब; जि० २, पृ० १६२-८४।

(२) इसका पूरा नाम जीन-बैप्टिस्ट टैवर्नियर (Jean-Baptiste Tavernier) था। इसका जन्म पेरिस में ई० स० १६०५ में हुआ था। इसे बचपन से ही यात्रा का शौक था। अपने जीवन में इसने सात बार समुद्र-यात्रा की। अपनी इन यात्राओं में यह कई बार भारतवर्ष में भी आया, जहां का वर्णन इसने स्वरचित पुस्तकों में किया है। ई० स० १६८६ तक इसका विद्यमान रहना पाया जाता है। इसकी क़ब्र मॉस्को (Moscow) में मिली है।

(३) ट्रैवेल्स इन इंडिया—वी० बाल-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद (दूसरी आवृत्ति); जि० १, पृ० २७८।

है। बर्नियर के अनुसार भी जसवन्तसिंह इस लड़ाई के समय उपस्थित नहीं था[1]।

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि दारा के साथ की लड़ाई के अनन्तर बादशाह ने गुजरात का सूबा महाराजा जसवन्तसिंह के नाम कर दिया, जहां शीघ्रता के साथ पहुंचने के लिए उसके पास (श्रावणादि) वि० सं० १७१५ (चैत्रादि १७१६) चैत्र सुदि ६ (ता० ११ मार्च) को बालसमन्द में शाही फ़रमान पहुंचा। वहां से वह जोधपुर गया और फिर वैशाख वदि २ (ता० ३० मार्च) को सिरोही के राव अखैराज की पुत्री से विवाह कर वैशाख सुदि ४ (ता० १५ अप्रेल) को अहमदाबाद में दाखिल हुआ[2]।

जसवंतसिंह को गुजरात की सूबेदारी मिलना

(१) ट्रैवेल्स इन दि मुग़ल एम्पायर; पृ० ८७-८।

(२) जि० १, पृ० २३१। "अम्ले सालीह" में भी इस अवसर पर जसवन्तसिंह को गुजरात की सूबेदारी मिलना लिखा है (इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० १३१)।

"मिरात-इ-अहमदी" से इस सम्बन्ध में विशेष प्रकाश पड़ता है। उसमें लिखा है—

'महाराजा जसवन्तसिंह कई कारणों से बहुत शर्मिन्दा हो गया था, लेकिन मिर्ज़ा राजा जयसिंह की सिफ़ारिश से उसे बादशाह की तरफ़ से माफ़ी मिल गई और हि० स० १०६९ के रज्जब (वि० सं० १७१६ चैत्र-वैशाख = ई० स० १६५९ मार्च) मास में वह गुजरात की सूबेदारी पर नियुक्त किया गया तथा उसे यह आज्ञा हुई कि वह गुजरात का काम संभाले और अपने कुंवर पृथ्वीसिंह को शाही सेवा में भेज देवे [मिर्ज़ा मुहम्मद हसन-कृत मूल फ़ारसी (कलकत्ता संस्करण); जि० १, पृ० २४४। वही—पठान निज़ामख़ां नूरख़ां वकील-कृत गुजराती अनुवाद; जि० १, पृ० २५३]। उक्त पुस्तक से यह भी पाया जाता है कि जसवन्तसिंह का "महाराजा" का ख़िताब, जो उसके पहले के अपराधों के कारण छीन लिया गया था, पीछा हि० स० १०७० (वि० सं० १७१६-१७ = ई० स० १६५९-६०) में बहाल कर दिया गया (मूल; जि० १, पृ० २५२। गुजराती अनुवाद; जि० १, पृ० २६०)।

उन्हीं दिनों जैसलमेर के रावल सबलसिंह ने फलोधी तथा पोकरण[1] के दस गांव लूटे। इसपर महाराजा ने सिरोही में रहते समय मुंहणोत नैणसी को जैसलमेर पर जाने की आज्ञा दी। वह जोधपुर से सेना एकत्र कर पोकरण पहुंचा। सबलसिंह का पुत्र अमरसिंह उस समय वहां पर ही था। वह मुंहणोत नैणसी के आने का पता पाकर जैसलमेर चला गया। तब नैणसी ने उसका पीछा कर जैसलमेर के पच्चीस गांव जला दिये और जैसलमेर से तीन कोस इधर वासणपी गांव में डेरा किया। जब कई रोज़ तक रावल उसका सामना करने के लिए गढ़ से न निकला, तो वह आसणी नामक गढ़ में लूट-मार कर वापस चला गया[2]।

जैसलमेर के रावल पर सेना भेजना

दारा ने अजमेर से भागकर कड़ी तथा कच्छ आदि में सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया, पर इसमें असफल होने पर उसने दग़ाबाज़ मलिक जीवन की बातों में आकर उसके साथ ईरान की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में मलिक जीवन तो बहाना बनाकर लौट गया और उसके साथियों ने दारा तथा उसके पुत्र सिफ़िर शिकोह को बन्दी बना लिया। फिर वे बहादुरख़ां के सुपुर्द किये गये, जिसने ज़िलहिज्ज (आश्विन) मास के मध्य में उन दोनों को बादशाह के रूबरू पेश किया। उसी महीने के अंत में[3] दाराशिकोह का भाग्य निर्णय कर उसे मौत की सज़ा दी गई तथा सिफ़िर

दारा शिकोह और उसके पुत्र का पकड़ा जाना

(१) पोकरण पर इससे बहुत पूर्व ही जोधपुर का अधिकार स्थापित हो गया था (देखो ऊपर पृ० ४२१-२२)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २४९-५०। लक्ष्मीचंद-लिखित "तवारीख़ जैसलमेर", टॉड-कृत "राजस्थान", मुंहणोत नैणसी की ख्यात आदि में इस घटना का उल्लेख नहीं है।

(३) "अम्ले सालीह" में ता० २६ दी है (इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २४६, टि० १)।

शिकोह ग्वालियर के किले में क़ैद कर दिया गया[1]।

वि० सं० १७१६ (ई० स० १६५६) में महाराजा ने उन भोमियों के ऊपर, जो विद्रोही हो रहे थे, चढ़ाई की। चार मास में उनका पूर्ण रूप से दमन कर पौष सुदि १४ (ता० १७ दिसंबर) को वह अहमदाबाद लौट गया[2]। इसके दूसरे साल गुजरात में रहते समय उसने बादशाह के पास धन, आभूषण, घोड़े आदि भेजे[3]। वि० सं० १७१८ (ई० स० १६६१) में नवेड़ा के भोमिया दूदा कोली के विद्रोही हो जाने पर महाराजा ने उसपर चढ़ाई की। इसपर दूदा उसकी सेवा में उपस्थित हो गया[4]।

जसवंतसिंह की भोमियों पर चढ़ाई होना

हि० स० १०७३ (वि० सं० १७१६-२० = ई० स० १६६२-६३) में बादशाह ने गुजरात से महाराजा जसवंतसिंह को हटाकर वहां महाबतखां की नियुक्ति की[5]।

जसवंतसिंह का गुजरात से हटाया जाना

(१) मुंतख़बुल्लुबाब—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २४२-६। जदुनाथ सरकार; हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब; जि० २, पृ० १६४-६ तथा २०६-२० (मलिक जीवन का स्वयं दारा को गिरफ़्तार करना लिखा है)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २३१।

(३) वही; जि० १, पृ० २५१-२।

(४) वही; जि० १, पृ० २३१।

(५) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; जि० १, पृ० ५६। जोधपुर राज्य की ख्यात में कांकरिया तालाब के निकट डेरे होने पर वि० सं० १७१८ मार्गशीर्ष वदि ८ (ई० स० १६६१ ता० ४ नवम्बर) को बादशाह का फ़रमान जाना लिखा है, जिसके अनुसार गुजरात का सूबा उससे हटाकर महाबतखां को दे दिया गया और महाराजा को उसके एवज़ में हांसी, हिसार के परगने मिले (जि० १, पृ० २३१)। हांसी, हिसार के परगने उसे मिलने का किसी फ़ारसी तवारीख़ में उल्लेख नहीं है। मनूकी लिखता है कि महाराजा के गुजरात में रहते समय औरंगज़ेब बहुत सख़्त बीमार पड़ा। उस समय यह अफ़वाह फैली कि महाराजा गुजरात से जाकर शाहजहां को छुड़ाने का उद्योग करेगा, पर बादशाह के निरोग हो जाने के कारण यह केवल अफ़वाह ही रही (स्टोरिया डो मोगोर; जि० २, पृ० ५५ और ५८)।

औरंगज़ेब के राज्यारम्भ के पूर्व से ही दक्षिण में मरहटों का ज़ोर बढ़ने लगा था। उसके सिंहासनारूढ़ होने के बाद उनका आतंक और बढ़ा।

शाइस्ताख़ां के साथ की शिवाजी की लड़ाई और जसवंतसिंह

शाहजी के पुत्र शिवाजी ने सैनिकों का संगठन कर क्रमशः तोरणा, कोंदाना, जावली, माहुली आदि के क़िलों पर अधिकार कर लिया था। फिर उसने पन्हाला तथा रतनागिरि आदि अनेक स्थान अपने क़ब्ज़े में कर लिये। पन्हाला पर उसका अधिकार अधिक दिनों तक न रहा, क्योंकि बीजापुर की सेना ने वहां चढ़ाई कर दी। मुसलमान सेनापति जौहर[1] को शिवाजी ने अपनी तरफ़ मिलाया तो सही, पर बाद में अफ़ज़लख़ां[2] के पुत्र फ़ज़लख़ां तथा सीदी हलाल के पवनगढ़ के क़िले पर आक्रमण करने के कारण उसे पन्हाला का परित्याग करना पड़ा। पीछे से जौहर के गुप्त मन्तव्य का पता लगने पर जब अली आदिलशाह (द्वितीय[3]) ने स्वयं चढ़ाई की, तो उस (जौहर) ने घेरा हटाकर पन्हाले का गढ़ आदिलशाह के आदमियों को सौंप दिया। शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति का रोकना अत्यन्त आवश्यक हो गया था, अतएव वि० सं० १७१६ के भाद्रपद

"मिरात-इ-अहमदी" में लिखा है कि हि० स० १०७२ (वि० सं० १७१८-१९=ई० स० १६६१-६२) में गुजरात की सूबेदारी पर नियुक्त रहते समय महाराजा के पास इस आशय का शाही फ़रमान पहुंचा कि वह अपनी सब सेना सहित अमीरुल्-उमरा (शाइस्तख़ां) की, जो दक्षिण में शिवाजी से लड़ रहा है, मदद को जावे (मूल फ़ारसी; जि० १, पृ० २४३। पठान निज़ामख़ां नूरख़ां-कृत गुजराती अनुवाद; जि० १, पृ० २६१)।

(१) अबीसीनिया का एक गुलाम। इसने करनौल पर स्वतंत्र अधिकार कर लिया था। सुलतान आदिलशाह (द्वितीय) ने इसके अनुरोध करने पर इसे सलाबतख़ां का ख़िताब देकर शिवाजी पर भेजा था।

(२) इसका वास्तविक नाम अब्दुल्ला भतारी था और यह बीजापुर का प्रमुख सरदार था।

(३) बीजापुर का शासक।

(ई० स० १६५६ जुलाई) मास में बादशाह (औरंगज़ेब) ने शाहज़ादे मुअज़्ज़म के स्थान में शाइस्ताख़ां[1] की नियुक्ति दक्षिण में कर उसे शिवाजी का दमन करने के लिए भेजा[2]। उसने थोड़े समय में ही चाकन (Chakan) से मरहटों को निकालकर वहां अधिकार कर लिया। फिर उसने उत्तरी कोंकण की ओर ध्यान दिया, जहां के लिए कारतलबख़ां सेनापति नियुक्त किया गया, पर शिवाजी भी चुप न बैठा था। उसने शीघ्रता से जाकर कारतलबख़ां की सेना को हरा दिया, पर इसके बाद ही वि० सं० १७१८ के ज्येष्ठ (ई० स० १६६१ मई) मास में मुग़ल सेना ने मरहटों से कल्याण छीन लिया। शिवाजी ऐसी दशा में वर्द्धनगढ़ में चला गया। ई० स० १६६२ और १६६३ (वि० सं० १७१६ और १७२०) के प्रारम्भिक दिनों में मरहटों पर मुग़लों के आक्रमण निरन्तर जारी रहे[3]।

चाकन पर अधिकार करके शाइस्ताख़ां पूना चला गया और वहीं रहने लगा। महाराजा जसवन्तसिंह दस हज़ार सैनिकों सहित सिंहगढ़ के मार्ग में ठहरा हुआ था। शिवाजी प्रति दिन की लड़ाई से ऊब गया था। उसने शाइस्ताख़ां को पराजित करने का एक उपाय सोचा। दो हज़ार वीर सैनिकों को मुग़ल छावनी से एक मील की दूरी पर दोनों ओर रखकर तथा चार सौ चुने हुए आदमियों को लेकर वह मुग़ल छावनी में रात के समय घुस गया। शाही पहरेदारों के पूछने पर यह कहा गया कि हम दक्षिणी सिपाही हैं और अपने-अपने स्थान पर नियुक्त होने के लिए आये हैं[4]। किसी छिपे हुए स्थान

(१) इसका वास्तविक नाम अबू तालिब अथवा मिर्ज़ा मुराद था और यह शाहजहां के राज्यकाल में वज़ीर के पद पर था।

(२) "मुंतख़बुल्लुबाब" (इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २६१) में भी इसका उल्लेख है।

(३) जदुनाथ सरकार; शिवाजी (तृतीय संस्करण); पृ० ८२-८७।

(४) "मुंतख़बुल्लुबाब" में लिखा है कि शिवाजी के सैनिकों का एक दल झूठी बरात बनाकर और दूसरे क़ैदियों को ले जाने के बहाने से मुग़ल छावनी में घुसा (इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २६६)।

में कुछ समय तक विश्राम कर शिवाजी अपने सैनिकों सहित शाइस्ताख़ां के निवास स्थान के निकट गया। वहां के सब सैनिक आदि सो रहे थे। थोड़े-बहुत जो जाग रहे थे उन्हें मौत के घाट उतारकर, उन्होंने दीवार में द्वार फोड़कर मार्ग बनाया और डेरे तम्बुओं को तोड़ता हुआ दो सौ आदमियों सहित शिवाजी खान के ऊपर जा पहुंचा। हरम की भयभीत रमणियों ने खान को जगाया, पर इसके पूर्व कि वह शस्त्र संभाल सके शिवाजी ने तलवार के वार से उसके हाथ की उंगलियां काट दीं। बाहर के दो सौ व्यक्तियों ने भी मुग़ल सैनिकों को बुरी तरह काट डाला। शाइस्ताख़ां का एक पुत्र इसी झगड़े में काम आया और स्वयं उसे सुरक्षित स्थान में भागना पड़ा। इस लड़ाई में शिवाजी की तरफ़ के केवल छः आदमी मारे गये और चालीस ज़ख्मी हुए। यह लड़ाई ई० स० १६६३ ता० ५ अप्रेल (वि० सं० १७२० द्वितीय चैत्र सुदि ८) को हुई। प्रातःकाल होने पर जसवन्तसिंह शाइस्ताख़ां का हाल-चाल पूछने के लिए गया[1]। उस समय शाइस्ताख़ां ने कहा—'जब

(१) फ़ारसी तवारीख़ों से पाया जाता है कि जसवन्तसिंह शिवाजी से मिल गया था, इसलिए उसके आक्रमण के समय उसने कोई भी भाग नहीं लिया। "स्टोरिया डो मोगोर" में लिखा है कि उसके कहने से ही शिवाजी ने शाइस्ताख़ां को मारने का निश्चय किया था (मनूकी-कृत; जि० २, पृ० १०४)। बर्नियर लिखता है कि अचानक आक्रमण कर शाइस्ताख़ां को घायल करने के बाद शिवाजी ने सूरत पर आक्रमण किया और वहां से लूट का बहुतसा सामान लेकर वह निर्विरोध वापस लौट गया। इस सम्बन्ध में लोगों को ऐसा सन्देह था कि जसवन्तसिंह और शिवाजी के बीच किसी प्रकार का समझौता हो गया था, जिससे उपर्युक्त दोनों घटनाएं हुईं। फलतः जसवन्तसिंह पीछे से दक्षिण से वापस बुला लिया गया, पर वह दिल्ली जाने के बजाय अपने देश चला गया (ट्रैवेल्स इन दि मुग़ल एम्पायर; पृ० १८७-८), पर ये सब कथन निर्मूल हैं, क्योंकि गिफ़र्ड (Gyffard) ने राजपुर से ई० स० १६६३ ता० १२ अप्रेल (वि० सं० १७२० द्वितीय चैत्र सुदि १५) को सूरत चिट्ठी लिखी थी। उसमें शिवाजी के रावजी (पंडित) के नाम के एक पत्र का उल्लेख है, जिसमें शिवाजी ने लिखा था कि लोग कहते हैं कि मैंने ज़सवन्तसिंह के कहने से यह काम किया; परन्तु यह ग़लत है,

शत्रु ने मुझपर आक्रमण किया, उस समय मैंने विचार किया कि तुम उससे लड़कर काम आये[1]।' जब बादशाह के पास इस दुर्घटना की सूचना पहुंची तो उसने शाइस्ताख़ां को हटाकर बंगाल में भेज दिया और उसके स्थान में मुअज़्ज़म की नियुक्ति की। ई० स० १६६४ (वि० सं० १७२०) के प्रारम्भ में शाइस्ताख़ां के प्रस्थान करने पर मुअज़्ज़म औरंगाबाद में जा रहा और जसवन्तसिंह की नियुक्ति पूना में की गई[2]।

इसके बाद शिवाजी का उपद्रव दिन-दिन बढ़ता ही गया। उसने सूरत के पास के जीवल (बल) आदि कई क़िलों पर अधिकार कर लिया। यही नहीं उसने समुद्र के किनारे कई नये क़िले भी निर्माण किये[3]। जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—'शिवाजी का उत्कर्ष रोकने के लिए वि० सं० १७२० कार्तिक बदि ११ (ई० स० १६६३ ता० १६ अक्टोबर) को पूना से महाराजा जसवन्तसिंह ने उसपर चढ़ाई की। मार्गशीर्ष सुदि ७ (ता० २७ नवम्बर) को कुंडाणा पहुंचकर उसने गढ़ के पास मोर्चा लगाया। प्रायः

जसवन्तसिंह की मरहटों के साथ लड़ाई

क्योंकि मैंने अपने परमेश्वर के आदेश से यह कार्य किया था (सरकार; शिवाजी; पृ० ९१ का टिप्पण)।

(१) "मुंतख़बुल्लुबाब" के अनुसार शाइस्ताख़ां ने यह कहा कि मैं तो समझता था कि महाराजा शाही सेवा में है (इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २७१)।

(२) सरकार; शिवाजी; पृ० ८८-९३ और १०३। जोधपुर राज्य की ख्यात में भी इस घटना का उल्लेख है (जि० १, पृ० २३२) और इसके बाद उसका दक्षिण में नियुक्त किया जाना लिखा है। मनूकी-कृत "स्टोरिया डो मोगोर" (जि० २, पृ० १०६) से पाया जाता है कि शाइस्ताख़ां को हटाकर बादशाह ने जसवंतसिंह को भी दरबार में हाज़िर होने का हुक्म दिया, पर वह इस आज्ञा की अवहेलना कर अपने देश चला गया। "वीरविनोद" (भाग २, पृ० ८२७) में भी इस घटना के बाद बादशाह-द्वारा उसका वापस बुलाया जाना लिखा है।

(३) मुंतख़बुल्लुबाब—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २७१।

छः मास तक वहां पड़े रहने पर भी जब कोई फल न निकला तो गढ़ तक सुरंग लगाने का निश्चय किया गया। (श्रावणादि) वि० सं० १७२० (चैत्रादि १७२१) वैशाख वदि १२ (ई० स० १६६४ ता० १३ अप्रेल) को सुरंग लगाई गई। फिर ज्येष्ठ वदि ६ (ता० ६ मई) को पलीता लगाकर गढ़ उड़ाने का प्रयत्न किया गया, जिसमें सफलता नहीं मिली। दिन निकलने पर दोनों दलों में लड़ाई हुई, जिसमें महाराजा की तरफ़ के राठोड़ भीम (गोकलदासोत मेड़तिया), राठोड़ भावसिंह (भीमोत जैतावत) आदि अनेक व्यक्ति तथा शाही सेना के कई व्यक्ति मारे गये[1]। पीछे से वर्षा ऋतु आरम्भ हो जाने और बादशाह के पास से फ़रमान पहुंचने पर, महाराजा घेरा उठाकर पूना[2] लौट गया[3]।' उक्त ख्यात में यह भी लिखा है कि उन्हीं दिनों रसद के लिए जाते हुए शिवाजी के आदमियों से महाराजा के सैनिकों की मुठभेड़ हो गई। महाराजा के सैनिकों में से कई इस झगड़े में काम आये, पर उन्होंने अंत में बैल आदि छीन ही लिये[4]।

वि० सं० १७२१ (ई० स० १६६५) में बादशाह ने महाराजा जसवन्तसिंह को दक्षिण से हटाकर दरबार में उपस्थित होने की आज्ञा भेजी। उसके

---

(१) "मुंतखबुल्लुबाब" में भी लिखा है कि महाराजा ने शिवाजी का दमन करने के लिए प्रयत्न किया, पर उसे सफलता न मिली (इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २७१)। सरकार-कृत "शिवाजी" से पाया जाता है कि जब छः महीने घेरा रहने पर भी जसवन्तसिंह को सफलता नहीं मिली तो उसने शत्रु के गढ़ पर प्रबल आक्रमण किया। इस हमले में इसके कई सौ आदमी काम आये। इसके बाद ही उसका अपने बहनोई भावसिंह हाड़ा से सफलता की ज़िम्मेवारी के सम्बन्ध में मतभेद हो गया, जिससे दोनों अपनी-अपनी सेनाएं लेकर औरंगाबाद चले गये (पृ० १०३)।

(२) जैसा कि ऊपर टिप्पण १ में लिखा है, कहीं-कहीं महाराजा का औरंगाबाद जाना ही लिखा मिलता है।

(३) जि० १, पृ० २३२-४।

(४) जि० १, पृ० २३४।

जसवंतसिंह का दक्षिण से हटाया जाना

स्थान में वहां नवाब दिलेरखां और मिर्ज़ा राजा जयसिंह की नियुक्ति की गई[1]। चैत्र वदि १२[2] (ई० स० १६६५ ता० ३ मार्च) को पूना पहुंचकर रामपुरा और करौली[3] होता हुआ महाराजा (जसवंतसिंह) शाहजहांनाबाद में बादशाह की सेवा में उपस्थित हो गया[4]। बादशाह ने उसे सिरोपाव आदि बहुतसी चीज़ें इनाम में दीं[5]।

शिवाजी का बादशाह की क़ैद से निकलना

जयसिंह ने दक्षिण में पहुंचकर शिवाजी का दमन करने के लिए समुचित प्रवन्ध किया। रुद्रमाल आदि कई क़िले विजयकर पुरंधर पर घेरा डाला गया। शिवाजी ने उस घेरे को हटाने का भरसक प्रयत्न किया, पर उसमें उसे सफलता न मिली। गढ़ का नष्ट होना निश्चित था। उसके भीतर की स्त्रियों का सम्मान संकट में था। ऐसी दशा में लाचार होकर उसे जयसिंह को सन्धि के लिए लिखना पड़ा। जयसिंह ने इसकी सूचना बादशाह के पास भिजवाकर तेईस क़िले समर्पण करने की शर्त पर सन्धि कर ली। कुछ दिनों बाद जयसिंह के कहने पर शिवाजी बादशाह के समक्ष उपस्थित

(१) मुंशी देवीप्रसाद-कृत "औरंगज़ेबनामा" में भी इसका उल्लेख है (भा० १, पृ० ६१), परन्तु उसमें वि० सं० १७२१ (हि० स० १०७५ = ई० स० १६६४) में राजा जयसिंह आदि का दक्षिण में भेजा जाना लिखा है।

(२) जदुनाथ सरकार-कृत "शिवाजी" नामक पुस्तक में जसवन्तसिंह का ता० ३ मार्च (वि० सं० १७२१ चैत्र वदि १२) को पूना में होना और वहां से ता ७ मार्च (वि० सं० १७२२ चैत्र सुदि १) को प्रस्थान करना लिखा है (पृ० १०५-१०६)।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार इन दोनों स्थानों में उसका एक-एक विवाह हुआ था।

(४) मुंशी देवीप्रसाद-कृत "औरंगज़ेबनामा" में ता० ८ ज़ीकाद (वि० सं० १७२२ ज्येष्ठ सुदि १० = ई० स० १६६५ ता० १४ मई) को जसवन्तसिंह का बादशाह की सेवा में उपस्थित होना लिखा है (भाग २, पृ० ६३)।

(५) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि १, पृ० २२५-६।

हुआ[1] परन्तु वहां उसका उचित सम्मान नहीं हुआ और वह पांच हज़ारी मनसबदारों की पंक्ति में खड़ा कर दिया गया। शिवाजी ने कड़े शब्दों में इसका विरोध किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि बाद में वह पहरे में रख दिया गया। कई मास बाद वह षड्यन्त्र करके बादशाह की क़ैद से निकल भागा[2]।

कुंवर पृथ्वीसिंह का बादशाह की सेवा में जाना

(श्रावणादि) वि० सं० १७२१ (चैत्रादि १७२२) आषाढ वदि ४ (ई० स० १६६५ ता० २३ मई) मंगलवार को महाराजा ने बादशाह के निकट रहते समय अपने कुंवर पृथ्वीसिंह को बुलाया। इस आदेश के अनुसार प्रस्थान कर प्रथम श्रावण (जुलाई) मास में पृथ्वीसिंह बादशाह की सेवा में उपस्थित हो गया, जिसने उसे चार हज़ारी मनसबदारों की पंक्ति में खड़ा किया[3]।

शाहजहां की मृत्यु

उसी वर्ष औरंगज़ेब के पास आगरे से समाचार आया कि उसके पिता की तबियत बहुत खराब है और पेशाब बन्द हो जाने के कारण हकीमों ने नाउम्मेद होकर इलाज बन्द कर दिया है। औरंगज़ेब ने उस समय स्वयं न जाकर शाहज़ादे मुअज़्ज़म को भेज दिया। हि० स० १०७६ तारीख २६ रजब (वि० सं० १७२२ माघ वदि १३ = ई० स० १६६६ ता० २२ जनवरी[4]) को

(१) "सभासद" ने लिखा है कि शिवाजी महाराजा जसवन्तसिंह के पीछे खड़ा किया गया, जिसका पता लगने पर उस (शिवाजी) ने कहा—"वही जसवन्त, जिसकी पीठ मेरे सैनिकों की तलवारों ने देखी थी। मैं उसके पीछे ? इसका आशय क्या है ?" (सरकार; शिवाजी; पृ० १४४)।

(२) सरकार; शिवाजी; पृ० १०५-१५०।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २३६-७।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात में माघ वदि १२ (ता० २१ जनवरी) दिया है। उक्त ख्यात के अनुसार सब फाल्गुन वदि ७ (ता० १५ फ़रवरी) गुरुवार को आगरे में दाखिल हुए (जि० १, पृ० २३७)।

५८

शाहजहां की बीमारी बढ़ गई और उसी रात को उसका देहांत हो गया। औरंगज़ेब ने यह ख़बर पाकर मातमी कपड़े पहने और ता० ६ शाबान (माघ सुदि १० = ता० ४ फ़रवरी) को आगरे के लिए प्रस्थान किया[1]। जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि इस अवसर पर महाराजा जसवंतसिंह और कुंवर पृथ्वीसिंह भी उसके साथ थे[2]।

कुंवर पृथ्वीसिंह का विवाह

(श्रावणादि) वि० सं० १७२२ (चैत्रादि १७२३) वैशाख वदि ८ (ई० स० १६६६ ता० १६ अप्रेल) को आज्ञा प्राप्तकर कुंवर पृथ्वीसिंह ने गौड़ों के यहां विवाह करने के लिए प्रस्थान किया। इस अवसर पर बादशाह ने उसे सिरोपाव तथा घोड़ा आदि देकर विदा किया। गौड़ों के यहां विवाह कर वैशाख सुदि ११ (ता० ४ मई) को कुंवर जोधपुर पहुंचा[3]।

जसवंतसिंह का ईरान पर भेजा जाना

उसी वर्ष ईरान से तर्बीयतख़ां के पास से ख़बर आई कि वहां का शाह अब्बास चढ़ाई करने के इरादे से ख़ुरासान आना चाहता है। दरबार में उपस्थित होने पर भी तर्बीयतख़ां ने यही बात बादशाह से अर्ज़ की। इसपर शाह को दंड देने के लिए ता० १४ रबीउलूअव्वल (आश्विन वदि १ = ता० ४ सितम्बर) को बादशाह ने शाहज़ादे मोहम्मद मुअज़्ज़म और महाराजा जसवन्तसिंह को आगरे से रवाना किया[4]।

कार्तिक सुदि १५ (ता० १ नवंबर) को लाहोर पहुंचकर महाराजा

(१) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; जि० १, पृ० ६२।

(२) जि० १, पृ० २३७।

(३) वही; जि० १, पृ० २३७।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; जिल्द १, पृ० ६७-८। जोधपुर राज्य की ख्यात में भी इस घटना का उल्लेख है, पर उसमें शाह का नाम सलीम दिया है, जो ठीक नहीं है। उक्त ख्यात के अनुसार इस अवसर पर बादशाह ने जसवन्तसिंह को हाथी, घोड़ा, सिरोपाव आदि भी दिये (जि० १, पृ० २३७-८)।

ने सलीम नगर में डेरा किया[1]। इसके पूर्व ही शाह ईरान की मृत्यु हो गई, जिसकी खबर मिलने पर बादशाह ने शाहज़ादे मुअ़ज़्ज़म और महाराजा जसवंतसिंह को लाहोर में ही ठहरने और वहां से आगे न बढ़ने के लिए लिखा[2]।

जसवन्तसिंह आदि के पास लाहोर में ठहरने का बादशाह का आदेश पहुंचना

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि वि० सं० १७२३ फाल्गुन सुदि ६ (ई० स० १६६७ ता० २२ फ़रवरी) को शाहज़ादे मुअज़्ज़म और महाराजा जसवन्तसिंह के पास बादशाह का इस आशय का फ़रमान पहुंचा कि वे शीघ्र लौटें। इसके अनुसार चैत्र वदि ११ (ता० १० मार्च) रविवार को वे बादशाह की सेवा में उपस्थित हो गये। बादशाह ने कुंवर पृथ्वीसिंह को, मनसब बढ़ाकर तथा उपहार आदि देकर अपने पास रहने की आज्ञा दी एवं महाराजा को शाहज़ादे मुअज़्ज़म के साथ दक्षिण में नियुक्ति कर[3] (श्रावणादि) वि० सं० १७२३ (चैत्रादि १७२४) चैत्र सुदि ६ (ता० २४ मार्च) को उन्हें उधर रवाना किया[4]।

जसवन्तसिंह की दक्षिण में नियुक्ति

(श्रावणादि) वि० सं० १७२३ (चैत्रादि १७२४) ज्येष्ठ वदि ८ (ई० स० १६६७ ता० ५ मई) को दिल्ली में रहते समय कुंवर पृथ्वीसिंह को चेचक की बीमारी हो गई, जिससे तीन दिन बाद उसका देहांत हो गया। यह शोक समाचार बुरहानपुर के पास महाराजा को ज्ञात हुआ[5]।

कुंवर पृथ्वीसिंह की मृत्यु

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २३९।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; जि० १, पृ० ६६।

(३) वही; जि० १, पृ० ७१।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २३९-४०। मुंशी देवीप्रसाद-कृत "औरंगज़ेबनामा" में चैत्र सुदि ८ (ता० २३ मार्च) को महाराजा और शाहज़ादे का दक्षिण में जाना लिखा है (जि० १, पृ० ७१)।

(५) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २४०।

उसी वर्ष के आषाढ (ई० स० १६६७ मई) मास[1] में शाहज़ादा महाराजा के साथ औरंगाबाद पहुंचा। उनके पहुंचने पर मिर्ज़ा राजा जयसिंह ने वहां से प्रस्थान किया, पर मार्ग में बुरहानपुर में उसका देहांत हो गया[2]। मुअज्ज़म और जसवन्तसिंह के दक्षिण में जाने से शिवाजी को कुछ शान्ति ही मिली। वह उन दिनों लड़ाई के लिए बिल्कुल तैयार न था। इसके विपरीत वह अपनी बिखरी हुई सेना का संगठन करना और अपनी शक्ति बढ़ाना चाहता था। इसके लिए वह सुलह का इच्छुक था। इसी भावना से प्रेरित होकर उसने वैशाख (अप्रेल) मास में बादशाह के पास इस आशय का पत्र भेजा था कि मैं अपने ऊपर भेजी जानेवाली सेना से भयभीत हूं और अधीनता स्वीकार करके अपने पुत्र को ४०० सैनिकों के साथ शाही झण्डे के नीचे रहकर लड़ने के लिए भेजने को तैयार हूं, परन्तु उस

जसवन्तसिंह के उद्योग से मरहटों और मुग़लों में संधि होना

टॉड लिखता है कि मारू की ख्यातों से पाया जाता है कि औरंगज़ेब-द्वारा बुलाये जाने पर जसवन्तसिंह का पुत्र (पृथ्वीसिंह) उसकी सेवा में उपस्थित हुआ, जहां उसका समुचित आदर-मान हुआ। एक दिन बादशाह ने उसे अपने पास बुलाकर उसके दोनों हाथ अपने हाथ में पकड़कर कहा—"राठोड़! मैंने सुना है कि पिता की भांति ही तुम भी चंचल (गतिवान) हाथ रखते हो। बोलो, अब तुम क्या कर सकते हो?" राजकुमार ने तुरन्त उत्तर दिया—"जहांपनाह! नीच से नीच व्यक्ति को जब मनुष्यों का स्वामी (बादशाह) अपने आश्रय में ले लेता है तो उसकी सारी आकांक्षाएं पूरी हो जाती हैं; फिर आपने तो मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये हैं। मुझ को ऐसा भान होता है कि मैं सारे संसार को विजय कर सकता हूं।" बादशाह ने कहा—"यह तो दूसरा खूतन (अर्थात् जसवन्तसिंह) ही है।" ऊपर से राजकुमार के साहस से प्रसन्नता दिखलाते हुए उसने उसे सिरोपाव दिया, जिसे पहनकर उसने वहां से प्रस्थान किया, पर वह दिन उस (पृथ्वीसिंह) के जीवन का अंतिम दिन था। अपने डेरे पर पहुंचते ही वह बीमार पड़ गया और बड़े कष्ट से उसने प्राणत्याग किया। अब तक उसकी मृत्यु उसी विष-भरी पोशाक के द्वारा होना माना जाता है (राजस्थान; जि० २, पृ० ९८९)।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में आषाढ वदि १४ (ता० १० जून) दिया है (जि० १, पृ० २४०)।

(२) वही; जि० १, पृ० २४०।

समय औरंगज़ेब ने इस पत्र पर कोई ध्यान न दिया। जसवन्तसिंह के दक्षिण में पहुंचते ही शिवाजी ने उसके पास इस आशय का पत्र लिखा[1]—

'बादशाह ने मेरा परित्याग कर दिया है, अन्यथा मैं अकेले कन्दहार विजय करने के लिए उससे प्रार्थना करता। मैं (आगरे से) प्राणों के भय से भाग आया था। इधर मेरे संरक्षक मिर्ज़ा राजा का भी देहांत हो गया। यदि आपके बीच में पड़ने से मुझे क्षमा मिल जाय तो मैं शम्भा को शाहज़ादे के पास मनसबदार की भांति अपने सैनिकों के सहित उस (शाहज़ादे) की सेवा बजा लाने को भेज दूं[2]।'

जसवन्तसिंह और शाहज़ादा दोनों इस पत्र को पाकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने शिवाजी की बादशाह के पास सिफ़ारिश कर दी, जिसने उनकी बात मानकर उस(शिवाजी)को राजा का खिताब दिया। इस प्रकार मरहटों और मुग़लों में कुछ दिनों के लिए फिर संधि स्थापित हो गई।

सन्धि की शर्तों के अनुसार शम्भाजी औरंगाबाद भेजा गया, जहां वि० सं० १७२४ मार्गशीर्ष वदि १४ (ई० स० १६६७ ता० ४ नवम्बर) को वह शाहज़ादे से मिला। इसके दूसरे दिन उसे लौटने की इजाज़त मिली[3]। पीछे से उसको पांच हज़ारी मनसब, एक हाथी और एक रत्नजटित तलवार दी गई[4]।

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि उसी वर्ष बादशाह ने महाराजा को गुजरात के थिराद और राधणपुर परगने दिये। वहां पर

---

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि बादशाह ने शाहज़ादे और महाराजा को दक्षिण भेजते समय उनसे कहा था कि जैसे भी हो वे शिवाजी को शाही सेवा में प्रविष्ट करावें। इसके अनुसार औरंगाबाद पहुंचते ही दोनों ने अपनी तरफ़ से आदमी भेजकर शिवाजी को समझाया, जिसपर उसने अपने पुत्र शंभाजी को ३०० सैनिकों के साथ महाराजा के पास भेजा, जो उसे लेकर शाहज़ादे के पास गया (जि० १, पृ० २४०-१)।

(२) सरकार; शिवाजी; पृ० १६४।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात में शम्भाजी का आठ दिन तक वहां रहना लिखा है (जि० १, पृ० २४१)।

(४) सरकार; शिवाजी, पृ० १६२-६४।

गुजरात के परगने मिलना

अधिकार करने के लिए जालोर से मियां फ़रासत गया, परन्तु कोली ऊदा ने वहां उसका अमल न होने दिया[1]।

वि० सं० १७२४ (ई० स० १६६७) में महाराजा जसवन्तसिंह के औरंगाबाद में रहते समय मुंहणोत नैणसी तथा उसका भाई सुन्दरदास

मुंहणोत नैणसी का क़ैद किया जाना

दोनों उसके साथ थे। किसी कारण से वह उन दोनों से अप्रसन्न रहने लगा था, जिससे माघ वदि ६ (ता० २६ दिसंबर) को उसने उन दोनों को क़ैद कर दिया[2]।

वि० सं० १७२५ (ई० स० १६६८) में महाराजा ने एक लाख रुपया दंड का लगाकर मुंहणोत नैणसी तथा उसके भाई सुन्दरदास को छोड़

मुंहणोत नैणसी का क़ैद से छोड़ा जाना

दिया, परन्तु उन्होंने एक पैसा तक देना स्वीकार न किया[3]। अतएव वि० सं० १७२६ माघ वदि १ (ई० स० १६६६ ता० २८ दिसंबर) को वे फिर क़ैद कर लिये गये और उनपर रुपयों के लिए सख्तियां होने लगीं[4]।

---

(१) जि० १, पृ० २४२।

(२) वही; जि० १, पृ० २५१।

महाराजा के अप्रसन्न होने का ठीक कारण ज्ञात नहीं हुआ, परन्तु जनश्रुति से पाया जाता है कि नैणसी ने अपने रिश्तेदारों को बड़े-बड़े पदों पर नियत कर दिया था और वे लोग अपने स्वार्थ के लिए प्रजा पर अत्याचार किया करते थे। इसी बात के जानने पर महाराजा उससे अप्रसन्न रहता था।

(३) इस सम्बन्ध में नीचे लिखे दोहे राजपूताने में अब तक प्रसिद्ध हैं—

लाख लखारां नीपजे, वड़ पीपल री साख।
नटियो मूंतो नैणसी, तांबो देण तलाक ॥१॥
लेसो पीपल लाख, लाख लखारां लावसो।
तांबो देण तलाक, नटिया सुन्दर नैणसी ॥२॥

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २५१।

पहले मथुरा के पास गिरिराज पर्वत पर श्रीनाथजी का मन्दिर था। जब औरंगज़ेब ने मन्दिरों के तुड़वाने की आज्ञा प्रचारित की और गुसाइंयों से कोई करामात दिखलाने को कहा तो वि० सं० १७२६ आश्विन सुदि १४ (ई० स० १६६९ ता० २८ सितंबर) को वे श्रीनाथजी की मूर्ति को एक रथ में बैठाकर भाग निकले और आगरे पहुंचे। वहां से कोटा, बूंदी, कृष्णगढ़ और पुष्कर होते हुए वे जोधपुर पहुंचे तथा चांपासणी गांव में ठहरे। जब अन्य स्थानों के समान ही वहां भी कार्यकर्ता बादशाह की नाराज़गी के भय से उन्हें आश्रय देने के लिए तैयार न हुए तो गुसाईं गोविन्दजी महाराणा राजसिंह के पास गया। उसकी इच्छा जानने पर महाराणा ने प्रसन्नता के साथ अपनी अनुमति दे दी और कहा कि जब मेरे एक लाख राजपूतों के सिर कट जावेंगे, उसके बाद आलमगीर इस मूर्ति के हाथ लगा सकेगा। इसपर वि० सं० १७२८ (ई० स० १६७१) में चांपासणी से श्रीनाथजी की मूर्ति ले जाकर उदयपुर से बारह कोस उत्तर की तरफ़ बनास नदी के किनारे सीहाड़ गांव में मन्दिर बनवाकर उसमें स्थापित की गई[1]।

श्रीनाथजी की मूर्ति लेकर गुसाईं का जोधपुर और फिर मेवाड़ में जाना

वि० सं० १७२७ (ई० स० १६७०) में मुंहणोत नैणसी तथा सुन्दरदास दोनों भाई क़ैद की हालत में ही औरंगाबाद से मारवाड़ को भेजे गये। वीर प्रकृति के पुरुष होने के कारण महाराजा के छोटे आदमियों की सख़्तियां सहन करने की अपेक्षा वीरता से मरना उचित समझ भाद्रपद वदि १३ (ता० ३ अगस्त) को उन्होंने मार्ग में अपने-अपने पेट में कटार मारकर शरीरांत कर दिया[2]।

मुंहणोत नैणसी तथा उसके भाई का आत्मघात कर मरना

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २५०-१। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४५२-३।

(२) वही; जि० १, पृ० २५१।
उक्त ख्यात से यह भी पाया जाता है कि महाराजा को इसकी ख़बर मिलने पर उसने नैणसी के पुत्र करमसी तथा अन्य कुटुम्बियों को, जो भी क़ैद में थे, छोड़ दिया।

हि० स० १०८१ (वि० सं० १७२७=ई० स० १६७०) में महाराजा जसवन्तसिंह बादशाह की आज्ञा के अनुसार दूसरी बार गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया गया। तदनुसार रबीउस्सानी (भाद्रपद-आश्विन = अगस्त) मास में वह अहमदाबाद पहुंचकर उधर कार्य चलाने लगा[1]।

जसवन्तसिंह को दूसरी बार गुजरात की सूबेदारी मिलना

हि० स० १०७३ (वि० सं १७१९-२० = ई० स० १६६२-६३) में जब कि गुजरात का सूबेदार महाबतखां था, नवानगर (जामनगर) का राजा रणमल, जो बादशाह का बड़ा हितैषी और सदैव समय पर खिराज अदा किया करता था, मर गया। तब बादशाह की आज्ञा से उसका पुत्र शत्रुसाल उसका उत्तराधिकारी नियत किया गया। रणमल का भाई रायसिंह बड़ा ही अभिमानी और दुष्ट प्रकृति का व्यक्ति था। वह अपने भतीजे शत्रुसाल की नियुक्ति से बड़ा अप्रसन्न था। वह उससे द्वेषभाव रखने के साथ ही उसे हटाने का उद्योग करने लगा। लोगों को उससे विमुख कर उसने

महाराजा का जाम तमाची को जामनगर का राज्य दिलाना

तब करमसी नागोर के रायसिंह के पास जा रहा। इसपर महाराजा ने नैणसी के वंशवालों को सेवक न रखने की प्रतिज्ञा की, पर इसका पीछे से पालन न हुआ। शोलापुर में रायसिंह के अचानक मर जाने पर उसके मुत्सद्दियों ने गुजराती वैद्य से पूछा कि यह कैसे हुआ। उसके इस वाक्य से कि "करमां नो दोष छे" (भाग्य का दोष है) मुत्सद्दियों ने उस (रायसिंह) का करमसी-द्वारा विष देकर मारा जाना समझ लिया, जिससे उन्होंने उसको जीवित दीवार में चुनवा दिया और नागोर स्थित उसके परिवार को कोल्हू में कुचलवा देने की आज्ञा भेजी। करमसी का पुत्र प्रतापसी तो मारा गया, पर उस (करमसी) की दो स्त्रियां अपने पुत्रों के साथ भागकर किशनगढ़ चली गई (वही; जि० १, पृ० २५१)। पीछे से वे बीकानेर चली गई।

(१) मिरात-इ-अहमदी (मूल फ़ारसी); पहली जि०; पृ० २७६। वही; पठान निज़ामख़ां नूरख़ां वकील-कृत गुजराती अनुवाद; जि० १, पृ० २८५-६। जोधपुर राज्य की ख्यात में वि० सं० १७२८ श्रावण वदि ८ (ई० स० १६७१ ता० १९ जुलाई) को महाराजा को दूसरी बार गुजरात की सूबेदारी और उस अवसर पर उसे पट्टण, वीरमगांव, पेटलाद आदि के २८ परगने हिसार के बदले में मिलना लिखा है (जि० १, पृ० २४२-३)।

अपने पास पांच-छः हज़ार सेना एकत्र कर ली और राज्य के मंत्री गोवर्द्धन को, जो शत्रुसाल का भाई था, मार डाला। अनन्तर शत्रुसाल, उसकी माता, उसके सेवकों तथा अन्य अधिकारीयों को क़ैद कर कच्छवालों की सहायता से वह नवानगर के राज्य का स्वामी बन बैठा। सोरठ (काठियावाड़) के फ़ौजदार क़ुतुबुद्दीनख़ां को जब यह ख़बर मिली कि रायसिंह के पुत्र तमाची और उसके भाई जस्सा ने तीन-चार हज़ार फ़ौज के साथ हालार परगने में भी उपद्रव खड़ा किया है, तो उसने अपने पुत्र मुहम्मदख़ां को दो हज़ार सवारों के साथ उन दोनों को गिरफ़्तार करने के लिए भेजा। इसकी सूचना मिलते ही दोनों अपने साथियों सहित कच्छ की तरफ़ भाग चले। इसपर मुहम्मदख़ां ने उनका पीछा कर उन्हें जा घेरा। बड़ी लड़ाई हुई, जिसमें दोनों तरफ़ के बहुतसे आदमी मारे गये और राज्य पर शाही सेना का अधिकार हो गया। यह ख़बर पाकर बादशाह ने नवानगर का नाम इसलामनगर रखवाया। कुछ समय बीतने पर जब महाराजा जसवन्तसिंह दूसरी बार गुजरात का सूबेदार नियत हुआ तो हि० स० १०८२ (वि० सं० १७२८ = ई० स० १६७१) में उसने बीच में पड़कर असदख़ां की मारफ़त बादशाह से निवेदन कराया कि जाम तमाची अपने साम्राज्य-विरोधी आचरण के लिए पश्चात्ताप प्रकट करता है। उसका कहना है कि मैं भविष्य में नमकहलाल बना रहूंगा, अतएव मुझे इसलामनगर का राज्य बख़्शा जाय। बादशाह ने यह अर्ज़ी मंजूर कर तमाची के सारे अपराध क्षमा कर दिये और उसे १००० ज़ात तथा ७०० सवार का मनसब देकर उसका राज्य उसे दे दिया। इस अवसर पर उसके पुत्रों तथा अन्य रिश्तेदारों को भी छोटे-छोटे मनसब मिले[1]।

---

(१) मिरात-इ-अहमदी (मूल फ़ारसी); जि० १, पृ० २६४-५ तथा २८४। वही; पठान निज़ामख़ां नूरख़ां वकील-कृत गुजराती अनुवाद; जि० १, पृ० २६२-३ तथा २१२-३।

"गुजरात राजस्थान" (गुजराती) में इस सम्बन्ध में भिन्न वर्णन मिलता है, जो नीचे लिखे अनुसार है—

इसके कुछ समय बाद बादशाह ने अहमदाबाद में मुहम्मद अमीख़ां की नियुक्ति कर दी। तब बादशाह की आज्ञानुसार आठ मास तक महाराजा महीकांठे में रहा। वि० सं० १७३० के आश्विन (ई० स० १६७३ सितम्बर-अक्टोबर) मास में बादशाह का इस आशय का फ़रमान महाराजा के पास पहुंचा कि वह शीघ्र काबुल की ओर प्रस्थान करे[1]।

काबुल जाने का फ़रमान पहुंचना

'ई० स० १६६१ (वि० सं० १७१८) में जाम रणमल की मृत्यु हुई। उसका कुछ भी हाल मालुम नहीं हुआ। ऐसा कहते हैं कि जोधपुर के महाराजा की कुंवरी से उसका विवाह हुआ था। उसके कोई पुत्र न होने से उसका देहांत होने पर उसका भाई रायसिंह गद्दी पर बैठा, परन्तु उससे और रणमल की विधवा राणी से अनबन रहने के कारण वह अपने भाई को लेकर गुजरात के मुग़लों के सूबेदार कुतुबुद्दीन के पास गई और उसको नवानगर पर चढ़ा लाई। ई० स० १६६४ (वि० सं० १७२१) में रायसिंह और सूबेदार के बीच बड़ी लड़ाई हुई, जिसमें रायसिंह मारा गया और राज्य सूबेदार ने ले लिया। रायसिंह का पुत्र तमाची उस समय छोटी उम्र का था, जिससे वह कच्छ के राव की शरण में चला गया। वय प्राप्त होने पर वह ओखामंडल में आया और नवानगर के मुल्क में लूटमार करने लगा। अन्त में ई० स० १६७३ (वि० सं० १७३०) में गुजरात के सूबेदार जसवन्तसिंह ने बादशाह औरंगज़ेब से सिफ़ारिश कर नवानगर का राज्य पीछा जाम तमाची को दिला दिया, लेकिन ख़ास नवानगर में मुग़लों का ही अफ़सर रहता था और जाम खंभाळिये में (कालीदास देवशंकर पंड्या-कृत; पृ० ३३३)।'

उपर्युक्त कथन में दिये हुये समय और घटनाओं के रूप ग़लत हैं। "गुजरात राजस्थान" के कर्ता ने रणमल के पुत्र शत्रुसाल के राजा होने और उसके चाचा रायसिंह का उसे क़ैद कर नवानगर का राज्य लेने का हाल नहीं दिया है। "मिरात-इ-अहमदी" समकालीन लेखक की रचना होने से इस संबंध का उसका वर्णन ही अधिक माननीय है। जसवन्तसिंह की सिफ़ारिश से जाम तमाची को नवानगर का राज्य पीछा मिलना तो दोनों ही मानते हैं।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २४३। बांकीदास-कृत "ऐतिहासिक बातें" (संख्या २५४४) में भी वि० सं० १७३० में महाराजा का काबुल भेजा जाना लिखा है। मुंशी देवीप्रसाद इसके दो वर्ष पूर्व वि० सं० १७२८ (ई० स० १६७१) में ही उसका जमरूद के थाने पर नियुक्त किया जाना लिखता है (औरंगज़ेबनामा; भाग २, पृ० ३१)। "वीरविनोद" में भी ऐसा ही लिखा है (भाग २, पृ० ८२७)।

उक्त आज्ञा के अनुसार महाराजा ने गुजरात से मारवाड़ होते हुए काबुल की ओर प्रस्थान किया, पर मार्ग में जोधपुर में न ठहरकर वह वहां से चार कोस दूर गांव गुड़े में ठहरा, जहां कुंवर जगतसिंह और राज्य परिवार उससे जाकर मिला। तदनंतर वहां से प्रस्थान कर महाराजा पेशावर पहुंचा। उधर पठानों का उपद्रव बढ़ रहा था। उन्होंने चढ़ाई कर वहां के शाही अफ़सर शुजाअतखां को मार डाला था। इसपर महाराजा ने कई बार पठानों पर आक्रमण कर उनका नियंत्रण किया। इन लड़ाइयों में उसकी तरफ़ के कितने ही वीर राजपूत मारे गये[1]।

महाराजा का काबुल जाना

वि० सं० १७३१ (ई० स० १६७४) में महाराजा जमुरंद की थानेदारी से रावलपिंडी में जाकर बादशाह से मिला और उसके बाद पुनः अपने कार्य पर लौट गया[2]। कई बरसों तक योग्यतापूर्वक वहां का प्रवन्ध करने के अनन्तर वि० सं० १७३५ पौष वदि १० (ई० स० १६७८ ता० २८ नवंबर)[3] को वहीं उसका देहान्त हो गया[4]। जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि इस अवसर पर उसकी दो राणियां—यादववंशी, राजा छत्रमल की पुत्री और नरूकी, फ़तहसिंह की पुत्री—साथ थीं। उन्होंने सती होने का बड़ा हठ

महाराजा की मृत्यु

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २४३-४। बांकीदास-कृत "ऐतिहासिक बातें" (संख्या २५४५) में भी महाराजा की पठानों के साथ काबुल में लड़ाइयां होने का उल्लेख है।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ८२७।

(३) मुंशी देवीप्रसाद-लिखित "औरंगज़ेबनामा" में महाराजा की मृत्यु की तिथि पौष सुदि ८ (ता० ११ दिसम्बर) दी है (भाग २, पृ० ७६)।

(४) वीरविनोद; भाग २, पृ० ८२७। जोधपुर राज्य की ख्यात में महाराजा की मृत्यु की तिथि तो यही दी है, पर उसका देहांत पेशावर में होना लिखा है (जि० १, पृ० २५६), जो ठीक नहीं है। बांकीदास ने भी यही तिथि दी है (ऐतिहासिक बातें; संख्या २५४७)।

किया, परन्तु वे दोनों ही गर्भवती थीं, जिससे राठोड़ रणछोड़दास (गोविन्ददासोत), राठोड़ संग्रामसिंह (जुझारसिंहोत), सूरजमल (चांपावत), नाहरखान (कूंपावत) आदि सरदारों ने उन्हें समझा-बुझाकर इस निश्चय से विरत किया[1]।

ख्यातों आदि के अनुसार महाराजा जसवंतसिंह के बारह राणियां थीं, जिनसे उसके चार पुत्र तथा चार पुत्रियां हुई[2]।

राणियां तथा सन्तति

(१) भटियाणी जसरूपदे, जैसलमेर के रावल मनोहरदास की पुत्री। (२) हाड़ी जसवंतदे, बूंदी के हाड़ा शत्रुशाल की पुत्री[3]। (३) कछवाही अतिरंगदे, बूंदी के हाड़ा रावराजा रत्नसिंह की दोहिती—इससे एक पुत्र पृथ्वीसिंह[4] और एक पुत्री रत्नावतीबाई का जन्म हुआ। (४) चौहान राणी जगरूपदे, दयालदास सिखरावत की पुत्री। (५) जादम जैवन्तदे, पृथ्वीराज (रायसिंहोत) की पुत्री—इससे एक पुत्री महाकुंवरी का जन्म हुआ। (६) गौड़ राणी जलरंगदे, मनोहरदास (गोपालदासोत) की पुत्री। (७) देवड़ी राणी अतिसुखदे, सिरोही के राव अखैराज की पुत्री। (८) सीसोदणी राणी, वीरमदेव (सूरजमलोत) की पुत्री। (९) चन्द्रावत राणी जैसुखदे, रामपुरे के राव अमरसिंह चन्द्रावत की पुत्री—इससे एक पुत्र

---

(१) जि० १, पृ० २५६। बांकीदास-लिखित "ऐतिहासिक बातें" में इस अवसर पर महाराजा की राणी रामपुरे के राव अमरसिंह की पुत्री चन्द्रावत का मंडोवर जाकर सती होना लिखा है (संख्या २५४७)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २५६-६। मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली में ग्यारह राणियों के नाम मिलते हैं।

(३) इसका बनवाया हुआ कल्याण सागर है, जिसे रातानाडा भी कहते हैं।

(४) इसका जन्म वि० सं० १७०६ आषाढ सुदि ५ (ई० स० १६५२ ता० १ जुलाई) बृहस्पतिवार को हुआ था। इसकी मृत्यु का उल्लेख ऊपर आ गया है (पृ० ४५६)।

जगतसिंह[1] और एक पुत्री उदैकुंवरी का जन्म हुआ। (१०) जादव राणी जसकुंवरी, करौली के राजा छत्रसिंह की पुत्री—इससे कुंवर अजीतसिंह[2] का जन्म हुआ। (११) कछवाही जसमादे, राजा द्वारकादास (गिरधरोत) की पुत्री—इससे एक पुत्री प्रतापकुंवरी का जन्म हुआ और (१२) नरूकी राणी, कंकोड़ गांव के फ़तहसिंह की पुत्री—इससे कुंवर दलथंभण का जन्म हुआ[3]।

महाराजा के समय के शिलालेख

स्वयं महाराजा जसवन्तसिंह का तो कोई शिलालेख अबतक नहीं मिला है, पर उसके राज्यकाल से संबंध रखनेवाले दो शिलालेख फलोधी से मिले हैं। इनमें से प्रथम वि० सं० १६६६ आषाढ सुदि २ (ई० स० १६३९ ता० २२ जून) शनिवार का उक्त स्थान के कल्याणराय के मन्दिर के सामने एक पत्थर पर खुदा है। उसमें जैमल के पुत्र मुंहणोत नयणसिंह (नैणसी) तथा नगर के अन्य महाजनों एवं ब्राह्मणों के द्वारा रंगमंडप बनवाये जाने का उल्लेख है[4]। दूसरा शिलालेख वि० सं० १७१५ वैशाख सुदि ५ (ई० स० १६५८ ता० २७ अप्रेल) मंगलवार का फलोधी के गढ़ के बाहर की दीवार पर खुदा है, जिसमें महाराजा जसवन्तसिंह के साथ महाराजकुमार पृथ्वीसिंह का नाम भी है। उससे पाया जाता है कि जैमल के पुत्र मुंहणोत सामकरण आदि ने उस दीवार का निर्माण कराया था[5]।

---

(१) इसका जन्म वि० सं० १७२३ माघ वदि ४ (ई० स० १६६७ ता० ४ जनवरी) को हुआ था और मृत्यु वि० सं १७३२ चैत्र वदि ३० (ई० स० १६७६ ता० ४ मार्च) को हुई।

(२) इसका जन्म पिता की मृत्यु के बाद वि० सं० १७३५ चैत्र वदि ४ (ई० स० १६७९ ता० १९ फ़रवरी) को लाहोर में हुआ और यही पीछे से जसवन्तसिंह का उत्तराधिकारी हुआ। इसका इतिहास आगे दूसरे भाग में आयेगा।

(३) इसका जन्म भी उसी दिन हुआ, जिस दिन अजीतसिंह का, पर यह छोटी अवस्था में ही मर गया।

(४) जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; जि० १२, पृ० ९९।

(५) वही; जि० १२, पृ० १००।

महाराजा जसवन्तसिंह के समय कई उद्यानों तथा तालावों आदि का निर्माण हुआ। उसकी राणी अतिरंगदे ने "जान सागर" बनवाया, जो "सेखावत जी का तालाव" भी कहलाता है। दूसरी राणी जसवन्तदे ने वि० सं० १७२० (ई० स० १६६३) में "राई का बाग़", उसका कोट तथा "कल्याण सागर" नाम का तालाव बनवाया था, जिसे "राता नाड़ा" भी कहते हैं[1]। स्वयं जसवन्तसिंह ने औरंगाबाद (दक्षिण) के बाहर अपने नाम पर "जसवन्तपुरा" आबाद किया था, जो अबतक मौजूद है। उसमें उसने एक आलीशान बाग़ और संगबस्त की एक इमारत बनवाई थी। इनमें से तालाव तो अबतक विद्यमान है, परन्तु इमारत के सिर्फ़ निशान रह गये हैं। उसकी स्मृति में आगरे में यमुना के किनारे मौजा घटवासन के पास उसकी कचहरी का भवन अबतक मौजूद है, जो आगरे के दर्शनीय स्थानों में गिना जाता है[2]।

महाराजा के समय के बने हुए स्थान

ख्यातों आदि में महाराजा की दानशीलता का बहुत कुछ उल्लेख मिलता है। कई अवसरों पर ब्राह्मणों, कवियों, चारणों आदि को गांव, सिरोपाव, अश्व इत्यादि देने के साथ ही उसने आढ़ा किशना दुरसावत तथा लालस खेतसी को लाखपसाव[3] दिये[4]। वह जैसा दानशील था वैसा ही विद्वान्, विद्यानुरागी तथा विद्वानों एवं कवियों का आदर

महाराजा की दानशीलता और विद्यानुराग

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २५७। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ७१८।

(२) उमराए हनूद; पृ० १६१-२।

(३) ख्यात से पाया जाता है कि महाराजा जसवन्तसिंह के समय लाख पसाव के नाम से केवल १५००) ही मिलते थे। ऊपर (पृ० ४११ टि० २ में) यह माना है कि गजसिंह के समय लाख पसाव का मूल्य २५००) के स्थान में २५०००) होना चाहिये, पर इस रक़म का घटता हुआ क्रम देखकर तो यही मानना पड़ता है कि उस स्थल पर दिये हुए २५००) ही ठीक हैं।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २०४-५।

करनेवाला था । उसके समय में साहित्य की बड़ी वृद्धि हुई तथा उसके आश्रय में कितने ही अमूल्य ग्रन्थों का निर्माण हुआ। महाराजा स्वयं भी ऊंचे दर्जे का कवि था। भाषा के उसके कई ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं, जिनमें से "भाषा-भूषण" नाम का ग्रन्थ सर्वोत्तम माना जाता है। यह रीति और अलंकार का अनुपम ग्रन्थ है। इसमें प्रारंभ में भाव भेद और फिर अर्थालंकारों का सुंदर वर्णन है। मिश्र बन्धुओं के शब्दों में—"जिस प्रकार इन्होंने अर्थालंकार कहे हैं उसी रीति से वे अब भी कहे जाते हैं। इस ग्रन्थ के कारण ये महाराज भाषालंकारों के आचार्य समझे जाते हैं । यह ग्रन्थ अद्यावधि अलंकार के ग्रन्थों में बहुत पूज्य दृष्टि से देखा जाता है[1] ।" महाराजा के रचे हुए दूसरे ग्रन्थ—अपरोक्ष सिद्धांत, अनुभव-प्रकाश, आनंद विलास, सिद्धांत बोध, सिद्धांत सार और प्रबोध चंद्रोदय नाटक हैं[2] । ये सभी छोटे-छोटे और वेदांत के हैं। महाराजा का काव्यगुरु सूरत मिश्र[3] था तथा

(१) मिश्रबंधु विनोद; द्वितीय भाग, पृ० ४६३ । उसी पुस्तक से पाया जाता है कि दलपतिराय वंसीधर ने वि० सं० १७९२ (ई० स० १७३५) में इस ग्रन्थ की टीका "अलंकार-रत्नाकर" नाम से की थी । इसके अतिरिक्त इसकी दो और टीकाएं क्रमशः प्रसिद्ध कवि परताप साहि तथा गुलाब ने बनाईं, जिनमें से पिछली प्राप्त हो गई है । उसका नाम "भूषण-चन्द्रिका' है (पृ० ४६८)

डॉ० ग्रियर्सन ने 'भाषा भूषण" के लेखक को तिरवा का बघेला राजा जसवन्तसिंह मान लिया है (दि मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव् हिन्दुस्तान; पृ० ९९-१००, संख्या ३७७), पर उसका यह कथन भ्रमपूर्ण ही है ।

(२) मिश्रबन्धु विनोद; द्वितीय भाग, पृ० ४६३ । हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण (रायबहादुर बा० श्यामसुंदरदास बी. ए.-द्वारा संपादित एवं काशी की नागरी प्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित); पहला भाग, पृ० ९२-३ ।

(३) यह आगरा निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण था । इसके लिखे हुए रस ग्राहक चंद्रिका, भ्रमर चंद्रिका, रस रत्नमाला, रसिक प्रिया टीका, अलंकार माला तथा सरस रस नामक उत्कृष्ट काव्य ग्रन्थ विद्यमान हैं ।

उस समय के प्रसिद्ध कवि नरहरिदास[1] तथा नवीन कवि[2] उसी के आश्रय में रहते थे[3]। बांकीदास लिखता है कि महाराजा ने बनारसीदास नाम के एक जैन व्यक्ति को एक आध्यात्मिक ग्रन्थ लिखने की आज्ञा दी थी[4]।

महाराजा का व्यक्तित्व

महाराजा जसवन्तसिंह अपने समय का बड़ा वीर, साहसी, शक्तिशाली, नीतिज्ञ, उदार एवं न्यायप्रिय नरेश था। उसके राज्यकाल में जोधपुर के राज्य का प्रताप बहुत बढ़ा। बादशाह शाहजहां के समय शाही दरबार में उसकी प्रतिष्ठा बड़े ऊंचे दर्जे की थी। उसके समय उसका मनसब बढ़ते-बढ़ते सात हज़ार ज़ात और सात हज़ार सवार तक पहुंच गया था और समय-समय पर उसे बादशाह की तरफ़ से हाथी, घोड़े, सिरोपाव आदि मूल्यवान् वस्तुएं उपहार में मिलती रहीं। उस (शाहजहां) के समय की अधिकांश चढ़ाइयों में शामिल रहकर उसने राठोड़ों के अनुरूप ही वीरता का परिचय देकर अपने पूर्वजों का नाम उज्ज्वल किया। बादशाह उसपर विश्वास भी बहुत करता था। यही कारण था कि अपनी बीमारी के समय अपने विद्रोही पुत्रों—शाह शुजा, औरंगज़ेब एवं मुराद—की तरफ़ से ख़तरे की आशंका होते ही उसने आगरे के क़िले की रक्षा के लिए अविलम्ब महाराजा जसवन्तसिंह को नियुक्त कर दिया। इस अवसर पर स्वयं उसके बड़े पुत्र दारा को भी रात्रि के समय क़िले में प्रवेश करने की पूरी मनाही थी। अनन्तर उसने जसवन्तसिंह को ही, आगरे की ओर बुरी नियत से बढ़नेवाले औरंगज़ेब और मुराद की सम्मिलित सेनाओं को परास्त करने के

(१) यह जोधपुर के गांव पचाना (मेड़ता) का निवासी बारहट जाति का चारण था। इसके लिखे हुए अवतार चरित्र, अवतार गीता, दशम स्कंध भाषा, नरसिंह अवतार कथा, अहिल्या पूर्व प्रसंग, राम चरित्र कथा तथा काकभुशुंड गरुड़ संवाद नामक ग्रंथ उपलब्ध हैं।

(२) इसका लिखा हुआ "नेह निधान" नामक ग्रन्थ विद्यमान है।

(३) हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण; पहला भाग, पृ० ५२।

(४) ऐतिहासिक बातें; संख्या ५२०।

लिए भेजा। दोनों शाहज़ादों की संयुक्त सेना की शक्ति बहुत बड़ी थी, पर न्याय के पक्ष में होने के कारण वह ज़रा भी विचलित नहीं हुआ। उसने ऐसी वीरता के साथ विद्रोही शाहज़ादों का सामना किया कि कुछ समय के लिए उनके हृदय पराजय की आशंका से विचलित होगये, परन्तु दूसरे शाही अफ़सर क़ासिमख़ां के विश्वासघात करने तथा अचानक युद्धक्षेत्र छोड़कर चले जाने से युद्ध का रूप बिल्कुल बदल गया। शाही सेना की बुरी तरह पराजय हुई। जसवन्तसिंह उस समय भी लड़ने के लिए कटिबद्ध था, पर उसके स्वामिभक्त सरदारों ने इसकी निष्फलता जतलाकर उसे युद्धक्षेत्र का परित्याग करने के लिए मजबूर किया। ऐसी दशा में भी औरंगज़ेब की उसका पीछा करने की हिम्मत न पड़ी, क्योंकि उसे उसकी वीरता का भलीभांति ज्ञान था। अपनी इस पराजय की महाराजा के मन में बहुत समय तक ग्लानि बनी रही। इसके थोड़े समय बाद ही वास्तविक उत्तराधिकारी दारा को हरा और शाहजहां को नज़रक़ैद कर औरंगज़ेब ने सारा मुग़ल-राज्य अपने अधिकार में कर लिया, परन्तु दारा और शुजा के जीवित रहते हुए उसका मार्ग निष्कंटक न था। इन कांटों के रहते हुए उसने जसवन्तसिंह जैसे शक्तिशाली शासक से बैर मोल लेना ठीक न समझा और उसे बुलाकर उसका मनसब आदि बहाल कर उसे अपने पक्ष में कर लिया, पर इससे जसवन्तसिंह की मनस्तुष्टि न हुई। ऊपर से किसी प्रकार का विरोध प्रकट न करने पर भी, उसका मन औरंगज़ेब की तरफ़ से साफ़ न हुआ। पिता की जीवितावस्था में ही उसका सारा राज्य हड़प लेना न्यायप्रिय जसवन्तसिंह को पसन्द न था। देश की दशा तथा औरंगज़ेब की बढ़ती हुई शक्ति को देखते हुए प्रकट रूप से उसका विरोध करना हानिप्रद ही सिद्ध होता। फिर भी खजवा की लड़ाई में एकाएक औरंगज़ेब की सेना में लूट-मार मचाकर उसने अपनी विरोध-भावना का परिचय दिया। उस समय औरंगज़ेब के लिए बड़ी विकट स्थिति उत्पन्न हो गई थी, पर शाह शुजा के ठीक समय पर आक्रमण न करने के कारण इससे कुछ भी लाभ न हुआ और जसवन्तसिंह को शीघ्र जोधपुर जाना पड़ा। औरंगज़ेब

इस बात से उसपर वड़ा नाराज़ हुआ और उसने रायसिंह को एक बड़ी सेना के साथ उसके विरुद्ध भेजा, लेकिन पीछे से उसने उससे मेल कर लेने में ही भलाई समझी। भविष्य में वह उसकी तरफ़ से सावधान रहने लगा, जिससे उसने अन्त में उसकी नियुक्ति दूर देश में ही की, ताकि वह निकट रहकर कोई बखेड़ा न खड़ा कर सके। उसको खुश रखने के लिए उसने समय-समय पर उसे इनाम-इकराम भी दिये।

महाराजा कट्टर हिन्दू था, इसी से बादशाह-द्वारा प्रसिद्ध मरहटा वीर शिवाजी के विरुद्ध भेजे जाने पर भी उसने उन चढ़ाइयों में विशेष उत्साह न दिखाया। अपने पड़ोसी राजाओं के साथ उसका सदैव मैत्रीभाव ही बना रहा। महाराणा राजसिंह ने राजसमुद्र की प्रतिष्ठा के अवसर पर अन्य मित्र राजाओं के समान उसके पास भी एक हाथी, दो घोड़े तथा सिरोपाव भेजा था। कछवाहा राजा जयसिंह के साथ भी उस(जसवंतसिंह)की ऊंचे दर्जे की मैत्री बनी रही।

बहुधा शाही सेवा में संलग्न रहने पर भी वह अपने राज्य के प्रबंध की तरफ़ से कभी उदासीन न रहा। सरदारों आदि के बखेड़े होने पर उसने योग्य व्यक्तियों को भेजकर उनका सदा ठीक समय पर दमन करवा दिया। उसके समय में राज्य में शांति तथा समृद्धि का निवास रहा।

वह जैसा वीर था, वैसा ही दानी, विद्वान् और विद्याप्रेमी नरेश भी था। उसने स्वयं भाषा में कई अपूर्व ग्रन्थ बनाये थे, जिनका उल्लेख ऊपर आ गया है। उसके मंत्रियों में से मुंहणोत नैणसी बड़ा योग्य, विद्वान् तथा वीर व्यक्ति था। उसका लिखा हुआ इतिहास ग्रन्थ, जो "मुंहणोत नैणसी की ख्यात" के नाम से प्रसिद्ध है, ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्त्व रखता है। महाराजा की सख्ती से तंग आकर मुंहणोत नैणसी ने पीछे से कटार खाकर आत्महत्या कर ली। यदि वह जीवित रहता, तो ऐसे कई अमूल्य ग्रन्थ लिख सकता था।

महाराजा ने काबुल में रहते समय वहां से बढ़िया अनार के पेड़ माली घतरा गहलोत के साथ भेजकर जोधपुर में कागा के बाग़ में

लगवाये । अब भी मिठास और गुण के लिए यहां के अनार दूर-दूर तक मंगाये जाते हैं और बहुत प्रसिद्ध हैं।

महाराजा की मृत्यु के साथ ही जोधपुर राज्य का सितारा अस्त हो गया। उसकी मृत्यु के समय उसके कोई पुत्र जीवित न होने से बादशाह को अपनी नाराज़गी निकालने का अच्छा अवसर मिल गया। उसने अवि-लम्ब सेना भेजकर जोधपुर राज्य खालसा कर लिया और वहां कितने एक वर्षों तक मुग़लों का अधिकार बना रहा। इस संबंध में जसवन्तसिंह के दुर्गादास आदि स्वामिभक्त सरदार प्रशंसा के पात्र हैं, क्योंकि उनकी वीरता एवं अनवरत उद्योग के फलस्वरूप ही जसवन्तसिंह की मृत्यु से कुछ समय बाद उत्पन्न उसके पुत्र अजीतसिंह को औरंगज़ेब के मरने पर पुनः जोधपुर का राज्य प्राप्त हो सका।